'निधानगिरि' कृत 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य का शोध परक मूल्यांकन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी (उ0प्र0)
में हिन्दी विषय के अन्तर्गत
डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2005

शोध निर्देशक

डॉ0 रामगोपाल गुप्त
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
पं0जे0एन0पी0जी0कालेज, बांदा (उ0प्र0)
पूर्व संयोजक, हिन्दी पाठ्यक्रम एवं शोध-समिति
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

अनुसंधानकर्त्री

अनामिका दीक्षित
एम0ए0 (हिन्दी, संस्कृत)
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
एकलव्य महाविद्यालय, बाँदा (उ0प्र0)

अनुसंधान केन्द्र : पं0 जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदा

डॉ0 रामगोपाल गुप्त
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
पं0 जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, बाँदा
पूर्व संयोजक, हिन्दी पाठ्यक्रम एवं शोध-समिति,
बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
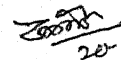
प्रमाण—पत्र

मैं प्रमाणित करता हूँ कि **अनामिका दीक्षित** आत्मजा डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के अन्तर्गत हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी उपाधि हेतु **'निधान गिरि' कृत 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य का शोध परक मूल्यांकन'** शोध-प्रबन्ध मेरे निर्देशन में बु0वि0वि0 की शोध परि-नियमावली की धारा-7 के अन्तर्गत निर्धारित अवधि तक उपस्थित रहकर पूर्ण किया है।

शोध-प्रबन्ध बुन्देलखण्ड के महत्वपूर्ण महाकवि 'निधान गिरि' की दुर्लभ पाण्डुलिपि 'भक्ति-मनोहर' पर आधारित सर्वथा नव्य, मौलिक एवं शोध के क्षेत्र में नवीन अवधारणाओं को स्थापित करने वाला है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को हिन्दी विषय में पी0-एच0डी0 उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

शोध-निर्देशक

20-12-05

(डॉ0 रामगोपाल गुप्त)
रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
पं0 जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बाँदा (उ0प्र0)

घोषणा

मै घोषण करती हूँ कि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के अन्तर्गत हिन्दी विषय में डाक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध **'निधान गिरि' कृत 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य का 'शोध परक मूल्यांकन'** मेरी नव्य एवं सर्वथा मौलिक कृति है।

शोधकर्त्री
अनामिका दीक्षित

दिनाँक-26.12.205

(अनामिका दीक्षित)
एम0ए0,(हिन्दी,संस्कृत)
अध्यक्ष,हिन्दी-विभाग
एकलव्य महाविद्यालय, बाँदा (उ0प्र0)

प्राक्कथन

हिन्दी अथवा किसी अन्य भारतीय भाषा में अभी तक 'निधान-गिरि' और उनके 'भक्तिमनोहर' प्रबंध-काव्य का अध्ययन नहीं हुआ है। इस दुर्लभ महाकाव्य की हस्तलिखित प्रति मूल रूप में कवि की जन्मभूमि ऐरच-मोठ से प्रख्यात अनुसन्धानकर्ता विद्वान डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' और डॉ0 ओ.पी.एल. श्रीवास्तव के प्रयत्न से खोज में प्राप्त हो सकी। अभी तक यह ग्रंथ मूल रूप में अप्रकाशित होने के कारण किसी के अध्ययन का विषय ही नहीं बना था, अत: इस ग्रंथ से अभी तक हिन्दी जगत अपरिचित था।

डॉ0 ललित सर्वप्रथम इस ग्रंथ के पाठ को पढ़कर इस महाकवि के महनीय काव्य-धर्म से परिचित हुये। जिन दिनों मेरे पितृपाद डॉ0 ललित इस ग्रंथ रत्न का अध -ययन कर रहे थे, मैं भी उनके साथ इस महान ग्रंथ को अध्ययन करने का अवसर पा सकी। महाकाव्य के गौरव से परिचित होने पर मेरी उत्कृष्ट अभिलाषा इस ग्रंथ पर शोध करने के लिए हुयी।

शोध-छात्रा ने मूल प्रति से अध्ययन करके अपने पठनार्थ एक प्रति भी तैयार की। मूल पाठ को ज्यों का त्यों स्वीकारें करनें में शोध छात्रा ने कठिन श्रम करके इस ग्रंथ का पाठ निर्धारण किया। शिरोरेखा न होने के कारण कहीं-कही पाठ को ग्रहण करने में कठिनायों से भी गुजरना पड़ा। उदाहरणार्थ-

''कंचन की चिरई उडत को गहवेली धोइ''

उक्त पंक्ति में शिखेरेखाएँ नहीं हैं, अत: 'कंचन की चिरई उड़त' तक का पाठ तो सहज है किन्तु 'को गहवेली धोइ' पाठ ग्रहण करने में कठिनाई का सामना करना होगा। क्योंकि इस पाठ को तीन प्रकार से पढ़ा जा सकता है-

अ. को गह वेली धोइ।

ब. कोग हवेली धोइ।

स. को गहवे लीधोइ।

अर्थ की दृष्टि से तृतीय पाठ ही प्रामाणिक होगा, अन्य दो पाठों के अर्थ नहीं निकलते, केवल तीसरे पाठ 'को गहवे लीधोइ' से ही अर्थ निकलता है; 'उड़ती हुयी कंचन की चिड़िया को हरे लेध से कौन पकड़ पायेगा।' 'लेध' शब्द आंचलिक है, इस आंचलिक बोली के शब्दों को पहचानकर ही अर्थ संभव है।

शोध-छात्रा ने अनुसंधानकर्ता एवं साहित्य को समर्पित पूज्य पितृपाद के सहयोग से ही निर्भ्रान्ति पाठों का निर्धारण कर सकी। इस कार्य के लिए पूरे एक वर्ष का समय मूल ग्रंथ के अध्ययन, प्रतिलिपि एवं पाठ ग्रहण करने में लगा। यह कार्य कठिन, श्रमसाध्य एवं धैर्य की परीक्षा लेने वाला था। 'निधान गिरि' जैसे महाकवि पर कुछ कार्य हो सके,

मौलिक शोध को प्रोत्साहन मिल सके, इसी भावना से प्रेरित होकर शोध-छात्रा ने इस महान अज्ञात अरण्य में प्रवेश किया। मूल पाण्डुलिपि के प्रतिलिपि होने एवं उसे पाठ के लिए तैयार करके मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुयी और मेरे शोध का आधार तैयार हो गया। मुझे अपने लक्ष्य और सोपान में एक और सफलता तब मिली, जब मेरे हिन्दी के गुरूदेव और बुन्देलखण्ड वि.वि. के हिन्दी पाठ्यक्रम एवं शोध-समिति के तत्कालीन संयोजक विद्वद्-प्रवर डॉ0 रामगोपाल गुप्त जी के निर्देश एवं सौजन्य से इस मौलिक कार्य पर शोधकार्य करने की विश्वविद्यालय द्वारा अनुमति प्राप्त हो गयी।

शोध-छात्रा ने 'निधान गिरि' कृत 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य पर एक शोध लेख भी लिखा, जिसे सुनकर डॉ0 रेखा वासुदेवन, कार्यक्रम अधिकारी, आकाशवाणी छतरपुर ने इसे प्रकाशन के लिए स्वीकार कर लिया और आकाशवाणी छतरपुर द्वारा एक वार्ता भी 26 नवम्बर 2005 को प्रसारित की गयी।

इस प्रकार शोधछात्रा के पूर्व इस महाकाव्य पर किसी प्रकार का कोई कार्य न होने के कारण, इस काव्य ग्रंथ के प्रकाशन आदि के अभाव में तथा किसी भी 'टीका आदि के न होने के कारण अध्येता को सभी कुछ नये सिरे से, मौलिक रूप में, प्रथम विचार करने, स्थापनाएँ करने, निष्कर्ष निकालने, जीवन सूत्र तैयार करने, कवि की साधना पद्धति, उसकी काव्यात्मक उपलब्धि आदि पर सर्वथा मौलिक विधि से कार्य करने में जो सुखानुभूति हुयी, उसे वाणी से व्यक्त करना संभव नहीं।

प्रस्तुत अध्ययन महाकवि 'निधान गिरि' के 'भक्तिमनोहर' के विविध पक्षों पर प्रकाश डालने वाला प्रथम शोध-प्रबंध है। अत: यह प्रबंध 'निधान-गिरि' के अध्ययन, मूल्यांकन का आधार स्तम्भ बनेगा। आगामी शोध कार्यो को इससे दिशा निर्देश मिलेंगे तथा इस प्रबंध के सूत्रों से अनुसंधान और ज्ञान की नयी-नयी जानकारियाँ मिलेंगी।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध सात परिवर्त्त में विभक्त है। शोध-प्रबंध का प्रथम परिवर्त्त कवि परिचय, रचना काल एवं काव्यादर्श, से सम्बन्धित है। कवि के अज्ञात जीवनवृत्त के लिए सूत्रों को खोजना, उनकी प्रामाणिकता पर विचार करना, पुन: उन्हें संयोजित करना अत्यन्त कठिन कार्य था। इस कार्य के लिए शोधछात्रा ने जिन प्रविधियों को अपनाया है, उनमें सर्वेक्षण, शोध-यात्राएँ, कवि सूचनाओं को संकलित करना तथा उनकी प्रामाणिकता पर विचार करना आवश्यक था। कवि के ग्रंथों में प्राप्त अन्त: साक्ष्यों को आधार मानकर तथा वहि: साक्ष्यों की सूचनाओं एवं तथ्यों को प्रामाणिकता की कसौटी में कसने पर जो तथ्य प्राप्त हुए है, उनसे कवि के जीवन वृत्त, व्यक्तित्व एवं उसके पारिवारिक वृत्त को संयोजित किया गया है। जीवन वृन्त के लिए जहाँ कवि 'निधान गिरि' के महाकाव्य 'भक्तिमनोहर' के अन्त: साक्ष्यों को आधार बनाया गया है, वहीं कवि की जन्मभूमि से प्राप्त उनके दूसरे आयुर्वेद से सम्बन्धित ग्रंथ 'वैद्यक सिंधु' से भी संदर्भ लेकर तथ्यों को पुष्ट किया गया है। 'निधान गिरि' के पितृश्री अनूप गिरि 'हिम्मत बहादुर' से सम्बन्धित रीतिकालीन कवि पद्माकर कृत 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' में उल्लिखित विवरणों,

गजेटियर्स, ऐतिहासिक रिकार्ड, पत्रावलियों आदि से प्राप्त सामग्री के आधार पर कवि के पारिवारिक वृत्त का प्रारूप तैयार किया गया है। शोध-प्रबंध का द्वितीय परिवर्त्त 'भक्तिमनोहर महाकाव्य में कथावस्तु, पात्र एवं चरित्र चित्रण' से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत वस्तु विभाग, कथा संयोजन, प्रबन्धात्मक वैशिष्ट्य, पात्र एवं चरित्र-चित्रण पर विचार किया गया है। भक्तिमनोहर की वस्तु का विभाजन चार प्रकाशों-भक्ति प्रकाश, ज्ञान प्रकाश, कर्म प्रकाश, दुर्ग प्रकाश तथा 30 अध्यायों में किया गया है। प्रथम में कवि ने भक्ति के प्रकारों एवं भक्ति के स्वरूप पर विस्तृत रूप से प्रकाश डालकर ग्रंथ की पीठिका तैयार की है। भक्ति प्रधान होने के कारण कवि ने ग्रंथ का नामकरण भी 'भक्तिमनोहर' किया है। हरि के अवतार का मुख्य प्रयोजन भी भक्ति का हेतु बताया है, अतः भक्ति, ज्ञान आदि को कवि ने प्रथम अध्याय में लेकर कथावस्तु में जो परिवर्तन किये हैं, वे सोद्देश्य है। हरि के अवतारों में मीन, कमठ, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम की अवतार कथाओं को दूसरे से छठवें अध्याय तक संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। सातवें से बाइसवें अध्याय तक सूर्यवंश में राम के जन्म से राम के अयोध्या राज्य एवं आश्रम धर्म तक के नाना चरित्रों का सफल निबन्धन किया है। तेइसवें अध्याय से चन्द्रवंश की उत्पत्ति में पुरुरवा, उर्वशी की प्रेमपरक कथाओं से पृष्ठभूमि देते हुए कृष्ण के जन्म से शिशुपाल वध तक की कथा को दिया है। तीस अध्यायों तक कुल आठ अवतारों की कथा का कवि ने संयोजन किया है। कल्कि और बुद्ध के अवतारों को छोड़कर शेष अष्ट अवतारों का वर्णन करके कवि ने, वैष्णवी दृष्टि का परिचय दिया है।

कवि ने आधिकारिक कथावस्तु में हरि की भक्ति, हरि के अवतारों के प्रति निष्ठा को व्यक्त किया है तथा प्रासंगिक कथाओं के द्वारा रसात्मकता उत्पन्न करके मूल कथा को संपुष्ट किया है। सूर्यवंश, चन्द्रवंश, निमिवंश, वरदान और श्राप कथाएँ अवान्तर के रूप में दी गई है। वस्तु के संयोजन में कवि ने नाट्य संधियों, नाट्य अवस्थाओं आदि का सफल प्रयोग किया है। कथावस्तु में जहाँ कहीं कवि ने परिवर्तन किये हैं, उसमें कवि का दृष्टिकोण, राष्ट्रीय आन्दोलन, सांस्कृतिक एकता तथा हरि अवतारों को नवीन रूप में प्रस्तुत करने की मनोभावना प्रतीत होती है।

शोध प्रबंध के इसी परिवर्त्त में दशरूपककार के शास्त्रीय आधार पर भक्तिमनोहर में वर्णित चरित्रों को वर्गीकृत करते हुए पौराणिक चरित्र, रामकथापरक चरित्र, कृष्णकथा परक चरित्र तथा लिंग के आधार पर पुरुष एवं नारी चरित्र तथा दैवी एवं मानवीय तथा मानवेतर चरित्रों का उल्लेख करते हुए प्रमुख चरित्रों का निरूपण भी किया गया है। कवि ने राम और कृष्ण को नर शार्दूल, लोक रंजक तथा लोक रक्षक चरित्र के रूप में वर्णित किया है, महाशक्ति एवं चैतन्य शक्ति के रूप में भगवती सीता और राधा को सौन्दर्य , करुणा तथा मंगलों की साक्षात-विग्रह के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

शोध-प्रबंध का तृतीय परिवर्त्त 'भक्तिमनोहर महाकाव्य का रसात्मक अनुशीलन' से सम्बन्धित है।इस परिवर्त्त में महाकवि की रस विषयक दृष्टि का विवेचन करते हुए काव्य रस एवं भक्ति रसों के बीच समन्वय की चेष्टा तथा एक ही रस की परिधि में अन्य

रसों के संगुफन से राष्ट्रीय एकता, मानवीय समता का बोध कराया गया है। परंपम्परित काव्य रसों में करुण, रौद्र, वीर, भयानक, हास्य, अद्‌भुत, वीभत्स रसों को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है, तथा भक्ति रसों के अन्तर्गत सख्य, दास्य, वात्सल्य, मधुर एवं शान्त आदि रसों का विवेचन करते हुए भाव, भावाभास, भवोदय, भावसंधि, भावशबलता आदि के सम्बन्ध में विचार किया गया है। कवि ने भक्ति का मूल आधार प्रीति को माना है और प्रीति के आधार से समस्त भक्ति भाव एकता के लिए कार्यरत् हो जाते हैं इस प्रकार कवि ने रसों के माध्यम से मानवीय मुक्ति का उद्देश्य पूरा कराया है और आचार्य पं0 रामचन्द्र शुक्ल से पूर्व यह मान्यता दी है कि रस ही मानव मुक्ति के साधन हैं।

शोध-प्रबंध का चतुर्थ परिवर्त्त 'भक्तिमनोहर में भक्ति, दर्शन एवं सौन्दर्यानुभूति' से सम्बन्धित है। भक्ति के क्षेत्र में कवि 'निधान-गिरि' समस्त भक्ति आचार्यो के वर्गीकरण और उनके द्वारा निरूपित भक्तियों को, उनके भेदोंपभेदों के साथ वर्णित किया है। गीता की त्रिविध भक्ति, भागवत की नवधा भक्ति एवं दशधा प्रेमा भक्ति आदि का उल्लेख किया है। कवि ने वैष्णवी भक्ति, शैव भक्ति, तंत्र भक्ति एवं पांचरात्र आदि में वर्णित भक्तियों के मतमतान्तरों का समाहार करके एक ऐसी एकता की आधार भूमि तैयार की है, जिसमें उत्तर-दक्षिण की समस्त भक्ति परम्पराएँ एकत्र हो जाती हैं। कवि ने भारतीय दर्शनों में उपनिषद् दर्शन, न्याय, साख्य, वैशेषिक, योग, मीमांसा, वेदान्त, तंत्र दर्शन की आधार भूमियों में जीव, जगत्र, माया आदि का दार्शनिक समन्वय भी कराया है।कवि ने नर को नारायण के तुल्य कहकर क्रान्ति स्थापना भी की है।इसी परिवर्त्त में सौन्दर्य विवेचन के अन्तर्गत भाव-सौन्दर्य, कल्पना-सौन्दर्य, प्रकृति-सौन्दर्य का निरूपण किया है।प्रकृति सौन्दर्य हो अथवा मानवीय सौन्दर्य, दोनों में कवि ने काम से मुक्ति दिलाकर जिस आनन्द की स्थापना की है, वह अभिवंद्य है। चित्रकूट में राम ने काम को विश्वविजयी होने का वर दिया किन्तु राम और काम की संधि में यह भी शर्त की गई कि काम राम के भक्तों को पीडि़त नहीं करेगा वरन् काम कलाओं के द्वारा सहयोगी भूमिका में रहेगा। प्रकृति सौन्दर्य में वसंत, वर्षा, शरदकालीन सौन्दर्य के चित्र हैं। झूले और फाग चित्रों, बिम्बों में मानसिक उल्लास की व्यंजनाएँ है। प्रेम और आनन्द का लोकोत्सव सौन्दर्य बोध को नई दृष्टि प्रदान करता है। युद्ध रत योद्धाओं का रक्त रंजित परिवेश कर्म सौन्दर्य को व्यक्त करता है। कृषि संस्कृति एवं ग्राम्य बिम्बों से महाकवि 'निधान गिरि' ने काव्य के क्षेत्र में वही कार्य किया है, जो कहानियों और उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र ने।

शोध-प्रबंध का पंचम परिवर्त्त 'भक्तिमनोहर में भाषा दर्शन' से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत शब्दानुशासन, शब्दावली, हिन्दी तथा उपभाषाओ के विभिन्न पदों पर विचार किया गया है। व्याकरण की दृष्टि से संज्ञा, कारक, परसर्ग, क्रियाएँ, सर्वनाम, विशेषण आदि का विश्लेषण करते हुए कवि की भाषागत उपलब्धियों पर गहन समीक्षा की गई है। कवि ने बृज, अवधी के साथ-साथ बुन्देली को प्रतिष्ठित करके 'मानुषी' भाषा अर्थात् जन भाषा में महाकाव्य की रचना करके राष्ट्र भाषा के अनुकूल सरल, सुबोध तथा जनप्रिय भाषा को महत्व दिया है। बुन्देली के मुहावरे, लोकोक्तियों पर विचार किया गया है तथा कवि के द्वारा प्रयुक्त भाषा के वैशिष्ट्य को भी उद्घाटित गया है।

शोध-प्रबंध का षष्ठ परिवर्त्त 'भक्तिमनोहर में अलंकार, गुण, रीति, ध्वनि' से सम्बन्धित है। कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का सोदाहरण विवेचन किया गया है। अलंकारों के प्रयोग में कवि की मनोभूमि का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। गुण, रीति ध्वनि सौन्दर्य का विवेचन करते हुए कवि की श्रुति ध्वनियों के सौन्दर्य को मूल्यांकित किया गया है।

शोध-प्रबंध का सप्तम परिवर्त्त 'मूल्यांकन : समस्याएँ एवं समाधान' से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत मूल पाँडुलिपियों पर आधारित कृतियों के सम्पादन, प्रकाशन एवं मूल्यांकन के गहन दायित्व पर विचार किया गया है।कवि के अवदान पर विचार करते हुए भक्ति, काव्यशास्त्र, राजनीति तथा समाज के क्षेत्र में कवि के प्रदेय का मूल्यांकन किया गया है। उपसंहार के अन्तर्गत कवि की प्रमुख उपलब्धियों को उद्‌घाटित किया गया है। परिशिष्ट में उपजीव्य ग्रंथो एवं संदर्भ ग्रंथो की तालिका के साथ-साथ मूल ग्रंथ (दुर्लभ पाँडुलिपि) की छायाप्रति एवं कवि की जन्मस्थली से प्राप्त दुर्लभ अभिलेखों के छाया चित्र भी संकलित किये गये हैं, जिससे कवि की जन्मभूमि की ऐतिहासिकता प्रमाणित होती है।

शोध यात्रा में अनेक विद्वानों के स्नेह, सौजन्य का प्रसाद प्राप्त हुआ है, जो शोध कार्य को मूल्यवान बनाने में सहयोगी सिद्ध हुआ है। सर्वप्रथम अपने पूज्य गुरूवर्य और शोध निर्देशक विद्वत्प्रवर डॉ0रामगोपाल जी गुप्त, अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, पं0जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय बाँदा के प्रति आभार निवेदित करने मे मुझे प्रसन्नता का अनुभव होता है कि वे अध्यापन काल से ही निरन्तर प्रेरणा-प्रोत्साहन प्रदान करते रहे तथाअपने वात्सल्यानुदान से आत्मीयता का संबल प्रदान करते रहे। पं0 जवाहरलाल नेहरू महाविद्यायल के यशस्वी प्राचार्य डॉ0 नन्दलाल शुक्ल एवं हिन्दी विभाग के समस्त आचार्यो के प्रति विशेष रूप से आभारी हूँ जिनमे डॉ0 श्रीमती मनोरमा अग्रवाल, डॉ0 ज्ञानप्रकाश तिवारी, डॉ0 देवलाल मौर्य, डॉ0 श्रीमती सुमन सिंह, डॉ0 ए.के.शुक्ल, डॉ0 श्रीमती रंजना सिन्हा आदि प्रमुख हैं। मेरी शोध यात्राओं में जालौन के आदरणीय रविशंकर जी द्विवेदी, डॉ0 सुरेन्द्र द्विवेदी, डॉ0 सुधान्शु द्विवेदी के अतिरिक्त बुन्देली के साहित्यकार कन्हैयालाल 'कलश', चन्द्रेश वरदिया तथा कवि परिवार के भोलाराम गिरि आदि के प्रति भी आभार स्वीकार करती हूँ। भक्तिमनोहर में वर्णित नक्षत्रों एवं ज्योतषीय गणनाओं के लिए ज्योतिर्विद् पं0 शिवबालक प्रसाद त्रिपाठी, पं0 आचार्य रामेश्वर प्रसाद त्रिपाठी, भूरा महराज गिरि का भी आभार स्वीकार करती हूँ। परिवार के अपने बन्धु व्यंजक दीक्षित और उत्कर्ष को भी अपना शुभाशीष प्रदान करती हूँ जिन्होंने शोध प्रबंध में विभिन्न प्रकार का सहयोग प्रदान किया। पी0डी0कम्प्यूटर के प्रोपराइटर श्री पी.डी. गुप्त एवं लेजर कम्पोजिंग आपरेटर श्री बिहारी शरण निगम व कु0 सलमा को बधाई देना अपना कर्तव्य समझती हूँ जिनके अनवरत् प्रयास से यह शोध-प्रबंध समय की सीमा के अन्तर्गत प्रस्तुत हो सका।

शोध के क्षेत्र में जिन विद्वानों की वरद छाया निरन्तर सुख एवं शान्ति का संचार करती रही उनमें स्वनाम धन्य, कीर्ति शेष प्रो0 विष्णुकान्त शास्त्री (भू.पू. राज्यपाल उ0प्र0), डॉ0 राजेन्द्र मिश्र, कुलपति सम्पूर्णा-नन्द सं0वि0 वाराणसी, आचार्य प्रवर पं0 सीताराम

चतुर्वेदी आचार्य बलदेव प्रसाद उपध्याय, डॉ0 हरिदत्त शास्त्री, डॉ0 प्रेम शंकर लखनऊ वि0वि0, डॉ0 पतंजलि कुलपति भागलपुर वि0वि0, डॉ0 रामसजीवन त्रिपाठी तिरूपति, डॉ0 वेदप्रकाश द्विवेदी अध्यक्ष हिन्दी विभाग अतर्रा महा विद्यालय, डॉ0 मोहन अवस्थी, प्रयाग, डॉ0 गयाप्रसाद 'सनेही', डॉ0 विश्वंभर दयाल अवस्थी प्रभति विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर विभिन्न प्रकार के सहयोगों से उपकृत किया है। और अन्त में वाग्वल्लरी और ललित् कीर्ति मंजरी, मातृवरदायनी डॉ0 शशिप्रभा दीक्षिति के असीम औदार्य को, जो अनिवर्चनीय है, उनका आभार वाणी से कैसे व्यक्त करूं? कुल देवता पितामह महामहनीय, सिद्ध सारस्वत आचार्य पं0 दीनदयाल दीक्षित की पुण्य स्मृति को, जिन्होंने 'सारस्वत' और 'चन्द्रिका', पाणिनि और पतंजलि जैसे भाष्यकारों को आत्मसात किया था, संस्कृति, संस्कृत एवं भारतीय भाषाओ के संवर्द्धन का महाव्रत लिया था, उनको अश्रु आपूरित नयनों से नमन करती हूँ, जिन्होंने साहित्य साधना और वांगमय में प्रवेश कराया था और आज जो कीर्ति शेष रह गये हैं।

महामनस्वी शोध परीक्षकों के प्रति अग्रिम अभिनन्दन अर्पित करती हूँ, जिनके स्नेह और हिन्दी राष्ट्र भारती साधना का अक्षुण्य पुण्य पराग प्रार्थित प्राणों के अन्तर क्षितिज को नव्य-नव्य चेतना से अनुप्राणित करता रहेगा। प्रसतुत शोध-प्रबंध की पावन कृति साधना एवं आराधना की अमर 'अनामिका' बन सके, इसी मनोजयी मनोकामना के साथ।

अनामिका दीक्षित
एम0ए0, हिन्दी, संस्कृत
स्वर्ण पदक विजयनी
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
एकलव्य महाविद्यालय, बाँदा (उ0प्र0)

शोध–प्रबन्ध

'निधान गिरि' कृत 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य का शोध–परक अनुशीलन

विषयानुक्रमणिका

संकेताक्षर

1.	अ0पु0	अग्निपुराण
2.	अथर्व0	अथर्ववेद-संहिता
3.	ई0प्र0	ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा
4.	ई0उ0	ईशावास्योपनिषद्
5.	ऋ0	ऋग्वेद-संहिता
6.	यर्जु0	यजुर्वेद-संहिता
7.	ऐ0उ0	ऐतरेय उपनिषद्
8.	के0उ0	केन उपनिषद्
9.	का0प्र0	काव्य-प्रकाश
10.	छा0उ0	छांदोग्य उपनिषद्
11.	तै0ब्रा0	तैत्तिरीय ब्राह्मण
12.	त्रि0र0	त्रिपुरा-रहस्य
13.	ना0भ0सू0	नारद-भक्ति-सूत्र
14.	पा0यो0	पातंजलि योग सूत्राणि
15.	पा0यो0द0	पातंजल-योग-दर्शन
16.	वा0रा0	वाल्मीकीय रामायण
17.	ब्र0वै0पु0	ब्रह्मवैवर्त पुराण
18.	म0पु0	मत्स्य पुराण
19	सु0तं0	सुन्दरी तंत्र
20.	वा0पु0	वाराह पुराण
21.	वाम0पु0	वामन पुराण
22.	वि0पु0	विष्णु पुराण
24.	वृ0उ0	वृहदारण्यक उपनिषद्
25.	वे0सा0	वेदांत सार
26.	श0ब्रा0	शतपथ ब्राह्मण
27.	शां0भ0	शांडिल्य भक्तिसूत्र
28.	ना0प्र0स0	नागरी प्रचारिणी सभा
29.	चं0शो0सं0	चन्ददास शोध संस्थान
30.	रा0सं0	राजकीय संग्रहालय
31.	अ0गि0हि0ब0वि0	अनूपगिरि हिम्मतबहादुर विरुदावली
32.	प0ग्रं0	पद्माकर ग्रंथावली
33.	गा0ओ0सी0	गायकवाड ओरियन्ट सीरीज
34.	भ0र0सि0	भक्ति रसामृत सिन्धु
35.	भ0र0	भक्ति रसायन
36.	ह0लि0ग्र0	हस्तलिखित ग्रंथ
37.	सा0र0	संगीत रत्नाकर
38.	उ0नी0	उज्जवल नीलमणि
39.	पृ0क्र.	पृष्ठ क्रमशः

प्रथम परिवर्त्त

कवि परिचय, रचनाकाल एवं काव्यादर्श

पृष्ठाधार
इतिहास ग्रन्थों एवं संदर्भ ग्रन्थों में उपलब्ध विवरण
नामकरण
स्थान
काल
व्यक्तित्व संरचना में परिवार
'निधान गिरि' एक महान व्यक्तित्व
व्यक्तित्व
बाल्यावस्था
गुरू
शिष्य–परम्परा
अध्ययन
आयुर्वेद
गणित
ज्योतिषशास्त्र
संगीत
चिन्तन–अवधारणा
कवि का कर्म, धर्म, संस्कृति के प्रति अनुराग
राजाश्रय और राज्य–सम्मान
महाराज समथर द्वारा कवि को आमंत्रण
जयपुर नरेश महाराज प्रताप सिंह का संदर्भ
जीवन के विविध आयाम
निर्वाण
संदर्भ ग्रन्थ

संस्कृति दर्शन का सूत्रपात महाकवि निधानगिरि के द्वारा संभव हुआ वह साहित्य, संस्कृति और इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ऐसे सृष्टा और दृष्टा महाकवि ने जिसमें व्यास, वाल्मीकि और कालिदास को लेकर, तुलसी, सूर और जयदेव की मिली-जुली धाराओं को एक नयी गति प्रदान की गयी है, उसकी उपलब्धियों से हिन्दी साहित्य को परिचित कराना अनुसंधान का दायित्व धर्म है।

भक्ति एवं रीति को एक नयी दिशा देकर आधुनिक युग में प्रवर्तन कराने वाले कवियों में 'निधानगिरि' युगदृष्टा और युगसृष्टा दोनों रूपों में समीचीन है। ब्रज, बुन्देली में महाकाव्य रचना करने वाले वे हिन्दी के प्रथम कवि हैं। एक समर्थ साहित्यकार के रूप 'निधान गिरि' ने हिन्दी प्रबन्ध काव्य को एक नयी दिशा दी। यह सच है कि उनका साहित्य यदि समय से प्रकाश में आ गया होता तो वे आधुनिक युग के प्रवर्तक कहलाते, फिर भी युग को नया बोध देकर भक्ति एवं रीति का नया संस्कार करके कवि ने युग को नयी दिशाएं दी, ऐसे मूल्यों को स्थापित एवं प्रतिष्ठित किया, जिससे नयी चेतना का शुभारम्भ हो सका।

'निधानगिरि' ने अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से जो विभक्त भक्तिधाराएं पायी थीं, उनके परस्पर विरोध को मिटाकर उन्होनें सद्भावना का संचार किया है। राम, कृष्ण एवं शैव-शाक्त मतों, मतान्तरों को एक ऐसी भाव भूमि प्रदान की, जिससे भक्ति का एकाकार हो उठा और विभिन्न रूचियों के बीच एक समन्वय उत्पन्न हो सका। कवि को उत्तराधिकार में जो रीतिकाल से मिला था उसे भी निधानगिरि ने बदला। कामुकता के स्थान पर शुद्ध सात्विक भावों को प्रतिष्ठित करके कवि ने रीतिकालीन उद्याम वासना को रूपान्तरित कर दिया।

भक्ति काव्य की भावराशि को और रीतिकाल की कला माधुरी को लेकर कवि ने आधुनिक राष्ट्रीय चेतना के भावों को बुन्देली, ब्रज, अवधी के संगम से सामासिकता को बढ़ाया है, वह सृजन परम्परा का प्रारम्भिक चरण है। शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन को संस्कृति का अक्षय दान करने वाले कवि ने सारस्वत नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए भागीरथ प्रयत्न किया।

बुन्देलखण्ड की गौरव भूमि जिसमें तुलसी और चंद के गीत गाए जाते हैं, जिसमें केशव और पद्माकर के छन्द गूँजते रहते हैं, जहाँ केशव का पण्डित्य, राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त की 'भारतभारती' गूजेंती है, ऐसी धरती को धन्य करने का अवसर 'निधान-गिरि' को प्राप्त हुआ।

कवि ने 'भक्ति मनोहर' में ऐसे सर्वमान्य उल्लेख संन्निविष्ठ किये हैं, जिनके आधार पर उसके जीवन की कहानी निर्मित की जा सकती है। इतिहास-ग्रन्थों में कवि के पिता अनूपगिरि 'हिम्मत बहादुर गोसाईं' तथा गोसाईं वंश के जो प्रमाणिक विवरण मिलते हैं, वे भी कवि की पारिवारिक पृष्ठभूमि को व्यक्त करते हैं। बुन्देलखण्ड के इतिहास ग्रन्थों, कानपुर का इतिहास आदि ऐतिहासिक दस्तावेजों, लोकधारणाओं, पद्माकर कवि द्वारा रचित 'हिम्मतबहादुर विरूदावली' आदि के माध्यम से कवि के परिवार, उसके पिता तथा गोसाँई राजवंश आदि का जो विवरण मिलता है, उससे कवि 'निधानगिरि' के जीवन सूत्रों को संयोजित किया गया है। जीवन परिचय के लिए जिन आधारों को लिया गया है, वे इस प्रकार हैं-

(अ) कवि के 'भक्ति-मनोहर' ग्रन्थ का अन्तः साक्ष्य।

(ब) कवि के 'वैधक सिन्धु' ग्रन्थ का अन्तः साक्ष्य।

इतिहास ग्रन्थों एवं सन्दर्भ ग्रन्थों में उपलब्ध विवरण :

(अ) बुन्देलखण्ड का इतिहास, लेखक-दीवान प्रतिपाल सिंह

(ब) मस्तानी बाजीराव और उसके वंशज बाँदा के नवाब-लेखक डा० भगवानदास गुप्त।

(स) बुन्देलखण्ड की तवारीख-मुहम्मद एजेन्सी बुन्देखण्ड द्वारा प्रकाशित लेखक- मुन्सी श्याम लाल

जालौन के मरहठा - राजा की तवारीख (सन् १८५६) लेखक - पण्डित किशन नारायण

(य) शिवसिंह सरोज, संग्रहकर्ता ठाकुर शिव सिंह सेंगर, तेजकुमार बुक डिपो (लखनऊ) १६६६ ई०

सरकार भाग-१

सरदेसाई भाग-३

दी कर्स्ट टू नवाब्स ऑफ अवध, डा० आशिर्वादी लाल, भाग१

शुजाउद्दौला भाग - २

पन्नागजेटियर।

बाँदा गजेटियर सं० - डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'

(प्रकाशाधीन, सूचना विभाग, भारत सरकार)

कानपुर गजेटियर।

कैलेण्डर आफ पर्शियन कॉरसपोडेंस भाग-७

एन ओरियंटल बायोग्राफिकल डिक्सनरी (वील)

हिस्ट० पेपर्स

इंग्लिश रिकार्डस आफ मराठा हिस्ट्री, पूना रेजिडेसीं कॉरसपोडेंस भाग१

ऐतिहासिक किरकोल प्रकरण भाग -१

अलीबहादुर पत्रव्यवहार : इतिहास संग्रह

काव्य ग्रन्थ :-

पद्माकर ग्रन्थावली, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी

'अनूपगिरि' हिम्मत बहादुर की विरूदावली - लाला भगवानदीन

आलेच्य महाकवि 'निधान-गिरि' के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष रूप में कवि के 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में जो स्पष्ट उल्लेख किये गये हैं, उनमें कवि के पिता महान सेनापति और महाराज पद को अलंकृत करने वाले अनूपगिरि 'हिम्मतबहादुर' के युद्धों एवं अन्य घटनाओं से सम्बन्धित है। कवि की वंश परम्परा एवं उसकी पारिवारिक पृष्ठ-भूमि के लिए पर्याप्त साम्रगी मिलती है। कवि के सम्बन्ध में अल्पप्राय है।

नामकरण - कवि ने 'भक्ति मनोहर' में अपने नाम का प्रयोग इस प्रकार किया है:

१- "जन निधान गिरि भक्ति भामिन कर।"[४]

२- "पारावार अपार बुद्ध वरदं वंदे निधान गिरं।"[५]

३- "दीजे पद पदम प्रीति बाडह नित नव प्रतीत व्यावह नहि जात गीत गिर निधान गायौ।"[६]

४- "वेत्रवती दुहुकूल पर कवि निधान गिर वास।"[७]

५- "गर्जत निधान गिर सिंह के समान कवि जातधान भारी गज आन प्रान हरि कै।" [८]

६- "कहत निधान गिरि हॉक हनुमान सुनै जातधान मान हान प्रानन विलो गई।" [९]

७- गावत निधान गिरीश उरधर प्रेम आनन्द मन किये। [१०]

अन्तःसाक्ष से भलीभांति प्रमाणित होता है कि कवि 'निधानगिरि' 'जननिधानगिरि', 'गिरिनिधान', 'निधान गिरीश,' 'निधानगिर' का उल्लेख किया है। 'निधानगिरिं' संस्कृत प्रयोग भी हिन्दी के निधानगिरि के लिए उपयुक्त है।

चन्द्रदास साहित्य शोध संस्थान बाँदा, राजकीय संग्रालय झाँसी के हस्तलिखित ग्रथों के विवरण एवं ग्रंथ की पुष्पिका से भी 'भक्ति मनोहर' के रचनाकार 'निधान गिरि' ही सिद्ध होते हैं।

'निधान गिरि' की जन्म भूमि एवं निवास स्थली 'एरच' तथा 'मोठ' है, जो बुन्देलखण्ड में बेतवा के दोनों छोरों पर स्थित है । वहाँ भी कवि के परिवार से साक्षात्कार करने पर ज्ञात हुआ कि उनकी वंश परम्परा में 'निधान गिरि' नाम का ही प्रचलन है।

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि कवि ने 'निधानगिरि' के रूप में अपने नाम का प्रयोग सर्वाधिक किया है। मात्र एक स्थान में 'निधानगिरीश' का प्रयोग हुआ है। एक दो स्थानों में 'गिरिनिधान' का प्रयोग किया गया है। भक्ति भावना से ओत-प्रोत कवि ने अपने को भक्त या जन कह कर 'जन निधान गिरि' का प्रयोग भी किया है। अतः कवि का नाम 'निधान गिरि' ही प्रतीत होता है। 'गिरि' को जाति सूचक माना जायेगा, क्योंकि गोसाइयों में गिरि एक उपजाति है,अतः निधान के बाद गिरि का प्रयोग उपयुक्त प्रतीत होता है।

स्थान :- कवि निधान गिरि ने 'भक्ति-मनोहर' प्रबन्ध काव्य के प्रथम अध्याय में काव्य प्रयोजन के अन्तर्गत अपने निवास स्थान का संकेत किया है-

"पूरब तीरथराज पुन पच्छिम श्री ब्रजवास।

उत्तर गंग जमुन अवध दक्षिण रेवा आस।।

वेत्रवती जोजन सुइक समतरपुर रमनीय।

चतुरसिंह महराज नृप रजधानी कमनीय।।

वेत्रवती दुहु कूल पर कवि निधान गिरि वास।

ऐरछपुर थल तीर्थ सम दूजा मोठ निवास।।" [११]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि कवि का प्रथम निवास ऐरछ (ऐरच) है और दूसरा निवास मोठ है। कवि ने निवास स्थान के रूप में 'ऐरच' तथा 'मोठ' दोनों का उल्लेख किया है। किन्तु ध्यातव्य है कि कवि ने मोठ के साथ दूजा अर्थात् द्वितीय संख्यासूचक का प्रयोग करके स्पष्ट कर दिया है कि कवि का मूल प्रथम स्थल 'ऐरच' ही है। 'ऐरच' को कवि ने तीर्थ स्थल के समान कहकर भी उसकी ऐतिहासिक और धार्मिक महत्ता का संकेत किया है।

शोध छात्रा ने **'ऐरच' और 'मोठ'** दोनों स्थानों का शोध सर्वेक्षण किया है। दोनों स्थलों में कवि के निवास की पुष्टि भी हो जाती है।[१२]

कवि ने अपने निवास की भौगोलिक सीमाओं का भी रेखाकंन किया है। उसने पूर्व में तीर्थराज प्रयाग, पश्चिम में श्री बृजवास (बृजभूमि) उत्तर में गंग-यमुन, अवध का उल्लेख किया है, तथा दक्षिण में कवि को रेवा का आश्रय प्राप्त है। वेतवा का यह राज हंस अपने निवास की भौगोलिक स्थितियों में तीर्थो को तथा नदियों की स्थिति का उल्लेख करना नहीं भूलता।

कवि के दो निवास होने से उनके परिवार की सम्पन्नता का भी पता चलता है। आर्थिक सम्पन्नता के कारण उन्होनें 'ऐरच' के अतिरिक्त मोठ को भी अपना निवास बनाया। डा० ओमप्रकाश लाल श्रीवास्तव और डा० ललित 'एरच' को प्रथम और मोठ को द्वितीय निवास स्थान मानते हैं और अन्तःसाक्ष्य से संदर्भित होने के कारण इन्हें प्रमाणिक मानना चाहिए। शोध यात्राओं से शोध छात्रा को कवि चन्द्रेश वरदिया के सौजन्य से 'निधान गिरि' की समाधि स्थली को भी देखने को अवसर मिला। यह समाधि 'एरच' में कच्चे चबूतरे के रूप में आज भी विद्यमान है जिसे 'निधान गिरि' की समाधि के रूप में लोक जीवन में मान्यता प्राप्त है। शासन और समाज को इस समाधि की चिन्ता करना आवश्यक है अन्यथा कालान्तर में इसके विलुप्त हो जाने की संभावना है और ऐतिहासिक महत्व की कवि समाधि स्थली को अतिक्रमण से भी बचाने का उत्तरदायित्व शासन का तथा समाज का है।

'ऐरच' में कवि का निवास जहाँ पर था अब वह नष्ट प्राय है और उसे नगरपालिका द्वारा विक्रीत कर दिया गया है। कितना अच्छा होता कि नगर पालिका अथवा प्रशासन ऐसे स्थलों को सुरक्षित कर देता तथा कवि स्मारक के रूप में कवि का निवास बचाया जा सकता ।

'एरच' को बौद्ध साहित्य में 'एरकच्छ' भी कहा गया है। जो उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में झांसी जनपद के गरौठा तहसील के अन्तर्गत वेत्रवती (वेतवा) के किनारे झांसी मुख्यालय से लगभग ७० किलोमीटर उत्तरी पूर्व में स्थित है।[१३] एरच के उत्तर में वेतवा दक्षिण में इसकिल गॉव पूर्व में धिकोली, पश्चिम में गेडा गॉव है। समप्रति यह 'एरच' टाऊन एरिया है। प्राचीन काल में एरच महत्वपूर्ण प्रशासकीय केन्द्र था। 'ऐरच' की पहाड़ी लगभग २ किलोमीटर ल० में फैली हुयी है। किले में पत्थर ईटें और ध्वसांवशेष अब भी मिलते हैं। वेतवा प्रतिवर्ष पहाड़ी के ध्वंसावशेषों को नष्ट करती रहती है।

किंवदन्ती के अनुसार 'एरच' हिरण्यकश्यप की राजधानी थी। प्रहलाद को 'एरच' के पास धिकोली पहाड़ी से धकेला गया था। 'एरच' में नृसिंह मंदिर भी बना हुआ है। प्रहलाद, हिरण्यकश्यप का पुत्र था। जिनकी रक्षा नृसिंह भगवान ने की थी। 'एरच' पौराणिक काल से प्रसिद्ध है। पुरातात्विक खोजों से 'एस्च' को अत्यन्त प्रचीन काल से होना पाया गया है।

पुरातात्विक खोजों से 'एरच' को ६ वीं शताब्दी वीं सी के पूर्व का होना प्रमाणित हो चुका है। 'एरच' से दो (कॉपर) कास्यं मुद्राऐं प्राप्त हुयी हैं, जो 'मुगाम मुख' की दूसरी शताब्दी बी०सी की है।[१४] जिससे प्रमाणित होता है कि यह क्षेत्र विदिशा के आधीन नहीं था। 'अग्नि मित्र' के काल से यह क्षेत्र अयोध्या, कौशाम्बी, अहिच्छत्र, मथुरा, विदिशा की भांति स्वतंत्र प्रकाशकीय केन्द्र था। इस केन्द्र का राजा 'मुगाममुख' था। उसकी मुद्राओं से उनके स्वतंत्र शासक होना प्रमाणित है। और वी०सी० दूसरी शताब्दी में 'एरच' एक स्वतंत्र डायनेस्ट्री के रूप में था।

'मुगाममुख' के बाद 'दाममित्र' प्रथम शताब्दी वी०सी० में एरच का शासक था। 'दाममित्र' और 'मुगाममुख' का सम्बन्ध तो ज्ञात नहीं होता किन्तु 'दाममित्र' एरच साम्राज्य का निर्विवाद राजा सिद्ध होता है। ईटों के अभिलेखों से उसे राजा कहा जाता है। अभिलेखों की खोज से यह भी पता चलता है, कि प्रथम, द्वितीय, शताब्दी ए०डी० में सटानी एरच साम्राज्य का संस्थापक था उसका बड़ा नाती असदमित्र, सतानिक के तीन उत्तराधिकारी के नाम मिलते हैं जो इस प्रकार हैं

अदितिमित्र, मुगाममित्र, असदमित्र। एरच साम्राज्य का अंतिम ज्ञात राजा असदमित्र है। अदितिमित्र के कांस्यमुद्राओं से उसके राजा होने के भी प्रमाण मिलते है। [१५]

लगभग चार शताब्दियों तक 'एरच' दशार्ण की राजधानी रही है। महाराज हरदौल इसी 'एरच' के रहने वाले थे। 'बुन्देला राजा एरच के' लोक मान्यता अब भी लोक जीवन में व्याप्त है। विवाह के अवसर पर सौभाग्यवती सुहागिने राजा हरदौल के चबूतरे की पूजा करके ही पति गृह में गमन करती हैं। इसी पवित्र धरती को कवि निधानगिरि ने तीर्थ की संज्ञा दी है और अपना प्रथम निवास स्थान बताया है।

'निधानगिरि' की समाधि भी कच्चे चबूतरे के रूप में एरच में अभी तक असुरक्षित पड़ी हुयी है। इससे भी कवि की जन्मभूमि 'एरच' प्रमाणित होती है।

कवि 'निधानगिरि' ने अपना दूसरा निवास 'मोठ' को बताया है। मोठ भी वेतवा के तट पर स्थित है। मोठ पर 'निधानगिरि' के पूर्वजों का अधिकार था। कवि के पिता ने जिन क्षेत्रों को विजित किया था, उनमें मोठ भी था। मोठ में महेन्द्रगढ़ जिसके अवशेष अब भी पाये जाते हैं उसी किले में 'निधान गिरि' रहते थे। और उनके साथ नागा सैनिक सन्त भी उनके पिता के समय से रहते रहे हैं।

'निधानगिरि' के वंशधर अनूप गिरि 'हिम्मत बहादुर' ने बुन्देलखण्ड, अंतर्वेद के कई स्थानों पर अपने आवास बनवाए थे। बिन्दकी और रसधान में उनकी सैनिक टुकड़ियाँ निवास करती थी। बाँदा, कालिंजर सेहुड़ा, शेरपुर, कनवारा, (बाँदा) आदि में भी अनूपगिरि के निवास स्थान बने हुए थे, जो अब भी जीर्ण-शीर्ण स्थिति में अवशेष हैं।

'निधानगिरि' ने अपने महाकाव्य 'भक्ति-मनोहर' में अपने निवास का उल्लेख 'एरच' और 'मोठ' में बताया है, जो झांसी जनपद के अन्तर्गत हैं। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'निधानगिरि' के पूर्वजों का स्थान हमीरपुर जनपद के कुलपहाड़ में था, कालान्तर में गोसाँइयों के राजा अनूपगिरि और उमरावगिरि ने अनेक स्थानों पर विजय प्राप्त की और उन्होंने दतिया, बाँदा, छतरपुर, कानपुर, बिन्दकी, रसधान, कनवारा, कालिंजर, शेरपुर, सेहुड़ा आदि में अपने आवास बनवाए। कवि की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि के रूप में झांसी के 'एरच' और 'मोठ' को ही प्रमाणिकता देनी चाहिए।

काल :-

कवि 'निधानगिरि' के एक दूसरे ग्रंथ, 'वैद्यक सिंधु' में कवि ने रचना काल का उल्लेख तथा अपने समकालीन जयपुर के नरेश महाराज प्रताप सिंह एवं मोठ निवासी मंगली पोद्दार का उल्लेख किया है। कवि का कथन है कि जयपुर के प्रताप सिंह महाराज ने नाना ग्रंथों को संकलित कर आयुर्वेद के ग्रंथ 'अमृतसागर' की रचना की, जो छंद-प्रबन्ध में न होने के कारण कवि 'निधानगिरि' को सरस नहीं प्रतीत हुआ, अतः कवि ने सरस छंदों में महाराज प्रतापसिंह 'रसनिधि' की प्रतिस्पर्धा मे 'वैद्यक सिंधु' की रचना को और मोठ निवासी पोद्दार के पठनार्थ इस कृति को सं० १६३३ में लिखा। कवि के शब्दों में -

जैपुर सिंह प्रताप नृप नाना ग्रंथ सकेल।
अमृत सागर वचन कृत दीन जगत मैं पेल।।
सो बिन छंद-प्रवंध को पड़त लगत है फींक।
जैसे वसन विहीन नर सोहत सभा न नीक।
श्रावन सित नौमी सुभग उनइस सत तेंतीस।।
लिषा ग्रंथ हित मंगली गिरनिधान बगसीस।

उक्त उदाहरण से यह स्पष्ट है कि 'निधानगिरि' ने 'भक्तिमनोहर' (१६१२) की रचना के बाद सं० १६३३ में 'वैद्यक सिंधु' नामक ग्रंथ की रचना की।

'भक्ति मनोहर' में 'निधान गिरि' ने समथर स्टेट के महाराज हिजहाईनेस 'चतुर सिंह' का उल्लेख किया है। 'बैद्यक सिंधु' में कवि ने जयपुर के महाराज 'प्रतापसिंह' का उल्लेख किया है। दोनों राज्यवशांवलियों से भी सिद्ध होता है कि 'चतुर सिंह' और 'प्रतापसिंह' समकालीन नरेश थे और 'निधानगिरि' के रचनाकाल के समय दोनों का जीवन अस्तित्व में था। अतः 'निधानगिरि' का काल आधुनिक युग का प्रथम चरण प्रमाणिक सिद्ध होता है। बुन्देलखण्ड के इतिहास ग्रंथों में कवि के पिता अनूपगिरि 'हिम्मत बहादुर' और कवि के सम्बन्ध में कालविषयक कतिपय जानकारियाँ मिलती हैं। कवि के पिता 'अनूपगिरि' को 'नरेन्द्रगिरि' ने गोद लिया, 'नरेन्दगिरि' का निधन सं. १८०६ में हुआ। उस समय अनूपगिरि की आयु २० वर्ष थी। अतः अनूपगिरि (कवि के पिता) का जन्म स० १७८६ में हुआ। उन्होनें अर्जुन सिंह नौने को परास्त किया तथा सं० १८६१ में वृद्धावस्था में उनका कनवारा (बॉदा) में निधान हुआ। इस प्रकार कवि के पिता अनूपगिरि का काल (सं० १७८६ से सं० १८६१ तक का) निश्चित होता है।[१७] कवि 'निधानगिरि' का जन्म सं० १८५५ तथा उनका निधन सं० १६३८ बताया गया है। इस प्रकार कवि की आयु ८३ वर्ष सिद्ध होती है। कवि ने 'भक्तिमनोहर' की रचना (सं० १६१२) के समय

यह भी उल्लेख किया है कि आयु का अर्द्ध भाग से अधिक समय व्यतीत हो चुका। इस न्याय से भी कवि का जन्म सं० १८५५ में होना न्यायसंगत प्रतीत होता है।

'निधानगिरि' ने 'भक्ति मनोहर' में अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों में जयदेव, तुलसी, सूर का नामोल्लेख किया है। तुलसी और सूर का उल्लेख सिद्ध करता है कि 'निधान गिरि' इनके परवर्ती कवि हैं।

प्रत्येक साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती ग्रंथकारों से प्रभाव ग्रहण करता ही है। आचार्य राजशेखर ने 'सर्वोअपि परेम्य एवं व्युत्पद्यते' कहकर इस ओर संकेत भी किया है। तुलसी और सूर का प्रभाव 'निधानगिरि' में परिलक्षित होता है। अतः 'निधानगिरि' का काल सूर और तूलसी के बाद का सर्वथा प्रमाणिक है।

'निधानगिरि' के पिता 'अनूपगिरि' और उनके पिता श्री के बड़े भाई 'उमरावगिरि' को मोठ (झांसी) के नरेन्द्रगिरि ने क्रय कर लिया था तथा उनका पालन-पोषण किया।[१८] ऐसी कौन सी परिस्थिति थी जिसके कारण कवि 'निधान गिरि' की दादी ने अपने बेटों को बेंच दिया।

वस्तुतः कवि के जन्म के पूर्व में बुन्देलखण्ड में एक बहुत बड़ा अकाल पड़ा था। हजारों कटुम्ब इस अकाल मे लुप्त हो गए। वस्ती और जंगलों में जहॉं-तहॉं मरे आदमियों की लाशें मिलती थीं। हजारों आदमी सर्वदा के लिए देश छोड़कर चले गए। बुन्देलखण्ड में अकाल से जूझने का संकेत लोक कवियों ने भी किया है–[१६]

अ- समये बेर कुसमये भाजी

ब- मेघ करौंटा लै गए, इन्द्र बॉंध गए टेक।

बेर करौंदा जा कहैं, मरन न पाहै एक।

बुन्देलखण्ड में कई-बार अकाल पड़े। इन अकालों की पीड़ा को साहित्य और कविता में अभिव्यक्ति दी गयी है-

अ- कुही अमावस मंगल मूल, अन्न बिकैहैं सोने तूल।

ब- सावन पहली पंचमी, जो गरजै अधरात।

तुम जैयों पिय मालवे, हम जैवी गुजरात।

अवर्षण और अकाल के सम्बन्ध में बुन्देलखण्ड की चौपालों मे चर्चित ये लोकोक्तियाँ यहाँ के अकाल और अभावग्रस्त जीवन को बिम्बित करती हैं। इतिहासकारों ने यह भी कहा है कि अकाल के कारण लोगों ने अपना धर्म छोड़कर अन्य धर्मो का आश्रय लिया, बहुतों ने अपने बच्चे तक बेच डाले।

'निधान-गिरि' कवि के पिता औरं उनके दादा को भी संरक्षण देने का कार्य मोठ के 'नरेन्द्रगिरि'ने किया और कवि की पितामही ने बालकों के भविष्य और उनके जीवन-संकट को पहचानकर अपनी छाती को वज्र का बनाकर बालकों को बेचने में ही जीवन का हित समझा।

दैन्य और पराभव से प्रारंम्भ होने वाले कवि की वंश परम्परा बदली। वे सनाढ्य ब्राह्मण से गुसाँइयों में शामिल हुए, संघर्ष और आर्थिक अभावों से जूझते हुए कवि के पूर्वजों को ऐसे व्यक्ति का आश्रय मिला, जिसमें नेतृत्व की क्षमता थी, सैनिक प्रशिक्षण की योग्यता थी, संगठन और राजनीति शक्ति थी। परिस्थितियों ने कवि के पिता और दादा को राजनीतिक शक्तियों से जोड़ दिया। कर्मठ और साहसी, पराक्रमी एवं दूरदर्शी अनूपगिरि 'हिम्मत बहादुर' की उपाधि से अलंकृत किये गए। पूरे बुन्देलखण्ड, अंतर्वेद एवं अन्य मण्डलों में उनकी विजय कीर्ति की पताकाएं फहराई। राज्यवंश नष्ट हुए और कालान्तर में कवि ने धर्म की शरण ली और आध्यात्मिक- सांस्कृतिक संगठन के लिए समर्पित हो गए। कवि के पिता अनूपगिरि 'हिम्मत बहादुर' की वीरता और प्रशंसा में उनके राजदरबारी कवि 'पद्माकर' (रीतिकाल के प्रसिद्धकवि) ने 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' की रचना की है, जिससे ज्ञात होता है कि वे हिम्मत बहादुर के युद्ध के समय उपस्थित थे, अतः उनके पिता का काल रीतिकाल सिद्ध होता है।

बुन्देलखण्ड के इतिहास ग्रंथों में कवि के पिता अनूपगिरि 'हिम्मत बहादुर' के आश्रय में कई कवियों के होने का उल्लेख किया गया है। विवरण इस प्रकार है–[२१]

क्रमांक	कवि	काल	कृति एवं आश्रयदाता
१०३	पाजेश, बाँदा	१८३१	गुसाई अनूप गिरि के आश्रय में रहे
११०	पदमाकर	१८७६ वि.सं०	'हिम्मतबहादुर विरुदावली' के रचनाकार थे जो गुसाई अनूपगिरि के आश्रय में रहे

रामसिंह बुन्देलखण्ड १८५२ स्फुट हिम्मतबहादुर गुसाई के आश्रय में

अतः बाँदा के कवि निधानगिरि के पिता अनूपगिरि का काल निश्चित है और उससे कवि के कालक्रम का बोध होता है। कवि 'निधान गिरि' ने अपने काव्य **'भक्तिमनोहर' में युद्ध के समय 'गोली'** का प्रयोग होने की बात लिखी है। अंग्रेजों के आगमन पर ही बन्दूकों और गोलियों का प्रयोग भारत में हुआ। गोली का प्रयोग भारतीय कवियों ने अंग्रेजो से पूर्व नहीं किया, अतः कवि निधानगिरि का काल १६ वीं शताब्दी प्रमाणिक सिद्ध होता है।

व्यक्तित्व संरचना में परिवार :- 'निधानगिरि' अनूपगिरि के पुत्र थे। अनूपगिरि के चार पुत्रों में 'निधानगिरि' सबसे छोटे थे।
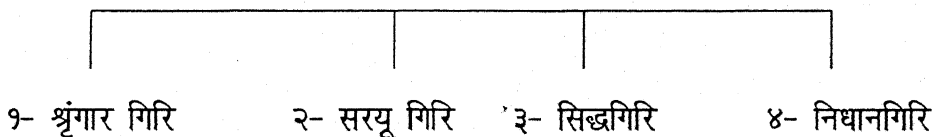
जन चर्चा में भी 'अनूपगिरि' के चार पुत्रों का उल्लेख मिलता है। इनके परिवार में 'स्कंधगिरि' भी अच्छे कवि हो गए हैं, जिनका 'स्कन्ध विनोद' ग्रंथ बताया गया हैं। डॉ० ललित ने 'स्कंधगिरि' के एक छन्द पत्रक की खोज की है। कवि 'निधान गिरि' ने 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में अपने परिवार और पिता का उल्लेख श्लेष शैली में किया है, जो इस प्रकार है-

"सुमरहु प्रभु बालरूप कोट काम सै अनूप
धन्य भूप भक्ति ब्रह्म नर तन धर आयौ।
सेवत नर देव इंद्र नारद सनकादि वृंद
नित नव गुन कह फंनिद सो नृप गृह भायौ।।" [२२]

श्रीराम के रूप वर्णन में कवि ने अपने पितृपद श्री 'अनूपगिरि' जिन्होंने भूप (राजा) पद को सुशोभित किया तथा जिनको 'नरेन्द्रगिरि' की सेवा में रहने का अवसर मिला, उनका श्लेषात्मक संकेत 'अनूप', 'भूप,' 'नरदेव,' 'इन्द्र'(नरेन्द्र) आदि पदों से किया है। 'अनूपगिरि' का राजा होना तथा 'नरेन्द्रगिरि' की सेवा में जाने का उल्लेख बुन्देलखण्ड के इतिहास ग्रन्थों, कानपुर के इतिहास आदि

ग्रन्थों से भलीभांति प्रमाणित है। गिरि परम्परा में 'राजेन्द्र गिरि' नामक नागा गोसाईं थे जो झांसी जिले के मोठ गांव के स्वामी थे। उनकी शिष्य मण्डली में दो सनाढ्य-ब्राह्मण कुमार भी दीक्षित हुए, जो हमीरपुर जिले के कुलपहाड़ के गांव के रहने वाले थे। इनके पिता का देहान्त इनके बचपन में ही हो गया था। अकाल के मारे इनकी माता इनका पालन न कर सकीं। इसलिए उसने इन्हें 'राजेन्द्रगिरि' के हाथ बेंच डाला। जिसने इन दोनों का नाम 'उमराव गिरि' और 'अनूपगिरि' रखा। परिवार में निधानगिरि चार भाई थे। चारों कवि और विद्या के प्रेमी हुए।

श्लेष के माध्यम से कवि ने माता, पिता और परिवार की ओर से स्नेहिल व्यवहार की भी सूचना दी है-

"मात पिता परिवार सदा ही। जोवहिं पालिक नयन की नाहीं।

जे बालक रिष संग पढाए। दमन तमीचर पुत्र सिधाए।।"[२३]

'भक्ति मनोहर' में कवि 'निधानगिरि' ने अपने पितृदेव अनूपगिरि गोसाईं 'हिम्मत बहादुर' के प्रति गहरी आस्था एवं संवेदना व्यक्ति की है-

अ- "लियै गोद मन मोद सभूपा। प्रात समय लष वदन अनूपा।।"[२४]

ब- "सोभा सकल ब्रहंाड की सुंदरता कौ सार। भगवत रूप अनूप मैं करे भाव निरधार।"[२५]

स- "सषी कहत कुलवधुन सै देषहु रूप अनूप।।"[२५]

द- "सुमरहु प्रभु बाल रूप कोटि काम सै अनूप घन्य भूप भक्ति ब्रह्म नर तन धर आयौ।"

"सेवत नरदेव इन्द्र नारद सनकादिवृंद नित नव गुनकर फंनिद सो नृप ग्रह आयो।।[२६]

क- "ग्यान निधान जनक सम को है। तात सनेह विकल जनु सो है।"

ख- "कौन भूप है जनक समाना। जिनै सराहत नाथ सयाना।

करव राज सुख जोग समारै। जिहि गति जान न मुनि मन मारै।।

गुरु सिवचरन कमल अति प्रीता। ग्रह वस दसा विदेह पुनीता।

ग्यान पंथ निर्गुन भगवाना। सगुन सरुप भक्ति भगवाना।।" [२६]

जनकराज के वर्णन में कवि 'निधानगिरि' ने जनक 'अनूपगिरि' का श्लेषात्मक संकेत किया है जो महान शिव भक्त थे। जिन्होंने गुरु राजेन्द्रगिरि की आज्ञाओं का पालन किया, 'गुरु रजाइ रज' से

इस ओर संकेत किया गया है। जिसकी सराहना श्रेष्ठ नाथों द्वारा की गयी, 'हिम्मत बहादुर विरुदवली' जैसे काव्य जिनकी प्रशस्ति में लिखे गए।

'निधान गिरि' ने कथा के मध्य में जहाँ कहीं अवसर मिला वहाँ पिता अनूपगिरि का स्मरण किया है और जहाँ भक्ति और भगवान के रिश्ते जुड़ने के प्रसंग हैं, वहाँ वे माता पिता 'अनूप' को छोड़ने का भी संकेत करते हैं-

ग- "तुम बिन मन धृग धृग कुटम घृग पित मात अनूप।
प्रभु बिन अब धृग धृग भवन वन भीतर के कूप।।"[२८]

उक्त प्रसंग में गोंपियों की विकल पीड़ा का वर्णन है। कृष्ण के बिना परिवार, पिता, माँ, भवन, कूप सभी धिक्कारने योग्य है। 'अनूप' श्लेष के माध्यम से कवि निधानगिरि ने 'पितामात अनूप' से अनूपगिरि पिता की ओर भी संकेत किया है।

भक्ति और वैराग्य से रंगे कवि को अब प्रभु के बिना भवन,कूप,पित-मात सभी व्यर्थ लगतें है। कवि ने इस प्रसंग में भी पिता और अंनूप पद के श्लेष में अपने पारिवारिक पितृ अनूप का स्मरण किया है। 'निधान गिरि' 'भक्तिमनोहर' ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर महाराज चतुर सिंह को प्रत्यक्ष सम्बोधित करते हैं - और उन्हे संवाद के रूप में प्रत्यक्ष रखकर कथा का विस्तार करते हैं-

क- "धन धन धन महिपाल मनि चतुर प्रश्न अस कीन।
चरित पुरातन हरि समझ चाहत किएं नवीन।।" [२९]

ख- "रंग भूम प्रभु किय गमन सुनहु चतुर महाराज।
आगिल चरित सुनौ चतुर जो समीर सुत कीन।।"[३०]
"छवि सागर देषे रघुराजा। मोकौ बरहु कहा तज लाजा।"[३१]

इन पंक्तियों से महाराज 'रघुराज सिंह' और 'निधान गिरि' के आत्मीय सम्बन्धो का संकेत मिलता है, जो कवि 'निधान गिरि' के काल का भी संकेतक है।

'निधान गिरि' को भक्ति के संस्कारों की ओर प्रेरित करने का कार्य उनकी माँ ने किया। कवि ने माँ के प्रति अपना सम्मान भाव व्यक्त करते हुए लिखा है-

"वचन कर्म मन प्रीत जुत गुरु पद पंकज सेव।
जननी जन कर जाइकर भक्ति निपुनता ऐव।।" [३१]

उक्त पंक्तियों में जननी ने जन्म दिया तथा भक्ति को जाया, निपुणता आदि उसी के माध्यम से मिली है। भक्ति और नैपुण्य से कवि का आशय ईश्वर के प्रति अनुराग तथा काव्य लोक के प्रति निपुणता आदि में माँ का प्रत्यक्ष प्रभाव रहा है। ज्ञातत्व है कि कवि 'निधानगिरि' के पिता निरन्तर युद्धों में लगे रहने तथा राजकीय व्यस्तता के कारण कवि के संस्कारों की रचना में उतने सहायक नहीं हुए होगें, जितना बालक पर स्नेहिल छाया रखने वाली माँ का प्रभाव पड़ा होगा। 'निधान गिरि' की आयु मात्र ६ वर्ष की थी, जब उनके पिता 'अनूपगिरि' का निधन बाँदा जनपद के 'कनवारा' ग्राम में हो गया था। बालक 'निधान गिरि' पितृ प्रेम से वंचित हो गए, केवल माँ की ही छाया शेष रही। पिता की मृत्यु के बाद पिता द्वारा अर्जित राज्य शासन भी अंग्रेजी शासन द्वारा ग्रहीत कर लिया गया और जीवकोपार्जन के लिए उनके चाचा उमराव गिरि और उनके बड़े भाई नरेन्द्र गिरि को पेंशन दी गयी। बुन्देलखण्ड के इतिहास ग्रन्थों में सर्वत्र इस बात का संकेत किया गया है। इन राजनीतिक परिस्थितियों में कवि 'निधान गिरि' का प्रभावित होना स्वाभाविक है। पिता के निधन के थोड़े दिन बाद माँ का निधन हो गया। अतः पितृ और मातृ स्नेह से वंचित 'निधान गिरि' केवल नृसिंह भगवान और भागवत भक्ति का आश्रय लेकर वैराग्य की ओर उन्मुख हो गए। गिरियों की परम्परा शंकराचार्य की शिष्य परम्परा में होने के कारण 'निधान गिरि' भी उसी परम्परा में दीक्षित हुए और वैरागियों के विशाल संगठन में आकर धर्म और संस्कृति की ध्वजाओं को लेकर शिव और विष्णु भक्ति को एकाकार करते हुए सामान्य जनता और राज परिवारों को भक्ति की ओर अग्रसर करने में अपने को समर्पित किया।

शंकराचार्य के आदर्शो को लेकर उत्तर दक्षिण तथा भारत की एकता के लिए उन्होंने विशाल यज्ञों का सम्पादन किया। तीर्थाटन करके विभिन्न तीर्थों की संस्कृतियों, नदियों को भारतीय संस्कृति का अंग बनाया। कवि ने जिन तीर्थों का उल्लेख किया है- उनमें बृज, चित्रकूट, नैमिशारण्य, अयोध्या, रामेश्वरम् आदि के उल्लेख मिलतें है। बृज भूमि के प्रति कवि की आस्था देखते ही बनती है उनके अनुसार यह बृज नित्य है, पारस है, छू कर चित्त को स्वार्णिम करने वाला है। यहाँ के ग्वालों में भक्तों के लिए भगवान विमल बिहार किया करतें है। 'निधानगिरि' के शब्दों में-

"यह बृज पारस नित्य हैं, मैं जानी अब आन।
ग्वालन में विरहत विमल भक्त हेत भगवान।।"[31]

शिष्यों में 'गिरि,' 'पुरी,' 'भारती' आदि थे। गोसांइयों का यह वंश नरेन्द्रगिरि के संरक्षण में आकर 'गिरि' हो गया और अनूपगिरि के पुत्र निधान भी 'निधान गिरि' कहलाए।

कवि 'निधानगिरि' जिस गोसाईं वंश में जन्में थे, उस वंश का इतिहास गोसांई राजवंश का इतिहास है। 'निधान गिरि' की वंश परम्परा को जानने के लिए गोंसांई वंश का इतिहास जानना आवश्यक है।

निधानगिरि : एक महान व्यक्तित्व :-

यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भक्तिकाल के महाकवि तुलसी और सूर जैसे समर्थ रचना प्रदान करने वाले महाकवियों की प्रतिस्पर्धा में अनेक कवि आए होंगे, फिर भी उनमें 'निधान गिरि' के अतिरिक्त कोई भी उनका उत्तराधिकारी महाकवि नहीं सिद्ध होता। आर्यावर्त्त के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में तुलसी, केशव, ईसुरी की मातृभूमि में एक स्वर्णिम संस्कृति का निर्माण करने वाले, बुन्देली के गौरव को साहित्य जगत में प्रतिष्ठत करने वाले महाकवि 'निधान गिरि' एक साथ भक्त, आचार्य, कवि, दार्शनिक, ज्योतिर्विद्, आयुर्वेदज्ञ सिद्ध होते है।

'निधान-गिरि' का जन्म बुन्देलखण्ड के अत्यन्त प्रतिष्ठित राजवंश गोसींई कुल में सं० १८५५ में हुआ था। उनके पिता 'अनूप गिरि गोंसांई' बॉदा वाले गुसाई कहलाते थे। 'निधान गिरि' इन्हीं 'अनूप गिरि' के पुत्र थे। 'अनूप गिरि' को 'हिम्मत बहादुर गोसांई' के नाम से बुन्देलखण्ड के इतिहास में सर्वत्र गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'निधान गिरि' के पिता 'अनूप गिरि' हिम्मत बहादुर की प्रशंसा रीति के प्रसिद्ध कवि पद्माकर ने की है। उनमें दिग्विजय की आंकाक्षा थी, स्वतंत्र रूप में राज्य-स्थापना की चिंता थी। वे शिव के भक्त थे। उनमें दानशीलता थी, युद्धवीरता थी, काव्यों को परखने की शक्ति थी। कवियों को आश्रय देने की उदारवृत्ति थी। इसके लिए उन्हें भीषण युद्ध करने पड़े, नर संहार भी, किन्तु अनूपगिरि हिम्मत बहादुर के पुत्र 'निधान गिरि' नर संहार से विरत, भीषणयुद्ध-रक्तपात से अलग रह कर संहार के लिए नहीं, सृजन के लिए कार्य करने वाले, राजतंत्र के लिए नहीं, लोकतंत्र के लिए, अर्थोपार्जन के लिए नहीं, सामान्य जन में अरोग्य के लिए, राज्याधिकार के लिए नहीं, जनाधिकार के लिए, क्रान्ति के लिए नहीं, शान्ति के लिए, भक्तिज्ञान और कर्मपथ के जुझारु नायक थे। शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन को लेकर भारतीय दार्शनिकों के मतमतान्तरों को दूर कर नर-नारी के अंतराल में एक नया आलोक उत्पन्न करने वाले राष्ट्रचेता

कवि थे। उन्होंनें आजीवन ब्रह्मचर्य वृत का पालन कर धर्म-संग्राम के महा विजेता रहे। वाणी का विचित्र दान करके उन्होंने निधि प्रदान की। उनकी कलानिधि, चित्रनिधि, काव्यनिधि, उनके कालंजयी कवि को अक्षुण्य बनाती रहेगी।

'निधान गिरि' (गिरि निधान, निधानगिरीश) का जीवन वृत्त जो अन्तरंग एवं वहिरंग साक्ष्यों से उपलब्ध हुआ, उसे प्रथम बार शोध-छात्रा द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है ।

व्यक्तित्व :-

'निधानगिरि' का व्यक्तित्व जनप्रिय, लोकप्रिय, लोकहितैषी व्यक्तित्व है। जिसमें सेवा, सहानभूति एवं उच्च मानवीयता, सदाशयता के गुण विद्यमान हैं। सरल एवं निष्कपट जीवन ही कवि का आदर्श है।

व्यक्तित्व से आशय एक धर्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ, प्रतिष्ठित, लोक जीवन में समादृत व्यक्तित्व और उसके व्यवहार, आचरण, सिद्धान्त और दर्शन में साम्य है। व्यक्तित्व से आत्मानुशासन की शक्ति, आध्यातमिक चेतना का उदात्तीकरण भी होता है। व्यक्तित्व मात्र शारीरिक संगठन नहीं है। वह एक सम्पूर्ण प्रभाव है। जैवकीय स्थितियों, प्रवृत्तियों, सवेगों, प्रेरणाओं, अनुभूतियों के समुच्चय से व्यक्तित्व का निर्धारण किया जा सकता है।

'निधानगिरि' का व्यक्तित्व भव्य, उदात्त, सुसंस्कृत, लोकपरायण, सौन्दर्य-चेता, आस्थावान, दृढ़चरित्र, उत्सर्ग से आलोकित एक ऐसे भक्त-संत कवि, दार्शनिक एवं राष्ट्र हितैषी चरित्र के रूप में दृष्टिगोचर होता है। वातावरण और समाज को एक नये तेज से, ओज से, आस्था विश्वास से भरकर वे सेवा और मानवीय सद्गुणों के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने वाले एक प्रभावी आदर्श व्यक्तित्व के धनी हैं। शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों में वे एक स्वस्थ्य मानव चेतना को लेकर देशकाल, धर्म, साहित्य, राजनीति सभी को एक नयी दृष्टि प्रदान करते हैं।

विश्व के कोटि-कोटि पुरुषों का व्यक्तित्व कुछ भिन्नता लिए हुए अपना एक प्रथक अस्तित्व रखता है। कोई किसी का पर्याय नहीं है। आकृति में प्रतिरूप होकर ही चेतना और चरित्र में, दृष्टि और रचना में जो भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, वह व्यक्तित्व की विशिष्ट पहचान के कारण ही अस्तित्ववान एवं सार्थक सिद्ध होती हैं। जननी ऐसी ही सपूतों को जन्म देकर कृतार्थ होती है। जिनका जीवन पावन और पवित्र गंगा की भांति लोकहित के लिए लोकार्पित हो जाता है। जिनका

कृतित्व सेवा और शक्ति की अराधना में समर्पित होकर व्यष्टि से समष्टि में रुपान्तरित हो जाता है। एक सफल व्यक्तित्व की कसौटी सन्तुष्टि है, असन्तुष्टि नहीं। सरलता और निष्छलता है, जटिलता और तनावग्रस्तता नहीं।

'निधान गिरि' का व्यक्तित्व सत,चित,आनन्द से आलोकित है। वे मानवीय एकता पर विश्वास करते हैं। आत्मा की सत्यता पर उनका प्रगाढ़ विश्वास है और सम्पूर्णता से जगत को परमेश्वर की कृति मानकर उस व्यापक सौन्दर्यानुभूति पर मुग्ध होते हैं, वे निर्भीक हैं। प्रार्थना और भजन, कीर्तन और सतसंग उनकी दृष्टि में, जीवन और प्रमाणिकता के लिए सर्जक हैं। उन्हें शास्त्र की आज्ञा स्वीकार है। भागवत के पदों पर उनकी प्रीति है। वेदों से उनका मैत्री भाव है। पूर्णतः वे दृढ़ उपासक है। उनकी अन्तर और बहिर्वृत्तियों में एकाकार हैं। वे शत्रु और मित्र, सुख और दुख की भावनाओं को त्यागकर ईश्वर के चरणों के अनुरागी हो गये है-

"निश्चय भगवत पद कर प्रीता। दृढ़ विश्वास भक्त श्री गीता।।

सत्य भिन्न दुख सुख के त्यागी। ईश्वंर चरण होई अनुरार्गी।।

वेद ज्ञान सब शास्त्र पुराना। नारद पंचरात्र मति साना।।

हरि कीर्तन सुमरन पूजाई।सुर्गादिक सुख भोग पराई।।" [३२]

पवित्र भक्ति का संचरण करने वाले ब्रह्मवेत्ता एवं ब्रह्मम का आदेश देने वाले निधानगिरि वेद उपनिषद्, पुराण, तंत्र, भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत के परम अनुरागी विद्वान हैं। धर्म, इतिहास, राजनीति के तत्वज्ञ है। आयुर्वेद्, ज्योतिष के जानकार हैं। सकल शास्त्रों में प्रवीण, युद्धविद्या, गान विद्या में निपुण कवि को भक्ति ही अभीष्ट है। स्वभाव से वे मृदुल, चित्त से कोमल, प्रवृत्ति से भावुक भक्त हैं। समदर्शिता, धर्मशीलता, प्रवणता से पृथ्वी, जल, वृक्ष, सूर्य, चंद्र की भांति पर हितकारी है। कवियों, सन्तों, भक्तों, और हरिचरित्र प्रिय जन-जन को नमन अर्पित करने वाले, भुवन-भुवन के ज्ञात-अज्ञात प्राणियों को परमात्म का प्रतिबिम्ब मानकर अभिवादन करने वाले शिष्ट होकर विशिष्ट हैं। चराचर से, वरदायिनी से, पित्रदेवों से सुमति की याचना करते हैं। हरिचरित रचना के लिए वातावरण चाहते हैं। विद्वानों, मनीषियों के लिए ऐसी विनम्रता उनके व्यक्तित्व का दर्पण है। निधानगिरि पुत्रवत होकर पितृवत और मातृवत स्नेह की कामना करते है।

'निधानगिरि' आशावान व्यक्तित्व के धनी हैं। वे पूजावंदन, कीर्तन, नवधा पर आस्था रखते हैं। प्रभु की भक्ति ही उनकी जीवन शक्ति है। वे जन-जन में प्रभु का सौन्दर्य देखते हैं। नारी को जंजीरों में बाधंने वाली किन्तु मातृ शक्ति को भवानी शक्ति के रूप में देखते हैं। विवाह आदि के बन्धनों में कवि नहीं बंधा, बहुत सम्भव है विवाह आदि न करने का कारण निधानगिरि की प्रारम्भ से ही नृसिंह भक्ति भावना तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि रही हो।

'निधानगिरि' में मातृभूमि के प्रति प्रेम है। वे धरती को माता और प्रभु को पिता के रूप में मान्यता देते हैं। भगवत धर्म पर उनका सहज समपर्ण है। प्रेमलक्षणा भक्ति को हितकारी मानते हैं-

"सोभा सकल ब्रह्मांड की सुदरता कौ सार।

भगवत रूप अनूप मैं करै भाव निरधार।।" [३३]

कवि निजी अनुभवों,परिवेश को जिस रूप में भोगता है, देखता है, आत्मसात करता है, उसे रचना का आधार बनाता है । उसकी कविताओं में, भक्ति प्रसंगों में व्यक्तित्व के अनेक बिन्दु स्पर्श करते हैं।

कवि का जीवन समष्टि के लिए है। उसकी कविता का जीवनादर्श भी सम्पूर्ण मानव मात्र है। मानव समाज ताप-दग्ध है, स्वार्थों से घिरा हुआ है, दारुण दुखों को भोग रहा है। आशक्तियों में डूब रहा है। संशय और संदिग्धताओं से भरे जीवन को तरल त्रिलोचनी दृष्टि से शिवत्व की ओर ले चलने के प्रयत्न में कवि ने मानव मात्र को भक्ति से तदाकार करने एवं समष्टि हित के लिए लोकार्पित करने का मनोरथ जगाया है।

'निधानगिरि' सुख-दुख की सीमाओं को पार कर मुक्त मनोरथ वाले महाकवि हैं। भागवत धर्म का आचरण करने वाले 'निधान गिरि' संदिग्धरहित, अहिंसक, आत्मार्पण, करने वाले, हरिशरणागत, भक्तों को सिरमौर मानने वाले परमपद के अधिकारी हैं।

वस्तुतः 'निधान गिरि' भगवत स्वरूप, प्रेम स्वरूप, आनन्द स्वरूप हो गए हैं। प्रेम और करुणा के विस्तार के लिए भक्ति परम्पराओं को प्रीति से एकाकार कराने वाले उच्चकोटि की मनीषा के जागृत प्रतिमान हैं।

बाल्यावस्था :-

'निधानगिरि' की बाल्यावस्था के सम्बन्ध में जो विवरण उपलब्ध होते हैं, उनके अनुसार उनका पालन पोषण उनके माता, पिता और चाचा द्वारा किया गया। बाल्यावस्था में उनका मन पढ़ने में नहीं लगता था। वे सांसारिक विषयों में रुचि नहीं लेते थे। विद्यार्थी जीवन में ही मित्रों से हरि भक्ति की ओर चलने का संकेत करते थे। प्रहलाद का चरित्र और नृसिंह भगवान के मन्दिर में वे

माँ के साथ प्रायः जाते और वह चरित्र उनमें ऐसा रच गया था कि उन्हें धर्म, भक्ति से विशेष रुचि हो गयी। नृसिंह पुराण ने उनमें भक्ति भावों का संचार कर दिया। योगियों के परिवार में जन्म लेने के कारण वे जोगियों के गीतों, भजनों को सुनते और उनका मन विरक्ति की ओर दौड़ता। उन्होंने पाठशाला 'एरच' में पांचवी तक की शिक्षा प्राप्त की। स्वाध्याय, सतसंग तथा गुरुओं के माध्यम से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया। खोज-खोज कर ज्ञानार्जन किया-

क- "जिम बालापन मैं पड़त प्रथम नहीं मन लाग।

घोषत-घोषत अक्षरन पंडित होत समान।।" [३४]

ख- "हरि के वचन नृसिंह पुराना। मेरा नाम जपत कल्याना।।" [३५]

कवि को बालकेलि के खेलों में अधिक रूचि नहीं थी। प्रारम्भ से ही पिता माँ की भक्ति से प्रभावित वे भी वासुदेव का ध्यान करते, नृसिंह भगवान की मूर्ति का दर्शन करने गाँव के मन्दिर में जाते। प्रभु की प्रीति इसी प्रकार जगी-

"साधुन को सतसंग कर धर पद पंकज ध्यान।

सर्वभूत व्यापक परम ईश्वर को पहचान।।" [३६]

'निधान गिरि' ने पाठशाला से भक्ति प्रारम्भ की और अंत में उन्होंनें भक्ति की ही पाठशाला खोल दी। पढ़ने में गुरु शिक्षा देते किन्तु 'निधान गिरि' राजनीति को फीका समझते। अपने पराये का ज्ञान कराने वाली विद्या उन्हें प्रिय न लगती। वे एक बार से अधिक पाठशाला में नहीं गए। अंत में स्वाध्याय, चिन्तन और खोज की प्रवृत्ति ने उन्हें पूर्णता प्रदान की। विद्याध्ययन को श्रेष्ठ धन मानने लगे-

"मृषा विषय वहु विध कर जानै। विद्या धन को अति पहचानै।"

साधना और भक्ति के बल पर प्राणमय शरीर ने मन और बुद्धि को जीत लिया। कामनाओं को शान्त कर दिया। जग के सुख फीके हो गये और घट अगणित गुणों से परिपूर्ण हो गया-

"प्रान सरीर बुद्ध मन जीते। सांत काम कर जग सुख रीते।।

हरि पद प्रीत प्रतीत हृदय धर। गुन अगिनत परिपूरन धट भर।।" [३७]

हरि–हरि–हरि–नाराइन का जाप करने वाले, भक्ति वाले भक्ति का आस्वासन प्रदान करने वाले मौन का आचरण रस पीने वाले 'निधान गिरि' भक्ति हीन जीवन को बंजारों का जीवन मानते है।

'निधानगिरि' के पूर्वजों विशेष रूप से उनके पितृ श्री गोंसाई अनूपगिरि हिम्मत बहादुर की ख्याति बुन्देलखण्ड ही नहीं पूरे भारतवर्ष में फैल चुकी थी। पद्माकर जैसे रस सिद्ध कवि ने 'हिम्मत बहादुर विरुदावली' लिख कर हिन्दु कुल गौरव का गान कर अपने को कृतार्थ किया। ऐसे प्रशस्य गोसाई वंश में निधान गिरि का जन्म और उनका योगदान इतिहास धर्म साहित्य कला, संस्कृति एवं राष्ट्रीय जागरण के लिए प्रशस्य रहा। धर्म और संस्कृति के संरक्षण के लिए 'निधान गिरि' ने विभिन्न राज्यों को धर्म की ओर प्रवृत्त किया। पिता 'अनूपगिरि' के समक्ष राज्य के विस्तार का प्रश्न था। रिपु के दमन के लिए राजनीतिक संगठन, चतुरता, सैन्य संचालन आदि की आवश्यकता थी। किन्तु कवि 'निधान गिरि' के समक्ष न कोई शत्रु था और न ही राज्य विस्तार की कामना। पिता का जीवन राजनीति पर आधारित था, पुत्र का धर्म-नीति पर, दो विपरीत दिशाओं में पल्लवित एवं विकसित चरित्र नायकों के रूप में चित्रित है। 'निधान गिरि' का चरित्र प्रहलाद के कथानक से व्यक्त होता है–

"जोर पान प्रहलाद कह भाव आसकी त्याग।
पित मन समता आनियै रिपु कोऊ नहिं त्याग।।
जो तुम कहत दिसा दस जीते। मन षटवर्ग जीत नहि लीते।
समता मैं रिपु नही दिषाता। वैर मोह से उपजत ताता।।" [३६]

'निधानगिरि' ने यज्ञ देवता की आराधना करके परमेष्ठी पद को प्राप्त किया

"जो है परमेष्ठी पद मोरा। पायौ भगवत कृपा न थोरा।।" [३७]

मोठ में महेन्द्रगढ़ के गढ़पति के रूप में भी 'निधान गिरि' के रहने तथा वैरागी सन्तों के गुरु के रूप में रहने की लोकोक्तियाँ मोठ क्षेत्र में पायी जाती है। सम्भव है समथर नरेश ने मोठ के किले को अपने अधिकार क्षेत्र में लिया हो, क्योकि मोठ में प्रारम्भ से ही अधिकार रहा है। जिस राजेन्द्र गिरि गोसाँई ने 'निधान गिरि' के पिता 'अनूप गिरि' को क्रय किया था, वे मोठ के ही स्वामी थे, इसका उल्लेख बुन्देलखण्ड के इतिहासकारों ने किया हैं। बहुत सम्भव है मोठ पर गोसाइयों का यह अधिकार प्रारम्भ से ही होने के कारण निधानगिरि भी मोठ किले के स्वामी बने हों।एक स्थान

पर 'निधान गिरि' ने अपने नाम के साथ कवि भूपा का भी उल्लेख किया हैं। जिसका आशय कवि के भूप अथवा भूप कवि सम्भव होते हैं। जो अनुसंन्धान के लिए नई पहल की ओर संकेत करते हैं। जो व्यक्ति विद्या पढकर कुटुम्ब में ही लगा रहता है। उसके अर्थ मिट जाते हैं। त्रिय की वेड़ियों से छूटना कठिन है, अतः हरिशरण ही अभीष्ट है-

"जो पड़ै विद्या कुटुम्बहु मै लगौ मन जाकौ रहै।

तिहि मिष्ट होवै अर्थ सरवस नर्क जावै तन दहै।

जब कठिन त्रिय वेड़ी परी पग छूट कैसे पावही।

हरि के सरन होवै जबहि अपवर्ग ताहि मिलावही।"[३८]

<u>**गुरु**</u> - 'निधान-गिरि' वैरागी थे, भक्त थे। भगवत पंथ पर आस्था रखते थे। वे किस गुरु के शिष्य थे जिनसे दीक्षा ली। गुरु के प्रति अगाध निष्ठा व्यक्त की। गुरु को शिव, विष्णु, ब्रह्म, कोटि का बताया।

" वंदहु पद गुरुदेव हरि संकर विध तन सरस।

नित मन वच क्रम सेव, पारब्रह्म महि तन सरस।।" [३६]

ये गुरुदेव कौन है, जिनकी समता हरि (विष्णु) शंकर (शिव) और विधि (ब्रहम) से दी गई है। निश्यच ही 'निधान गिरि' को अपने गुरु से साधना मार्ग मे चलने की प्रेरणा दी गयी है। वे गुरु को गुरुदेव सामान्य नहीं मानते हैं। ये गुरु शंकर शंकराचार्य है। जिन्हें कवि ने साक्षात् धरती में परब्रहम कहा है। उन गुरुदेव वंदना के आए हुए हरि शंकर को व्यक्तिवाचक संज्ञापद के रूप में स्वीकार करें तों 'निधान गिरि' के गुरु 'हरिशंकर' नाम के व्यक्ति साधु हो सकते हैं। कवि का यह भी कथन है कि उनके गुरु महितल में परब्रहम के रूप में प्रकट हुए हैं। जिनकी सेवा में कवि का मन वचन, कर्म सभी कुछ अर्पित है। गुरु पर कवि की अगाध निष्ठा व्यक्त होती है। कवि ने गुरु को विधि का तन ही कहा है और उन्हें सरस रसयुक्त भी रसः वै सः के रूप में यह गुरु साक्षात् ब्रहम ही है। शंकराचार्य धर्माचार्य का शिष्यत्व 'निधान गिरि' ने स्वीकार किया।उनकी शिष्य परम्परा में दीक्षा लेकर वैरागी हुए।

वैद्यक सिंन्धु' नामक ग्रन्थ मे 'निधानगिरि' ने गुरु की वंदना भी की है जो इस प्रकार है-

क- "वंदहु संकर गुर गिरा सुर धन्वंतर राव।

वैद्यक सिन्धु वषान हूँ दीनौ सुमत समान।।" [४०]

ख- "गुरु पद सेवन सै मिल ग्याना।

कर हरि पूजन विविध विधाना।।" [४१]

गुरु पद सेवन से ही ग्यान मिलता है। हरि का पूजन विविध विधान देकर करना चाहिए।

शिष्य परम्परा :-

'निधान गिरि' वैरागियों के सम्प्रदाय में दीक्षित थे, वे समथर नरेश के द्वारा आनंदगढ़ (महेन्द्रमढ़) के अधिपति भी रहे हैं। उनकी शिष्य परम्परा को बढ़ाने के लिए शिष्य परम्परा को भी संस्कारित किया। मेरे श्वसुर श्रीयुत रविशंकर द्विवेदी ने 'निधान गिरि' की शिष्य परम्परा कवि चन्द्रेश वरदिया के सौजन्य से भोलाराम गिरि के माध्यम से प्राप्त की है। वह यथावत दी जा रही है।[४२]

'निधान गिरि' की शिष्य परम्परा :-

१-	'राजेन्द्र गिरि'	पहली पीढ़ी।
२-	'महेन्द्र गिरि'	दूसरी पीढ़ी।
३-	'शीतल गिरि'	तीसरी पीढ़ी।
४-	'राम गिरि'	चौथी पीढ़ी।
५-	'गंगा गिरि'	पांचवी पीढ़ी।
६-	'हरि गिरि'	छठवीं पीढ़ी।
७-	'भोला गिरि'	सातवी पीढ़ी।

वैरागियों को संस्कारित करने, गढ़ों को संचालित करने तथा भक्ति आन्दोलन को संगठित करने में 'निधान गिरि' की भूमिका बुन्देलखण्ड अंचल की एक विशेष उपलब्धि है।

अध्ययन :- वैदिक ग्रन्थों, उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों, संहिता-ग्रंथों तथा संस्कृत के प्राच्यग्रन्थों के अध्ययन की पुष्टि कवि के 'भक्ति मनोहर' प्रबंध के अन्तः साक्ष्य से हो जाती है। कवि ने इन संन्दर्भ ग्रन्थों का उल्लेख भी किया है-

१- “भक्ति भाव वरनन करत सादर सुनह महीस।

वेद सूत्र सिद्धान्त के कहत नाइ पद ईस।।” [४३]

२- “वेद स्मृत सब षास्त्र पुराना। नारद पंचरात्र मति साना।।” [४४]

३- “भगवत माहि परम अनुरागा। यही भक्ति वरनत बडभागा।

मन वच क्रम कर ईश्वर सेवा। लिंग पुरान भक्ति कह एवा।।” [४५]

४- “तंत्र शास्त्र अस विध सैं भाषा। भक्ति तीन अक्षर गुन राशा।

सनत कुमार संहिता मॉही। भव दुष् हरह भक्ति कहँ ताही।।” [४६]

कवि ने सहस्त्रों ग्रन्थों से हरिकथा श्रवण की अभिलाषा व्यक्त की है। शास्त्रों के अध्ययन, मनन, विचार, मंथन, तर्क को महत्व देते हुए कति ने भक्ति को सर्वोपरि स्थान प्रदान किया है।

कवि के अध्ययन का क्षेत्र विस्तृत है। स्वाध्याय के द्वारा जो ज्ञानार्जन किया है वह विशाल ज्ञान के स्त्रोतों का संकेतक है। पुराणों, संहिताओं, तन्त्रों तथा संस्कृत-हिन्दी के भक्ति काव्यों के अध्ययन के प्रमाण भी कवि में मिलते हैं।

आयुर्वेद, ज्योतिष, तंत्रदर्शन के शास्त्रों का भी, 'निधान गिरि' ने अध्ययन किया था, जिसके प्रमाण अन्तः साक्ष्य के रूप में विद्यमान है।

पुराणों की वंशावलियों के नाम, ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख, रामकथा की तिथियों के अनुसार घटना चक्र का उल्लेख, ज्योतिष, आयुर्वेद के गूढ़ तत्थों का उल्लेख कवि की बहुज्ञता को प्रमाणित करते हैं।

आयुर्वेद :- आर्युेदिक संदर्भों से कवि का आयुर्वेदिक ज्ञान प्राप्त होता है-

क- “झूठे गाल बजावहीं अबही रहै चुपाइ,

नाही तौ त्रदोश की सन्नपात बस भाइ।।” [४७]

ख- “कन्या सुन्दर देश कै भये काम बस मूढ़।

प्रगट बात जनु सवन कौं ताके बस आरुढ़।।” [४८]

त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) का घमासान बढ़ना घातक है।

ग- "सुता पाइवो लाभ सो कफ प्रगटौ उर आन।

प्रभु सो क्रोध सुपित्त बड़ अस त्रिदोष घमासान।।" [४६]

सन्निपात का संकठ काल की निकटता का संकेतक है-

घ- "सन्नपात वस तम कहीं काल करों नियराइ।

असकर लक्ष्मन क्रोप तन सौंहे भौंह चढ़ाय।।" [५०]

संजीवनी के बिना शूल के न मिटने का उल्लेख कवि के संजीवनी ज्ञान का परिचायक है :-

ङ- "विरह विपत अति तिहिं प्रगट सोक रोग दुष मूल।

राम कृपा संजीवनी ता बिन मिटइ न सूल।।" [५१]

लंका को खरल करके रसायन बनाकर रोग को विनष्ट कर देने का रूपक इस प्रकार है :-

च- दसकंधर पारा कर लेवौ। जो धन कौ गंजक धर देवै।।

अपर सुभर हरतार सुहागा। डार औषधी कटक विभागा।।

करतौ मैं अस विध रस राजू। रोग विनासन हित सुरराजू।। ५२

हनुमान द्वारा संजीवनी लाने के प्रसंग में 'निधान गिरि' ने चार प्रकार की संजीवनियों का उल्लेख करके आयुर्वेदिक ज्ञान को प्रमाणित करता है :-

क- "प्रथम साल हरनी लई विक्रम करनी केर।

सुवरन करनी कर गृहन मृत सजीनी गेर।।

चार भॉत संजीवनी लीनी पवन कुमार।

वेगवंत निज रूप धर आये कटक भॅझार।।" [५३]

ख- "यह सुत भयौ ज्यौं रोग तन मै अहित करता है सही।

पर पुत्र आपुन हित करत जिम ओशधीवन की कहीं।।"

ग- "इक अंग काटै बचै सब तन काट ताकौ डारिये।"

एक अंग काटने से यदि शरीर बच जाये तो उसे काटना ही उचित है। शल्य सिद्धान्त का संकेत कवि ने क्या किया है। कवि का आयुर्वेदिक विषयक ग्रंथ वैद्यक सिन्धु की खोज की है। यह ग्रन्थ कवि के आयुर्वेदिक के पुष्ट ज्ञान को प्रमाणित करता है।

'निधानागिरि' ने आयुर्वेदिक क्षेत्र की जिस दुर्लभ जानकारी को 'भक्ति मनोहर' में वर्णित किया है। उससे पर्याप्त प्रमाण उनकी आयुर्वेदिक उपलब्धियों के मिलतें है। कवि की निवास स्थली मोठ से कवि परिवार के वंशधर 'भोलारामगिरि' के यहॉ से ग्रन्थ में औषधियों का हितकारी होना वर्णित हैं।

गणित :- कवि ने गणित सम्बंधी बिम्बों का भी प्रयोग किया है -

"सब नृप भऐ बाहु बल हीना।
सून्य पुंज जिम अंक विहीना।।"[५५]

सीता स्वंयवर के अवसर पर सारे राजा बाहुबल हीन हो गये जैसे शून्य का समूह अंक के बिना मानहीन हो जाता हैं। गणित में अंक से रहित शून्य का मूल्य घट जाता है। वह मात्र शून्य ही रहता है। गणित के इस सिद्धान्त को कवि ने स्वयंवर के समय लोभी राजाओं के मान विहीन होने की व्यंजना की है।

ज्योतिषशास्त्र :-

राम जन्म के अवसर पर नक्षत्रों का उल्लेख कवि ने किया है, जो उसके ज्योतिष विज्ञान विद् होने का प्रमाण पत्र है -

"कौशिल्या के प्रेमवस प्रगट भए भगवान।
नवमी तिथि मघुमास दिन मध्य पक्ष सितजान।।
कर्क लगन पुन नषत पुनरवस। उच्च पंच ग्रह मेष अर्क वस
अभिजित मंगलवार जनायौ। मंगल मोद समिट जनु आवौ।।" [५६]

आचार्य भूरा महराज 'गिरि' ज्योतिषाचार्य ने उक्त पंक्तियों के आधार पर भगवान राम के जन्म पत्र का निर्धारण किया है। जन्मांक का आधार 'निधानगिरि' द्वारा वर्णित पंचग्रहों के उच्च में स्थित होने कर्क लग्न के जन्म तथा अभिजित बेला का उल्लेख सिद्ध करता हैं कि कवि 'निधानगिरि' ज्योतिर्विद्या के भी पंण्डित थे, कवि ने अन्य प्रसंगों में भी ज्योतिषादि की गणनाओं का संकेत किया है।

संगीत :- कवि ने संगीत विषयक अभिरुचियों को व्यक्त किया है -

"मोहित व्रज वाल भाल गावत कर देत ताल।

ब्रल ताल रुद्रताल अगिन तन सँभारी।।
थकित पवन लता पुंग मोहित मन कुंज-कुंज
कालिंदी फूल मंजु मुरली धुन धारी।।
ठुम-ठुम पग धरत धरन तांडव हरि नृत्य करन
स्याम जलद करन वपुश पीत चंचलारी।।
बिथुरे सिर चिकुर जाल किंकिन धुन ठुमुक
चाल नूपुर झनकार ताल मुकुट लटक न्यारी।।
निर्तत गोपी गुपाल नाना विधि करत स्याल।।
अनत पद वंद नृत्य प्रमुदारी।।" ५७

उपयुक्त रासलीला के वर्णन में कवि ने नृत्य, ताल, संगीत ख्याल का उल्लेख किया है। ख्याल बुन्देली की विशेष गायकी भी है। यहाँ ख्याल ध्यान और संगीत विद्या दोनों अर्थों में प्रयुक्त है।

चिन्तन अवधारणा :-

'निधानगिरि' पवित्र भक्ति का संचार करने वाले ब्रह्मवेत्ता, वेद और उपनिषदों के मर्मज्ञ, इतिहास, पुराणों के विशेषज्ञ, न्याय नीति के तत्वज्ञ व्यास, वाल्मिकि, जयदेव, तुलसी, सूर की परम्परा के मंत्र दृष्टा महाकवि हैं। कवियों, भक्तों सूत्रग्रन्थों, आयुर्वेद, काव्यशास्त्र के मर्मज्ञों के प्रति ग्रंथारम्भ में आदर व्यक्त किया है। इतिहास और भूगोल में वर्णित नामावली, वंशसूचियों एवं नदी पर्वतों की स्थितियों, ऋतुकाल की गतियों, सूर्य की कलाओं के अयनों, ज्योतिष-विषयक उल्लेखों से पता चलता है कि उन्होंने इन ग्रन्थों का भी अध्ययन किया था। चौदह भुवनों, मंडलों के जीवों के प्रति कवि की प्रणति में जहाँ कवि के ग्रन्थ विस्तार की कामना हुयी है, वहीं विद्वत्-मनीषियों के साथ जनसामान्य के प्रति ऐसी विनम्रता महाकवि के कृतज्ञ व्यक्तित्व का सूचक है।

समागम (सत्संगार्थ) पर कवि की निष्ठा है। शास्त्रार्थ से वे कतरातें नहीं, किन्तु कर्तव्य और आचरण के बिना वाणी के व्यापार की सार्थकता पर प्रश्न उठातें हैं। "सूर न बोलत है बड़ वानी," कहकर उन्होंने बड़बोलेपन को शूरवीरों का लक्षण नही माना।

कवि निजी अनुभवों, परिवेश को जिस रूप में जीता है, देखता है, आत्मसात करता है, उसे रचना का आधार बिन्दु बनाता है। उसकी कविताओं में व्यक्ति प्रसंगों में व्यक्तित्व के अनेक बिन्दु

स्पर्श करतें हैं, उनसे वैयक्तित्व उद्‌घाटन भी होता है। कवि का जीवन मानस के हंस की भाँति जीवन-मातियों को चुनता है।

'निधान गिरि' भक्त कवि हैं। संत सैनिक हैं। नवधाभक्ति से उनका गहरा लगाव है। 'गीता' उनका प्रिय ग्रन्थ है। भागवत के प्रति भक्तिभाव प्रगट करते हैं। वे सभी दिशाओं में जो व्याप्त है। चराचर है, ऐसे विश्वतोमुखम विष्णुवदेव के उपासक हैं।

कवि 'निधानगिरि' मौन प्रकृति के साधक थे। वक्ता को हरि का रूप मानते हैं। आचरण के पंथ पर चलकर नित्य नव प्रीति के उपासक है-

"जो वक्ता कौ हरिसम लेषी। सुनह चरित प्रिय प्रेम विसेषी

सुन-सुन मनन करै भल भाँती। होहिं न त्रपित चाह अधकाती।

नित नव प्रति होई हिय नीकी। विसद आचरन कर अस लीकी।।" [५८]

भक्त कवि 'निधान गिरि' भगवताराधन के लिए समर्पित थे। वे हरि का पूजन विधि विधान से करने वाले थे। प्रभात में मंगला आरती, मध्यान में राजभोग और सांयकाल नियमित आरती करते, ईश्वराधन के लिए समर्पित व्यक्तितत्व वाले हैं।

कवि चंदन, तिलक, तुलसीदल, फल, दूर्वादल, अंकुर, अर्पित करते। शंकराचार्य की अद्वैत परम्परा के अनुसार ही वैराग्य का जीवन जीते, दंड धारण करते तथा धर्म ध्वज लेकर चलते थे, सुकोमल भावनाओं और कल्पनाओं के धनी कवि 'निधान गिरि' प्रातः उठकर काव्य रचना करते थे। हरि भक्ति के कीर्तन करना, हरिलीला का गायन एवं नवीन पदों की रचना का संकेत भी कवि ने किया है।

कवि 'निधानगिरि' धरती को माता और प्रभु को पिता के रूप में स्वीकार करते हैं। जननी जन्मभूमि का गौरव भी कवि में मुखरित है-

"प्रभु तुम पिता धरन है माता। थापिय भूंम जगत सुषदाता।" [५९]

कवि अपने समकालीन राजाओं को दिशा निर्देश भी देता है। उनके साथ मैत्री भाव भी रखता हैं किन्तु राजाश्रय की अपेक्षा ईश्वर की शरणागति को ही सुख का साधन मानता है-

"दहै वासना मिट अग्याना। ईश्वर सरन सदा सुष माना।

जन्म मरन कौ चक्र नसाई। अस लष भजन करहु तुम भाई।" [६०]

जगत के प्राणियों को ईश्वर के समान जानकर उनका सम्मान करते थे। वासुदेव के पदों से प्रीति करने का भी संकेत कवि ने किया है–

"ईश्वर सम जानौ सब प्रानी। वहु विध करै सफल सनमानी।

वासदेव पद प्रीत लगावै। सुमर सुमर गुन कर मन गावै।" [६१]

'लज्जा को अपकर्षक मानकर लज्जा छोड़कर 'अभय' रहने का भाव कवि का आत्मगत भाव है–

"यह मत आतम जुत कर लेई। लाज विहाइ अभय रह तेई।" [६२]

'निधानगिरि' अपने वचनों से नहीं टलने का संकेत करते हैं। देह छूट जाय, प्राण चले जाय, नर्क की शंका नहीं करें, निर्धन हो जाय तब भी हरि सेवा से विमुख न होने का उद्घोष कवि ने किया है–

"जो नरहरि सैं विमुख रहाई। ताकौ भार सहौ नहि जाई।

भय नहि देह राज छुट जावै। नर्क संक नाही मुह आवै।

निर्धन हौहु न डर उर घरहू। दान हार दिय वचन न टरहू।"[६३]

आयु, सुन्दरता, ज्ञान, धन, राज्यपद पा कर मनुष्य को गर्व नहीं करना चाहिये। दया और समता को धारण करने वाले व्यक्तियों पर ही मेरा अनुग्रह होता है–

"वय रूप विद्या वित्त प्रभुता पाई गर्वह नहिं करै।

तिहि पर अनुग्रह मोर जांनिय दया समता कौ धरै।।" [६४]

नगर की अपेक्षा ग्राम्य जीवन का सौन्दर्य–वोध 'निधान गिरि' के आंचलिक प्रेम को व्यक्त करता है। उनकी संवेदनाएं खेतिहर, मजदूरों, वैदिक मंत्रों के पाठकर्ताओं, यज्ञ कर्म के लिए समर्पित धर्म–योद्धाओं में अधिक हैं। वे भक्तों के पक्षधर हैं, उन्हें राज्य की ओर से संरक्षण, दान प्रदान कराने के समर्थक हैं। दान को धर्म से, वाक को कम में बदलकर सामाजिक परिवर्तन कराने वाले रचनाकार हैं। केवल 'वाग' बल छल हो जाता है, जो कर्म से रहित हो, आचरण से शून्य हो।

"वीर न बोलत है बड़बानी।।" [६५]

कवि अचेतन मन की भाषा को समझाने में विशारद हैं। वह पात्रों के युक्त आसंगों (फ्री एसोसिएशन्स), व्यक्त स्वप्नों (मैनीफेस्ट ड्रीम्स) अवनिर्वाहों (अर्थहीन भाषा को पहचानते है)। [६६]

निधानगिरि के काव्य में बुन्देलखण्ड अंचल की नदी, पर्वतमालाएं, दुर्ग, अभ्यारण्य, बोली, भाषा, पहनावा, रीति की अभिव्यक्ति पाते है, जिससे कवि की अपने आंचलिक-संस्कृति का गहरा अनुराग अभियोजित होता है। व्रजभूमि के प्रति आस्था, चित्रकूट के प्रति गहरा भक्तिबोध, अवध के प्रति गहरा अनुराग, बुन्देली संस्कृति के साथ इस प्रकार धुलमिल कर अभिव्यक्त हुआ है, जिससे कवि की भौगौलिक और सांस्कृतिक अभिरुचि का पता चलता है।

मनुष्य का चरित्र हिमनग के समान है। जिस प्रकार हिमनग केवल १/६ भाग जल के ऊपर दिखाई देता है। और शेष जल मग्न रहता है, उसी प्रकार मनुष्य चरित्र का अत्यल्पांश ही व्यक्त होता है, प्रतिक्रियाओं में प्रतिबिम्बित हो जाता है। मानव के चरित्र का बहुत बड़ा भाग तो उसके अवचेतन मे अव्यक्त रहता है और उसके व्यक्त आचरण को प्रेरित करता रहता है। [६७]

निधानगिरि ने 'भक्तिमनोहर' मे पात्रों के चरित्र चित्रण की प्रत्येक अवस्था में वे उसके निर्माण मे विहित सामाग्री उद्देश्य के प्रति जागरुकता व्यक्त की है। पात्रों से कवि सामाजिक मान्यताओं की पुष्टि करता है। उनके पात्र अनुशासन में रहतें है। पात्रों के आचार-व्यवहार के पीछे जो शुभ और सुंदर है, उसमें सृष्टा का अस्तित्व रहता है। रचनाकार का अहिंसक दृष्टिकोण राम और सीता को भी अहिंसक बना देता है, वे मृग को मारना भूल जाते हैं। अथवा सीता मृग को पालने के लिए कहती है -

"नीक पालवे जोग कृपाला। मारै तुवर मिलै मृग छाला।"[६८]

कवि संकीर्ण सामाजिक नैतिकता से निकलकर मूल नैतिकता के लिए गहरे आत्म-चितंन की ओर प्रवृत्त है। वे सौन्दर्य को ठीक प्रकार देखने का आग्रह करतें हैं। सौन्दर्य में श्रेष्ठता, गुणवत्ता, को मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं, 'नीके निरखहु नीक निकाई,' के सौन्दर्य दृष्टा कवि में सौन्दर्य बोध का उदात्त स्वरूप परिलक्षित होता है।

मनोवैज्ञानिक प्रणालियों से विश्लेषण करने पर निधानगिरि के अचेतन में सौन्दर्य के प्रति विशेष लालसा है। प्रकृति के प्रति विशेष प्रेम है, नारी सौन्दर्य की अपेक्षा उसमें शील, श्रम, प्रभा, और शक्ति का दर्शन ही प्रमुख है। सौन्दर्य के बिम्बों में नारी प्रेम के स्थान पर प्रकृति प्रेम

परिलक्षित होता है। बाल्यक्रीड़ाओं में कवि की गहरी अभिरुचि है, धर्म युद्ध के बिम्बों में कवि का मन रमाता है और वे युद्धों से धर्म की स्थापना के मूल्य को प्रतिष्ठित करते चलते है।

कवि का कर्म, धर्म, संस्कृति के प्रति अनुराग :-

कविता का संस्कार उन्हें अपने परिवार से मिला। पिता अनूपगिरि स्वयं कवि थे और बुन्देलखण्ड क्षेत्र के महाराजा भी। उनके आश्रय में पद्माकर जैसे रीति काल के महानकवि थे। उनकें पिता श्री 'अनूप गिरि' हिम्मत बहादुर की विरुदावली पद्माकर कवि ने लिखा है।

"वर वरनिए विरुदावली हिम्मत बहादुर भूप की"

इस प्रकार कवि के पिता श्री अनूप गिरि के कवि होने तथा उनके सभी पुत्रों के कवि होने और उनके आश्रय के कवियों की कविताओं से अनूपगिरि का सम्बन्ध होना प्रामाणिक है। पैतृक सम्पत्ति के रूप में उन्हें काव्य के संस्कार मिलें।

'अनूप गिरि' गोसॉई तथा उनके वंश गोसाइयों की शिव भक्ति प्रख्यात है। पूरे बुन्देलखण्ड में और उससे बाहर देश के विभिन्न भागों में शिव मन्दिरों की स्थापना तथा गोसॉईयो की महान शिव भक्ति विख्यात रही है। आज भी उनके वंश के द्वारा बनवांए बॉदा, कालिंजर, महोबा, रसधान, दतिया के शिव मंदिर भी उनके परिवार की शिव भक्ति के जाग्रत अवशेष है। 'निधानगिरि' के काव्य में भगवान शिव के प्रति आस्था तथा राम-कृष्ण के सौन्दर्य बिम्बों में शिव के उपमान रूपक-उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग बहुल से भी सिद्ध होता है कि निधानगिरि का मानस शिव भक्ति से ओत प्रोत था। कवि द्वारा 'एरच' के नृसिंह मंदिर से कवि के 'भक्ति मनोहर' ग्रंथ की हस्त लिखित प्रति का पाया जाना तथा 'भक्ति मनोहर' में नृसिंह भगवान के प्रति कवि का सघन अनुराग उनकी नृसिंह भक्ति का भी सूचक है। शैशव काल से ही अपनी मॉ के साथ नित्य प्रति नृसिंह मंदिर में जाना तथा वहॉ सतसंग में भाग लेना भी उनकी नृसिंह भक्ति के बीजारोपण की सूचना देता है।

उन्होंने वैवाहिक जीवन के बंधनों को रागात्मक कहकर इन पारिवारिक रागात्मक सीमा से मुक्त होकर समाज और राश्ट्र को एक नए बुद्ध के रूप में, एक नए शंकराचार्य के रूप में संदेश देना चाहतें हैं। उनकी अतृप्त सेक्स भावनाएं उन्हें काम से मुक्त करती हैं और जिस रूप से उन्हें तृप्ति मिलती है, वह लोक का समष्टिकारी रूप है, शिव का कल्याणकारी रूप है।

हीनता और दैन्य की ग्रंथियों से कवि का जीवन ग्रंथिल नहीं है। वे अभय, निर्भीक, जीवन चेतना के गायक बन सके क्योंकि किसी साम्प्रदायिक संकीर्ण स्वार्थपरक घेरे में नहीं बंध सके। रागात्मक बंधनों को वे परम राग तक फैला देते है। अनुराग को महाराग तक ले जाते है। विश्वात्मा को सृष्टि पर्यन्त व्याप्त देखतें हैं। अतः ऐसे दृष्टि बोध के कारण चारित्रिक स्खलन से बच जाते है।

'निधानगिरि' सिंहगर्जना करते हैं, शंखनाद करतें हैं, अभय होने के कारण धर्म निर्देश प्रदान करते है। अहं का विसर्जन करके सर्वात्म कल्याण की शुभ कामना करते है। चरित्र के समुज्जवल रूपों से कवि 'निधानगिरि' का काव्य एवं वाक संसार प्रभा परिपूर्ण है। कोटि सूर्यों का संकल्प उन्हें धर्मपंथ, निरंतर क्रान्ति के लिए उद्वेलित करता है। सम-सामयिक राजाओं को धर्मपंथ पर चलने के लिए प्रेरित करता है।

राजाश्रय और राज-सम्मान :-

कवि का विभिन्न राजाओं के यहाँ जाना तथा उनको भक्ति की ओर प्रेरित करना ताकि धर्म प्रधान राज्यों के माध्यम से जनता को सुख शांति मिल सके,इस प्रकार राज्य वंशों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत कर सके तथा राज्यवंशों की तत्कालिक टूटती हुयी व्यवस्था को नए लोक-तांत्रिक आधार प्रदान किये, उनके 'समथर'स्टेट के महाराजा चतुरसिंह, जयपुर के सवाई महाराजा प्रतापसिंह, तथा रींवा नरेश महाराज रघुराज सिंह आदि के सम्पर्क थे।

लोक जीवन में यह श्रुति पायी जाती है। कि 'निधानगिरि' ने समथर के महाराज के घर में जन्में हुए शिशु के जन्मोत्सव पर एक बार बिना आमन्त्रण के ही पहुँचे जहाँ अन्य कवियों के मध्य 'निधानगिरि' ने जन्मोत्सव पर एक रचना पढ़ी जिसकी एक पंक्ति लोक में अब भी चर्चित है- "ऊजरी गढ़ी में एक गूजरी बियानी है" जिसका आशय यह था कि समथर राज्य जो गूर्जरों का राज्य था तथा जिसमें उजाड़पन था। वहाँ पर एक गूजरी ने एक बच्चे को जन्म दिया, जन्मोत्सव के मांगलिक अवसर पर इस प्रकार की 'बियानी' जैसी भदेश शब्दावली के प्रयोग के कारण महाराज समथर कवि से नाराज हो गए और 'निधानगिरि' खरी खोटी सुनाकर समथर राज्य से लौट आए। यह लोकोक्ति कवि के स्वाभिमान प्रिय व्यक्तित्व का सूचक है।

महाराज समथर द्वारा कवि को आमन्त्रण :-

कालान्तर में निधानगिरि की ख्याति, उनकी सिद्धि और उनके चमत्कारों तथा उनके बढ़ते हुए प्रभाव व राज पुत्र होने के कारण चतुर्दिक फैलने लगी। कवि 'निधान गिरि' के मित्र 'मनोहर वीर' समथर स्टेट के सचिव थे। वे कवि की प्रतिभा उनके पांडित्य और उनकी भागवत निष्ठा से परिचित थे। उनके माध्यम से महाराज समथर, चतुरसिंह ने राम जन्मोत्सव के अवसर पर अपने सचिव के द्वारा कवि को पत्र भेजकर साधु समागम हेतु 'समथर स्टेट' में बुलवाया। जिसका उल्लेख कवि 'निधानगिरि' ने 'भक्ति-मनोहर' के प्रथम अध्याय में काव्य प्रयोजन के अन्तर्गत किया है। कवि के शब्दों में-

"वेत्रवती जोजन सु इक समतपुर रमनीय।
चतुरसिंह महराज नृप रजधानी कमनीय।।
वेत्रवती दुहु कूल पर कवि निधान गिरिवास।
एरेछपुर थल तीर्थ सम दूजा मोठ निवास।।
राम जन्म उत्सव महिप संवत प्रतिप्रति साज।
साधु समागम होत जिमि मकर सुतीरथ राज।।
परम पत्र लिख मोर हित पठवा सचिव महीप।
साधु समागम मैं गइिव पूजव नृप कुल दीप।।
राम भक्ति, भूपति चतुर सचिव मनोहर वीर।
मम पद राखौ भवन गहि भाव सहित मति धीर।।

चतुर सिंह महराज जुत सचिव प्रश्न अस कीन।" [६१]

उक्त प्रसंग जो अन्तः साक्ष्य के रूप में प्राप्त होता है, उससे सिद्ध होता हैं कि 'निधान गिरि' का समथर के महाराजा से सम्बन्ध था और उन्होंने इस महाकाव्य की रचना में महाराज को श्रोता तथा स्वयं को वक्ता बनाकर प्रत्यक्ष शैली में सम्बोधित किया है। साथ ही 'भक्तिमनोहर' के कर्मप्रकाश के अन्तर्गत राज्य कर्म और धर्म का विवेचन करके समथर नरेश को तथा उनके माध्यम से अन्य सभी राजाओं को राज धर्म पालन करने तथा धर्म प्रधान राज्य व्यवस्था संचालित करने का निर्देश भी दिया।

जयपुर नरेश महाराज प्रताप सिंह का सन्दर्भ :-

कवि 'निधानगिरि' के एक दूसरे काव्य ग्रन्थ जिसकी सूचना कवि निधान गिरि के सातवीं पीढ़ी के उत्तराधिकारी 'भोलाराम' गिरि द्वारा जो कवि जन्मभूमि क मोठ के निवासी है, के द्वारा उनके एक अन्य ग्रन्थ वैद्यक सिन्धु की सूचना प्राप्त हुयी है। शोध-छात्रा ने इस ग्रन्थ का अवलोकन किया, जिसमें तमाम प्राचीन आयुर्वेदिक ज्ञान का संकलन किया गया है। किन्तु कवि को वह काव्यमय न होने के कारण शुष्क प्रतीत हुआ अतः कवि ने आयुर्वेद के दुर्लभ जानकारियों को सरस पद्यों में जन कल्याण हेतु लिखा। इस प्रकार इस सूचना के द्वारा यह भी ज्ञात होता है कि 'निधान गिरि' वैद्यक शास्त्र के ज्ञाता थे तथा जनहितार्थ औषधि प्रदान करने का भी कार्य करतें थे। 'भक्तिमनोहर' से यह भी सिद्ध होता है कि उन्हें दुर्लभ संजीवनी विद्या का भी ज्ञान था।

जीवन के विविध आयाम :-

वृहत्तर भारत के मुख्यप्रान्तों में विशिष्ट राजवंशों के माध्यम से, नागा संतो के माध्यम से 'निधान गिरि' ने अभेद भक्ति का प्रसार किया जिसमें वैष्णव भक्ति, शैवभक्ति, शाक्त भक्तियों का एकाकार किया। हरि अवतारों मत्स्य, बाराह, नृसिंह, राम, कृष्ण के अवतारों के माध्यम से विशालकाय जन-जीवन को आन्दोलित किया।

'निधान गिरि' के वंशज गोसाँइयों ने शिव भक्ति के कारण पूरे बुन्देलखण्ड और भारत के विभिन्न अंचलों में मंदिरों का निर्माण करवाया। गुसाइयों के बनवाये हुये शिवमंदिर आज भी भारत के विभिन्न प्रान्तों में पाये जातें है। वैष्णव भक्ति एवं प्रसंगों में शिवभक्ति के तत्वों को जोड़कर कवि ने भक्ति का समन्वित रूप तैयार किया हैं।

'निधान गिरि' के काव्य में ऐश्वर्य भाव और माधुर्य भाव दोनों का समावेश है। मर्यादा पुरुषोत्तम 'रामचन्द्र' में ऐश्वर्य भाव का प्राधान्य हैं, लीला पुरुषोत्तम कृष्णचन्द्र में माधुर्य भाव का। 'निधान गिरि' में सौन्दर्य तथा माधुर्य का जो उत्स हैं उसका आधार बाल कृष्ण की माधुर्यगर्भित ललित लीलाएं है। कवि ने राम के वाल्यवर्णन में भी कृष्ण की माधुर्यमयी ललित लीलाओं का

समावेश किया है। १६ वीं शताब्दी में वैष्णव साहित्व को स्निग्ध, रस पेशल तथा सुमधुर बनाने में 'निधान गिरि' का योगदान वैष्णव भक्त और आचार्यो की भॉति महत्वपूर्ण है।

'निधान गिरि' ने भक्ति के क्षेत्र में शैव भक्ति द्वारा दक्षिण भारत की भक्ति परम्परा को उत्तर भारत की वैष्णवी भक्ति परम्परा से मिलाया है। यही कारण है कि कवि की कविताओं में एक और अलवार भक्ति की भक्ति रस का अमृत है। श्रीरंगम की शेषनाग की छाया, तो दूसरी ओर उत्तर भारत की विष्णुपदी गंगा का कल-कल कलित गायन विद्यमान है।

विश्व-मानवता को स्फूर्त करने के लिए धर्म की उदारता, भक्ति की श्रेयष्करी साधना के अतिरिक्त कोई दूसरा समर्थ माध्यम नहीं है। कवि ने प्रेम साधना और मैत्री विधान द्वारा मनुष्य को धर्म के क्षेत्र में गतिशील बनाया हैं। प्रेंम को ही भक्ति का आधार माना गया है। महर्षि शांडिल्य के अनुसार 'परानुशक्तिरीश्वरे' (शांडिल्य सूत्र संख्या-२) ईश्वर में पर अनुराग उत्कृष्ट प्रेम की भक्ति है।

'निधानगिरि' भक्ति के प्रचार एवं प्रसार हेतु धार्मिक यज्ञों का सम्पादन करते थे तथा नागा संतों को लेकर विभिन्न क्षेत्र में यात्राएं भी करतें रहे। अन्तःसाक्ष्य प्रमाणों से यह प्रमाणित होता है कि कवि ने ब्रजभूमि, अयोध्या, नैमिषारण्य, हरिद्वार, द्वारका, रामेश्वरम् आदि की यात्राएं की थी। तथा विभिन्न अंचलों में धर्म और शान्ति का तथा अभेद भक्ति का सन्देश प्रदान किया।

निर्वाण :-

कवि 'निधान गिरि' धर्म पथ पर आरुढ़ होकर अपनी प्रतिभा का दान करते हुए, जनजीवन में एवं लोक में प्रतिष्ठित हुए। विभिन्न समकालीन राजाओं द्वारा राज्य की ओर से सम्मानित हुए। साहित्य के विशारद, विद्यावारिधि, गुण और कला निधान होकर उन्होंने संकीर्तन, यज्ञ, काव्यरचना, सैनिक संगठन आदि कृत्यों के द्वारा समाज को दिशा दी। बेतवा अंचल का यह सूर्य अपने दीर्घकालिक जीवन को बुन्देली, बृज, बुन्देलखण्ड और समूचे मानवजाति को समर्पित करते हुए, यशोपलब्धि की सीमाओं को पार करके, मानापमान की स्थिति को जीत कर, विराट मानव धर्म की रक्षा के लिए धर्मयोद्धा की भांति लड़ते हुए, बेतवा के तट पर ८३ वर्ष की आयु में सम्वत् १६३८ को महाप्रयाण किया। 'निधान गिरि' के शिष्यों ने, जनसमुदाय ने, राजपरिवारों ने तरल नयनों से अपने लोकप्रिय जननायक परम भागवतीक, परम सारस्वतीक, महानतम कवि एवं

भक्ति-आचार्य को अन्तिम विदाई दी। उनकी समाधि स्थली अब भी बेतवा के ऐरच ऐतिहासिक भूमि में राजकीय बस स्टैण्ड के पास एक कच्चे चबूतरे (१० गुणे १२ के आकार में) में अवशेष है। सम्प्रति यह समाधि असुरक्षित दशा में पड़ी हुयी है। उसके चारों ओर मकान बने हुए है। बीच बाजार में एक १२ गुणे १२ के आकार का चबूतरा भी अवशेष है, जिसे कवि की बैठक के नाम से जाना जाता है, जिसपर बैठकर कविवर्य नगर निवासियों को भक्ति रस का संदेश प्रदान करते रहे हैं। उसकी भी सुरक्षा शासन और समाज का दायित्व होना चाहिए।

संदर्भ-संकेत

१ अ- बुन्देलखंड का इतिहास, दीवान प्रतिपाल सिंह, ४४८

ब- कानपुर का इतिहास डा० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी।

२ भक्तिमनोहर, च. शो. सं. प्रति, निधानगिरि, पृ. २

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ. १२२

४ भक्ति मनोहर, च. शो. सं. प्रति, निधानगिरि, पृ. ५१

५ -११, तदुपरिवत्, पृ. १, ५४, ५, ११३, ११३, ५६, ५

१२ शोध सर्वेक्षण, एरच, मोठ की शोधयात्रा विवरण, २००५

१३ एरच, डॉ. ओ.पी. एल. श्रीवास्तव, पृ. ४५

१४ तदुपरिवत्, पृ. ४८

१५ तदुपरिवत्, पृ. ४८

१६ हिम्मत बहादुर विरुदावली, पद्माकर, ना.प्र. सभा वराणसी सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रथम संस्करण, २०१६ वि. पृ. १५

१७ बुन्देलखंड का इतिहास, प्रथम चरण, दीवान प्रतिपाल सिंह, पृ. ५७

१८ अ- कानपुर का इतिहास, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी पृ. ४४७

ब- बुन्देल खण्ड की तवारी मुन्शी श्याम लाल पृ. ८५

स- शिवसिंह सरोज, सं. ठाकुर शिवसिंह सेंगर पृ. १२५

द- मस्तानी बाजीराव और उनके वंशज और बॉदा के नवाब, डा. भगवान दास माहौर पृ. ४८

१९ कानपुर का इतिहास, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी पृ. ४४५

२० भक्तिमनोहर, चं. शो. सं. प्रति, निधानगिरि, पृ. ५

२१ वैद्यक सिन्धु, हस्त०, मोठ प्रति, निधानगिरि, पृ. ४४५

२२ कानपुर का इतिहास, लक्ष्मीकांत त्रिपाठी, पृ. ४४०

२३ भक्ति मनोहर, चं. शो.सं. प्रति, निधानगिरि, पृ. ७२

24—39, तदुपरिवत्, पृ. 56, 5, 54, 54, 213, 33, 35, 43, 49, 196, 196, 196, 58, 59, 60, 61, 02, 02, 94, 36, 23, 02

४० वैद्यक सिंधु, हस्त० मोठ प्रति, निधानगिरि, पृ. ६२

४१ तदुपरिवत्, पृ. २५

४२ मोठ से 'भोलागिरि' कवि के वंशधर से प्राप्त निधानगिरि की शिष्य परम्परा की तालिका।

४३ भक्तिमनोहर, चं. शो. सं. प्रति, निधानगिरि, पृ. ५२

४४ -६६ तदुपरिवत्, पृ. ५२, ५२, ५२, ७८, ७६, ८०, ७०, ८२, ८३, १४५, ८६, ७०, ४४, २१८, २८, ३२, ११०, ११५, ४३, १५, २८, २२, ५१

६७ हिन्दी उपन्यास के सौ वर्ष, सं. रामदरश मिश्र, पृ. १५७

६८ भक्ति मनोहर, चं. शो,सं. प्रति, निधानगिरि, पृ. ३२

६९ तदुपरिवत्, पृ ३

द्वितीय परिवर्त्त

'भक्ति–मनोहर' महाकाव्य में कथावस्तु, पात्र एवं चरित्र चित्रण

वस्तु विभाग

कथा संयोजन

'भक्ति–मनोहर' की कथा

मौलिक परिवर्तन

चरित्र चित्रण

पात्र एवं चरित्र चित्रण

कृष्ण विषयक चरित्र

राम विषयक चरित्र

कृष्ण, राधा

संदर्भ-संकेत

द्वितीय परिवर्त्त
'भक्ति–मनोहर' महाकाव्य में कथावस्तु, पात्र एवं चरित्र चित्रण

वस्तु–विभाग

'निधान गिरि' कृत 'भक्ति मनोहर' प्रबन्ध-काव्य कुल 30 अध्यायों में विभक्त है। अध्यायों का नामाकरण एवं विभाग इस प्रकार है-

'निधानगिरि' कृत भक्तिमनोहर के प्रथम अध्याय 'भक्तिप्रकाश' के अन्तर्गत भक्ति निरूपण से सम्बन्धित भक्ति-परक विश्लेषण को लेकर ग्रन्थ की पृष्ठभूमि तैयार की है। प्रथम अध्याय में कवि ने मंगलाचरण, गुरू वन्दना, खलवन्दना, सन्तवन्दना, चौदह भुवन के प्राणियों की वन्दना, कवि वन्द्ना, ऋषियों तथा महर्षियों की वन्दना, जिसके अन्तर्गत भगवान के अशांशांवतार महर्षि कश्यप के पिता मरीचि, तेजस्वी महर्षि, अंगिरा, सती अनसूया के पति अत्रि, मारीचि, पुलत्स्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ट, गर्ग, गौतम, गालव, कौशिक, सतानन्द, जावाल्य, सौनकादि आदि का स्मरण करते हुए पितर पद (माता एवं पिता) के अतिरिक्त मारूत सुत, सरस्वती आदि की वन्दानाएँ की है। नाम वन्दना, नाम महिमा, ग्रन्थ प्रयोजन का उल्लेख करते हुए समथर स्टेट के महाराजा चतुरसिंह के आमत्रण एवं अनुरोध पर हरि चरित्र एवं हरि के अवतारों की कथा को नवीन रूप में प्रस्तुत करने का उल्लेख किया है। कवि ने प्रथम अध्याय में भक्ति का निरूपण किया है जिसके अन्तर्गत भागवत पुराण, विष्णु पुराण, लिंग पुराण, तन्त्रशास्त्र, सनतकुमार संहिता, गीता, नारद, पांचरात्र आदि का सन्दर्भ देते हुए गीता की त्रिविध भक्तियों, भागवत की नवधा भक्तियों, हरि पूजा की षोडस विधियों तथा प्रेमा भक्ति का विवेचन एवं नवधा भक्ति की भूमिकाओं का उल्लेख किया गया है। इसी अध्याय में निर्गुण और सगुण का विवेचन, प्रेम की द्वादस दशाओं का विवेचन, ग्रन्थ का नामकरण तथा उसके चतुर प्रकाश, भक्ति प्रकाश, ज्ञान प्रकाश, कर्म प्रकाश एवं दुर्ग प्रकाश का उल्लेख किया गया है। इन चारों विभागों का आधार वैदिक साहित्य है। ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद की भांति कवि ने प्रकाशों की व्यवस्था की है। कवि ने उपनिषदों के भक्ति काण्ड की भांति भक्ति प्रकाश, उपनिषदों के ज्ञान काण्ड की भांति ज्ञान प्रकाश तथा उपनिषदों के कर्मकाण्ड की भांति कर्मप्रकाश का नामकरण किया है। उपनिषदों से भिन्न एक चौथा प्रकाश 'दुर्गप्रकाश' है जिसके अन्तर्गत राज्य धर्म, राज्य, कर्म, दुर्गो की संरचना तथा राजनैतिक चिन्तन का समावेश किया गया है। 'भक्तिमनोहर' काव्य में कवि ने प्रथम अध्याय में सती प्रसंग, शिव विवाह आदि प्रसंगो को नहीं लिया और सीधे कथा वस्तु को तीव्रता के साथ बढ़ने

का अवसर प्रदान करने के लिए भक्ति की भाव पूर्ण स्थितियों तथा उसके स्वरूप आदि का विश्लेषण करके महाकाव्य की आगामी कथावस्तु का पृष्ठाधार प्रस्तुत किया है।

'भक्तिमनोहर' महाकाव्य के द्वितीय अध्याय में मीन और कमठ लीला का वर्णन किया है। संक्षिप्तता को दृष्टि में रखते हुए महाकवि निधानगिरि ने दो अवतारों की कथा को एक ही अध्याय में समाविष्ट किया है। कथा का सांराश इस प्रकार है कवि ने महाराज समथर नरेश चतुर सिंह को सम्बोधित करते हुए कथा का प्रारम्भ किया है-

"महाराज हरि भक्ति हित मीन कमठ तन धार।
कहहु परम इतिहास सो सुनहु सुजन परिवार।।"[1]

कवि ने मीन अवतार के दो प्रयोजनों का उल्लेख किया है। प्रथम प्रयोजन यह है कि ब्रह्म के मुख से निकले हुए वेदों को हयग्रीव नामक दानव ने हरण कर समुद्र में छिप गया था, इस प्रकार कर्म साधना क्रो समाप्त करना चाहता था। वेद मंत्रों के रक्षार्थ मत्स्य रूप का अवतरण हुआ, मत्स्य अवतार का दूसरा प्रयोजन बताते हुए कवि निधानगिरि ने यह बताया है कि सत्यव्रतसील वैवस्वत मनु कृतमाला नदी के जल में पितरों का तर्पण कर रहे थे। उनकी अंजली में लघु आकार की मछली आयी, जो पुनः बढ़ती गई। राजा ने उसे जल में छोड़ दिया। मछली ने रक्षा करने हेतु निवेदन किया कि महाराज मुझे जल में न फेंको, वहाँ मुझे सजातीय जीव कष्ट देते हैं। राजा में करुणा जगी, उसने उसे एक बड़े कलश के जल में डाल दिया। कमण्डल छोटा पड़ गया। मछली ने कहा महिपाल मुझे स्थान दीजिए, तब राजा ने उसे ताल में डलवाया, पुनः उसे सागर में डाला गया। मछली का आकार सौ योजन का हो गया। मनु अधीर हो उठे, उन्होंने हाथ जोड़कर मुनीश्वर से कहा, हे प्रभू यह मत्स्य मुझे जगदीश जान पड़ते हैं। मत्स्य ने कहा सात दिन में समुद्र जगत को डुबा देगा। वद्रिकाश्रम में जाओ, मंत्री सेना सहित मैं तुम्हारे लिए वोहित (नौका) भेजूँगा। सप्तर्षि के साथ उस पर बैठ कर सकल औषधियों को रख लेना और जब नाव डगमगाने लगे तब मैं एक सर्प भेजूँगा। तुम उसे सींग से बांध देना, यह कहकर मत्स्य अन्तर्धान हो गया। मनु बद्रिकाश्रम गये, उत्तर मुख कर कुशासन में बैठ मत्स्य रूप का ध्यान किया। सातवें दिन मुसलाधार जल वृष्टि हुई। उस प्रलय में मनु की नौका डूबने लगी। दो लक्ष्य योजन का आकार बनाकर मीन अवतार ने मनु की रक्षा की और हयग्रीव दानव का वध करके भगवान के वेद मन्त्रों की रक्षा की।

कवि 'निधान गिरि' ने मत्स्यावतार की कथा का आधार मत्स्य पुराण को बताया है। कवि के शब्दों में-

"अधिक विनय कीनी नृपति तव प्रभु ज्ञान प्रकास।
मत्स्य पुरान वषान अति साष विविध इतिहास।।"[2]

इसी अध्याय में कवि ने कूर्म अवतार का वर्णन करते हुए कहा है-

"कमठ रूप जेहिं विध धरिव करुनासिन्ध मुरारि।
सो प्रसंग बरनन करहु सुमिर उमा त्रिपुरारि।।"

कूर्म अवतार की कथा का सांराश इस प्रकार है। देवासुर संग्राम के समय सागर का मंथन हुआ। कमठ ने लक्ष्य योजन का शरीर बनाया। वासुकी सर्प की नेती (रस्सी) मन्दराचल की माथनी बनाई गई। सम्पूर्ण औषधियों को समुद्र में डाला गया। सागर मंथन आधारहीन होने पर मन्दराचल डूबने लगा। भगवान विष्णु ने कूर्म रूप में मन्दराचल को अपनी पीठ पर रख लिया। समुद्र मंथन से निकले हुए विष को भगवान शंकर ने कण्ठ में धारण कर नीलकण्ठ कहलाये। समुद्र से वारुणी, पारिजात वृक्ष, कौस्तुभ मणि, गौवें, तथा दिव्य अप्सरायें प्रकट हुई, फिर भगवती लक्ष्मी का प्रार्दुभाव हुआ। वह भगवान विष्णु को प्राप्त हुई। विष्णु के अशंभूत धन्वन्तरि, जो आयुर्वेद के प्रवर्तक है, हाथ में अमृत से भरा हुआ कलश लेकर प्रकट हुए। दैत्यों ने उनके हाथ से अमृत छीन लिया और उसमें से आधा भाग देवताओं को देकर वे चले गये। राहु ने चन्द्रमा का रूप धारण कर छल से अमृत का पान किया। सूर्य ने चन्द्रमा के छल को प्रकट किया। हरि ने चक्र से राहु का मस्तक अलग कर दिया। कच्छप रसातल चले गये और धरती अब तक उन्हीं की पीठ पर रखी है। कवि 'निधान गिरि' ने इस कथा को कमठ पुराण के आधार पर रचा है-

"गुन अंनत भगवन्त प्रभु लीला अमित प्रभाव।
कमठ पुरान बषान अति संक्षेपक मैं गाव।।"[3]

'भक्तिमनोहर' में तृतीय अध्याय की कथा वस्तु वाराह अवतार एवं ध्रुव के तप से सम्बन्धित है। कवि के शब्दों में-

"कहहु चरित वाराह प्रभु सुनहु उमा चित लाइ।
सुर संकट दारुन दमन सादर विरह बड़ाइ।।"[4]

कथा के अनुसार सनकादिक मुनि विष्णु लोक जा रहे थे। द्वारपाल जयविजय ने उन्हें रोक दिया। मुनि ने उन्हें तीन जन्मों तक असुर होने का श्राप दे दिया। हिरण्यकश्यप हिरण्याक्ष राक्षस देवों को जीत कर स्वर्ग पहुँचा। देवताओं ने विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु ने वाराह रूप धर कर हिरण्याक्ष को मारा।

पुराणों में वर्णित ध्रुव की प्रख्यात कथा को कवि निधानगिरि ने ध्रुव लीला के अन्तर्गत वर्णित किया है। राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थी- सुरुचि और सुनीत। सुरुचि पटरानी थी। सुरुचि के पुत्र ध्रुव को राजा ने अपनी गोद में बैठने से मना कर दिया। इस पर उसकी माँ ने ध्रुव को ईश्वर भक्ति की तरफ उन्मुख कर दिया। कवि के शब्दों में-

"जो चहहु उत्तम वास प्यारे वासदेवह ध्याइये।
जिनकी कृपा विध जपत रच परमेष्टी पद पाइये।
दूष दूर करन न दूसरो जग ताह तोह बताबहूँ।।"[5]

चतुर्थ अध्याय में 'निधान गिरि' ने नृसिंह एवं हिरण्यकश्यप वध की कथा का वर्णन किया है। हिरण्याक्ष के एक भाई था, जो हिरण्यकश्यप के नाम से प्रसिद्ध था। उसने देवताओं के यज्ञ भाग अपने आधीन कर लिय और उन सबके अधिकार छीनकर वह स्वयं ही उनका उपभोग करने लगा। भगवान ने नृसिंह रूप धारण करके उसके सहायक असुरों सहित उस दैत्य का वध किया, तत्पश्चात सम्पूर्ण देवताओं को अपने-अपने पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। उस समय देवताओं ने नृसिंह का स्तवन किया।

'भक्तिमनोहर' का पंचम अध्याय 'वामन अवतार लीला' से सम्बन्धित है। इस अवतार की कथा का शुभारम्भ करते हुए 'निधान गिरि' कहते हैं-

''श्री वामन अवतार लिय देष विकल सुर ईस।
सादर मै तुमसो कहत सो सम्वाद मुनीस।।
इक अवसर मै इन्द्र पद दैत्यन नै लै छीन।
सुनत सोच अदिती करो बैठ विकल जनु दीन।।''[6]

जिसका सांराश इस प्रकार है-पूर्वकाल में देवता और असुरों में युद्ध हुआ। उसमें बलि आदि दैत्यों ने देवताओं को परास्त करके उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया। तब वे हरि की शरण में गये। भगवान ने उन्हें अभयदान दिया और कश्यप तथा अदिति की स्तुति से प्रसन्न हो, वे अदिति के गर्भ से वामन रूप में प्रकट हुए। उस समय दैत्यराज बलि गंगाउद्वार में यज्ञ कर रहे थे। भगवान उनके यज्ञ में गए और वहाँ यजमान की स्तुति का गान करने लगे। वामन के मुख से वेदों का पाठ सुनकर राजा बलि उन्हें वर देने को उद्यत हो गए। शुक्राचार्य के मना करने पर भी बोले-ब्राह्मन आपकी जो इच्छा हो, मुझसे माँगें, मै वह वस्तु आपको दूंगा। वामन ने बलि से कहा-मुझे अपने गुरू के लिए तीन पग भूमि की आवश्यकता है, वही दीजिए। बलि ने कहा अवश्य दूंगा। तब संकल्प का जल हाथ में पड़ते ही भगवान वामन अन्तर्ध्यान हो गये। उन्होंने विराट रूप धारण कर लिया और भूलोक, भुवर्लोक एवं स्वर्गलोक को अपने तीन पगों से नाप लिया। श्री हरि ने बलि को सुतललोक में भेज दिया और त्रिलोकी का राज्य इन्द्र को दे डाला। इन्द्र ने देवताओं के साथ श्रीहरि का स्तवन किया।

'निधान गिरि' कृत 'भक्तिमनोहर' के षष्ठ अध्याय में परशुराम की कथा का वर्णन है, जो इस प्रकार है-देवता और ब्राह्मण आदि का पालन करने वाले श्रीहरि ने जब देखा कि भूमण्डल के क्षत्रिय उद्धत स्वभाव के हो गये हैं, तो वे उन्हें मारकर पृथ्वी का भार उतारने और सर्वत्र शान्ति स्थापित करने के लिए जमदग्नि के अंश द्वारा रेणुका के गर्भ से अवर्तीण हुए। भृगुनन्दन परशुराम शस्त्र-विद्या के परांगत विद्वान थे। उन दिनों कृतवीर्य का पुत्र राजा अर्जुन भगवान दत्तात्रेय जी की कृपा से हजार बाँहे पाकर समस्त भूमण्डल पर राज्य करता था। एक दिन वह वन में शिकार खेलने के लिए गया। वहाँ वह बहुत थक गया उस समय जमदग्नि मुनि ने उसे सेना सहित अपने आश्रम पर निमन्त्रित किया और कामधेनु के प्रभाव से सबको भोजन कराया। राजा ने मुनि से कामधेनु को अपने

लिए माँगा, किन्तु उन्होंने देने से इंकार कर दिया। तब उसने बलपूर्वक उस धेनु को छीन लिया। यह समाचार पाकर परशुराम जी हैहयपुरी में जा उसके साथ युद्ध किया और अपने फरसे से उसका मस्तक काट कर रणभूमि में उसे मार गिराया। फिर वे कामधेनु को साथ लेकर अपने आश्रम पर लौट आये। एक दिन परशुराम जी जब वन में गये हुए थे; कृतवीर्य के पुत्रों ने आकर अपने पिता के वैर का बदला लेने के लिए जमदग्नि मुनि को मार डाला। जब परशुराम जी लौट कर आये तो पिता को मारा गया देखकर उनके मन में बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने इक्कीस बार समस्त भूमण्डल के क्षत्रियों का संहार कियाफिर कुरूक्षेत्र में पांच कुण्ड बनाकर वहीं उन्होंने अपने पितरों का तर्पण किया और सारी पृथ्वी कश्यप मुनि को दान देकर वे महेन्द्र पर्वत पर रहने लगे। `कवि 'निधान गिरि' के शब्दों में–

(अ) ''परशुराम अवतार प्रभु चरित विसम जस कीन
कहत सकल अनुहार मति सुनहु महीस प्रवीन।।''[7]

(ब) ''पुन पित सिर वर लीन कर आए मातु समीप।
धर कवन्ध सिर बीच मष किय सजीव मुनि दीप।
पुरन मष कर परस धर धरनि दुजन कौ दीन।
अस विध बार इकैस कर बिन छत्रिय महि कीन।
पित पूजन कर परस धर नाइ कमल पद सीस।
तप हित गए महेन्द्र गिरि बैठे प्रभु जगदीश।।''[8]

इस प्रकार 'निधानगिरि' ने भागवत् महापुराण की दशावतार की कथाओं को संक्षिप्त रूप में वर्णित किया है। प्रथम में भक्ति विवेचन द्वितीय में मीन कमठ की कथा तृतीय में वाराह और ध्रुव, चतुर्थ में नृसिंह अवतार हिरण्यकश्यप वध की कथा प्रहलाद चरित्र पंचम में वामन अवतार, षष्ठ में परशुराम अवतार वर्णित है। अगले दो अवतार क्रमश: सूर्यवंश और चन्द्रवंश से सम्बन्धित हैं। सातवें अध्याय में कवि ने सूर्यवंश की व्युत्पत्ति देकर आगामी कथा रामाअवतार का शुभारम्भ किया है। इसमें अम्बरीष भक्ति की भी कथा है। ये कथा इसलिए दी गई है कि राजा अम्बरीष विष्णु के अटल भक्त थे। वे एकादशी व्रत का परायण कर रहे थे, तभी दुर्वासा वहाँ पहुँचे तो राजा ने कहा आप भोजन ग्रहण करें परन्तु दुर्वासा स्नान करने चले गये, उसी समय पारण की समय सीमा का अन्त होने जा रहा था, तब राजा ने पण्डितों से कहा आप चरणामृत का पान कर लें तो आपका पारण हो जायेगा। संयोग से उसी समय दुर्वासा आए और राजा को चरणामृत पान करते हुए देखा तो ऋषि ने कोपाविष्ट होकर अपनी जटाओं को पटकर एक राक्षसी उत्पन्न कर दी जो अम्बरीष की ओर दौड़ी, उसी क्षण भगवान विष्णु का चक्र चल गया और वह दुर्वासा का पीछा करने लगा। दुर्वासा ने ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और अन्य देवताओं से प्राण रक्षा की गुहार लगायी। ऋषि अन्त में विष्णु के पास गये। विष्णु ने ऋषि को अम्बरीष की शरण में जाने को कहा। दुर्वासा को अम्बरीष तक पहुँचने में वर्ष पर्यन्त लग गया और अम्बरीष एक वर्ष तक पूर्ववत् खड़े रहे। दुर्वासा के पहुँचने

पर अम्बरीष ने स्वागत किया और वही भोज्य दिया जो एक वर्ष पूर्व बना था। चक्र शान्त हो गया। अम्बरीष ने दुर्वासा का अपराध क्षमा कर दिया। ये कथा भी भागवत् महापुराण से ली गई है, जिसका उद्देश्य विष्णु भक्ति का महत्व प्रतिपादित करना है। इसी अध्याय में शिवभक्त कवि ने विष्णु भक्ति के साथ भगवान शिव के चरित्र और गंगावतरण की कथा को जोड़ दिया है-

> ''सूरज कुल उत्पत्ति सहित वरनत सुनहु महीस।
> जेहि विध प्रगटे प्रनत हित राम चराचर ईस।।''[9]

भगवान विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्माजी जी के पुत्र मरीचि, मरीचि से कश्यप, कश्यप से सूर्य और सूर्य से वैवस्वतमनु का जन्म हुआ। उसके बाद वैवस्वतमनु से इक्ष्वाकु की उत्पत्ति हुई। इक्ष्वाकु के वंश में ककुत्स्थ नामक राजा हुए। ककुत्स्थ के रघु, रघु के अज और अज के दशरथ हुए और दश्यरथ से राम उत्पन्न हुए।

'भक्तिमनोहर' का अष्टम अध्याय 'राम बाल लीला; से सम्बन्धित है। बाल लीलाओं का वर्णन अत्यन्त विस्तार से कवि ने किया है। बाल लीलाओं को बालराश की संज्ञा कवि ने दी है। कवि ने पुत्रेष्टियज्ञ, रानियों के गर्भवती होने का वर्णन संक्षिप्त रूप में किया है, किन्तु बाल लीलाओं का विस्तार राम के शैशव, पौगण्ड और किशोर अवस्थाओं का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है। वात्सल्य रस की दृष्टि से इतना विस्तार राम जन्म के प्रकरण में अन्य किसी कवि ने नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि महर्षि वाल्मीकि की रामायण, सूर के वाल्यवर्णन, तुलसी की कवितावली, महाराज रघुराज सिंह के राम स्वयंवर आदि ग्रन्थों से प्रभावित होकर कवि ने बाल्यलीलाओं का विस्तार किया है। रसिकोपासना तथा सखिभावना से प्रभावित होने के कारण माधुर्य भक्ति के विकास के लिए कवि ने बाल लीला को बाल्यरास के रूप में चित्रित करके अपनी सरस भक्ति का परिचय दिया है। राम जन्म के प्रसंग में कवि ने राम के जन्म नक्षत्रों का भी उल्लेख किया है। कवि निधानगिरि के शब्दों में-

> ''नवमी तिथि मधुमास दिन मध्य पक्ष सित जान।
> कौसल्या के प्रेम बस प्रगट भए भगवान।
> कर्क लगन पुन नखत पुनरबस।उच्च पंच ग्रह मेष अर्क बस।
> अभिजित मंगलवार जनायो। मंगल मोद समिट जनु आयो।''[10]

प्रस्तुत अध्याय कथा विकास क्रम की दृष्टि से भले एक पल के लिए स्थिर हो गयी हो, किन्तु वात्सल्य की जैसी मनोवैज्ञानिक, रसात्मक एवं लोकजीवन की रास अभिव्यंजनाएं हुई हैं, उनसे महाकवि की बाल्यभक्ति साधना का भी परिचय मिलने लगता है। पालने में झूलते हुए राम, आंगन में प्रतिबिम्ब पकड़ते हुए राम, पालने में लेटे हुए परस्पर शिशुओं का लड़ना, तोतरे वयन बोलना, अगूँठा पकड़ कर मुहँ में चूसना आदि न जाने कितने रसात्मक भाव चित्रों से इस सर्ग की रचना की गयी है। ठुमुक-ठुमुक कर चलने, रूठने, गिरने, उठने और भागने के मनोहरी चित्र कथा में रस को घोलने लगते

है। इसी अध्याय में राम के अंग प्रत्यंग के श्रृंगार और उनकी मनोहारी छवियाँ हृदय को मुग्ध करती हैं, कहीं संगीतोत्सव है, तो कहीं वसन्तोत्सव, वाद्य यन्त्रों की धमार, काम ओर रति का मानवीय वेश में अयोध्या राम दर्शन के लिए पहुँचना तथा भगवान शिव का ज्योतिषी के रूप में काकभुशुन्डि के साथ पहुँच कर राम की छवि का अमृत पान करने का उल्लेख कथावस्तु को रम्या-रामायणी कथा का गौरव प्रदान करते हैं तथा वात्सल्य के क्षेत्र में 'निधानगिरि' सूर के प्रतिस्पर्धी सिद्ध होने लगते हैं।

नवें अध्याय में 'निधान गिरि' ने जिस कथा का सूत्रपात किया है, उसमें विश्वामित्र अपने यज्ञ के रक्षार्थ राजा दशरथ के पास आए। दोनों भाइयों को लेकर यज्ञ की रक्षा की, अहिल्या का उद्धार किया। जनक जी के आग्रह पर मुनि सहित रंगभूमि में प्रवेश तक की घटना को इस अध्याय में लिया गया है। एक बार महामुनि विश्वामित्र जी आये और अपने यज्ञ की रक्षा के लिए श्रीराम और लक्ष्मण को उनके पिता से माँगकर तपोवन में ले आये। वहाँ महाबाहु श्रीराम ने भंयकर राक्षसी ताड़का वध करके मुनि को सन्तुष्ट किया और उनसे दिव्य अस्त्र प्राप्त किये। मुनिवर फिर घने जंगल में जाकर यज्ञ में विघ्न करने वाले सुबाहु नामक राक्षस को उन महाबली ने एक बाण से भस्म कर दिया। मारीच नामक राक्षस को भगवान राम ने समुद्र में फेंक दिया तब मुनिवर विश्वामित्र के साथ रघुनन्दन राम मिथिला नरेश नगरी को गये और मार्ग में ब्रह्मा की पुत्री अहल्या का शीघ्र ही उद्धार किया।

दसवें अध्याय में 'निधानगिरि' ने शिव पिनाक खंडन, राम जानकी विवाह पशुराम गर्व भंग, अवधपुरी में अवधेश पुत्र वधुओं सहित प्रवेश आदि का उल्लेख किया है। जनकपुरी में जाकर महाबली श्रीराम ने भगवान शिव का अत्यन्त कठोर धनुष तोड़ा। तब राजा जनक संतुष्ट हुए और उन्होंने वयोवृद्ध राजा दशरथ को पुत्रों सहित अपने नगर में सम्मान पूर्वक बुलाया तथा महान उत्साह सहित उनके चारों पुत्रों को अपनी चार कन्याएँ समर्पित कर दी। उन्होंने श्रीराम को सीता, लक्ष्मण को उर्मिला, भरत को माण्डवी, और शत्रुघन को श्रुतकीर्ति नाम की सुमुखी कन्याएँ प्रदान की। उनमें सीता यज्ञभूमि के शोधन में प्राप्त हुई थी, उर्मिला उनकी आरेख पुत्री थी, अन्य दो माण्डवी तथा श्रुतिकीर्ति उनके भाई की कन्याएँ थी। विवाहोपरान्त अपनी पत्नियों सहित चारों भाई अपने पिता दशरथ जी के साथ शीघ्र ही अयोध्या नगरी की ओर चले। मार्ग में उन्हें बलाभिमानी भृगुपुत्र परशुराम मिले और महाबली श्रीराम ने उनका अभिमान चूर-चूर कर दिया।

'भक्तिमनोहर' के ग्यारहवें अध्याय में श्रीराम जानकी के अवधपुरी त्याग, चित्रकूट वास और विहार वर्णन की कथा को लिया गया है, जो इस प्रकार है-

राजा दशरथ सत्य के बन्धन में बँधे थे। उन्होंने राम को बुलाकर कहा-बेटा कैकयी ने मुझे ठग लिया। तुम मुझे कैद करके अपने राज्य को अपने अधिकार में कर लो। अन्यथा तुम्हें वन में निवास करना होगा। श्री राम ने पिता और कैकयी को प्रणाम करके उनकी प्रर्दक्षिणा की और कौसल्या के चरणों में मस्तक झुकाकर उन्हें सान्त्वना दी। फिर

लक्ष्मण और पत्नी सीता को साथ ले ब्राह्मणों, दीनों तथा अनाथों को दान देकर सुमन्त्र सहित रथ पर बैठकर नगर से बाहर निकले। उस समय माता-पिता शोक से आतुर हो रहे थे। उस रात श्री राम ने तमसा नदी के तट पर विश्राम किया। उनके साथ बहुत से पुरवासी भी गए थे। उन सब को सोते छोड़ वे आगे बढ़ गये। श्री राम जी के चले जाने से राजा दशरथ बहुत दुखी हुए। श्री राम ने चीर वस्त्र धारण कर रखा था। वे रथ पर बैठे-बैठे श्रृङ्ग.वेरपुर जा पहुँचे, वहाँ निषादराज गुह ने उनका पूजन, स्वागत-सत्कार किया। श्री राम ने इसके पश्चात सुमन्त्र को रथ सहित विदा कर दिया तथा स्वयं लक्ष्मण और सीता सहित नाव से गंगा पार हो वे प्रयाग में गये। वहाँ उन्होंने महर्षि भरद्वाज को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले वहाँ से चित्रकूट पर्वत को प्रस्थान किया, (पर्णकुटी बनायी) मन्दाकिनी के तट पर निवास किया। रघुनाथ जी ने सीता को चित्रकूट पर्वत का रमणीय दृश्य दिखाया।

'निधानगिरि' कृत 'भक्तिमनोहर' के बारहवें अध्याय में भरत का भक्ति भाव, चित्रकूट आगमन, अयोध्या प्रवेश, पीठ सिंहासन स्थापना और नन्दि ग्राम नेम व्रत आदि का वर्णन किया है। भरत श्रीराम को अयोध्या लाने के लिए वन में जाते हैं। वे दल बल सहित चल दिये और श्रृंगवेरपुर होते हुए प्रयाग पहुँचे। वहाँ महर्षि भरद्वाज ने उन सबको भोजन कराया। फिर भरद्वाज को नमस्कार करके वे प्रयाग से चले और चित्रकूट में श्रीराम एवं लक्ष्मण के समीप जा पहुँचे। वहाँ भरत ने श्रीराम से कहा-रघुनाथजी हमारे पिता महाराज दशरथ स्वर्गवासी हो गये। अब आप अयोध्या में चलकर राज्य ग्रहण करें। मैं आज्ञा का पालन करते हुए वन में जाऊँगा। यह सुनकर श्रीराम ने पिता का तर्पण किया और भरत से कहा 'तुम मेरी चरणपादुका लेकर अयोध्या लौट जाओ। मै राज्य करने के लिए नहीं चलूँगा। पिता के सत्य की रक्षा के लिये एवं जटा धारण करके वन में ही रहूँगा।' श्रीराम के ऐसा कहने पर सदल-बल भरत लौट गये और अयोध्या छोड़कर नन्दिग्राम में रहने लगे। वहाँ भगववान की चरणपादुकाओं की पूजा करते हुए वे राज्य का भली भांति पालन करने लगे।

'भक्तिमनोहर' के तेरहवें अध्याय में अगस्त आदि मुनि से मिलाप, पंचवटी निवास सूपनखा कुरूपीकरण, खरदूरण त्रिसरा संहार, मारीच वध, जानकी हरण, गीध राम सम्वाद आदि कथाओं का उल्लेख किया, जो इस प्रकार है। श्री राम जी ने महर्षि वसिष्ठ तथा माताओं को प्रणाम करके उन सबको भरत के साथ विदा कर दिया। तत्पश्चात महर्षि अत्रि तथा उनकी पत्नी अनसूया को शरभङ्ग.मुनि को, सुतीक्षण को तथा अगस्त्य जी के भ्राता ओनजिहव मुनि को प्रणाम करते हुए श्रीराम चन्द्र जी अगस्त्य मुनि के आश्रम पर जा उनके चरणों में मस्तक झुकाया और मुनि की कृपा से दिव्य धनुष एवं दिव्य खड़ग प्राप्त करके वे दण्डकारव्य में आये। वहाँ जनस्थान के भीतर पंचवटी नामक स्थान में गोदावरी के तट पर रहने लगे। वहाँ शूर्पणखा नाम की स्वेच्छा रूप धारण करने वाली राक्षसी काम के वशीभूत होकर श्रीराम को पति बनाने की इच्छा से उनके पास आयी। मुनिश्रेष्ठ भाई की आज्ञा से लक्ष्मण जी ने उसे दुष्टा राक्षसी जानकर उसके नाक और कान खड़ग से काट डाले। तब वह भयानक राक्षसी रोती हुई अपने भाई खर और दूषण के पास जाकर क्रोधपूर्वक कहने लगी-कि अयोध्या के राजा अपने भाई के साथ दण्डकारण्य

में आये हैं। उनकी पत्नी रूपवती है वैसी स्वर्ग, मृत्यलोक या पातालोक में कहीं देखी, सुनी नहीं जाती ये बातें सुनकर राक्षस खर और दूषण चौदह हजार राक्षसों के साथ उस जंगल में गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे। श्री राम ने अपनी बाण वृष्टि से उन सभी राक्षसों को मार डाला। शोकातुर शूर्पणखा ने लंका में जाकर रावण से सारा वृतान्त कह सुनाया। तदन्तर ताड़का के बेटे मारीच को सहायक बनाकर सीता के हरण की इच्छा से वह रावण उस वन में गया।

मारीच ने श्रीराम के द्वारा अपनी मृत्यु निश्चित जानकर माया से स्वर्णमृग का रूप बनाया और वह श्रीराम को अपने आश्रम से बहुत दूर ले गया। श्रीराम ने उस पर शरसंधान किया और उससें घायल होकर वह राक्षस पृथ्वी पर गिर पड़ा तथा हे लक्ष्मण ऐसा पुकारने लगा। जनक नन्दिनी सीता ने उस आवाज को श्रीराम की पुकार समझकर लक्ष्मण को तुरंत उसी ओर भेजा। इसी बीच उस दशानन रावण ने भी वहाँ आकर भगवती लक्ष्मी की अवतार जानकी का बलपूर्वक हरण कर लिया। यद्यपि वे उसी समय रावण को भस्म करने में समर्थ थीं परन्तु रावण उनकी देवी रूप में सदा उपासना करता था।

पक्षीराज जटायु ने राक्षस द्वारा हरण कर ले जायी जाती उन सीता को बचाने के लिए दुष्ट रावण के साथ युद्ध किया। मारीच को मारकर जब श्रीराम लक्ष्मण के साथ अपनी पर्णकुटी में आये तब उन्होंने वहाँ जानकी को नहीं देखा। अत: शोकाकुल होकर वन में भटकने लगे। वहाँ उन्होंने कटे पंख वाले पक्षिराज जटायु को देखकर यह अनुमान किया कि इसी ने सीता का अपहरण किया होगा-ऐसा सोंचकर उसे मारने की इच्छा से वे उसके पास गये। वहाँ जाने पर उन्हें पता चला कि जटायु उनके पिता दशरथ जी के मित्र हैं। जटायु श्रीराम को रावण के द्वारा सीताहरण की बात बताकर उनके देखते-देखते प्राण त्याग दिये।

'भक्तिमनोहर' के चौदहवें अध्याय में कबन्ध संहार, शबरी भक्ति, पंपासर वास, सुग्रीव मिलाप, बालिवध, सुग्रीव राजतिलक, सम्पाती प्रसंग, महावीर समुद्र लघंन, लंकिनी सपना, अशोक वाटिका उजाड़, अच्छकुमार विध्वंस आदि प्रसंगों को लिया है। जो निम्नवत् हैं। जटायु का दाह संस्कार कर उन्होंने कबन्ध का वध किया। कबन्ध ने शापमुक्त होकर श्रीराम चन्द्रजी से कहा आप सुग्रीव से मिलिये। रामचन्द्र जी पम्पासरोवर जाकर सीता के लिए शोक करने लगे, वहाँ वे शबरी से मिले। फिर हनुमान जी से उनकी भेंट हुई। हनुमान जी उन्हें सुग्रीव के पास ले गये और सुग्रीव के साथ उनकी मित्रता करायी। इसके बाद सुग्रीव के शत्रु वाली को जो भाई होते हुए भी उनके साथ वैर रखता था उसको मार डाला और किष्किन्धापुरी वानरों का साम्राज्य रूमा एवं तारा इन सबको ऋष्यमूक पर्वत पर वनराज सुग्रीव के अधीन कर दिया। इसके पश्चात सुग्रीव ने सब वानरों को बुलाकर सीता की खोज करने के लिए उन्हें भेज दिया। सम्पाती ने कहा कि जटायु मेरा भाई था। वह मेरे ही साथ सूर्य मण्डल की ओर उड़ा चला जा रहा था। मैंने अपनी पंखों की ओट में रखकर सूर्य की प्रखर किरणों के ताप से उसे बचाया। किन्तु मेरे पंख जल गये। आज श्रीराम की वार्ता सुनने से मेरे पंख फिर से निकल आये। अब मैं जानकी

की खोज करता हूँ उन्होंने कहा सीता इस समय लंका में है। सम्पाती की बात सुनकर हनुमान और अंगद आदि वानरों ने समुद्र की ओर देखा वानरों की रक्षा और श्रीराम के कार्य सिद्धि के लिए पवनकुमार सौ योजन विस्तृत समुद्र को लाँघ गये। तद्न्तर हनुमान रावण से मिलने की युक्ति सोचकर, अशोक वाटिका के राक्षसों को मार कर, उस वाटिका को उजाड़ डाला। फिर दाँत और नख आदि आयुधों से वहाँ आये हुए रावण के समस्त सेवकों को मारकर सात मन्त्रियों तथा रावण पुत्र अक्षयकुमार को भी यमलोक पहुँचा दिया।

'भक्तिमनोहर' के पन्द्रहवें अध्याय में महावीर लंकापुरी दहन, जानकी शोच दमन, रामचरणादिक वंद, सिया सोध वर्णन, राम सैन्य सहित सागर तीर आगमन, आदि का प्रसंग इस प्रकार है-राक्षसराज रावण ने हनुमान जी का अंग भंग करने के लिए उनकी पूँछ में कपड़े लपेटकर आग लगा दी। हनुमान जी ने उसी आग से लंका को जला डाला।

'भक्तिमनोहर' के सोहलवें अध्याय में शरणागत पालन, समुद्र सेतु बन्धन, सुवेलाचल निवास आदि का उल्लेख इस प्रकार किया गया है-श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण को अपना मित्र बनायाऔर लंका के राज पद पर अभिषक्त कर दिया। इसके बाद श्रीरामचन्द्र जी ने समुद्र से लंका जाने के लिए रास्ता माँगा। जब उसने मार्ग नहीं दिया तो उन्होंने बाणों से उसे बीध डाला। अब समुद्र भयभीत होकर श्रीरामचन्द्र जी के पास आकर बोला-भगवन जल द्वारा मेरे ऊपर पुल बाँधकर आप लंका में जाइये। पूर्वकाल में आप ही ने मुझे गहरा बनाया था, यह सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने जल के द्वारा वृक्ष और शिलालेखों से एक पुल बँधवाया और उसी से वे वानरों सहित समुद्र के पार गये। वहाँ सुवेल पर्वत पर पड़ाव डालकर वहीं से उन्होंने लंकापुरी का निरीक्षण किया।

'भक्तिमनोहर' के सत्रहवें अध्याय में शुक दशमुख संवाद, अंगद लंकापति सभामद मथना आदि का उल्लेख इस प्रकार किया गया है-श्री राम के आदेश से अंगद रावण के पास गये और बोले रावण तुम जनक कुमारी सीता को ले जाकर शीघ्र ही श्रीरामचन्द्र जी को सौंप दो। अन्यथा मारे जाओगे। यह सुनकर रावण उन्हें मारने को तैयार हो गया। अंगद राक्षसों को मारपीट कर लौट आये।

'भक्तिमनोहर' के अठारहवें अध्याय में कवि ने मेघनाद रावण पराजय एवं कुंभकरण संहार की कथा का उल्लेख इस प्रकार किया है-मेघनाद रात्रि में ही युद्ध के लिए आकर अदृश्यरूप से आकाश में स्थित हो गया। उसने भंयकर नागपाश से सभी वानर-शत्रुओं के साथ श्रीराम लक्ष्मण को बाँध लिया। राक्षसराज रावण के समान बलशाली उस वीर मेघनाद ने अपनी माया से सबको मोहित कर दिया। तब गरुण ने आकर उस भंयकर नागपाश को खाकर सैनिकों सहित राम लक्ष्मण को बन्धन से मुक्त कर दिया। तद्नन्तर प्रातः काल उस प्रसंग को सुनकर रावण स्वयं युद्धभूमि में आया और सभी लोकों को भयभीत करने वाला तुमुल युद्ध करने लगा। सूर्य और चन्द्र के समान तेजस्वी दोनों भाइयों ने युद्ध में हँसते हुए अपना धनुष उठाकर तेजी से यमदण्ड के समान वाणों को चलाकर युद्धोन्मत्त रावण को ढक दिया। कुंभकर्ण ने समस्त वानरों को कुचलना आरम्भ

किया। यह देख श्रीराम ने बाणों से कुंभकर्ण की दोनों भुजाएँ काट डाली। इसके बाद उसके दोनों पैर तथा मस्तक काट कर उसे पृथ्वी पर गिरा दिया।

'भक्तिमनोहर' के उनीसवें अध्याय में मेघनाद संहार का वर्णन किया गया है। मेघनाद ने माया से शुद्ध करते हुए वरदान में प्राप्त नागपाश द्वारा श्रीराम और लक्ष्मण को बाँध लिया। उस समय हनुमान जी के द्वारा लाये हुए पर्वत पर उगी हुयी विशल्या नामक औषधि से श्रीराम और लक्ष्मण के घाव अच्छे हुए। लक्ष्मण अपने बाणों से इन्द्र को भी परास्त कर देने वाले उस वीर को युद्ध में मार गिराया।

'भक्तिमनोहर' के बीसवें अध्याय में रावण कुल सहित संहार, श्री सीता राम अवधगमन की कथा इस प्रकार है-श्रीराम और रावण का युद्ध श्रीराम और रावण के युद्ध के ही समान था-उसकी कहीं भी कोई भी उपमा नहीं थी। रावण वानरों पर प्रहार करता था और हनुमान आदि वानर रावण पर प्रहार करते थे। रामचन्द्र जी ने ब्रह्मास्त्र के द्वारा रावण का वक्षःस्थल विर्दीण करके उसे रणभूमि में गिरा दिया। उस समय राक्षसों के साथ रावण की अनाथा स्त्रियाँ विलाप करने लगीं। तब श्रीराम की आज्ञा से विभीषण ने उन सबको सान्त्वना दे, रावण के शव का दाह-संस्कार किया। तद्नन्तर श्रीराम ने हनुमान के द्वारा सीता जी को बुलवाया। यद्यपि वे स्वरूप से ही नित्य शुद्ध थीं तो भी उन्होंने अग्नि में प्रवेश करके अपनी विशद्धता का परिचय दिया। श्रीरामचन्द्र लंका का राज्य विभीषण को देकर सीता सहित पुष्पक विमान पर बैठकर श्रीराम जिस मार्ग से आये थे उसी मार्ग से लौट गये।

'भक्तिमनोहर' के इक्कीसवें अध्याय में राम राज्य तिलक एवं अवध निरूपण कथा का उल्लेख किया गया है-श्रीराम के अयोध्या के राजसिंहासन पर आसीन हो जाने पर अगस्त्य आदि महर्षि उनका दर्शन करने के लिए गये। वहाँ उनका भली भांति स्वागत सत्कार किया गया। बाइसवें अध्याय में राम राज्य, अवधविहार वर्णन, आश्रम धर्म आदि कथाओं का उल्लेख किया गया है।

'भक्तिमनोहर' के तेइसवें अध्याय में पुरूरवा-उर्वशी, भरत आदि की कथाओं को लिया गया है। राजा पुरुरवा काम के वर के समान सुंदर होने के कारण जब ये इन्द्र की सभा में पहुँचे तब उर्वशी इन पर मुग्ध हुई। राजा पुरुरवा की प्रशंसा उर्वशी नारद के द्वारा पहले ही सुन चुकी थी। इसलिए उर्वशी का मन पुरुरवा से मिलने के लिए आतुर हो उठा। और अपने साथ वे दो भेड़ लेकर आयी राजा पुरुरवा अति प्रसन्न हुए परन्तु उर्वशी ने यह शर्त रखी कि जब तक यह ये दोनों भेड़ रहेंगे तब तक मैं आपके साथ पृथ्वी पर रहूँगी दूसरी शर्त यह है कि रति दान के समय को छोड़कर यदि मैंने आपको नग्न अवस्था में देख लिया तब आपको त्याग दूँगी तथा तीसरी शर्त यह है कि मैं केवल धृत का ही भोजन करूँगी। भोजन में अन्य कोई वस्तु नहीं होगी। साथ ही साथ मेरी हर बात को मानना होगा। यदि इनमें से कोई बात अधूरी रह गई तो मै आपको त्याग दूँगी।

राजा पुरुरवा अत्यन्त सुन्दर होते हुए और विष्णु भक्त होने के कारण इन्होंने यज्ञ की दो अग्नियाँ उत्पन्न की, जो आज तक हर यज्ञ में प्रदर्शित होती हैं। राजा इन्द्र ने जब देखा कि उर्वशी बहुत दिनों से हमारी सभा में उपस्थित नहीं हुई तो अपने सेवकों को उर्वशी की खोज के लिए इन्द्र ने भेजा। रात्रि में जब पुरुरवा और उर्वशी रति क्रीड़ा में निमग्न थे, उसी समय इन्द्र के अनुचर दोनों भेड़ों को लेकर भाग चले जब उनकी आवाज उर्वशी को दूर से सुनाई दी तो राजा को धिक्कारते हुए कहा कि तुम नापुंसक हो, मेरी भेड़ों क,ी रक्षा नहीं कर सके। राजा पुरुरवा नग्नावस्था में ही भेड़ों को लौटाने के लिए दौड़े तब उर्वशी ने राजा को देख लिया और राजा का त्याग कर दिया। एक वर्ष पश्चात तक राजा प्रेम में डूबा हुआ चारों तरफ उर्वशी को ढूंढ़ता फिरा। एक वर्ष बाद उर्वशी पुरुरवा को कुरूक्षेत्र में मिली और कहा कि आपके वीर्य से मेरे एक पुत्र हुआ है जिसका मैं लालन पालन करती रहूँगी और वर्ष में एक दिन आपसे कुरूक्षेत्र में मिलूँगी। इस कथा से सिद्ध होता है कि 'निधानगिरि' ने पहले प्रेम कथा पुरुरवा और उर्वशी का वर्णन किया, इस प्रेम पंसग के बाद श्रीकृष्ण और गोपिकाओं के प्रेम पंसग का पल्लवन किया। इससे सिद्ध होता है कि 'निधानगिरि' प्रेम पुजारी थे। इसी चंदवंशानुक्रम में राजा दुष्यन्त जब क़श्यप ऋषि के आश्रम में पहुँचते हैं और सखियों के साथ शकुन्तला को देखते हैं तो ऋषि के आश्रम में न होने पर भी शकुन्तला और दुष्यन्त का गंन्धर्व विाह होता है। दुष्यन्त और शकुन्तला के संयोग से भरत का जन्म होता है। निधानगिरि ने पुरुरवा उर्वशी और दुष्यन्त शकुन्तला का प्रेम विवाह का वर्णन करते हुए कृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन करने में अग्रसर हो जाते हैं। चन्द्रवंश में जिसमें चरित्र नायक कृष्ण का जन्म हुआ उसकी वंशावली का क्रम इस प्रकार है-विष्णु से ब्रह्मा, ब्रह्मा से अत्रि, अत्रि से सोम, सोम से बुध, बुध से पुरुरवा, पुरुरवा से आयु, आयु से नहुष, नहुष से ययाति, ययाति का पहली पत्नी ने यदु को तुर्वसु नामक दो पुत्र को दूसरी पत्नी ने शर्मिष्ठा के गर्भ से वृषपर्वा उसे दुहु, अनु, पुरू ये तीन पुत्र यदु के वंश में कृष्ण का जन्म हुआ।

'भक्तिमनोहर' के चौबीसवें अध्याय में हरिगोचरण, माखन चोरी, चतुरानन गर्व मथन सक्र दर्प दमन आदि घटनाओं का वर्णन इस प्रकार है-श्रीकृष्ण दोनों भाई गौओं तथा ग्वालाओं के साथ विचरण करते थे। यद्यपि वे सम्पूर्ण जगत के पालक थे, तो भी वे ब्रज में गोपालक बनकर रहे। कृष्ण ने इन्द्रयाग के उत्सव को बन्द कराया और उसके स्थान पर गिरिराज गोवर्धन की पूजा प्रचलित की। इससे कुपित हो इन्द्र ने जो वर्षा आरम्भ की, उसका निवारण श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को धारण करके किया। अन्त में महेन्द्र ने आकर उनके चरणों में मस्तक झुकाया और उन्हें गोविन्द की पदवी दी फिर अपने पुत्र अर्जुन को उन्हें सौंपा। इससे सन्तुष्ट होकर श्रीकृष्ण ने पुनः इन्द्र का भी उत्सव कराया।

'भक्तिमनोहर' के पच्चीसवें अध्याय में कालीनाग दावानलपान, चीर हरण लीला वर्णन कवि 'निधानगिरि' ने इस प्रकार किया है। कृष्ण ने वृन्दावन जाने के पश्चात कालियनाग को परास्त किया और उसे यमुना के कुण्ड से निकालकर समुद्र में डाल दिया। कृष्ण द्वारा गोपिकाओं के नग्न स्नान करने पर उनके वस्त्रों का हरण करना आदि कथाओं को सरसता प्रदान की है।

'भक्तिमनोहर' महाकाव्य के छब्बीसवें अध्याय में गोपिन प्रेम, राधा और श्रीकृष्ण का विवाह वर्णन का उल्लेख कवि ने छब्बीसवें अध्याय में किया है जो इस प्रकार है-गोपिकाओं का कृष्ण-प्रेम उनके लिए धर्म का निर्वाह है। भक्ति अथवा मुक्ति की कामना के लिए किया जाने वाला अनुष्ठान नहीं, वे कृष्ण को प्रेम केवल इस कारण करती हैं-क्योंकि कृष्ण उन्हें प्रिय हैं। प्रेम भाव की चरमसीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है। 'निधानगिरि' के काव्य में उस प्रेम की चर्चा है जिसकी उत्पत्ति में रूपलिप्सा और साहचर्य दोनों का सुखद संयोग है। यशोदा ने राधा का श्रृंगार किया, श्रृंगार क्या किया उसे तो नवेली दुलहहिन ही बना दिया। और अन्त में तिल-चाँवरी से उसकी गोद भी भर दी। यशोदा ने अनजान में ही स्वकीया की भूमिका बना दी। ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा के विवाह का वर्णन मिलता है। 'निधानगिरि' की राधा कुंज में ही मानसिक विवाह करती हैं, कुंज ही उनके लिए मण्डप है और प्रेम की ग्रंथि ही विवाह का बन्धन है और रास ही गन्धर्व विवाह।

'भक्तिमनोहर' के सत्ताइसवें अध्याय में 'रास क्रीड़ा गोपी संग वर्णन' कवि ने किया है। एक समय शरदपूर्णिमा की महानिशा में विहार करने का मन में निश्चय करके श्रीकृष्ण वृन्दावन आये। उस वन में खिले हुए स्वेत कमल, कुमुद पंकज आदि पुष्पों से युक्त अत्यन्त मनोहर सरोवर विद्यमान थे। उस समय सभी प्राणियों को हर्षित करने वाला तथा स्त्रियों के मन को द्रवीभूत करता हुआ अत्यन्त निर्मल चन्द्रमा आकाश में उदित हुआ। इस प्रकार के प्रिय वन तथा अत्यन्त स्वच्छ चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न मन वाले श्रीकृष्ण की ओर आकृष्ट गोपांगनाएँ अपने-अपने घर के काम काज छोड़कर उनके पास आ गई सभी गोपांगनाओं को आया हुआ देखकर वे कमल नयन श्रीकृष्ण उनके साथ महारास करने का उद्योग करने लगे। भगवान श्रीकृष्ण ने कामदेव को जीतकर अनेक शुभ क्रीड़ाएँ करते हुए उनके साथ लीला विहार किया। श्रीकृष्ण राधा की आठ मूर्तियों के साथ विहार करने के लिए अन्तर्धान हो गये। राधा और कृष्ण को न देखकर उस सुरम्य वन में स्थित अन्य गोपिकाएँ रोने लगीं। उन गोपिकाओं का विलाप सुनकर श्रीकृष्ण राधा के साथ उस कानन में पुन: प्रकट हो गये और उनकी मनोवांञ्छा पूर्ण करने के लिए अपनी महिमा से अनेक रूपों में होकर लीला किया।

'भक्तिमनोहर' के अठ्ठाइसवें अध्याय में 'गोपिकाओं की प्रीति वर्णन' का उल्लेख कवि ने किया है, जो इस प्रकार है। गोपिकाएँ अनेक प्रकार के वन्य पुष्पों से माला बनाकर कृष्ण के डाल देती थीं और अत्यन्त प्रसन्न होकर कृष्ण को देखने लगती थीं। अपने मुख पर मुस्कान लिए श्रीकृष्ण भी उन गोपिकाओं को सुन्दर माला पहनाकर उनके हर्षित मुख कमल को निरन्तर देखते रहते थे। वे यदुनन्दन कृष्ण गोपिका-समूहों के साथ कभी यमुना के तट पर और कभी जल में क्रीड़ा किया करते थे। वे श्रीकृष्ण रात्रिकाल में अपनी बाँसुरी की ध्वनि से गोपिकाओं का चित्त आकृष्ट करके उन्हें वन में बुलाकर उनके साथ आनन्द पूर्वक विहार करते थे।

'भक्तिमनोहर' के उन्तीसवें अध्याय में कालयवन संहार, द्वारावत प्रवेश, बलभद्र श्रीकृष्ण रुकमणी विवाह का कथाओं को लिया है जो इस प्रकार है।शिव के अंश से उत्पन्न जाम्बवती आदि अन्य सात कन्याओं को श्रीकृष्ण ने पत्नी रूप में ग्रहण कर यदुकुल को वृद्धि करने वाले श्रीकृष्ण अन्य पत्नियों के साथ द्वारकापुरी में रहने लगे। बहुत से युद्ध करके उन्होंने रण में वीरों को जीता और द्वारका आकर उन भार्याओं के साथ यथेष्ट विहार किया।

भगवान शिव के अंश से उत्पन्न रुकमणी के स्वयंवर में विदर्भराज के द्वारा आमन्त्रित किये गये अनेक देशों के सभी राजा उनके नगर में आये। उस भीष्भक का रुक्मि नामक दुबुद्धि पुत्र अपनी बहन को चेदिराज शिशुपाल को सौंपने के लिए उत्सुक था। अत: कृष्ण के प्रति विद्वेष भावना के कारण अपने माता-पिता की आज्ञा की अवहेलना करके उसने कृष्ण को स्वयंवर में नहीं बुलाया। वह बलवान चेदिराज शिशुपाल रुक्मिका वैसा विचार जानकर उत्तम तथा आकर्षक सुन्दर वर का रूप धारण करके महान रथ-समुदाय के साथ विदर्भ देश के अधिपति भीष्मक वे पुर में आ गया। नारद के मुख से सुनकर कृष्ण भी रथ पर सवार होकर वहाँ के लिए चल पड़े। तत्पश्चात वहाँ आकर आकाश में स्थित रथ में वेश धारण किये हुए उन राजाओं को देखकर श्रीकृष्ण ने अट्टाहास किया। तद्न्तर कमल के समान नेत्रों वाली, हंसिनी की चाल को लज्जित कर देने वाली दुर्गा पूजन के लिए सखियों के द्वारा आदरपूर्वक लायी जाती हुई, एकान्त में श्रीकृष्ण का ध्यान करती हुई तथा श्रीकृष्ण के आगमन की आकांक्षा करती हुई रुक्मिणी का कृष्ण ने हरण कर लिया।

'भक्तिमनोहर' के तीसवें अध्याय में 'शिशुपाल वध की कथा' को इस प्रकार वर्णित किया गया है। कृष्ण के द्वारा रुक्मिणी का हरण कर लेने पर पुर के सभी निवासी हा हा कार कर चिल्लाने लगे और व्यथित हृदय वाले सभी राजा गण अत्यन्त कुद्ध होकर उन पर आक्रमण करने के लिए पीछे-पीछे दौड़े। भगवान श्रीकृष्ण युद्ध के लिए तत्पर होकर उत्तम आयुध धारण करने वाले उन शिशुपाल आदि प्रमुख वीरों के समस्त श्रेष्ठ धनुष तथा वाहनों को विच्छिन्न कर उन्हें लज्जावनत करके स्वर्ग सदृश्य अपने भवन में चले गये।

धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने समस्त यज्ञों में श्रेष्ठ राजसूय नामक यज्ञ आरम्भ किया। ध र्मअवतार युधिष्ठिर ने उस यज्ञ में सभासदों के पूजन कार्यो में अपने भाई महामति सहदेव को नियक्त किया। मुनिश्वरों से आदेश पाकर उन सहदेव ने सभी राजाओं के समक्ष सर्वप्रथम यदुनन्दन श्रीकृष्ण की पूजी की। उसे देखकर क्रोध से जलता हुआ दुष्यत्मा शिशुपाल धर्मपुत्र युधिष्ठिर कृष्ण तथा उस यज्ञ की निन्दा करने लगा। तत्पश्चात श्रीकृष्ण ने राजाओं की सभा में पृथ्वी के भार स्वरूप उस शिशुपाल का सिर काटकर उसे मार डाला।

कथा संयोजन

'भक्तिमनोहर' का कथा संयोजन तुलसी से कतिपय अर्थो से भिन्न है, तुलसी ने राम चरित मानस की रचना सप्तकाण्डों एवं चार संवाद घाटों के माध्यम कराई है जबकि

'निधानगिरि' ने 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य को तीस अध्यायों एवं चार प्रकाशों में विभक्त किया है। इस अन्तर का मूल कारण यह भी है कि 'निधानगिरि' तुलसी की भांति राम कथा नहीं लिख रहे, बल्कि वे हरि के सभी अवतारों की कथा का वर्णन कर रहे हैं। भागवत् की दशावतार कथाओं में कल्कि और बुद्ध को छोड़कर कवि ने अष्ट अवतारों का वर्णन किया है।

कथा संयोजन में एक और मौलिक परिवर्तन यह भी है कि कवि स्वयं एक वक्ता है और स्त्रोता के रूप में समथर स्टेट के महाराज चतुरसिंह हैं, जो आमने-सामने बैठकर कथा कह और सुन रहें हैं। इसी प्रकार नैमिषारण्य में सूत ने सौनाकादिक को विवरण दिया इसके साथ ही सूत द्वारा व्यास से तथा व्यास द्वारा शिव और पार्वती के मध्य इसी प्रसंग को उठाया गया है।

कथा संयोजन के लिए कवि ने कई प्रकार की शैलियों को चुना है जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं-

संक्षेपण शैली

(क) अस चरित्र विस्तार से बरनो पदम पुराण।
ता कारन संक्षेप मै कवि निधान गिरि गान।।[11]

(ख) बाढ़े कथा लहौ नहिं पारा, भिन्न-भिन्न बरनो जो रारा।।
ता कारन संक्षेप कह पंच सुभट सिंघार।
अपर सैन श्रोनित श्रवत। दसमुष विकट पुकार।।[12]

अग्रगामी शैली

द्वितीय शैली कथा संयोजन की आगामी घटनाओं का भावीकथन है, जिसे अग्रगामी कथन शैली कह सकते हैं, इसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं-

(क) आगै कहत प्रसंग अब। चित दै सुनहु मुनीस।
मारे निसचर अति कठिन। संजुत मांहि अहीस।।[13]

(ख) सुर नर मुनि कौ कर अभय गरुवाइ महि टार।
रावनादि हनहै सहज जग कीरत विस्तार।
आगिल चरित सुनौ चतुर जो समीर सुत कीन।
कठिन दसानन मदन धौ किये सुभट बल हीन।।

स्मृति-चित्रण शैली

कथा संयोजन की एक तीसरी शैली भी 'निधानगिरि' के भक्तिमनोहर में दिखायी पड़ती है जिसमें कवि भूतकाल की बीती हुई घटनाओं को किसी पात्र विशेष से कहलाता

है तथा वर्तमान अथवा आगामी घटनाओं का भी सूत्रपात होने लगता है इस प्रकार की शैली को स्मृतिचित्रण शैली के नाम से जाना जाता है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है-

(क) इन ताड़का सुबाहु वध। मष पालो पल जीत।।
शिला अहल्या पद परस। दिव्य देह धर गीत।।

(ख) विस्वामित्र जग्य हित लाए। महाराज दसरथ पठवाए।।
भुजन अतुल बल रन कुसल। हन सुबाहु भट आदि।।
मष रक्षा कर मुनि किये। निर्भय विगत विषाद।।
मग मुनि वधु अहल्या चारी। जानत जग्य पातकिन भारी।
धनुष यज्ञ अब देषन आए। सादर मुनि के संग सिधाए।।[14]

भविष्य-वाणी शैली

एक चौथी शैली भी कथा संयोजन में कवि 'निधानगिरि' ने प्रयुक्त की है जिसे भविष्यवाणियों द्वारा कथा के सूत्र तथा आगामी जीवन चक्र संचालित होते हैं। भगवान शिव द्विज रूप में (ज्योतिषी रूप) अवधपुर में रामजन्म के समय आकर राम के आगामी जीवन चक्र की भविष्यवाणी करते हैं। कवि निधानगिरि के शब्दों में-

(क) "कौशिकादि मष रक्षा को जैहै। जनक नगर पुन गमन करैहै।
करिहै गमन पुन जनकपुर कौ कठिन शिव धनु षडिहै।
तहँ जनकसुता विवाह करकै आई गृह सुख मण्डिहै।
पुन राम लक्ष्मन जानकी. जुत संग वन की जावहीं।
इत मात प्रभु पर पीठ आइस भाग राज करावहीं।।
धन लखन रन धननाद हन अगनिच निशाचर मारहीं।
श्री राम रावन सकुल वध नय सहित पुर पग धारहीं।।"

उक्त पंक्तियों में पूर्वभाष्य शौली द्वारा भविष्यवक्ता के रूप में शिव ने राम कथा की आगामी घटनाओं का उल्लेख किया है तथा प्रबन्ध सूत्रों को सफलतापूर्वक संयोजित किया है।

'भक्तिमनोहर' की कथा

महाकाव्य 'भक्तिमनोहर' का शुभारम्भ शिव, गणेश, सरस्वती, परमेष्टि पद आदि से होती है। यह नमस्क्रियात्मक वर्णन है, जो महाकाव्य के 15 लक्षणों में सन्निहित है। कवि ने शिव-पार्वती, 'पितरौ' (माता च पिता च पितरौ) प्रबंध की निर्विघ्न समाप्ति हेतु कवि ने जो वंदनाएँ की है।

भक्तिनोहर में हरि के अवतारों की कथा ख्यातवस्तु अथवा आधिकारिक वस्तु है। अधिकारिक कथावस्तु मुख्य कथा है। प्रासंगिक कथावस्तु मुख्य कथावस्तु की अंग पोषिका

के रूप में संयोजित है। सूर्यवंश, चन्द्रवंश एवं निमिवंश की वंशावलियाँ, दुर्वासा श्राप आदि कथाएँ अवान्तर कथा प्रासंगिक वस्तु है। ये सभी प्रसंग हरि के अवतारों की मुख्य-कथा की उद्देश्य सिद्धि में सहायक हैं।

महाकवि जीवन की प्रतिच्छाया होता है, इसलिए काव्य शास्त्रियों ने जीवन के ही अनुरूप महाकाव्य में भी आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम नामक पाँच अवस्थाओं की योजना नाटक की ही भाँति आवश्यक बतलायी है।[16] सत्संग में भावित होकर रामजन्मोत्सव में कवि 'निधानगिरि' को समथर नरेश महाराज चतुरसिंह द्वारा मनोहरवीर सचिव के माध्यम से पत्र भेजकर समथर बुलाने तथा हरि अवतारों के कारणों की कथा सुनाने का आग्रह ही महाकाव्य का 'आरम्भ' है। इतिहास प्रसिद्ध उदात्त चरित्रों का वर्णन ही भावक के लिए ग्राहय है तथा उसके आहलाद् कार्य ही मूल कारक हैं। अतएव हरि चरित्र के कथानक महाकाव्य के वर्ण्य-विषय होने चाहिए। महर्षि विश्वामित्र यज्ञ सम्पादनार्थ, जनकल्याणार्थ, भक्ति सम्पादनार्थ राम-लक्ष्मण को राजा दशरथ से माँगने को आना तथा जनकपुरी की ओर प्रस्थान, सीता राम मिलन 'यत्न' के रूप में पुनः सीताहरण के बाद सीता की खोज हेतु हनुमान का अशोक वाटिका पहुँचना, सीता संदेश लाना प्राप्तयाशा, पुनः लंका विजय हेतु सेतुवंधन करना एवं रावण दल का विनाश नियताप्ति के रूप में चित्रित है। सीता की वापसी, अयोध्या में विहार आदि फलागम के रूप में वर्णित है। इसी प्रकार चंद्रवंशीय राजाओं की उत्पत्ति एवं पुरुरवा उर्वशी, दुष्यन्त शकुन्तला की कथाएँ प्रासंगिक होकर आधिकारिक कथा को बल प्रदान करती हैं। कृष्ण जन्म से शिशुपाल वध तक की कथा को भी कवि ने नाट्य अवस्थाओं से संयुक्त करके कथानक को व्यवस्थित किया है।

'भक्तिमनोहर' में हरि अवतारों की कथाएँ अत्यन्त गतिमान है। कथावस्तु सुगठित, चुस्त एवं सामंजस्यता से परिपूर्ण है। कथा विन्यास को सुदृढ़ बनाने के लिए कवि ने जहाँ एक ओर भावुक, मार्मिक, मनोज्ञ चित्रों के द्वारा ह्रदय को रस से स्नेहसिक्त किया है, भावों से परिपूर्ण करके भक्ति का प्रीति संचार किया है, वहीं स्मृति चित्रण द्वारा अतीत की घटनाओं का पुनः स्मरण करते हुए, आगामी घटनाओं का संकेत देते हुए कथावस्तु को क्रमिकता से, व्यवस्था से इस प्रकार जकड़ दिया है कि वह कहीं भी विश्रृंखलित नहीं होती। भावप्रवाह के साथ कथानक का सूत्र एक क्षण के लिए भी नहीं टूटने पाता। रस की अखंण्डता कहीं भी खंण्डित नहीं होती। हरि अवतारों की भिन्नता के बावजूद एक ही भक्ति एवं अन्य विविध रसों के बीच एक ही भक्ति रस ओत-प्रोत होने के कारण कथावस्तु घटना और आंतरिक भाव संघठन दोनों स्तरों पर समान रूप से गतिशील और अद्भुत संतुलन में बँधकर चलती है।

'भक्तिमनोहर' रामचरित मानस की भांति रामकाव्य ही नहीं है उसमें सूरदास के सूरसागर और चंद के कृष्ण विनोद की भांति कृष्ण कथा भी वर्णित है। हरि के अन्य अवतारों का भी कवि ने संक्षिप्त कथानक के साथ सम्यक निर्वाह किया है। कवि का संदेश मानव को भक्ति के पथ की ओर ले चलकर भक्ति, ज्ञान, कर्म का एकाकार

दर्शन कराना है। हरि अवतारों की अद्भुत लीलाओं में रसास्वादन कराते हुए अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लोक संघर्ष के लिए, भक्तों के पुनरुद्धार के लिए कवि ने भक्तिमनोहर की रचना की।

कवि ने भक्ति को एकाकी अथवा सममामयिक राजनीति से पृथक नहीं किया। वे राजा चतुरसिंह को हरि चरित्र की कथाएँ सुनाते हैं और उन्हें राजनीतिक जीवन के अनुभवों से लाभान्वित करा कर एक श्रेष्ठ लोकतांत्रिक राज्य की स्थापना एवं संचालन मे सहयोग प्रदान करते हैं। बेतवा कविकुल शिरोमणि 'निधानगिरि' ने अपने मित्र राष्ट्र समथर और उसके महाराज चतुरसिंह का राज्य-कार्य-संचालन में मार्ग दर्शन देकर सहायता करते हैं। विश्व के महाकवियों में इटली के कवि पुङ्गव दाँते ने अपनी प्रसिद्ध रचना डिवाइज कामेडी' में अपने राजनीतिक जीवन के अनुभवों को प्रभावशाली शिल्प के माध यम से ज्वलन्त अभिव्यक्ति दी है। रासों के रचनाकार भारतीय षट भाषाओं के अत्यन्त समर्थ महाकवि 'चंद' ने 'पृथ्वीराज' के रूप के द्वारा द्वायाश्रय शैली में पृथ्वीराज रासों की रचना लिखकर पृथ्वीराज चौहान हिन्दुपति और अपने समकालीन राष्ट्रनायक गुरूगोविन्द सिंह दशमपति के रूप का प्रधान काव्य लिखकर विश्व के विद्वानों, भाषविदों को आश्चर्य चकित और भ्रमित कर दिया। साहित्य के साथ राजनीति को प्रतिष्ठित करने में महाकवि 'चंदवरदायी' ने 'राजनीति नवम रसं' कहकर तथा राजनीति को साहित्य में नए रस के रूप में प्रतिष्ठित करके विश्व के कवियों को काव्य रचना, इतिहास, राजनीति की शिक्षा दे दी, भले ही उनकी अमर कृति काल निर्धारण की दृष्टि से साहित्य के इतिहास में विवादास्पद रही हो। 'निधानगिरि' साहित्य के साथ ही राजनीति के क्षेत्र में भी 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में कर्म प्रकाश और दुर्ग प्रकाश नामक विभागों में विस्तारपूर्वक राज-कर्म एवं राजधर्म की नियमावलियाँ बनायी है तथा राज व्यवस्था को अधिकाधिक लोकतान्त्रिक रूप देने की, धर्म प्रधान, भक्ति प्रधान राज्य संगठन का निर्देश दिया है। बुन्देलखण्ड के विभिन्न राज्यों में उनके प्रयत्न प्रशंसनीय रहे हैं।

कथानक की संरचना की दृष्टि से कवि ने भक्ति प्रकाश के अन्तर्गत हरि के अवतारों की कथा, ज्ञान प्रकाश के अन्तर्गत सृष्टि की संरचना का दार्शनिक विवेचन, कर्म प्रकाश एवं दुर्ग प्रकाश के अन्तर्गत राज्य कर्म, धर्म, न्याय, नीति, राजनीतिपरक विवेचन करके अपनी विचित्र प्रतिभा और महान व्यक्तित्व का भी दर्शन करा दिया है।

'निधानगिरि' के समथर नरेश महाराज द्वारा राम जन्मोत्सव के अवसर पर साधु समागम में आमंत्रित करने से लेकर कवि द्वारा हरि अवतारों की रसात्मक कथाओं का विचित्र संगुफन करके भक्ति की अखण्डता एवं एकता का संदेश देकर राजाओं को भक्ति पथ पर चलने एवं भक्ति भावों से प्रेरित होकर राज्य व्यवस्थाओं को मानवीय सद्भाव एवं उदात्त आदर्शो से श्रेष्ठ न्याय व्यवस्था प्रदान कर राज्य के नागरिकों को भैतिक समृद्धि के साथ आध्यात्मिक सुख शान्ति पहुँचाना है।

'भक्तिमनोहर' में चरित्रों का आधार वाल्मीक, व्यास, जयदेव, तुलसी, सूर से प्रभावित है। कवि ने इस काव्य की रचना कथा को बोधगम्य बनाने के लिए की है कवि

ने जिन पात्रों को लिया है उनमें आदर्श भाई (भरत एवं लक्ष्मण), आदर्श पति (राम), आदर्श पत्नी (सीता), आदर्श सेवक (हनुमान), आदर्श पुत्र एवं राजा राम का चित्रण करके नैतिक आदर्शो को प्रस्तुत किया है। दशरथ का प्राणपण से अपने वचन की रक्षा तथा पुत्रों के प्रति अगाध स्नेह, कौशिल्या की कर्त्तव्यनिष्ठा, सुमित्रा की त्याग भावना, लक्ष्मण का भावज के प्रति समादर भाव आदि ऐस प्रसंग है, जो पाठकों को प्रेरणा प्रदान करते हैं।

कवि ने कथावस्तु में इतिहास तत्व का भी पोषण किया है, कहीं सीधे और कहीं श्लेष के माध्यम से। बुन्देलखण्ड के इतिहास में मदन वर्मा का योगदान, उसके स्तम्भ आदि के उल्लेख, ऐतिहासिक नामावलियाँ, महाराज 'अनूप गिरि' भूप के श्लेषात्मक संदर्भ कवि के इतिहास बोध को व्यक्त करते है। कवि के काव्य तत्व में इतिहास बाधक नहीं बनता। सूर्यवंश की उत्पत्ति में राजाओं के नाम परिगणन, आगे आने वाली राम कथा की पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित है। इसी प्रकार चंद्रवंश की उत्पत्ति कृष्ण जन्म के पूर्व पृष्ठभूमि के रूप में वर्णित है। जनक के प्रसंग से निमिवंश की वंशावली दी गई है। जो पौराणिक इतिहास के अनुसंधान की सामग्री प्रदान करती है।

इतिहास के इतिवृत्त से कवि ने अर्थतत्व की रक्षा है किन्तु भावना पक्ष कहीं भी गौण नहीं होने पाता। भावप्रवणता, लालित्य और रमणीयता में कथावस्तु को अत्यधिक रम्य, मंजुल और लालित्य से ओत-प्रोत कर दिया है। इस प्रकार कवि 'निधानगिरि' ने सर्ग , प्रतिसर्ग, वंश मन्वंतरादि के वर्णन में ऐतिह्य को प्रधनता देते है, अर्थतत्व को महत्व प्रदान करते हैं किन्तु कुशल शिल्पी के रूप में, शुष्क इतिहास के रूप में नहीं। परम्परा को छोड़कर मौलिकता का कोई अर्थ नहीं होता। आचार्य आनन्दवर्धन के अनुसार-

''दृष्टापूर्वा अपिह्यार्था: काव्ये रस परिग्रहात्।
सर्वे नवा इव भान्ति मधुमास इव द्रुमा:।।17

पूर्व के अर्थो को रस संचार द्वारा नवीन बना देना ही नया प्रयास या मौलिकता है। मधुमास के आगमन पर पुराने वृक्ष नवीन रूप ग्रहण करते है। हरि अवतारों की दीर्घ परम्परा में 'निधानगिरि' का ये कथन कि वे हरि कथा को नवीन रूप देना चाहते हैं, उनकी मौलिकता का सूचक है।

मुख्य कथा परिपुष्ट करने के लिए कवि ने अनेक आवान्तर कथाओं की सृष्टि की है। स्थल विशेषों पर आराध्य देवी-देवताओं की भाव स्तुतियाँ लिखकर कथा को और भी लालित्य तथा शोभन प्रदान किया है। राम, कृष्ण और शिव की स्तुतियाँ, ऋतुओं तथा प्रकुति के सौन्दर्य के अनुपमेय चित्र भाव रस से कथा को पेशल बनाते है। कथामुख में विभिन्न वर्णनों में उत्प्रेक्षा सौन्दर्य, उपमान विधान, अनुप्रास की संगीत, श्रुति ध्वनियाँ हृदय को मुग्ध करती है। कवि ने कथा की प्रस्तुति अत्यन्त कलात्मक विधि से की है। हरि अवतारों की अद्‌भुत रसात्मक कथानाकों से कवि ने महाकाव्य का जो कलेवर तैयार किया है, उसमें लिपटी हुई ललित कथाएँ कवि को लोकप्रियता प्रदान करती है।

कवि और झाँसी मण्डल के समथर स्टेट के तत्कालीन महराज 'चतुर सिंह' के संवादों से 'निधानगिरि' ने अपने क्षेत्र की बुन्देली भाषा में निवन्धन करके छंद प्रबन्ध को रचने में भौगोलिक क्षेत्र बुन्देलखण्ड और विंध्याटवी को गौरवान्वित किया है। निधानगिरि की कथा प्रणाली में अनेक वैशिष्टय विद्यमान हैं, जिसमें कुछ तो मूल कथा की विशिष्टता के कारण और कुछ कवि की निजी उद्‌भावनाओं के कारण। कथावस्तु के स्त्रोत के रूप में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद ग्रंथों के अतिरिक्त भागवत् पुराण, लिंगपुराण, तंत्रशास्त्र, सनतकुमार संहिता, गीता, विष्णु पुराण, नारद पांचरात्र, रामचरित मानस, सूर सागर, रघुवंश, गीतगोविन्द आदि के नामोल्लेख किये है। सम्पूर्ण कथानक को शिव-पार्वती, व्यास-सूत, सूत-सनकादिक एवं कवि स्वयं राजा चतुर सिंह के संवादों के माध्म से सुसंगठित किया है। अनावश्यक प्रसंगो को छोड़कर, प्रख्यात प्रसंगो को संक्षिप्त करके, मौलिक प्रसंगो को विस्तार देकर कथा परम्परा को बिना आघात पहुँचाये हुए पूर्वभाष्य, स्मृति चित्रण, स्वप्न कथन, भविष्य कथन आदि शैलियों से संयोजित करके अपूर्व सफलता का वरण किया है और प्रबन्ध को महान काव्य और महाकाव्य की गरिमा तक पहुँचाया है।

कथावस्तु में महाकवि मौलिक परिर्वत इस प्रकार हैं-

1. राम की बाल्यावस्था, पौगंड, किशोरावस्था के सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन।
2. बाल्यावस्था में राम के द्वारा रावण की बालू की मूर्तियों का बनाना तथा लक्ष्यभेदन
3. रोते हुए राम को चुप कराने के लिए गुरू द्वारा नृसिंह मंत्र का प्रयोग।
4. यज्ञ विजय हेतु वागीश मंत्र का प्रयोग।
5. राम के द्वारा शिव की मूर्तियों का दुग्ध स्नान।
6. शिव का अवध में बालक राम को देखने के लिए सामुद्रिक के रूप में जाजना तथा राम के भावी जीवन की घटनाओं की भविष्यवाणी करना।
7. भगवान के पार्षद् रूप का वर्णन।
8. राम जन्म के समय अरुन्धती आदि का आगमन तथा वशिष्ठ का न होना।
9. राम के जन्म पर रति की देवी का विविध रूप धारण करके नृत्य करना।
10. राम के जन्त पर साकेत पुरी का श्रृंगार करके मंगलाचरण के लिए आना।
11. राम वन गमन के अवसर पर माँ की विकलता का वर्णन।
12. राम के द्वारा पढ़ाये गये शुक, सारिका का पिजड़े में बंद रहने तथा राम के साथ उड़ कर वन न जाने की पीड़ा।
13. चित्रकूट में राम के द्वारा सीता का फूलों द्वारा नखशिख श्रृंगार करना।
14. चित्रकूट के सप्त आभरणों का वर्णन जिसमें प्रथम खण्ड में सखियाँ, दूसरे में सिद्धियाँ, तीसरे में गायत्री, चौथे में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पांचवे और छठवें में सम्पूर्ण नदियाँ, सातवें में भक्तगणों के निवास का उल्लेख।
15. चित्रकूट में राम के द्वारा काम को विश्वविजयी होने का वर देना किन्तु भक्तों को काम से मुक्त रखने की चेतावनी।
16. भरत द्वारा कैकयी का घात करने का प्रयत्न किन्तु राम के ड़र से उसे छोड़ देना।
17. कैकयी को घर-घर में गालियाँ निलना।

18. सीता का अपने साथ सभी बंदियों को मुक्त कराने की राम से हनुमान द्वारा प्रार्थना।
19. सीता द्वारा मृग को न मारने तथा उसे पाल लेने का प्रस्ताव।
20. सीता का मुद्रिका से वार्तालाप।

इसी प्रकार कृष्ण कथा के अन्तर्गत भी कवि ने कतिपय मौलिक परिवर्तन कथा वस्तु के संयोजन में किये हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. शरद के उत्सव पर नन्द द्वारा यज्ञारम्भ कराना।
2. गिरिराज पर्वत का हजारों हाथों से भिक्षु के रूप में भोजन मांगना।
3. हरि और हलधर को गिरिराज गोवर्धन के चरणों में लिटाकर आर्शीवाद प्राप्त करना।
4. गिरिराज द्वारा ब्रज को आगामी घटना चक्र से परिचित कराना।
5. बृजबालाओं द्वारा कालीदाह में कूदने की चेष्ठा करना।
6. कंस का दावानल से ब्रज को भस्म करने की मंत्रणा।
7. बृजबालाओं द्वारा शिव का पूजन करके कृष्ण को वर के रूप में पाने की कामना।
8. नन्द का कृष्ण के साथ मथुरा जाने का प्रस्ताव।

उपर्युक्त प्रमुख परिवर्तनों के अरिक्ति कवि ने मीन, मत्स्य, वाराह, नृसिंह जैसे अवतारों की कथाओं से यह सिद्ध कर दिया है कि मानव के अतिरिक्त मानवेतर रूप में भी ईश्वर का कारूणिक योगदान रहता है। गंगावतरण आदि की कथाएँ नदियों के उद्‌गम के साथ प्रकृति के कारुणिक दान के चित्रों को मूर्तित करती हैं।

कथानक में परिवर्तन संशोधन की छूट एक सीमा तक है जबकि कथा के मार्ग में थोड़ा भी अतिक्रमण न करने का निर्देश आचार्यो ने किया है।[18] आनन्दवर्धन के अनुसार रामायण आदि को प्राय: सिद्ध रस महाकाव्य है उनकी आश्रित कथाओं में रस-विरोध की अपनी इच्छा कवियों को न भिड़ानी चाहिए।[19] 'निधानगिरि' ने रामकाव्य एवं कृष्णकाव्य की परम्परागत् कथा के प्रख्यात वृतों में परिवर्तन न करके, उन्हें मूलत: छोड़कर नूतन प्रसंगो का पल्लवन किया है।

कवि ने कथावस्तु की सिद्धि के लिए विभिन्न कथाओं का आधार ग्रहण किया है। कवि की जीवन विषयक प्रतिबद्धता, दार्शनिक मान्यता कथा के परिष्कार में प्रमुख भूमिका रखती है। कवि 'निधानगिरि' ने कथा के उस अंश का परिष्कार कर दिया है, जिससे उसके प्रतिपाद्य की सिद्धि नहीं होती। कथावस्तु के सुचयन में कवि की रस दृष्टि भी सहायक होती है। कवि ने प्रख्यात रामकथा एंव कृष्णकथा के अनेक अंशो का परिहार किया है तथा रामेतर कथाओं के विशेष अंशो को अपनी वुस्तु के अनुकूल उपजीव्य बनाया है। रसिक साधना एवं शैवसाधना तथा अभेद अद्वैत दर्शन से प्रभावित होने के कारण कवि ने कथावस्तु में जहाँ आवश्यक समझा, उसका संशोधन किया।

चरित्र चित्रण

'दशरूपककार' के अनुसार नायक भेद इस प्रकार है-'भेदैश्चतुर्धा ललित शान्तोदात्तोद्वतैरयम' नायक ललित, शान्त, उदात्त और उद्धत भेद से चार प्रकार के होते हैं। नाट्यशास्त्र[20], नाट्यदर्पण[21], साहित्यदर्पण[22], प्रतापरूद्रयोभूषण[23] आदि इन्हीं भेदों को मानते हैं और इस ललित आदि चार भेदों से पूर्व 'धीर' शब्द जोड़कर धीर ललित, धीर प्रशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत चार प्रकार के नायक माने जाते हैं। आचार्य धनिक के अनुसार 'धीरोदात्तत्व' आदि नायक की अवस्थाएँ है[24] जातियाँ नहीं, इसलिए एक ही नायक धीरोदात्त, धीर ललित, धीरोद्धत्त तथा धीर प्रशान्त हो सकता है।

'निधानगिरि' के राम ऐसे नायक है, जो धीर-प्रशान्त, धीर ललित एवं धीरोदात्तरूप में चित्रित हैं। उनमें गुरुजनों के प्रति आज्ञाशीलता का गुण है। वे अहंकार से सर्वथा रहित हैं, कृपालु हैं अत: धीर प्रशान्त कोटि में आते हैं। कलाओं के प्रेमी, कोमल स्वभाव एवं आचरणवान हाने के कारण उन्हें 'धीर ललित' कोटि में रखा जा सकता है। कृष्ण की भांति राम श्रृंगार प्रिय है। अत: उनमें धीर ललित के गुण पाये जाते हैं। 'निधानगिरि' के नायक उदात्त अन्त:करण, क्षमाशील, आत्मश्लाघा न करने वाले, दृढ़व्रती होने के कारण धीरोदात्त कोटि में आते हैं।

हरि अवतरण में कृष्ण को कवि 'निधानगिरि' ने दक्षिण नायक के रूप में चित्रित किया है। 'दक्षिणोऽस्यां सहृदय:' अर्थात दक्षिण नायक सहृदय प्रीत युक्त होता है, कई नायिकाओं से अनुराग रखता है परन्तु उसका समस्त नायिकाओं से व्यवहार एक समान होता है। कृष्ण समस्त गोपिकाओं के आराध्य हैं। प्रतिनायक के रूप में 'निधानगिरि' ने राम के अवतरण प्रसंगो में रावण को तथा कृष्ण के प्रसंग में शिशुपाल आदि को प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है। ये प्रतिनायक लोभी, धीरोद्धत्त, स्तब्ध (कठोर), व्यसन प्रिय, अन्यायी एवं नायक के शत्रु रूप में वर्णित है। चरित्र चित्रण में जहाँ एक ओर नायक और उसके सहयोगी चरित्रों की रचना की गई है, जो समरसता, आनन्द, सुख-शान्ति और प्रेम के लिए मानवीय संवेदनाओं का प्रसार करते हैं। अन्याय के विरुद्ध वे संर्घषशील होते हैं। भय, दुख, शोक और संत्रास को भंजन करने वाले लोकरंजनकारी चरित्रों को अवतार के रूप में चित्रित किया गया है। कवि निधानगिरि ने तात्विक दृष्टि से पुरुष और स्त्री पात्रों में भेद न मानकर एक अभेद दृष्टि का परिचय दिया है। शिव और पार्वती, राम और सीता, राधा और कृष्ण अद्वैत रूप में हैं। पुरुष और नारी का यह संयोग भी लीला के इसी अद्वैत भाव क्रम में वार्णित है। कवि ने सखा और सखी भाव से पुरुष और स्त्री दोनों को समान रूप से भक्ति का अधिकारी माना है।

नायक के सहायक पात्रों में हनुमान पीठमर्द के रूप में चित्रित है वे अपनी पीठ पर बैठालकर राम को रावण से युद्ध करने का प्रस्ताव करते है, सीता की खोज, लंकादहन एवं राक्षसों के विनाश में मुख्यनायक का स्वार्थ साधन ही नहीं, उन्हें निराशा, हताशा के क्षणों में एक नयी संजीवनी प्रदान करते है। वे राम के अनुचर तथा अनन्य सेवक है। लक्ष्मण, भरत, शत्रुधन, सुग्रीव, अंगद, जामवंत वानर सेना आदि नायक के सहायक है। इसी प्रकार कृष्ण नायक के साथ बलराम (हलधर), पंच पाण्डव आदि उनके सहायक हैं।

प्रतिनायकों के सहायक पात्रों के रूप में रामकथा में रावण के सहायक युवराज, सेनापति, सचिव सामन्त आदि है। दशानन का परिवार (विभीषण को छोड़कर) कुंभकरण, मेघनाद, मारीच, सुबाहु आदि खलनायकों के सहायक है। इसी प्रकार कृष्णकथा के रूप में शिशुपाल के सहायक सेनापति, सचिव, सामन्त आदि प्रतिनायक के सहायक रूप में चित्रित है। दौत्यकर्म के रूप में हनुमान, अंगद आदि नायक के सहायक के अन्तर्गत वर्णित किये गये है।

'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में नारी पात्रों में रामकथा में सीता महानायिका के रूप में वर्णित है। उनके सहयोगी पात्र सखियाँ यहाँ तक की निशाचर कुल की त्रिजटा आदि पात्र भी सहयोगी पात्रों में वर्णित किए गए है। इसी प्रकार कृष्णकथा के अन्तर्गत 'राधा' ' महाशक्ति 'महारानियों के रूप में वर्णित है, जो महत शक्ति सौन्दर्य एवं चेतना की अलौकिक विभूति है। कृष्ण की अन्य नायिकाएँ रुक्मिणी आदि का वर्णन भी कवि ने किया है। प्रेम के लिए समर्पित गोपिकाएँ सहायक पात्रों के रूप में भाव एवं रस को, चरित्र एवं रस को विस्तार देने में सहयोगी सिद्ध होते हैं।

प्रतिनायिका के सहयोगी नारी पात्रों में रामकथा के अन्तर्गत शूर्पणखा निशाचरी लंकिनी आदि का वर्णन किया गया है, कृष्ण में प्रतिनायिका के सहयोगी नारी पात्रों में दासियाँ आदि को लिया जा सकता है।

'निधानगिरि' ने चरित्र के क्षेत्र में काम और रति जैसे पात्रों को जो प्रतिस्पर्धी चरित्र थे, उन्हें सहयोगी रूप में प्रस्तुत करके एक नयी दृष्टि दी है। काम और रति दोनों राम और कृष्ण के जन्मोत्सव पर नृत्य करते दिखाई पड़ते है। वे भक्तों के अनुकूल सौन्दर्य प्रवृत्ति प्रेम के पल्लवन में सहयोगी सिद्ध होते हैं। उनकी यह संधि कवि की मौलिक देन है।

परम्परा से प्राप्त चरित्रों को 'निधानगिरि' ने अपनी प्रतिभा जीवन दृष्टि और युगानुरूप नए संस्कार देकर चित्रित किया है। 'श्री वाल्मीक' की 'रामायण' और 'गोस्वामी तुलसीदास' के द्वारा रचे पात्रों एवं चरित्रों को 'निधानगिरि' ने यत्किंचित परिवर्तित रूप में संयोजित किया है। उनके चरित्रों में मानवीय करुणा, अहिंसा, राष्ट्रप्रेम का नया आलोक दिखाई पड़ता है।

'निधानगिरि' की मौलिकता चरित्रों में आत्मीयता, प्रेम, समत्व एवं समन्वय भावना का नया संस्कार प्रदान करने में उनके नायक सामान्य मनुष्य की संवेदना को पहचानते है, काम करते हुए पात्रों में थकान का अनुभव, दूसरों द्वारा काम कराने की शोषण की प्रवृत्ति, परस्पर सहयोग एवं मैत्री के भावों का स्नेहिल अनुबंध, साहचर्य की भावना का विकास आदि ऐसे मूल्य है, जिसमें चरित्र जनसामान्य के बीच के आदमी का आचरण प्रस्तुत करते है, वे ऐश्वर्य और प्रभुत्व में, ब्रह्म के रूप में आदमी की तरह आचरण करते सारणीकृत हो जाते है।

वस्तुतः 'निधानगिरि' ब्रह्म की तुलना में आदमी को जीव को छोटा नहीं मानते, वे जगत और जीवों में उसी परम चेतना का प्रतिबिम्ब देखते है, फिर वहाँ बंधुत्व, सखत्व,

सखिभावना के विस्तार की गुंजाइश बनी रहती है। प्रेमानंद और ब्रह्मनंद दोनों का अपूर्व संयोग 'निधानगिरि' में पाया जाता है।

'निधानगिरि' वाणी के ही वीर नहीं है, कर्मवीरों के कवि है। वीरों का बड़प्पन केवल बड़े-बड़े वचन बोलना नहीं है- "वीर न बोलत है बड़ बानी। कहकर कवि ने इसी ओर संकेत किया है। उनकी वाणी का रस कर्म सौन्दर्य से नए मानवीय धर्म की रचना करता है। इसी कर्म और धर्म की भावना और आचरण से प्रेरित होने के कारण उनके चरित्र मानवता को कृतार्थ करते हैं और धरती को धन्य करते हैं।

'तुलसी' के 'रामचरित' में रामकथा के चरित्र तथा सूर के 'सूरसागर' में कृष्णकथा के चरित्र वर्णित है, किन्तु 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में विभिन्न अवतारों की कथाओं, लीलाओं का वर्णन होने के कारण कवि ने चरित्रों की विपुल सृष्टि की है। उनके प्रमुख पात्रों का संक्षिप्त चरित्र चित्रण ही प्रस्तुत करना अभिष्ट होगा। स्वतंत्र रूप से चरित्र चित्रण एक स्वतंत्र शोध-प्रबन्ध का विषय हो सकता है। अत: विस्तार भय के कारण यहाँ संक्षिप्त रूप में चरित्र विन्यास वर्णित है।

पात्र एवं चरित्र चित्रण

'निधानगिरि' अत्यन्त भावुक संवेदनशील एवं सतर्क कवि हैं। 'हरि अनंत हरि कथा अनन्ता' की भांति उन्होंने भी जिस हरि कथा का गायन 'भक्तिमनोहर' में किया है, उसमें कवि ने पौराणिक सन्दर्भों के साथ अपनी अनुभूति और कल्पना के आधार पर कथा को नई-नई सम्भावनाएँ प्रदान की। अपने समय देशकाल के अनुरूप नवीन मान्यताओं से इस कथा के विकास में अपना योगदान किया है। 'निधानगिरि' का उदघोष है-'चरित पुरातन हरि समझ चाहत किऐं नवीन' इस नवीन सृष्टि का पल्लवन न केवल कथा के संचयन में हुआ है, पारम्परिक और पुरातन को कवि ने नवीनता प्रदान की है, बल्कि चरित्रों को भी नई अवतारणा दी है।

पात्रों के संवादों के माध्यम से नवीन चरित्रों का कवि ने उद्घाटन किया है। कहीं-कहीं कवि ने नीति कथनों एवं पात्रों को विशेष कथन के द्वारा अतंर्निहित मार्मिकता और मूल्यवान संवेदना को उद्घाटित किया है।

'निधानगिरि' ने हरिकथा में विभिन्न अवतारों का वर्णन किया है। अत: उनके काव्य में पात्रों एवं चरित्रों का वैविध्य है। अवतारों में सूर्य और चंद्रवंश की कथाओं को लेकर कवि ने राम तथा कृष्ण दोनों के चरित्रों को अपने काव्य का विषय बनाया है। अत: कवि ने जिन चरित्रों को लिया है, उन्हें इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

(अ) पौराणिक चरित्र

(ब) रामकथा-परक चरित्र

(स) कृष्णकथा-परक चरित्र

एक दूसरा वर्गीकरण लिंग के आधार पर किया जा सकता है-

(क) पुरुष वर्गीय चरित्र (ख) नारी वर्गीय चरित्र

एक अन्य वर्गीकरण भी किया जा सकता है-

(अ) दैवी चरित्र।
(ब) मानवी चरित्र।
(स) मानवेतर चरित्र।

जिन प्रमुख चरित्रों को कवि ने लिया है, वे इस प्रकार हैं-

(क) मीन, कमठ, वाराह चरित्र
(ख) नृसिंह, वामन चरित्र।
(ग) अम्बरीष, अत्रि।
(घ) राम, दशरथ, विश्वामित्र, जनक, परशुराम, बालि, सुग्रीव, हुनमान।
(ङ) अनुसूया, सीता, त्रिजटा, कैकयी, शबरी।
(च) भरत, निषादराज, जटायु, विभीषण, अंगद।
(छ) अगस्त्य।
(ज) रावण, षरदूषण, त्रिसरा, मारीच, कबंध, अक्षयकुमार, मेघनाद, सिहिंका, लंकनी।
(झ) शुक, समुद्र आदि।

कृष्ण-विषयक चरित्र

1. कृष्ण, बलभद्र।
2. राधा, गोपिका, कूबरी, रुक्मिणी.
3. शिशुपाल, कांलयवन

'निधानगिरि' ने परम्परागत् चरित्रों का अनुवर्तन ही नहीं किया बल्कि जागरुकता एवं समकालीन चेतना के लिए वर्ण्य विषय को नवीन मापदंडों के साथ प्रस्तुत करने के लिए कवि ने चरित्र सृष्टि में नवीनता का प्रयत्न किया है।

'निधानगिरि' के काव्य में 'भक्तिमनोहर' में चरित्र चित्रण की अद्भुत कला है। पात्रों को इतनी सजीवता के साथ चित्रित किया गया है कि पाठकों के नेत्रपटल के सामने आकर उपस्थित हो जाते हैं। 'निधानगिरि' के राम हों अथवा कृष्ण, सीता हों अथवा राधा सभी के सौन्दर्य शील और उनकी रागात्मक तथा कर्म आपूरित भाव मुद्राओं का आकलन अत्यन्त कलात्मक है। संसार के श्रेष्ठ एवं विदग्ध कवियों की भांति 'निधानगिरि' भी पात्रों एवं चरित्रों के भाव संवेदना को पहचानने में अत्यन्त भावुकता से विदग्ध चित्रलोक कसौटी में खरे उतरते हैं। पात्रों में राष्ट्रीयता, नैतिकता का संचार करना कवि को अभीष्ट प्रतीत होता है। धर्म की भावना का प्राधान्य है।

राम- विषयक चरित्र

वाल्मीक की भांति 'निधानगिरि' का उद्देश्य भी महच्चरित की महिमा का प्रकाशन है। 'निधानगिरि' के अनुसार राम इक्ष्वाकुवंशीय है। उनके राम न केवल ब्रह्म, न केवल महाविष्णु, न केवल शिव के रूप है वरन् इन तीनों के सामंजस्य से पूर्ण परम आराध्य हैं, जो रावण के विनाश के लिए दशरथ के पुत्र के रूप में मानव आकृति में मनुष्यता को पूर्णत्व प्रदान करते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अनुसार राम का जन्म अभिजित बेला में हुआ है।

राम का रूप-माधुर्य बाल्यकाल से ही भक्तिभावना का अंग बन गया है। शिव काकभुंशुडि के साथ सामुद्रिक रूप में राम की बाल छवि का दर्शन करने के लिए अयोध्या पहुँचते है और राम के जीवन के आगामी घटना चक्र की भविष्यवाणी करते हैं। राम के बाल्य रूप की रूपमाधुरी पर साकेत मुग्ध है, अयोध्यानगरी नागरी के रूप में उपस्थित होकर छविद का पान करती है। कामदेव और रति जन्मोत्सव पर नृत्य करते है, संगीत की राग-रागनियाँ, समस्त कलाएँ, देव गंधर्व रूप धारण कर इस माधुर्य का पान करते है। वात्सल्य छवि की मनोहरी मुद्राओं का अवलोकन कर ललित लीलाओं में रनिवास तृप्ति का अनुभव करता है।

राम के बाल सौन्दर्य का नखशिख निरूपण, श्रृंगार की समस्त सीमाओं का रेखाकंन, बाल्य मनोविज्ञान के साथ भक्तिरस का परिपाक कराता है। राम का बाल्य दर्शन, नगर, नागरिको के दान, और पुण्यलाभ का सुकृत क्षण प्रदान करता है। अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है। सौन्दर्य की पराकाष्ठा ही शक्ति के विग्रह में सिमटकर आ गई है।

बाल्यकाल्य में ही राम धनुष बाण द्वारा रावण की बालू की मूर्तियाँ बनाकर उन्हें संधान करते है। वीरत्व-व्यंजक बाल्यकाल्य आगामी घटनाचक्र का सूचक करता है। 'यत्राकृतिस्तत्र गुणावसन्ति' की सामुद्रिक उक्ति राम के जीवन में चरितार्थ होती है। उनका रूप माधुर्य जैसा नयनाभिराम है, वैसा ही लोकोत्तर उनका शील भी है। राम सौन्दर्य सिन्धु और शील सिन्धु दोनों हैं। उनके चारित्रिक गुणों में धर्मज्ञता, कृतज्ञता, सर्वभूतहित, आत्मवान, इन्द्रिजयी, वंदवेदांग, सर्वशास्त्र तत्वज्ञ, अदीनात्मा, विलक्षण, वाग्मी, रसिक, जितक्रोध, इन्द्रिजयी, धृतिमान आदि प्रमुख है। परिवारिक परिधि में वे प्रभुत्व, भातृत्व, पतित्व और शिष्यत्व की दृष्टि से समस्त दायित्वों का निर्वाह करते हैं। करुणा और समता के आदर्श हैं।

विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा, धनुर्भङ्ग., परशुराम को प्रबोध, जयन्त का ताडंव, विराध-वध, खर दूषण-त्रिशिरा का वध, कबन्ध वध, बालिवध, कुम्भकरण वध और रावण वध के प्रसंगो में शक्ति से समन्वित व्यक्तित्व का दर्शन होता है। राम के शस्त्रबल, युद्धकला, नीति निपुणता, रण मल-कौशल, तेजविता, आन्तरिक शक्ति, मायाशक्ति आदि के माध्यम से कवि ने राम के लोक-मंगल चरित्र को प्रस्फुटित किया है।

राम के व्यक्तिव में उद्धारक गुण भी विशिष्ट है। राम के चरित्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

अ. देव, गौ, सुर, विप्र की रक्षा के लिए अवतार लेना।

ब. यज्ञादि पवित्र कर्म करने वाले ऋषि, मुनियों, यज्ञों की रक्षा करना।

स. शापग्रस्त व्यक्तियों का उद्धार।

ऋषिमुनि, यज्ञादि, पवित्र और पारमार्थिक कृत्यों में राम को लो करक्षक रूप प्रशस्त हुआ है।

अहिल्या का उद्धार, शबरी का आतिथ्य, नारी जाति की प्रतिष्ठा का प्रमाण देने वाला है। सीता को मुक्ति कराने का महाअभियान लोकशक्ति को आतंक और अत्याचार से मुक्त कराने का प्रतीक है। रावण पर राम की विजय दानवता पर मानवता की विजय है। राम ने रावण का वध शत्रुता के कारण नहीं, लोकोद्धार के लिए किया है।

भक्तवत्सल राम भक्तों के लिए सब कुछ कर सकते हैं। उन्हीं के लिये वे अवतीर्ण हुए हैं। न्याय-नीति की सीमाओं को को वे भक्तो के लिए तोड़ सकते हैं। भक्त सुग्रीव, विभीषण शरणागत के लिए वे कृत संकल्प है। राम प्रकृति से महाप्रकृति का श्रृंगार करते हैं। चित्रकूट में सीता का नख शिख श्रृंगार, काम से राम की संधि कि वह तभी तक विश्व विजेता रहेगा, जब तक काम राम के भक्तो को पीड़ा नहीं पहुँचायेगा। इतना ही नहीं चित्रकूट की लीलाओं में सखियों का विहार, फाग के रंग में लोकोत्सव मनाना आदि ऐसे रसात्मक प्रसंग है, जिनसे राम के रसिकोपासना की भी पुष्टि मिलती है।

राम के व्यक्तिव एवं चरित्र के कतिपय मार्मिक अंश जो 'निधानगिरि' कृत 'भक्तिमनोहर' में व्यक्त हुए हैं, वे इस प्रकार है-

(अ) ''नमो नमो सदेव देव जन्म मृत्यु हीन हौ।
अनंत अच्युंत प्रभो अगोचरा प्रवीन हौ।
गिरा सुवुद्ध इन्द्रियादि ग्यान के कले वलं।
जगत जन्म पाल नास तोए सक्ति के वंल।
तुरीय निर्मलं स्वरूप व्यापकं परावंर।
ढषे विमोह अंधकार वस्यना धराधरं।
तुदंध्र मृत्य जे निवृत्य षस्य ते कृपा करं।
वदंत वेद सर्वदा नमामि सर्व भीस्वरं।''[25]

(ब) ''करत नहीं करता परम चलत नहीं पुन चाल।
नहि निरषत-निरषत रहत सुनत नहीं सुन हाल।''[26]

(स) ''मंगल कलस आरती धारी। वृंद-वृंद मिल परम पधारी।
गावत चली वधवानै प्रवसी राज निकेत।
नयन कलस सुषमा समद वालक छवि भर लेत।

करहि निछावर आरती गावहि मंगल गीत।
सुष सागर आनंद सलिल उत्सव तरल तरंग।
भक्ति रतन जल जंतु अत सुषमा विविध-प्रसंग।
सो रघुवर गोलोक विहारी। प्रगटे अवध भक्ति हितकारी।''[27]

(द) ''मानहु धर कै तन विविध हर्ष सहित अति कांम।
राम जन्म उत्सव नचत गावत अति अभिराम।''[28]

(र) ''धृत कौ तुलादान तव कींना। रोग निवारन हित भल चींना।
लिय गुरु कुस पड़ नरहरि मंत्रा। जो हर व्याध सास्त्र विच तंत्रा।''[29]

(ल) ''नील तामरस दाम सरीर। केहरि कट पट पीत गम्भीरा।
भुज विसाल उर गज मनि माला। कुंडल करन मनहु छविसाला।
कुंचित केस सुमन बिच गोहै। निर्षिड तिंमर जनु मनि गन सोहै।''[30]

(व) ''नाना जात सुमन अधिकाई। भूषन सिय हिय किय रघुराई।''[31]

(द) ''राज त्याग मै बन वस धोरा। नारि वियोग बयौ नहिं थोरा
तापर वंधु विछोह सौ धृक जीवन है मोर।
मृषा चाप सर कर ग्रहन घृक विक्रम नहिं थोर।
वनिता पुत्र पौत्र जग नाना। कुल परवार अनेक विधाना।
प्रगट सहोदर होत न ताता। प्रान राष किहिं जसलहुं गाथा।''[32]

रामकथा में राम के साथ लक्ष्मण का नाम अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। राम से सर्वथा भिन्न होते हुए लक्ष्मण उनके साथ अभिन्न हैं, मानों वे राम के पूरक हैं, राम स्याम हैं तो लक्ष्मण गौर हैं। एक शान्त है दूसरा उग्र। दो भ्राताओं का युग्म है।

लक्ष्मण

लक्ष्मण के चरित्र में कर्म का वैशिष्ट्य है, वे कर्तव्य को ही श्रेष्ठ मानते हैं। कर्म से शून्य निपट वाक बल को सारहीन मानते हैं। लक्ष्मण निर्भीक होकर यह भी कहते हैं कि तुम्हारा पंथ तसकरों का अर्थात् चोरों का कुपंथ है। शूरवीरों का नहीं शूरवीर सम्मुख ही संग्राम करते हैं। लक्ष्मण और मेघनाद के इस संवाद से जहाँ कवि ने चरित्रों की निर्भीकता और उनकी धर्म निष्ठा का संकेत मिलता है, वहीं श्रेष्ठ वीरता के मानक भी प्रस्तुत किये गये है, संवाद सौष्ठव का एक दृश्य देखें-

''सुन लक्षमन गमने तत काला।धनु टंकोर किन्ह रिपु साला।।
दसमुष सुत तै कहत अंनन्ता।मोसैं समर करहु बलवन्ता।।
सुन षल चाप शब्द कर क्रोधा।कहत लषन सैं वचन विरोधा।।
छूटत मम सर कोटि कृसाना।करहैं तुव तन तूल समाना।।

बोले लषन गिरा गम्भीरा।कहै करै सोई बड़ बीरा।।
कहवें सै करिबो अति नीका।निपट वाक बल लागत फीका।''[33]

'गिरि निधान' के लक्ष्मण शेष अनंत है। वे रघुकुल के मंडन तथा दुखों के खल-खण्डन हैं। कवि ने उन्हें रघुवंश का तिलक तथा भयहरण करने वाला बताया है। कवि के शब्दों में-

''जय निश्चर कुल कमल हिमंता। गर्व सर्वरी रवि भगवंता।
जयति बाहुबल रघुकुल मंडन। निज जन पाल दुष्ट बल षंडन।।''[34]

लक्ष्मण के व्यक्तित्व में समाहित क्रोध उन्हें धीरोदात्त कोटि से निरस्त कर देता है, किन्तु उनका क्रोध ही उन्हें यथार्थवादी और स्वाभाविक रूप प्रदान करता है। मनुष्य के स्वाभाविक और यथार्थ व्यक्तित्व की सबसे बड़ी पहचान ही यह है कि उसमें प्रेम, क्रोध, घृणा, शोक, विराग, हास्य एवं उत्साह आदि भावों को समन्वित करने की क्षमता हो लक्ष्मण के व्यक्तित्व में यह सब कुछ है, उन्हें क्रोध उसी समय आता है, जब आना चाहिए अर्थात अन्याय और अत्याचार के समक्ष वे क्रोधित होते हैं। विमाता कैकयी द्वारा राम के प्रति किये गये अन्याय को वे सहन करने में असमर्थ है। लक्ष्मण का वीरोचित्त व्यक्तित्व रघुकुल की परम्परा के अनुकूल है। वे सुख और दुख दोनों ही अवस्थाओं में राम के साथ रहें हैं। राम के लिए वे समस्त संसार से लोहा लेने के लिए तत्पर हैं। वनवास के चौदह वर्ष की लम्बी अवधि में उन्होंने नींद, भूख और प्यास सभी को जीत लिया। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व और पराक्रम अनूठा है।

भरत

भरत का चरित्र आदर्श एवं उच्चतम है। राम ने भरत को धर्म धुरीण की संज्ञा दी है-

''धर्म धुरीन भरत वुध जानत।''[35]

वस्तुत: भरत का चरित्र पूर्ण रूपेण निष्कलंक है। भरत प्रजा के प्राणों के हितैषी तथा सम्पूर्ण सुषमा के रक्षक हैं। वे रघुवीर की चरण पादुकाओं को धारण करके शोक और परिताप से मुक्त हो गये-

''मनहु प्रान हित भरत प्रजा को। रक्षक दिये सकल सुषमा के।
सिर धर लीन भरत अति प्रीता। मन अवलंव भयौ दुष बीता।।''[36]

भरत के व्यक्तित्व में भ्रातृ स्नेह का भाव विशेष उल्लेखनीय है। उनका भ्रातृ-प्रेम अगम्य है। उनका चरित्र आवेश और विक्षोभ से मुक्त है। उनकी भायप-भगति काव्यक्षेत्र में ही नहीं, भक्तिक्षेत्र में भी स्तुत्य है-

''धर्म धुरीण भरत जिय जांनी। भक्ति सिरोमनि गुन गन षानी।
सब विध सकल कामना हीना। रघुपति हृदय भक्तिरस लीना।।''[37]

'निधान गिरि' के भरत प्रीति, गुण, धर्म के आलम्बन हैं। राजनीति के चतुरंग हैं। प्रीति के अष्टांगों का समावेश केवल भरत के चरित्र में पाया जाता है। वे दया, धर्म के संस्थापक हैं। भरत को कवि 'निधान गिरि' ने पवित्र आत्मा के अभ्यास कर्त्ता के रूप में व्याख्यायित किया है। परम ज्ञानी, सत्य पराक्रम शील वैराग्य वृत्ति के श्रेष्ठ संत का उदाहरण भरत का ही चरित्र है। कवि 'निधान गिरि' के शब्दों में-

''प्रीति नीति गुण धर्म सुसीला। तुम सबके अवलम्बन सीला।
प्रनय प्रेम आसक्त स्नेहा। लाग लगन अनुराग सनेहा।।''[38]

जटा मुकुट सिर धारण किए हुए नंदी ग्राम में भरत ने पुरूप के माप के बराबर धरती को खुदवाया उस पर पर्णकुटी बनाई, उसका चित्र दृष्टव्य है, जो भरत के त्याग शीलता को लक्षित करता है और उस पर आसन बिछवाया। कुरंग चर्म को तन में धारण कर, कन्दमूल फल का अल्पआहार करने वाले भरत 14 वर्ष प्रभु पद हृदय में धरे हुए, रामराम सिय मंत्र का जाप करते रहे, राज्य सुखों को तृपावत तोड़कर राजकुमार की तपस्या को देखकर मुनिराज भी आश्चर्यचकित थे-

''ज्यों ज्यों दुरबल होत तन त्यौं त्यौं वाढ़त प्रीत।
भयौ न हौ हौने न जग भरत भक्त पथ जीत।।''[39]

कैकयी माँ की भर्त्सना यहाँ तक कि वे यदि राम का डर न होता तो कैकयी को मार डालने तक की सोंचने लगते हैं। जिस माँ ने राम वन गमन के लिए मुँह से कहा उनका हृदय क्यों नहीं फट गया।, कैकयी का जन्म विधाता ने क्यों किया? वह वंध्या क्यों नहीं रह गयीं?

''भरत केकई प्रत कह असो। वचन कठोर कढ़े मुष कैसो।
जोइ रामवन तै अस भाषा। फट न गयौ हृदय किंमि राषा।
भानु वंस पुन दसरथ ताता। श्री रघुनाथ लषन सम भ्राता।
वृथा मोह विध दीन बड़ाई। जस तुव भात भई तस भाई।
विध केकई जनम कित कीना। भई न बाँझ महा अध कीना।
दुष्ट चारनी पापनी केकई मम मात।
रघुवर डर सै आज मै ताकौ करौं न धात।''[40]

भरत का यह अमर्ष भाव देखते ही बनता है। भरत का यह कथन भी कितना मार्मिक है कि कोई भी चरित्र कितना ही पवित्र क्यों न हो, किन्तु सुकृति की महिमामयी मृगी को खलों के वचन वाणों से अवश्य भेदते रहते हैं। कवि की यह आत्मग्लानि कितनी मार्मिक और भरत के धवल चरित्र को रेखांकित करने वाली है।

''होहु सुद्ध जो सपत कर को मांनहि अब साँच।
किहि सुकृती महिमा मृगी षल वचनन सर बाँच।।''[41]

हनुमान

हनुमान साक्षात् देवाधिदेव भगवान शंकर के अवतार हैं। श्री हनुमान को रुद्रावतार, शंकरावतार आदि रूपों में भी पुराण आदि ग्रंथों में वर्णित किया है। हनुमान जी में अंहकार नहीं है वे जो कार्य करते हैं उसका श्रेय स्वयं नहीं लेते बल्कि वह तो उसे प्रभु राम की कृपा का प्रतिफल मानते हैं। वे ज्ञानी, गुणी और कार्यकुशल हैं। विभीषण से हनुमान का मिलन, सीता की खोज तथा लंका पर राम की विजय का श्रेय हनुमान को ही जाता है। हनुमान जी यदि सौ योजन समुद्र पारकर सीता का पता नहीं लगाते, तो लंका पर विजय संभव नहीं थी।

'निधान गिरि' के हनुमान सर्वलायक तथा सर्वकाल समर्थ हैं। वे प्राण के प्रतीक हैं तथा जीवन को जीवन देने वाले हैं। उनके समान जगत में कोई भी बलबुद्धि का निधान नहीं है। कवि के शब्दों में-

> ''जामवन्त कह सुन हनुमन्ता। को जग तुव समान बलवन्ता।
> सब लायक समर्थ सब काला। देव जियाए सकल कपि भाला।
> तुव स्वाधीन सबन के प्राना। पवन तनय बल बुद्धि निधाना।
> लय आवहु सजीवनी बीरा। सुनत भए हिम शैल शरीरा।।''[42]

हनुमान पवनपुत्र हैं, प्राणों के देवता हैं। वे लक्ष्मण को जीवन देने के लिए अवधीश गिरि पर गमन करते हैं। चार बदन वाले ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं पुनः पंच बदन वाले महादेव के रूप में दशो दिशाओं का अवलोकन करते हैं और संजीवनी को पहचानकर, लक्ष्मण को जीवन देते हैं। कवि के शब्दों में-

> ''औषधीष गिरि पर पुन गयऊ। चार बदन जिन निरमत भयऊ।
> पंच बदन से दस सिर हेरि। चीन औषधी लीन घनेरी।।''[43]

राम और रावण के युद्ध में हनुमान की एक विशिष्ट भूमिका है। वह रावण को रथी और राम को भी थी देखकर राम को अपनी पीठ पर बैठकर युद्ध करने का प्रस्ताव करते हैं। हनुमान की पीठ पर बैठकर ही राम ने रावण से युद्ध किया तथा विजय प्राप्त की। यह युद्ध अत्यन्त अद्‌भुत है जो हनुमान के अद्‌भुत चरित्र को उद्‌घाटित करता है।

विभीषण

'निधान गिरि' ने ऐसे चरित्रों पर विशेष बल दिया है जो द्वन्दों से जूझते हैं-उदाहरण के लिए विभीषण के चरित्र पर कवि की दृष्टि विशेष रूप से उन भावों का उद्‌घाटन करती है जो भातृ सम्बन्धों पर नया प्रकाश डालती है। गोस्वामी तुलसी दास ने 'नाते नेह राम के मनियत' कह कह राम के नातों को ही प्रमुखता प्रदान की है। विभीषण के चरित्र में एक ओर अपने कुल को छोड़कर भाई के विरोध करने की चिन्ता है तो दूसरी ओर धर्म के विरुद्ध दुर्बुद्धि वाले रावण की निन्दा करने से भी वे नहीं चूकते। राक्षस वंश के अधीन होने की उन्हें ग्लानि है। यद्यपि उन्हें अपनी धर्म निपुणता पर विश्वास है किन्तु वे अपने भ्राता के अधर्म स्वभाव की उमंग को भी जानते

है और ऐसी स्थिति में 'केर वेर के संग' की उक्ति पर उन पर लागु होती है। द्वन्द्वाघात को पार करके विभीषण ने पर धन तथा त्रिय का हरण करने वाले छल और अविचार करने वाले तथा वेद पंथ का लंघन करने वाले बन्धु से सम्बन्ध तोड़ने का ही निर्णय कर लेते हैं। कवि के शब्दों में-

> "निन्दनीय सत वंश विरुद्धे, भयो धर्म दूषन दुर्बुद्धे।
> कहत विभीषण अस वचन, निन्दक निसचर वंश।
> मोर जनम तामे भयो, जात स्वभाव न अंश।
> मोर स्वभाव धर्म निपुनाई सील विवेक दिवस निश भाई।
> भ्रात सुभाव अधर्म ऊमंगा, कैसे केर वेर कौ संगा।
> जे जन पर धन पर त्रिय हारी, करत सुहृद सै छल अविचारी।
> वेद पंथ लघंत जे प्रानी, जीवत मृतक विभव सब हानी।
> तासे तजौ बन्धु मैं ताता, कहत काल बस तू कटु बाता।"[44]

सीता

सीता की सखियाँ को यह अधिकार है कि वह स्वयं क्रीड़ा की अधिष्ठात्री को क्रीड़ा से वंचित कर दें। वंचित करने का कारण यह है कि सीता विशालाक्षी हैं। बड़ी आँखों के कारण वे आँख मिचौली के समय आँख के किसी कोने से दृश्य और अदृश्य के सम्पूर्ण परिदृश्य को दृष्टिगत कर लेती हैं। सीता मंगलों की मूर्ति है, मंगलो को प्रदत्त करने के लिए पृथ्वी से अवतीर्ण हुयी-

> "मंगल दैन जानकी आई।"[45]

सीता मंगलों की मूर्ति वन्द रूप की राशि है, चेतन शक्ति है, जगत की माँ है-

> "चली लिवाय सषी चहुँ पासा। आई मनहु रूप की रासा।
> मोहे निरष विपुल महिपाली। जे अभिमान विवस तिहि फाला।।"

> "कै कन्या कीरत विजय जग की लई बटोर।
> इनहीं कौ रच कींन विध समझ परी मन मोर।।"[46]

सीता की प्रेम विषयक मानसिकता नारी हृदय की सम्पूर्ण समर्पण प्रवृत्ति की पोषक है, किन्तु वह लो मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती। स्वच्छंद मानसिकता और लोक मर्यादा का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त मर्मिक एवं नारी संवेदना को व्यक्त करने वाला है। सीता विश्व की चैतन्य शक्ति है। भव को भाष्य करने के लिए वह जगत माता है। महाकवि (भवभूति) के भाष्य के अनुसार उन्हें जगतमाता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

> "जनक सुता जग जननि भवानी। जग संभव कर पालन हानी।
> निज इच्छा लीला तन धारी। दसमुष सकल विनासन कारी।।"[47]

'निधान गिरि' की सीता मुक्ति की संवाहिका है वे लंका में अशोक वाटिका से

हनुमान जी के माध्यम से राम जी को संदेश भेजती हैं कि वे आकर लंका के समस्त बन्दी जनों को मुक्ति प्रदान कराएँ। मुक्ति का ये नवोन्मेष सीता को क्रान्किारी तथा सामाजिक सहभागिता का प्रतिनिधित्व भी प्रदान करता है।

सीता सामान्य चरित्र नहीं हैं जहाँ एक ओर वह मानवीय धरातल पर चित्रित हुयी हैं, हिंसा के विपरीत अहिंसक भावों को लेकर चलने वाली हैं-

''थावर जंगम जीव कौ कर श्रज पालन नास।
जगत मात पित सीता रामा। सकल भुवन पति अतिबल धामा।।''[48]

सीता जनक कन्या के रूप में भूमि के गर्भ से प्रकट होने वाली धरती की महाशक्ति हैं जिसका उद्भव धरा के गर्भ से ही होता है तथा धरा के गर्भ में ही विलीन हो जाती है। सीता कंचन मृग को देखकर मोहित हो जाती हैं तथा राम से उस मृग को पकड़ का लाने और पालने का प्रस्ताव करती हैं जिससे उनकी मृग के प्रति करुणा व्यक्त होती है साथ ही उनकी अहिंसक युग चेतना भी झलकती है-

'नीक पालिने जोग कृपाला' कह कर सीता ने अभिज्ञान शाकुन्तल की शकुन्तला के मृगयाप्रिय रूप को भी प्रतिबिम्बित करा दिया है।

सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति सीता के सौन्दर्य से जो कुछ अवशिष्ट रह गया है उससे रति की रचना हुयी है, रति और काम सौन्दर्य की रूप रासि से बचे हुए सीला (अँनाक्षा) को जीतने को काम करते हैं।

प्रीति और रीति की जगत जननी सीता श्रृंगार प्रिय हैं राम के द्वारा चित्रकूट में उनका श्रृंगार किया जाता है, प्रकृति प्रिया के रूप में वो महामाया शक्ति भी हैं सखियों के साथ सीता झूला झूलती हुयी वायु के झकोरो का आनन्द लेती हैं। राम और सीता का रास विहार चरित्र को भक्ति भावों से जोड़कर लीला तत्वों के साथ चित्रित किया है, मानवीय करुणा की मूर्ति अन्याय और अपमान का विरोध करती हुयी सीता अपने मृदुल व्यवहार के कारण विपरीत परिस्थतियों में त्रिजटा का सानिध्य प्राप्त करती है। सीता अन्याय और अनीति के सामने नहीं झुकती अग्नि परीक्षा की कसौटी में तप्त कंचन की भांति है। उसे महर्षि वाल्मीकि का संरक्षण प्राप्त होता है। लव कुश जैसे पुत्रों से उसका मातृत्व गार्वित है सीता अपमान और लांछना के बीच जीवित रहना स्वीकार नहीं करती और धरती के गर्भ में समा कर मातृत्व स्वरूप में आत्मबोध करती हुयी महानिर्वाण को प्राप्त होती है।

रावण

रावण खलनायक के रूप में चित्रित है। अन्य राम कथाओं में सीधे रावण के अत्याचारों का वर्णन किया गया है। 'निधान गिरि' ने रावण का बाल्य वर्णन भी किया है। इस प्रकार खलनायक के चरित्र के विकास में कवि के द्वारा की गई पहल मौलिक तथा नवीन है। रावण रेंगते हुए चलता है किन्तु उसका रेंगना सूर के कृष्ण के घुटनों

के बल चलने के सर्वथा विपरीत है। वह पूजा करने वाले पण्डितों का पानी गिरा देता है। इतना ही नहीं विप्रों के द्वारा गोद लेने पर तिलक मिटा देता है। तुलसी का पौधा बढ़ने नहीं पाता वह खोदकर फेंक देता है। पोथी को फाड़कर फेंक देता है। घंटा और शंख फोड़ देता है। देव मूर्तियों का भंजन कर देता है। इस प्रकार रावण के बाल्य चरित्र के माध्यम से कवि ने भंजनशील एवं उदण्ड चरित्र का बीजारोपण है।

रावण वैभवशाली, साम्राज्यवादी, अहम ग्रस्त के रूप में विकसित किया है-

क. "दस मुष माता कौ पिता तास सुमाली नाम।
ताकौ प्यारौ सचिव कर मालवर वुध धाम।।
तिहि अवसर दसमुष निकट आयौ कीन प्रनाम।
वृद्ध नीत मग सो निपुन मंत्र सिरोमनि धाम।।"[49]

ख. "कह दसवदन कवन रे कीसा। रामदूत मै हौ दससीसा।
तै पुलस्त कुल उतपति भयऊ। सिव सेवा विंरच वर लयऊ।।
तिहि वर जग भा भुजबल भारी। जथा क्रपन धन बड़ह सुरारी।
जिहिं त्रसरादिक बंधहन जमपुर वाल पढ़ाइ।
तिहिं सदेस आयौ कहन तुमसै निसचर राइ।
जांन अजांन पांन विष कीना। कुटिल काल वस सिय हर लींना।
अवहीं कुसल जानकी दीजे। तोड़ कपट असमान न कीने।
भजिए दया सिंध भगवाना। जामै होइ तेग कल्याना।
बहुर राज चलहै न चलायै। रहै कुसल कुल सहित सवायौ।
नाहिन पावक राम प्रतापू। हू हौ सलभ कुटम जुत आपू।
धाइ धार की भषम सुहोऊ। जलदेवा कुल रहै न कोउ।।"[50]

रावण अंगद से दर्पोक्ति करता हुआ अपने बन्धु पुत्र भुजबल आदि की प्रशंसा करता हुआ दिखायी पड़ता है जिससे उसका अहंकार प्रधान व्यक्तिव उद्घाटित हुआ है-

"कुंभकरन सम है मम भ्राता। पल मे रिपुदल करै निपाता।
मेघनाद सम सुत बलवाना। बाँध पुरंदर कौ जग जांन।
मम भुजबल अतुलित जस छावा। कंदुक सम सिव सैल उठावा।।"[51]

कौशल्या

राम को जन्म देकर कौशल्या का मातृत्व धन्य है। पुत्र प्रसव से कोख जुड़ा गयी और पति के प्रमोद से मांग गर्वित हो उठी। कवि 'निधान गिरि' के शब्दों में-

"बड़भागिन दशरथ नृप रानी। सोभा सील सुमंगल षानी।
प्रभु प्रसव से कूँष जुडानी। पति प्रमोद से मांग सिहांनी।।"[52]

कौशल्या का चरित्र मातृत्व का आदर्श उदाहरण है। पारिवारिक द्वेष और कलह की प्रशान्ति के लिए वह प्रयत्नशील, गंभीर, संयत एवं गौरवान्वित कुल जेष्ठा है। वाल्मीकि की रामायण की भांति 'भक्ति मनोहर' की कौशल्या कैकयी के आचरण पर विक्षोभ व्यक्त करती हुयी उसे गृहकलह, दशरथ के मरण, राम के वनवास और स्वयं के वैधव्य का कारण मानती है-

> ''राममात मन अव विलषाई। कींन केकई कह चतुराई।
> राम लषन सिय विपन पठाऐ। देव लोक मै कंथ बसाऐं।
> विधवापन आपुन कौ लीनां। कहा भरत कौ हित भल कीना।''[53]

कौशल्या राम की ही भांति 'भरत' को वात्सल्य प्रेम से तृप्त करती हैं। वाल्मीकि की भांति 'निधान गिरि' की कौशल्या राम के वनवास जैसी कठोर पिता आज्ञाओं को न मानने का संकेत करती है, परन्तु आदर्श पालक पुत्र के भय से वह खुलकर इस प्रस्ताव को मानने का आग्रह भी नहीं करती। वह वात्सल्य से प्रतिपल अनुप्राणित है। राम के साथ वनवास जाने की विकलता, न जाने पाने की पीड़ा, चित्रकूट से लौटकर कोई समाचार न पाने चिंता, बालकों के सरल, संकोची स्वभाव के कारण वन-वन भटकने, समय से भोजन आदि के न मिलने तथा जंगली, तालाबों, नदियों के पानी को पीने का स्मरण करके वात्सल्य विरह की न जाने कितनी भावदशाओं में चित्रित मातृत्व की विकलता की प्रतिमूर्ति है।

राम के आगमन की प्रतीक्षा में अंतिम दिवस की प्रतीक्षा, आकुलता, आहलिका से दणिक्ष पथ की ओर देखने, पथिकों से पुत्रों के सम्बन्ध में पूँछने आदि के संदर्भो से कवि 'निधान गिरि' ने जिस कौशल्या का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है वह मातृत्व का चरमोत्कर्ष है।

कौशल्या राम के विराट ईश्वरत्व का बोध करती हुयी भी, उसके सहज मानवीय रूपों पर अपने भावों को आश्रित करती है। राम को पकड़कर चलना सिखाने, उसके गिर पड़ने की चिंता, उसे जादू-टोने से बचाने के लिए मंत्रो आदि का आश्रय, उसके वनवास पर उसके खान-पान की चिंता आदि में कवि ने स्वाभाविक मातृरूप को उद्घाटित किया है।

सुमित्रा

सुमित्रा का मातृत्व लक्ष्मण जैसे वीर को जन्म देकर धन्य होता है। राम की सेवा के लिए वन भेजने, उर्मिला के विछोह को सहनकर सेवावृती रूप में धर्म और कर्म का निर्वाह करने वाले लक्ष्मण लक्ष्य संघान करने में अचूक हैं और उनकी जननी के रूप में सुमित्रा का चरित्रांकन वात्सल्य सुख को त्यागकर राष्ट्र को सान्त्वना और सुख प्रदान करने में है। सुमित्रा सौमित्र भावों की जननी के रूप में चित्रित है।

कैकयी

कैकयी मंगलमूर्ति राम को वनवास देकर, भरत के लिए राज्य संख की कामना करने वाली एक ऐसी नारी के रूप में चित्रित है, जो दशरथ से मनोकूल वर प्राप्त कर लेती है। दशरथ कैकयी के सौन्दर्य पर मुग्ध है, उसकी युद्धकला और राजभूमि में मिले

सहयोग के प्रति कृतज्ञ है। कैकयी अमंगल नक्षत्र की तरह सूर्यवंश के अंतरिक्ष को प्रकम्पित करना चाहती है, किन्तु वह प्रकारान्तर से मंगलमूर्ति राम को दक्षिण पथ की ओर भेजने के कारण मंगलमयी हो गयी।

'निधान गिरि' की केकयी भरत की भांति राम को भी चाहती है, किन्तु भरत के बिना राम के राज्यभिषेक को राजनीतिक षडयंत्र मानते हुए वह विरोध करती है, अंत में उसका हृदय परिवर्तित होता है वह भरत के साथ चित्रकूट जाती है और राम के वापस आने पर अभिषेक के अवसर पर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुयी, अपने कृत्यों पर लज्जित होती है। 'निधान गिरि' की कैकयी में दो विरोधी भावनाओं का मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व मानसिक संघर्ष का कलात्मक निर्वाह किया है। कैकयी में माता और विमाता दोनों प्रकार का चरित्र है। सापत्नीक असूया की दुर्बलता भी कैकयी का चरित्र नारी मनोविज्ञान के यथार्थ को भी उद्घाटित करता है।

मंथरा

मंथरा कैकयी की धायी तथा दासी दोनों रूपों में चित्रित है। कही वह केकयी से नियंत्रित है, उसकी तर्जना से कम्पित हैं और कहीं वह कैकयी को सर्तक करती, राज्य के प्रति संघर्षशील बनाती दिखाई पड़ती है। मंथरा राजकुमारी कैकयी और महारानी कैकयी दोनों भूमिकाओं में संग निभाती रही है वह कुटिल होकर भी स्वामिभक्ति का उदाहरण बन जाती है। मंथरा दुष्टता की प्रतीक, खल पात्री है।

शूर्पणखा

'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में शूर्पणखा का आर्विभाव पंचवटी प्रसंग में होता है और वह राम, लक्ष्मण से प्रणय प्रस्ताव करती है। राम-लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के प्रस्ताव की उपेक्षा से वह सीता का भक्षण करने की चेष्टा करती है। आत्मरक्षा और दण्ड के विचार से उसके नाक-कान काटे जाते हैं।

शूर्पणखा स्वैरिणी के रूप में चित्रित है। राजनीतिज्ञ रावण की अनुजा होने के कारण वह कामरूपा दर्प और अंह से ग्रस्त है। उसे रूपगर्विता होने का भ्रम है, इसलिए वह राम-लक्ष्मण की परिहासा विचक्षणा को नहीं समझ पाती और रावण से राम का प्रतिशोध लेने के लिए अग्नि में धृत की आहुतियाँ देती है।

शबरी

शबरी मंतगशिष्या और किरात महिला है, जिसने तप से ख्याति अर्जित की। वह राम का आतिथ्य करती है। कबन्ध के स्थान पर, राम को सुग्रीव से मिताई करने की सलाह देती है। राम से नवधाभक्ति की दीक्षा लेती है। अन्त्यजा होने पर भी वह राम को जूठे बेर खिलाकर आत्मीयता, आतिथ्य से कृत-कृत्य होती है।

मन्दोदरी

मन्दोदरी सुंदरी है। वह सीता हरण के लिए अपने पति रावण की निंदा करती है। उसे बार-बार प्रबोध देती है। सीता को लौटाने के लिए रावण को प्रेरित करती है। अशोक वाटिका प्रसंग से लेकर युद्ध में रावण के प्रयाण करने तक वह अनेक बार अपने पति को राम के प्रति आत्मसमर्पण करने, संधि करने तथा शरणागत् होने का संकेत करती है।

वह राम की सत्ता को पहचानती हैं। पर स्त्री हरण के पातक की भंयकरता को समझती है। पति कल्याण के लिए प्रीति, करुणा, याचना, आग्रह आदि के द्वारा पति को सुमार्ग पर चलने को प्रेरित करती है। रणभूमि में पड़े पति को देखकर मन्दोदरी का कथन उसके चरित्र की ऊँचाई व्यक्त करता है। मन्दोदरी के द्वारा राम की प्रशंसा और रावण की हठधर्मिता की निन्दा का प्रसंग पाठकों में मन्दोदारी के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करता है। 'निधान गिरि' ने यशस्वी राक्षसराज रावण और महाकाव्य के प्रतिनायक की पत्नी के अनुरूप मन्दोदरी का चरित्र-चित्रण करके निष्पक्षता और सहृदयता का परिचय दिया है। पति की मृत्यु, पुत्र की मृत्यु दोनों ने मन्दोदारी को सर्वथा नि:सहाय बना दिया है। सौभाग्य की पराकाष्ठा और दुर्भाग्य का चरमोत्कर्ष एक साथ मन्दोदारी के चरित्र में संगुफित हो उठे हैं। शत्रु पत्नी के मुख से शत्रु की प्रशंसा कराना नायक के उत्कर्ष की दृष्टि से वीर रसात्मक भावों के साथ ही भक्तिभावों को भी भली-भांति सम्पोषित करता है।

''मय तनया पद गह कहत पिय सिष अजहू मांन।
किहिं कौ कब पूरौ परौ राम वैरि जिन ठान।
प्रथम कीन मुनि मष रषवारी। तहाँ सुवाहु ताड़का मारी।
कौतिक हीं सरहन मारीचा। परौ वेग जलनिध तट नीचा।
सकल लोक भूपति अभमाना। जनक सभा मै प्रगट सिराना।
तहाँ कठोर चाप शिव तोरा। वहुर परस धर गर्व निचोरा।
जग विजयी सिय राम विवाही। तव तुमार कित रहि मुन षाही।
कपट काग तन कीन जयंता। धरौ विरोध चौंच सिय हंता।
प्रभु सर भय सब लोकन धावा।।''[54]

कृष्ण

रामकथा के पात्रों की भांति कवि 'निधान गिरि' ने कृष्णकथा के अन्तर्गत अनेक पात्रों का चरित्र चित्रण किया है। यहाँ प्रमुख पात्रों के चरित्र पर विचार किया जा रहा है जिसके अन्तर्गत सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरित्र लीला नायक श्रीकृष्ण का है। 'निधान गिरि' के कृष्ण बाल्यकाल में माखन चोरी करते हैं। वे चोरी करने इसलिय नहीं जाते कि उनके यहाँ दूध-दही की कमी है। वे चोरी के बहाने घर-घर जाकर आत्मीयता का विस्तार करते हैं तथा जन को सुख पहुँचाने के लिए और प्रेम की प्यास को जगाने के लिए कृष्ण का व्यक्तित्व लोकोन्मुखी है।

कृष्ण का व्यक्तित्व बहुमुखी है। दर्शन, धर्म, इतिहास, पुराण और काव्य के क्षेत्रों में उनका बहुविधि आख्यान और चित्रण हुआ है। वेद में जहाँ अन्य अवतारों के बीज प्राप्त हो जाते है, वहाँ कृष्णावतार के बीज भी मिल जाते हैं। बृजवासी इन्द्र को सबसे बड़ा देवता मानते थे। कृष्ण ने इन्द्र की पूजा का विरोध किया और उसके स्थान पर गोर्वधन की पूजा प्रारम्भ की। तंत्र साहित्य में कृष्ण की भरपूर प्रतिष्ठा है। श्रीकृष्ण से सम्बन्धित कई तंत्र हैं। ये भी शाक्त तथा शैव तंत्रों की भांति ही पूर्ण हैं। राम मर्यादा के प्रतीक है तो कृष्ण लीला अर्थात् प्रेम और सौन्दर्य के प्रतीक हैं। यही दो मूल्य भारतीय संस्कृति की धारा के दो किनारे हैं। हमारे पौराणिक सत्य के दो ध्रुव हैं।

कृष्ण का जन्म एक असाधारण परिपार्श्व में हुआ। राजपुरुष होते हुए भी इनका जन्म कारागार में होता है। कारागार एक प्रकार से अधर्म, अत्याचार एवं शोषण का प्रतीक बन गया है जो कंस के द्वारा प्रशासित है। कृष्ण कालियनाग का दमन करते हैं। कालियनाग जिधर-जिधर अपने फन फैलाता है, कृष्ण उधर-उधर पदताल देते हुए उसके शीश पर नर्तन करते हैं। महाकवि 'निधान गिरि' ने काल पर महाकाल के नर्तन का तालबद्ध चित्रण इस प्रकार करते हैं-

> ''जित-जित सीस उठावत काली। तित-तित देत स्याम पद ताली।
> गान करत निरतत थेइ थेई। मनों मृदंग ताल छवि देई।।''[55]

कृष्ण का व्यक्तित्व इतना गत्यात्मक है कि एक निश्चित बुद्धि, एक परम्परा ओर एक नैतिक पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर उसको पकड़ पाना संभव नहीं हो पाता। कृष्ण के व्यक्तित्व में कवि ने उन सभी गुणों की व्यंजना की है, जो एक कल्याणकारी पुरुष में हो सकते हैं।

कृष्ण का अवतरण लोक मंगल के लिए हुआ है। वे लीला विस्तार के लिए बैकुण्ठ को छोड़कर बृज में आये है। लीला अवतार के पीछे भगवान की स्वेच्छा ही है। कृष्ण धरती को धेनु और गोपियों को देह तथा रास को साक्षात् आत्मा का रस मानते हैं। महाकवि निधानगिरि के शब्दों में-

> ''यह वृन्दावन गोपका जित-जित अमृत वेल।
> तिहू लोक मै गाइये मेरे रस की केल।
> धैनु रूप मम देह है क्र कौतूहल न्यार।
> गोकुल गुप्त विलास है जान सकै न हमार।।''[56]

कृष्ण और राधा का प्रेम बाल्यकाल से ही प्रारम्भ हो जाता है, क्योंकि कृष्ण परमात्मा और राधा उसकी अहल्लादनी शक्ति है वे परस्पर अपरिहार्य बन्धन के आबद्ध है, क्रीड़ा से ही इस प्रेम का पल्लवन होता है और क्रीड़ा में ही इस प्रेम का रहस्य और प्रतिकार्थ समझा जा सकता है।

कृष्ण के द्वारा जिन लीलाओं का सम्पादन किया जाता है उनमें चीर हरण लीला का प्रतिकार्थ है गोपियों की आत्मा के ऊपर पड़े आवरण को नष्ट करना। चीर हरण विलास की कोई वृत्ति नहीं है और न ही उसके पीछे कोई अमर्यादित सन्दर्भ है कवि 'निधान गिरि' ने उन गोपिकाओं का चीर हरण किया जो माघ स्नान करती हैं तथा उस स्नान का फल श्रीकृष्ण को वर रूप में प्राप्त करने की कामना करती हैं-

> ''कबहु निरतत नारि गति। कबहु निरतत आप।
> बृज नायक है रसिक मन। राचौ रास प्रताप।।''[57]

शरद निशीथ में वृन्दावन में जो रास रचाया गया है वह अत्यन्त अद्भुत है कवि 'निधान गिरि' के शब्दों में-

''शरद निशा निरमल शशी। विन्दा विपिन विहार।
श्री राधे दुलहिन सरस। दूलह नन्द कमार।।''[58]

कंगन जो विवाह के समय बाँधा गया है उसे कृष्ण नहीं खोल पाते गोपिकाएँ विनोद करती हुयी कहती है कि हे गिरधर यदि तुम इसे नहीं खोल पा रहे तो अपनी माँ यशोदा को क्यों नहीं पुकार लेते यह गोवर्धन को उठाना नहीं है इस गाँठ को खोलना इतना आस नहीं है सभी बृजसुन्दरियों ने गाँठ को खोल दिया और दुल्हन राधा ने दूलह नन्द कुमार का कंगन खोलकर विजयी होकर सुख की अनुभृति कर रहीं हैं। रस की इस क्रीड़ा का निरूपण कवि 'निधानगिरि' के शब्दों में-

''वृज बालन पच पच रचौ। कंकन चार विचार।
छोरहु तुम गिरधर नहीं। जसमत लेउ पुकार।
हरि पच हारे नहिं छुटत। बंधी प्रेम की डोर।
गिरि को धषो होरा नहिं। अब यह नन्द किशोर।
बहुर सिमट वृज संन्दरी। दीनीं गांठ छुटाय।
दुलहिन छोरौ दूलह कौ। कंकन अति सुष पाय।।''[59]

कृष्ण की लंगरी वृत्ति का वर्णन भी कवि 'निधान गिरि' ने किया है, कृष्ण किसी पनिहारिन की गिडुरी छीनते हैं तो किसी की गागर फोड़ते हैं किसी को भी घाट-वाट पर चलने नहीं देते-

''छीनत गिडुरी काहू कि। काहू गगरी फोर।
कोऊ चलन न पावहीं। घाट वाट चहुं ओर।
लरनकन लै रोकत गली। डरती सिगरी वाम।
दूर बात लगरी करो। बगरी घर-घर ग्राम।
भर गगरी धर सिर चली। दीनी स्याम गिराय।
इडुरी लै मेली जमुन। चढ़े कदम पर धाय।।''[60]

राधा

कृष्णकाव्य में श्रृंगार रस की जो मधुर एवं अबाध धारा प्रवाहत हुई, उसमें राधा का योगदान अद्वितीय है। नखशिख-वर्णन में भी 'निधान गिरि' ने राधा को लौकिक नायिकाओं की हि भांति चित्रित किया है। राधा अपूर्व सुन्दरी है महाशक्ति की रसाश्रयी प्रतिमा है। कृष्ण की प्रिय सहचरी हैं। सर्वप्रथम राधा का उल्लेख भागवत में एक प्रिय सखी के रूप में किया गया है। जयदेव के गीत गोविन्द में राधा का स्पष्ट नामोल्लेख है। राधा की सबसे पहली मूर्ति पहाड़पुर बंगाल में मिलती है वहीं से शक्ति की रसाश्रयी उपासना चलती है। तमिल के प्राचीन ग्रन्थों में राधा के स्थान पर नपिन्नई नाम मिलता है।[61]

जयदेव, विद्यापति, सूरदास, चन्ददास आदि कवियों ने राधा को विभिन्न भावना के सोपानों में मूर्तित किया है महाकवि 'निधान गिरि' ने राधा को प्रकृति रूप में चित्रित किया है और उन्हें कृष्ण पुरुष से अभेद माना है उनके अनुसार वह जगत की उत्पादिका शक्ति

है। राधा और कृष्ण का परस्पर आकर्षण नैसर्गिक है, राधा सौन्दर्य निधि है, विशालाक्षी है माथे पर शेली का टीका और वस्त्रों से समलंकृता अनिन्द्य सुन्दरी का सौन्दर्य देखकर कृष्ण विमुग्ध हैं, रसिक शिरोमणि कृष्ण ने राधा का परिचय जानना चाहा, राधा ने भी कृष्ण पर व्यंग्य करते हुए कहा मैंने भी सुना है कि कोई नन्द का पुत्र है जो माखन चुराया करता है कृष्ण ने कहा हमने तुम्हारा क्या चुराया है, तुम खेलने आया करो, यहीं से प्रेम का प्रादुर्भाव होता है। ये प्रसंग ब्रज में चर्चा का विषय बन जाता है, सखियाँ इस प्रेम को पहचान जाती हैं यशोदा नें राधा कुंवरि की गोदभर दी मानो उसे दुलहन बनाने का उपक्रम कर डाला। राधा स्वकीय हो गयी यह प्रेम क्रमशः बढ़ता गया। 'निधान गिरि' की राधा कृष्ण पर अधिकार भाव व्यक्त करने लगी कभी गाय चराने के लिए कहती, कभी पीठ पर बैठकर चलने के लिए राधा ने जैसे कृष्ण को वशवर्ती बना लिया हो-

> ''नील वसन पहिरे नवल मण्डित रोरी भाल।
> मोहन अवलोकी तहा राधा दृमन विसाल।।''[62]

राधा अपने कृष्ण पर अधिकार के प्रति पूर्ण विश्वासमयी है। वास्तव में कृष्ण राधा के इशारे पर नाचते थे-

(क)
> ''श्री राधे गुन षांन है जाके स्याम अधीन।
> न्यारे होत न संग सै भाऐ रहत मन लींन।
> कवहु निर्तत नार गति कवहूँ निर्तत आप।।''[63]

(ख)
> ''स्याम राधका प्रीत जस सो कवि कहत वषांन।
> नंदन कै नदंनदंन जानत कै तनया वृषभान।।''[64]

'निधान गिरि' की राधा मान करती है, राधा सहेतु मान भी करती है और निर्हेतु भी। कवि के शब्दों में-

> ''धर न धरत पद नहिं बनत कंध चढ़ावहु स्याम।
> राधा जिय अस गर्व बड़ सुनत वहस जग स्याम।।''[65]

इस प्रकार के मान में राधा के स्वाभिमान का मूल्य होता है। दोनों के प्रेम को प्रगाढ़ करने के माध्यम में मानलीला का वर्णन है।

राधा का रूप ऐसा है कि कृष्ण भी उसे संध्या और प्रातः देखने के लिए लालायित हो उठते हैं-

> ''षेलन कबहूँ हमारे आवहुं। नन्द सदन मै टेर सुन वहुँ।
> तुम्है सौह वृषभान बुआ की। प्रथम सांझ दीजै मुह झांकी।
> कुंवर लजांनी सुन वचन। प्रथम नेह लव लीन।
> गई मात डर मन समझ। सषियाँ संग नवीन।।''[66]

श्रीकृष्ण राधा के रूप सौन्दर्य को देखकर आकृष्ट हो जाते हैं और राधा को खेलने के लिए आमन्त्रित करते हैं-

> ''थोरे वय की लरकिनी संग कठोर गोर
> स्याम देष रीझे नयन जनु सिर परी ठगोर।।
> वूझत हरि को प्रभा लपंटी कहाँ वास काकी तू बेटी।
> वृज षेलन हम कबहूँ न देषी। आज अचानक मिली विषमी।।''[67]

संदर्भ संकेत-

1 से 10 तक 'भक्ति मनोहर', :निधान गिरि' ह0प्र0 बाँदा, पृ0 14, 15, 16, 16, 32, 29, 34, 34, 35।

11 से 14 तक 'भक्ति मनोहर', :निधान गिरि' ह0प्र0 बाँदा, पृ0 73, 144, 142, 63

15, 'काव्यादर्श', 'दण्डी', आशीर्नमस्क्रिया, वस्तु निर्देशो वापि तन्मुखम् 1/14

16, 'दशरूपक', 'धनंजय', - अवस्था पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थभि: आरम्भ यत्न प्राप्त्यारा। नियताप्ति फलागमा:, 1/22।

17, 'ध्वन्यालोक', 'आनन्दवर्धन', प्रथम उद्योत, श्लोक 27

18, तदुपरिवत, कथा मार्गे न चाल्पोऽप्यतिक्रम:, पृ0 335।

19, तदुपरिवत, सन्ति सिद्ध रस परख्या ये च रमायणादय, कथा श्रय न तैर्योज्या स्वेच्छा रस विरोधनी, पृ0 335।

20, 'नाट्यशास्त्र', भरत, पृ0 24/17

21, 'नाट्यदर्पण', रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 1/6

22, 'साहित्यदर्पण', विश्वनाथ, पृ0 3/31

23, 'प्रतापरूद्रयशोभूषण', विद्यानाथ, पृ 1/27

24, 'दसरूपक', धनंजय, सं0 श्री निवास शास्त्री, द्वितीय प्रकास, पृ0 122

25 से 32 तक, 'भक्ति मनोहर', 'निधान गिरि', ह0प्र0 बांदा, पृ0 45, 45, 46, 47, 48-49, 68, 86, 230।

33 से 41 तक, तदुपरिवत्, पृ0 33, 34, 95, 96, 94, 94, 96, 90, 91।

42 से 47 तक, तदुपरिवत्, पृ0 145, 145, 150, 97, 68, 425।

48 से 54 तक, तदुपरिवत्, पृ0 126, 127, 130, 131, 47, 97, 129।

55 से 60 तक, तदुपरिवत्, पृ0 135, 212, 217, 214, 214, 210।

61, 'सूर साहित्य नवमूल्यांकन', डॉ0 चन्द्रभान रावत, पृ0 162।

62 से 67 तक, 'भक्ति मनोहर', 'निधान गिरि', ह0प्र0 बांदा, पृ0 197, 127, 209, 218, 229, 197।

तृतीय परिवर्त्त

'भक्ति–मनोहर' महाकाव्य का रसात्मक अनुशीलन

कवि की रस विषयक दृष्टि
'भक्ति–मनोहर' में काव्य रस
करूण रस, श्रृंगार रस, वीर रस
वात्सल्य रस, रौद्र रस, भयानक रस
वीभत्स रस, अद्‌भुत रस, हास्य रस, शान्त रस
'भक्ति–मनोहर' में भक्ति रस
भाव
भावाभास
भावोदय
भाव शबलता
भाव शान्ति
रस विषयक अवधारणा
संदर्भ-संकेत

तृतीय परिवर्त्त

'भक्ति–मनोहर' महाकाव्य का रसात्मक अनुशीलन

(क) कवि की रस विषयक दृष्टि

तुलसी, सूर और जयदेव का आदर्श लेकर काव्य रचना करने वाले कवि 'निधान–गिरि' की रस विषयक दृष्टि पर विचार करने के लिए कवि के प्रबन्ध काव्य, 'भक्ति मनोहर' में वर्णित रस विषयक मान्यताएँ इस प्रकार हैं–

"प्रगटहिं वरन मनोहर ताई। सुन्दर अनुप्रास जमकाई।।
अलंकार रस भाव विधाना। हरि जस संग उपज गुन नाना।।
सुजन सराहहि सुन मम बानी। मेकल सुता गंग सम जानी।।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने रस और भाव विधान का स्पष्ट उल्लेख काव्यांगों के अन्तर्गत किया है। अतः रस को काव्य सौन्दर्य के लिए अपरिहार्य माना है।

'निधार गिरि' ने अपने काव्यादर्श में यह भी स्वीकार किया है कि कविता सामान्य मनुष्यों के लिये हो तथा प्रयुक्त काव्याक्षर अर्थ को मूर्तित करने वाले हों, कविता सर्व जनहिताय हो तथा सभी के लिए भाव भवित करने वाली हो। कवि 'निधान गिरि' के शब्दों में–

"भाषा भाषौ मानुषी, छन्द प्रबन्ध मिलाय।
प्रगट अर्थ आखर करहिं, सबकौं सुलभ सुहाय।"[3]

उपर्युक्त उद्धरण में भाषा का 'मानुषी' होना, छन्द-प्रबन्ध का गेयात्मक होना, आखर का अर्थ प्राकट्य तथा 'सर्व सुलभ' और 'सर्वजन सुखद,' 'सुहाय' जैसे पदों से स्पष्ट है कि कवि ने काव्य में रसात्मकता को केन्द्रीय महत्व प्रदान किया है। रसात्मक एवं भावात्मक काव्य ही हृदय को आन्दोलित कर सकता है तथा काव्य के रस में जन जीवन को निमग्न करा सकता है।

'निधार गिरि' कवि है, सौन्दर्यवेत्ता हैं, प्रकृति और जीवन के साक्षात्कारकर्ता हैं किन्तु उनका कवि कर्म और कवि धर्म हरिचरित के गायन के लिए ही समर्पित है। अतः हृदय की जिस मुक्तावस्था तथा अमयावस्था के गीत गाना चाहते हैं, उसमें भक्ति रस का सर्वत्र एवं सर्वोपरि महत्व प्रतिपादित हुआ है। 'निधान गिरि' ने तो उस इतिहास को धिक्कारा है, जिसमें राम का गुण न गाया गया हो और उस कविता को भी धिक्कारने योग्य बताया है जिसमें हरि का चरित न गाया गया हो।

"धृग इतिहास राम गुन नाहीं।
धृग कविता हरि चरित न गाही।"[4]

'निधान गिरि' ने काव्यानुभूति को भावानुभूति के रूप में स्वीकार किया है तथा रसानुभूति को जीवन के भीतर अनुभूतियों से अर्थात् आत्मानुभूतियों से युक्त माना हैं। उनकी दृष्टि में रस आनन्द की अवस्था है, वह केवल हृदय की मुक्तावस्था ही नहीं है, बल्कि हृदय की निर्भयावस्था भी है। रूप विधानों के माध्यम से कवि भावों को रस कोटि प्रदान करता है। भक्त कवि की अनुभूतियाँ– परस्पर जगत में सर्वत्र रसानुभूति करती है और जगत को जगदीश्वर का प्रतिबिम्ब मानकर अन्तःप्रवृत्तियों में प्रत्यक्ष में एवं स्मृतियों में सर्वत्र एक सात्विक, उद्रेक का अनुभव करते हुए जीवन जगत और प्रकृति के साथ एकाकार करते हुए रसात्मक तन्मयता का भावन करता है।

'निधान गिरि' अलंकार रीति, गुण, वकोक्ति, ध्वनि, औचित्य आदि काव्य परम्पराओं को अंगीकार करते हुए भी जीवन और काव्य की सार्थकता समष्टि हित, लोक कल्याण में मानते हैं और हरि रस से जीवन को पंवित्र बनाने पर आस्था व्यक्त करते हैं। अतः काव्य मनीषा की चिन्तन परम्परा में वे भक्ति रस प्रधान आचार्य कोटि की कवि दृष्टि वाले दृष्टा एवं सृष्टा कवि प्रतीत होते हैं।

आलोच्य कवि 'निधान गिरि' के 'भक्ति–मनोहर' ग्रन्थ का नामकरण ही बताता है कि उनमें भक्ति की प्रधानता है, भक्ति रस की प्रधानता है। समस्त काव्य रस भक्ति रस के अनुशासन में इस प्रकार अनुबंधित है कि उनमें सहृदय महाकवियों को काव्य रस की अनुभूतियाँ होगीं तो दूसरी ओर भक्ति रस भावित साधु विरक्त सन्तों एवं भक्तों को भक्ति रसामृत पीकर तृप्त होने का अवसर प्राप्त होगा क्योंकि 'निधानगिरि' का अंगीरस भक्ति रस है किन्तु अन्य काव्य रसों की सत्ता का न तो कहीं विलय होता है और न ही वे रस अपनी स्वायत्तता को खो बैठते हैं। इस प्रकार का असाधारण रस अनुबन्ध 'निधान गिरि' की रस विषयक एक विशेष उपलब्धि है।

(ख) भक्ति–मनोहर में काव्य-रस

'रस्यते इ"ति रसः' अर्थात् जिसका आस्वान्दन किया जाए। इसके अनुसार 'सरते इति रसः' भी इसकी व्युत्पत्ति है, जिसका अर्थ है, 'जो द्रवित हो'। भरत मुनि ने काव्य के आनन्द को 'आस्वाद्यत्वाद्रसः'[5] कहकर आस्वाद्य होने से रस कहा है।

उपनिषदों में 'रसौ वै सःरस हेवायं लब्ध्वानन्दी भवति' 'इत्यादि वाक्यों से ब्रह्मा को रस रूप कहा गया है तथा उसकी प्राप्ति से आनन्द की उपलब्धि बतलाई गई है। साहित्यदर्पणकार ने इसे ब्रह्मास्वादसहोदर कहा है–

> "सत्वोद्रेकादखण्ड स्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।
> वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः"।।[7]

काव्य में रस की अभिव्यक्ति के विषय में आचार्यों ने प्रायः भरतमुनि का ही अनुसरण किया है। सर्वप्रथम भरत मुनि ने रस की विवेचना करते हुए नाट्यशास्त्र में लिखा है–

> "विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्ति।"[8]

भारतीय काव्यशास्त्र में रस सिद्धान्त सबसे प्राचीन और सबसे प्रधान काव्य सिद्धान्त है। भरत मुनि से लेकर पंडित जगन्नाथ तक परिव्याप्त संस्कृत काव्य-शास्त्र में रस सम्प्रदाय की सहास्त्राधिक वर्षों की सुदीर्घ परम्परा में अनेक मेधावी आचार्यों ने रस का गम्भीर विवेचन विश्लेषण किया है। आचार्य विश्वनाथ ने "वाक्यं रसात्मकं काव्यं"[9] कहकर रस की महत्ता का प्रतिपादन किया है। पंडितराज जगन्नाथ ने 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः'[10] कहकर रस की आवश्यकता को स्वीकार किया है क्योंकि अर्थ की रसमयता रस से ही सम्भव है। 'ध्वन्यालोक' में भी रसध्वनि के रूप में रस को सर्वश्रेष्ठ माना गया है और उसे काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकार किया गया है। यथा–

"काव्यास्यात्मा एवार्थस्तथा चादिकवेपुरा।
कौचद्वन्द्वियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।।"[11]

आचार्य भरत मुनि ने कहा है– 'विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी, भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। आचार्य भरत मुनि ने रस के अतिरिक्त नाट्य का कोई प्रयोजन नहीं माना है– "नहि रसादृते कश्चित्यर्थः प्रर्वततेः" भारतीय साहित्य में रस के नौ भेद स्वीकार किये हैं– श्रृंगार, करूण, शान्त, रौद्र, वीर, अदभुत, हास्य, भयानक और वीभत्स।

पाश्चात्य सौन्दर्य–शास्त्रियों ने सौन्दर्य में प्रसन्नता एवं आनन्दानुभूति का जैसा वर्णन किया है, वैसा ही वर्णन हमारे यहाँ रस के अन्तर्गत मिलता है और रस यहाँ आनन्द स्वरूप ही माना गया है। इसके साथ ही क्रोचे ने सौन्दर्य जन्य आनन्द को दो भागों में विभक्त किया है– शुद्ध आनन्द और मिश्रित आनन्द। डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस सम्बन्ध में कहा है कि– "चतुर शिल्पी जिस पाषाणखण्ड.को अपने कौशल से छू देता है, वही सौन्दर्य का प्रतीक बन जाता है और उसी में से रस अक्षय स्रोत फूट निकलता है।"[12] रस विभाव, अनुभाव संचारी आदि सामग्री पर आधारित है, जि हो वह रस है– अर्थात् रस आस्वाद रूप है। उसके आस्वादयिता सहृदय ही हो सकते हैं। रस सहृदय संवेद्य है।

2. यह आस्वाद अनिवार्यतः आनन्दमय ही है और यह आनन्द है अखण्ड चिन्मय और स्पर्श शून्य है। अखण्ड का अर्थ यह है कि इसमें विभाव, अनुभाव, स्थायी संचारी आदि की पृथक या खण्ड चेतना नहीं होती, वरन् सभी की अखण्ड चेतना होती है। दूसरे इस समय किसी अन्य विषय की चेतना नहीं होती है। तीसरे यह अनुभूति 'चिन्मय'– अर्थात् अनिच्छापूर्वक एवं अबुद्धिपूर्वक नहीं, इच्छा और बुद्धि सहित होती है।

3. यह आनन्द चमत्कार प्राण है। चमत्कार का अर्थ है चित्त का विस्तार अर्थात् विस्मय। विश्वनाथ ने अपने पितामह का अनुसरण करते हुए चमत्कार को अत्याधिक महत्व दिया है, परन्तु फिर हमें यह मानना पड़ेगा कि विस्मय या चमत्कार का काव्यानन्द में यत्किंचित योग अवश्य रहता है। सुन्दर वस्तु को देखकर मन में आनन्द और विस्मय की मिश्रित्र भावना का उद्रेक होता है।

4. रस न ज्ञाप्य है, न कार्य, न साक्षात् अनुभव है, न परोक्ष, न वह निर्विकल्प ज्ञान है न सविकल्पक अतएव किसी मौलिक परिभाषा में आबद्ध न हो सकने के कारण वह अनिवर्चनीय एवं अलौकिक है, ब्रह्मानन्द सहोदर है।

आचार्य भरत ने रस–विवेचन के संदर्भ में दो आनुवश्यं श्लोकों को प्रस्तुत किया है जो निम्नांकित हैं–

> "यथाबहुद्रव्यतुतैव्यंजनै पंहुभिर्युतम्
> आस्वादयन्ति भुज्जाना भक्तं भक्तविदो जनाः।।
> भावाभिनयसम्बद्धान स्थायिभाबांस्तथा बुधाः।
> आस्वदयन्ति मनसा तस्मान्नाट्यरसाः स्मृताः।।"[14]

उक्त आनुवंश्य श्लोकों के आधार पर ही भरत ने रस के स्वरूप की विवेचना की है। रस के स्वरूप में उनका मत इस प्रकार है– यथा हि नानाव्यंजनौषधिद्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पतिः, तथा नानाभावोपगमाद्रस निष्पत्तिः। यथा हि गुड़ादिभिर्द्रव्यैर्व्यजनैरोषधिभिश्च षाड़वोदयो रसा निर्वर्त्यन्ते, तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसप्वमाप्नुवन्तीति। अत्राह–रस इति कः पदार्थः ? उच्चते–आस्वाद्यत्वात्। कथामास्वद्यते रसः ? यथा हि नानाव्यंजन संस्कृतमन्नं भुज्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरूषा हर्षादीश्चाधिगच्छन्ति, तथा नानाभावाभिनयव्यजितान् वागड्गस चोपेतान् स्थायिभावा नास्वादियन्ति सुमनस, प्रेक्षकः हषादीश्चाधिगच्छन्ति। तस्मान्न इत्याभि व्याख्याताः।[15]

अर्थात् जिस प्रकार अनेक व्यंजनों और औषधियों के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार अनेक भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। जैसे गुड़ादि द्रव्यों तथा औषधियों आदि से षाड़वादि रस उत्पन्न होते हैं, वैसे ही अनेक भावों से उपगत होने से स्थायीभाव–रसत्व को प्राप्त होता है। रस से किस पदार्थ का कथन किया जाता है?नाना–व्य जनों से संस्कृत अन्य से जैसे हर्ष प्राप्त होता है उसी प्रकार नाना प्रकार के भावों तथा अभिनयों से व्यक्त, वाचिक आंगिक तथा सात्विक अभिनयों से युक्त स्थायीभाव का सहृदय प्रेक्षक आस्वादन करते हैं और हर्षादि को प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भरत ने रस विवेचन में आनुवंश्य श्लोंको के भावों का पल्लवन मात्र किया है। भरतमुनि के अनुसार रस आस्वादन न होकर आस्वाद्य है। जिस प्रकार नानाविध व्यंजन अपना अस्तित्व एवं स्वाद छोड़कर भोज्य रूप में परिणत होते हैं, उसी प्रकार रस के विविध अवयव समन्वित रूप में रसत्व को प्राप्त करते हैं। ये विविध अवयव रस नहीं है, अपितु संयुक्तावस्था में रसस्वरूप को प्राप्त होते हैं।

करुण रस

करूण रस अन्य रसों की अपेक्षा अत्यन्त कमनीय रस है। इस रस में हमारी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है, जो हमारे हृदय की मलिनता को धो देती है। दुःख में हम निखर उठते हैं, हमें अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। यही रस सहृदयता

का परिचय दिलाता है। यही परोपकार जैसे कठिन मार्ग का पथ प्रदर्शक है।[15] संस्कृत नाट्यकार भवभूति ने करूण को ही एकमात्र रस माना है–

> "एको रसः करूण एव निमित्तभेदाद्
> भिन्नः पृथक पृथगिव श्रयते विवर्तान।
> आवर्त बुदबुदतरंगमयान विकरान
> अम्भो यथा सलिलमेव हि तत समग्रम।।"[16]

आचार्य गोवर्धनाचार्य नें अपनी 'आर्यासप्तशती' में लिखा है कि "जिस प्रकार शिव के सम्बन्ध को प्राप्त कर शैलधिराजतनया पार्वती सुशोभित होती है, उसी प्रकार महाकवि भवभूति के सम्बन्ध में सरस्वती भी शोभासम्पन्नता को प्राप्त होती है, क्योंकि भवभूति की वाणी जब करूण भाव की व्यंजना अथवा विलाप करने लगती है, तब औरों का तो कहना ही क्या, पत्थर भी रो पड़ते हैं।"[17] मनुष्य को कई बार अनिष्ट का सामना करना पड़ता है। उसी अनिष्ट से व्यक्ति शोकाकुल हो जाता है। इसी शोक प्रधान मनोविकार का नाम करूण रस है। इस करूण रस की प्राप्ति इष्ट–नाश अथवा अनिष्ट–प्राप्ति से होती है। करूण रस की उत्पत्ति शोक नामक स्थायीभाव से होती है। यह शोक (प्रियजन की) मृत्यु, बन्धन, धननाश, शाप, पलायन, उपघात व्यसन में फँस जाने आदि विभावों से होता है। 'नाट्यदर्पण' के अनुसार–

> मृत्यु बन्ध घनभ्रंश शाप व्यसनसम्भवः
> करूणोऽभिनयस्तस्य, वाष्प–चैवर्ण्य–निन्दनैः।[18]

नाट्यशास्त्र के अनुसार इसका अभिनय अश्रुपात, विलाप, मुख के सूखने तथा फीका पड़ने, शिथिलता, उच्छवास तथा स्मृतिहीनता आदि अनुभावों के प्रदर्शन से किया जाना चाहिए, विवेक के जाग्रत रहने से ही शोक को सहन किया जा सकता है। उत्तम कोटि के व्यक्ति धैर्य से शोक को सहन करते हैं, मध्यम कोटि के व्यक्ति रुदन करते हैं और अधम प्रकृति वाले व्यक्ति हाहाकार मचाते हैं। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, आलस्य, मरण, स्तम्भ, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु एवं स्वरभेद आदि उसके व्यभिचारी भाव हैं।

आचार्य भानुदत्त ने करूण रस के 'स्वनिष्ट' एवं 'परनिष्ट' दो भेद माने हैं। स्वयं के इष्ट के नाश होने पर 'स्वनिष्ट' अन्य के इष्ट आदि के नाश होने पर परनिष्ठ करूण होता है।[19]

शारदातनय ने करूण के मानस, वाचिक तथा कर्म नामक तीन भेद माने हैं।[20] परन्तु ये विशेष महत्व के नहीं हैं। विभावादि के आधार पर करूण के भेद इष्टनाश एवं अनिष्टनाश के रूप में किये जा सकते हैं।

'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में कवि का दृष्टिकोण आनन्दमूलक है अतः 'निधान गिरि' ने धर्म की स्थापना हेतु करूण प्रंसगों की अवतारणा की है। हरि के विभिन्न अवतारों का प्रयोजन ही प्रभु की अन्नत करूणा पर आधारित है। कवि 'निधानगिरि' के शब्दों में–

"जब अधर्म धरनी प्रगटाई। असुर अपार हौंहि वरयाई।।
धैनु साद सुर विप्र सतावहि। जप तप मष वृत करन न पावहि।।
तब अवतार लैंहि प्रभु आना। दारून दनुज दमन कर नाना।।
धरन धैनु सुर मुनि दुष टारै। भेंट अधर्म धर्म विस्तारै।।
हरि अवतार होई यह कारन। देव विप्र जन काज समारन।।
जन्म–कर्म प्रभु के हैं नाना। चरित अनेक एक भगवाना।।
जब जस चरित करत प्रभु आए। तब तस मुनिन जथा मतिगाए।।[21]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि हरि के विभिन्न अवतार धर्म की स्थापना और अधर्म के विनाश के लिए होते हैं। कवि 'निधारगिरि' ने राम के वनवास प्रसंग में, दशरथ के मरण प्रसंग में, जटायु के घायल होने के प्रसंग में तथा कृष्णचरित्र के अन्तर्गत कृष्ण के प्रवासी होने पर गोपिकाओं की विरह की अनुभूतियों को करूण रस के माध्यम से ही अभिव्यक्ति दी है और करूणा के प्रसंगों कहीं पक्षी व्याकुल होते हैं तो कहीं प्रकृति का परिवेश उदास होता है। विरह की स्थिति में माताओं का शोकाकुल हृदय तो विदीर्ण ही होता है,समाज के अन्य वर्गों में भी एक व्यापक सहनुभूति राम और कृष्ण के चरित्र के साथ सीता और राधा की विरहणी स्थितियों पर मानव और प्रकृति दोनों का करूण हो उठना स्वाभाविक है। विरह की मनःस्थितियों को विभिन्न भावचित्तों के माध्यम से करूण स्थायी भाव को करूण रस के विभिन्न संचारियों के माध्यम से कवि ने व्यापक करूणा की सृष्टि की है। करूण रस विभिन्न रसों के साथ भी अर्थात् करूण वात्सल्य, करूण श्रृंगार आदि रूपों में अभिव्यक्ति हुआ है। 'निधानगिरि' द्वारा वर्णित करूण रस के कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं–

(अ) "बिन पनहीं बन अवनि कठोरीकौन भाँत विचरत मति मोरी
कैसे मात पिता पुर वासी जिन्ह पठए बन छवि धन रासी।[22]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने राम–सीता के वन गमन प्रसंग पर पुरवधुओं एवं सखियों द्वारा पृथ्वी की कठोरता और अपने आराध्य की कोमलता को लेकर जिस चिन्ता की अभिव्यक्ति की है, उसका परिपाक करूण रस के रूप में हुआ है।

(ब) "सुन वन गमन मातु दुष पावा जिम पंकज हिम सै कुमलावा
बोली वचन धीर धर भारी सुत पितु मात वचन अधिकारी
नत पर पुर वासी दुष कूपा सुन वन गमन त्याग तन भूपा।
आरत बस बिलखत हैं माता यह दुषन दुह लगत विधाता।"[23]

उपर्युक्त पंक्तियों में राम वन गमन के प्रसंग में पिता और माँ का आर्तनाद, विषाद और दशरथ का तन त्यागना करूण रस की निष्पत्ति कराने में पूर्णतया सफल हैं।दशरथ के निधन पर शोकाकुल रानियों द्वारा रूदन का वर्णन कवि 'निधान गिरि' ने करूण रस जागृत करने के लिए किया है–

(स) "लागी रूदन करन सब लागी भयौ सोर नहि जाइ बखानी
घर–घर रोवत पुर नर नारी। देत कैकई को सब गारी।।"[24]

लक्ष्मण शक्ति बाण से पीड़ित और मूर्छित हैं इस प्रसंग में कवि ने राम के द्वारा शोकाकुल अनुभूतियों का तथा भाव दशाओं का निरूपण करुण रस के अन्तर्गत किया है। कवि 'निधान गिरी के शब्दों में–

(द) "गये राम व्याकुल जहाँ भ्राता, परस कमल कर पंकज गाता।
नर सम करत चरित रघुनाथा, सुकंण्ठ आदि सैं अस कह गाथा।
राज त्याग मैं बन बस घोरा, नारि वियोग बयौं नहिं थोरा।
तापर बन्धु विछोह भौ, धृक जीवन है मोर।
मृथा चाप सर कर गृहन, धृक विक्रम नहीं थोर।
बनिता पुत्र पौत्र जग नाना, कुल परवारे अनेक विधाना।
प्रगट सहोदर होत न ताता, प्रान राख किहिं सुख लहु गाथा।
विजय चाह मोकों नहिं ऐसैं, अन्ध चन्द्र सैं प्रीति न जैसे।
अवध कौवन मुख सैं अब जाता, कहि हैं कहा सुमित्रा माता।
पुत्र मरन सुन छाड़ति प्राना, मोर अभाग उदधि उमगाना।
कौसिल्या बूझे जब धाई, आए कुसल सहित दुहु भाई।
भरत शत्रहन बूझँहि आनी, कहहौं कवन प्रकार बखानी।
तासै भलो मरन संजोगा, सहबौ बन्धु बिछोह न जोगा।
साखा मृग जहहिं बिपन, मैं मरिहौं बिन भाई।
होय विभीषण गत कहा, रहा सोच उर छाह।"[25]

प्रतिपक्ष के नायक रावण के निधन पर उसकी पत्नी मंदोदरी द्वारा जो विलाप वर्णित हैं उसमें भी कवि ने करुण रस की सुन्दर निष्पत्ति की है–

"मैं तनया निज पति सिर देखी, ब्याकुल वसुधा परी विसेखी।।
संग निषचरी रुदन कराहिं, बिथुरे चिकुर देह सुधि नाहीं।।
समर भुम्म आई उस भाँति, पति गति देख पीट अति छाती।।
बल प्रताप सब कह कह रोवहिं, धरनी धर भारसें मुँख जोबहिं।।"[26]

रस का सम्पूर्णता उसके समस्त काव्यांगों सहित 'निधान गिरी' के ही काव्य में परिलक्षित होती है, हरि के बिछुड़ने की स्थिति में गोपिकाओं की तथा ब्रज समूह की जो स्थिति हुई है, वह करूणा की रसात्मक स्थिति को मूर्तित करती है। गोपिकाओं की हाथों की चूड़ियां धरती पर गिर जाती हैं, देह दिया बाती की तरह जलने लगती है, दृग जल ढुलक–ढुलक पड़ते हैं, यशोमति धरती पर लोटकर कृष्ण को पुकारती हैं, ब्रजबालाएँ धुक–धुक करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ती हैं,ऐसा प्रतीत होता है,जैसे कनक लताओं को ज्वालाओं ने स्पर्श कर लिया हो, जलहीन मछलियाँ तड़पती हों अधर सूख गये हैं, वाणी शब्दविहीन हो

गई हैं, हृदय ने जान लिया है कि अब क्षण–क्षण का सौन्दर्य और मिलन दर्शन कठिन है। विरहणियों की सांसें ऊँची उच्छवासों में बदल गई हैं, देह से प्राण निकलना चाहता है, अ क्रूर कितना क्रूर हो गया है,जो ठग है,जो हरि धन को हरण करने आया है। 'निधान गिरि ' ने इस दुखदः दृश्य को जो समता के स्थान पर विषमता प्रकट करने वाला है करुण रस रूप में वर्णित किया है। महाकवि 'निधान गिरि' के शब्दों में–

"हरि बिछुरन मन सत समझ गोपी गई ससाय।
कर चूरी धरनी गिरी विरह ज्वाल तन ताई।।
पावक सैं विरहागिन ताती। हरि कौं चलत सुनत पछताती
जरत देह जनु दिया बाती सी। ढारत जल दृग मदमाती सी।
बैठे रथ पर जुगल कुमारा। जसुमति लोटत धरनि पुकारा
धुक–धुक पहुमि परि ब्रजबाला। कनक लता जनु परसी ज्वाला
महर सुवन कह सोर लगायो। ज्यों जलहीन मीन तलफायो।
सूखे अधर कढ़त नहिं बानी। छिन–छिन मिलन कठिन जिय जानी
ऊंची सांस दृगन बह नीरा। तजे चहत जनु सकल शरीरा।।
चित्र लिखी सी सब रहीं, देखत प्रभु रथ घूर।
हरि धन को हरि लै गयो, आतुर ठग अक्रूर।।
बिकल भये ब्रज नारि नर, बरनत उर दुखः रास।
जनु करुना रस की चमू। विषम प्रकट किये वास।।"[27]

महाकवि 'निधान गिरि' के अनुसार कृष्ण के प्रवास से जिस करुणा की सृष्टि हुई है, वह मात्र दाम्पत्य तक ही सीमित नहीं है बल्कि सम्पूर्ण ब्रज मण्डल करुणा से ओतप्रोत है। कवि का तो यहाँ तक कथन है कि ऐसे अवसर पर प्रतीत होता है कि जैसे करुण रस अपनी सेना के साथ अर्थात सम्पूर्ण रसागों के साथ वैषम्य को प्रकट कर रहा है। वस्तुतः कवि को रसों के निष्पादन में असाधारण उपलब्धि हुई है। और वे उच्च कोटि के रस सृष्टा के रूप में वरेण्य हो उठते हैं।

श्रृंगार रस

श्रृंगार शब्द की उत्पत्ति 'शृंग' तथा 'आर' इन दो शब्दों के योग से हुई है। 'श्रृंग' शब्द का अभिप्राय है, काम का उद्रेक एवं धातु से व्यवस्थित 'आर' शब्द गत्यर्थक है। विश्वनाथ के अनुसार कामदेव का उदभेद 'शृंग' हैं। समस्त रसों में श्रृंगार रस अत्यन्त कमनीय और सरस है। इसलिये सभी आचार्यो ने इस रस की गणना सभी रसों के पहले की है। यह रस अन्य रस की अपेक्षा अत्यधिक प्रभावशाली है, अतएव इसे रसराजत्व एवं 'आदिरस' के नाम से भी अभिहित किया जाता है । कवि के श्रृंगारी होने से सारा संसार रस युक्त हो जाता है, परन्तु यदि कवि अश्रृंगारी हुआ तो सब कुछ नीरस हो जाता है–

"श्रृंगार चेत्कविः काव्ये जातं रसमयं जगत
स एवं चेदश्रृंगारी नीरसं सर्वमेव तत्।[28]

'श्रृंगार रस' सुन्दर विभावादि वाला माना जाता है। श्रृंगार रस की उत्पत्ति रतिरूप स्थायी भाव से होती है। परस्पर अनुरक्त नायक और नायिका इसके आलम्बन विभाव है। काव्य, गीत, वाद्य, नृत्य, वसन्त आदि ऋतु माल्य, विलेपन, ताम्बूल, विशिष्ट भवन, वेष, विदूषक, चन्द्रोय, चक्रवाल, केलि पुष्पचयन, उपवन गमन एवं जल क्रीडा आदि इस रस के उद्दीपन विभाव है। सम्भोग श्रृंगार में आलस्य, औग्रय और जुगुप्सा को छोड़कर निर्वेद आदि सभी इसके व्यभिचारी भाव हैं। उत्साह, ताप, अश्रु एवं क्रोध आदि इस रस के अनुभाव हैं।"[29]

नाट्यशास्त्र श्रृंगार की संयोग तथा विप्रलम्भ दो स्थितियाँ मानते हैं। श्रृंगार रस का स्थायी भाव रति है। 'रति' का अर्थ है प्रेम। आलम्बन भेद से रति की तीन श्रेणियाँ ठहरतीं है यथा–

1. समान के प्रति।
2. बड़े के प्रति।
3. छोटे के प्रति।

समान के प्रति सौहार्द, मैत्री आदि कोटि का होता है। परन्तु व्यापक रूप में 'दाम्पत्य प्रेम' का ही अधिक महत्व है। नायक–नायिका विषयक 'दाम्पत्य प्रेम' को श्रृंगार कहते हैं। बड़े के प्रति प्रेम पूज्य बुद्धि का संयोग रहता है। अतः यह प्रेम श्रद्धा या भक्ति की कोटि का होता है। अपने से छोटे के प्रति प्रेम 'अपत्यस्नेह' का कोटि का होता है। अतः इसे वात्सल्य कहतें हैं। इस प्रकार आलम्बन–भेद के आधार पर श्रृंगार रस के मुख्यतया तीन विभाग ठहरते हैं– भक्ति, श्रृंगार तथा वात्सल्य। महाकवि 'निधान गिरि' की सौन्दर्य दृष्टि सम्पूर्ण जगत के उपादानों तक फैली हुई है उन्होंने 'नीके निरखहु नीक निकाई' कह कर सम्पूर्ण मानव चेतना को अच्छी प्रकार देखने तथा उसकी निकाई को परखने का संकेत किया है। कवि ने राम और कृष्ण, सीता और राधा के श्रृंगार का अदभुत वर्णन किया है। सम्पूर्ण काव्य में पद–पद में श्रृंगार की जैसी उत्कृष्ट व्यंजनाएं हुई है वह महाकवि की असाधारण रस निष्पादन क्षमता को व्यक्त करने वाली हैं। यहाँ कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहें हैं–

संयोग श्रृंगार

राम और सीता के वैवाहिक सन्दर्भ में, वनवास में, श्रृंगार अभिसार आदि तथा वन पक्ष के दृश्यों में मनोहारी छवियों का आस्वादन कवि ने किया है और श्रृंगार रस का रसास्वादन भी भावकों को कराया है। कतिपय प्रंसग दृष्टव्य हैं–

(अ) "कंचन कलस सिर धरे भामिन। सकल मंगल गावति।।
दूलह निरख परछन करत। जुत आरती कर भावति ।।
तहँ नील पंकज मेघ सम। तन राम दूलह सोहहीं।।
दुलहिन सिया कंचन तड़ितवत। परम जोरी जोहहीं
तब ब्याहु विधिवत सतानन्दहु। मुनि वसिष्ट करावहीं।।
अर्चन प्रथम कर भुम्म को । गौरी गनेश पुजावहीं।।[30]

उपर्युक्त छन्द में दूलह और दुल्हिन की गठजोरी का वर्णन संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत किया गया है। इसके आलम्बन राम और सीता दोनों हैं तथा आश्रय के रूप परछन करने वाली तथा युगल छवि को देखने वाली सखियाँ हैं।

(ब) "नाना जात सुमन अधिकाई। भूषन सिय हित किय रघुराई।।
अर्ध चन्द्र कर सीस गुहाई। कली मालती मांग बनाई।।
बेंदा भाल श्रृवर बर फूला। चन्द्रहार हिय शोभा मूला।
कंकन पहुँची कर भुजै बाजू। जेहर नूपुर चरन बिराजू।
अंग-अंग भूषन पहिराए। मृग मद तिलक ललाट लगाए
करत परस्पर प्रेम गम्भीरा चौसंठ कला निपुन रघुवीरा।।[30 ख]

उपर्युक्त पंक्तियों में चित्रकूट प्रवास के समय रघुराई द्वारा सिय का अंग प्रत्यंग श्रृंगार और परस्पर प्रेम संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत वर्णित है।

(स) "श्याम गौर सखि निरख बहोरी। पथिक मनोहर पट तर कोरी।।
तिन बिच त्रिय ससि बदन सु अंगा। मनहु मदन रति ऋतु पति संगा।।
बोली अपर सखी सुन हेली। पायो लोचन लाभ नवेली।।
देखन जोग निरख मन मोहत। लघु वै श्याम गौर तन सहोत।।
जटा मुकुट सिर सुमन गुहावै। नव पल्लव दल छत्र लगावै।।[31]

कृष्ण कथा को लेकर भी कवि ने संयोग श्रृंगार के मधुरतर चित्र खींचे हैं जिसमें श्रृंगार रस जीवन्त हो उठता है। राधा, कृष्ण स्वयं श्रृंगार के मूर्तिमन्त रूप हैं। उनकी छवि रति का, संयुक्त क्रीड़ाओं का, गो दोहन, गो-चारण, रासलीला आदि प्रंसगों में श्रृंगार रस की श्रेष्ठतम अभिव्यक्तियाँ हुई हैं। सीता ने त्रिजटा सखी से अपनी मार्मिक पीड़ा का वर्णन किया है जो वियोग श्रृंगार के अन्तर्गत वर्णित है-

"हृदय धरन मैं विरहा बेली। बाढ़ी गरल समान सहेली।।
दीनै सब सुख विटप जरायी। ताहित मनसिज रहट लगाई।।
नयन कूप सैं जल निकसावहि। सींच विरह की तपन बुझावहिं।।
तन तड़ाग सम सूख गयौरी। मीन प्रान अकुलाय रहै री।।"[32]

वीर रस

साहित्य दर्पणकार के अनुसार "उत्तम प्रकृतिर्वीरः" लक्षण देकर 'वीर रस' को अन्य रसों से श्रेष्ठ माना है। 'वीर रस' के अनुसार इसका स्थायीभाव उत्साह, देवता महेन्द्र और रंग सुवर्ण के सदृश मानते हैं।[33]

इसमें जीतने योग्य रावणादि आलम्बन विभाव होते हैं और उनकी चेष्टा आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। युद्ध के सहायक (धनुष सैन्य आदि) का अन्वेषणादि इसका अनुभाव होता है।

धैर्य, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमान्चादि इसके संचारी भाव हैं। यह दान, धर्म, युद्ध और दया के कारण चार प्रकार का होता है, यथा दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर, दयावीर। वीर रस के भेदों के सम्बन्ध में आचार्यों का पारस्परिक मतभेद भी है। साहित्य–दर्पणकार 'दानवीर', 'धर्मवीर' 'युद्धवीर' तथा दयावीर इन चार को ही मानते हैं। किन्तु अग्निपुराण में 'वीररस' के केवल तीन ही भेद माने गये हैं। उसमें दयावीर को स्थान नहीं है। इस गंगाधरकार 'पण्डित राज जगन्नाथ' ने भी वीररस के इन चार भेदों का स्वीकार किया है। आगे चलकर 'पण्डितराज जगन्नाथ' ने यह भी कह दिया है "वास्तव में श्रृंगार रस की तरह ही वीर–रस के भी अनेक भेद हो सकते हैं, यथा 'सत्यवीर', 'पाण्डित्यवीर', 'बलवीर', 'क्षमावीर' आदि इस प्रकार के भेद का कारण भी स्पष्ट है, और वह है उत्साह की अनेकरूपता। श्री वियोगी हरि जी ने अपनी 'वीर सतसई' में अनेक वीरों के उदाहरण उपस्थित किये हैं। यथा– शूरवीर, दयावीर, सत्यवीर, धर्मवीर, विरहवीर, युद्धवीर आदि।[34]

"साहित्यकारों ने इस नाम का वीरों में कोई विभाग नहीं किया गया है। पर वीर–रस का स्थायीभाव 'उत्साह' विशुद्ध विरह में, अच्छी मात्रा में, पाया जाता है। इसी से हमने अद्वितीय विरहिणी ब्रजांगनाओ को 'विरहवीर' नाम के नए वीर–विभाग में स्थान देने की धृष्टता की है।[35] संसार का कोई ऐसा कार्य नहीं जो बिना उत्साह के सम्पन्न हो सके और वह उत्साह ही है, वीर–रस का स्थायीभाव। जिसमें अध्यवसाय, अविषादित्व, विस्मय, अमोह आदि आर्विभूत होते हैं। ऐसे ही विविध अर्थ विशेषों द्वारा वीर रस द्योतित होता है। विशेषकर नाटक में स्थिरता, धैर्य, शौर्य, गर्व, उत्साह, पराक्रम, प्रभाव और आण्हानयुक्त वाक्यों में वीर रस का सम्यक् अभिनय किया जाता है। युद्धवीर के लिए संग्राम में शस्त्रस्त्र–प्रहारों का योग होता है। उत्तमप्रकृतिमूलक उत्साह नामक स्थायीभाव ही भवित हो वीर रस में परिणत हो जाता है, अतः वीर रस भी उत्तम प्रकृति मूलक है। महाकवि 'निधान गिरि' ने वीर रस के प्रसंगों में रस के अनुकूल युद्धों के जाग्रत चित्र प्रस्तुत करके जिस उत्साह को रसत्व प्रदान किया है वह बेजोड़ है। बानरों का एक सजीव वर्णन देखिये–

"प्रताप राम के प्लंवग जंग में बलि भए, इकै पछार लूम सै लपेट भूम्म मै हये।
तुरंग सै तुरंग कौं मंतग सौं मतंग कौं, हनै प्रकोप कीस भाल कील सैन भंग कौं।
सवार सैं सवार मार पेट फार डारहिं, इकैल मंक मुस्ट मार प्रान को निकारहिं।
रथी समेत स्यन्दना लगूर मै लपेटहीं। पछार जीब काढ़ छाढ़ और को छपेटहीं।"[36]

लंका दहन के प्रसंग में महापराक्रमी हनुमान जी द्वारा अग्नि के प्रसार आदि प्रसंगो में वीर रस मूर्तिमन्त हो उठता है। कवि निधानगिरि के शब्दों में–

"प्रत प्रत निकेत कराल ज्वाला माल दीन लगावहीं
नभ बिथिकन लग अग्नि जनु पुर कार रहु मुख बाइ कै।
कै वीर रस तखार सी घर लंक पुर पर ढारहीं
कै कोट भानू कृशान एकैहिं बार कोप निहारहीं।"[37]

वात्सल्य रस

माता–पिता का जो अपने पुत्रादि पर जो नैसर्गिक स्नेह होता है, उसे वात्सल्य कहते हैं। उसी के वर्णन से वात्सल्य रस की निस्पत्ति होती है। वात्सल्य रस के वर्णन और देवता के सम्बन्ध में काव्य–शास्त्रियों ने इस प्रकार बताया है–

स्थायी भाव–	अपत्य स्नेह।
विभाव–आलम्बन–	बालक या शिशु।
उद्दीपन–	उनकी चेष्टाएँ– जैसे तोतली बोली, गिरते पड़ते चलना, हठ करना आदि– उसकी शूरता, विद्या, उसकी चीजें, उसके कार्य आदि।
अनुभाव–	हँसना, पुलकित होना, एकटक देखना, चूमना, गोद में लेना, पालने में झूलाना, बातें करना आदि।
संचारी भाव–	हर्ष, विषाद चिन्ता, मोह स्नेह जड़ता, आवेग, गर्व, स्मृति प्रमाद, औत्सुक्य, शंका उन्माद आदि।

वात्सल्य रस दो प्रकार का होता है संयोग वात्सल्य और वियोग वात्सल्य। भोज हरिपाल देव आदि आचार्यों ने वात्सल्य रस की अमान्यता को अस्वीकार करते हुए इसे स्वतन्त्र रस माना है। रुद्र ने प्रेयस रस के रूप का जो सूत्रपात किया है "स्नेह प्रकृति प्रेयान" कविराज विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में लिखा है कि–'भरतमुनि की मान्यता में दसवाँ रस वात्सल्य है जिसे अन्य काव्य नाट्यकोविदों ने भी माना है। इसे इसलिए रस माना गया है क्योंकि इसका चमत्कार अन्य रसों के चमत्कार से अतिरिक्त प्रकार का आनन्द है। इसका स्थायीभाव वात्सल्य है स्नेह के भजन पुत्र–पुत्री आदि इसके आलम्बन हैं। पुत्रादिकों की चेष्टायें उनकी विद्या, शूरता, दया आदि उद्दीपन हैं। आलिंगन, अंग स्पर्श, शिर चुम्बन, सस्नेह अवलोकन रोमांच आदि अनुभाव हैं। वात्सल्य में सौन्दर्य भावना, सुकुमारता, आशा, श्रृंगार–भावना, आत्माभिमान आदि अनेक भाव रहते हैं जिनके सम्मिश्रण से वात्सल्य अधिक प्रबल हो उठता है। वात्सल्यपूर्ण स्नेह में करुणा और ममता दोनों समाहित हो जाती हैं। इस दृष्टिकोण से भी वात्सल्य रस अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

वात्सल्य वर्णन के क्षेत्र में 'निधानगिरि' तुलसी और सूर से भी प्रतिस्पर्धा करते हुए दिखाई पड़ते हैं, सूर तो वात्सल्य का कोना–कोना झाक ही चुके थे किन्तु मनोवैज्ञानिक और बाल्यजीवन की गहरी मनोवृत्तियों को उद्घाटित करने में निधानगिरि की प्रतिभा और अधिक गहरी, तल–स्पर्शी मार्मिक एवं चित्रात्मक सिद्ध होती है। कौशल्या चुटकी बजा–बजा कर राम को नचा रही है और श्रीराम किलक–किलक कर नाच रहे हैं, माँ अपने शिशु का हाँथ पकड़े हुए है उसे डर है कि कहीं मेरा घनश्याम (कृष्ण या राम) गिर न जाए। कवि निधानगिरि के शब्दों में –

"जननी चुटकी सुन नचत किलक–किलक श्रीराम।
कर छोड़े माता डरत गिर न परे घनश्याम।।"[38]

उपर्युक्त पक्तियों में माँ शिशु को गिर जाने से बचाने के लिए सतर्क है। भाव विवह्लता माँ की मात्र भावुकता का ही संचार नहीं है। वह बाल्य सुख मे आत्मस्मृति के स्तर पर नहीं जाना चाहती अन्यथा छोटे शिशुओं का सुरक्षा और संरक्षा का भाव समाप्त हो जायेगा। तुलसी और सूर के वात्सल्य वर्णन में मातृ चिन्ता का जो स्वरूप चित्रित हुआ है उसमें इस प्रकार की प्राथमिक संरक्षा का भाव नहीं दिखता है, एक दूसरी विशेषता यह भी है कि कवि 'निधानगिरि' उक्त दोहे में जहाँ प्रथम पंक्ति में श्रीराम के किलकने का वर्णन करते हैं वहीं दूसरी पंक्ति में घनश्याम के गिर जाने की चिन्ता करते हैं, राम के प्रसंग में घनश्याम विशेषण राम और कृष्ण दोनों के लिये सटीक व्यंजना देता है, इस प्रकार वात्सल्य चित्रों से राम और कृष्ण की समवेत झाँकी उपस्थित करके कवि ने दो विभिन्न धाराओं का भी समन्वय उपस्थित कर दिया है और अपने को पेरियालवार साधकों की कोटि में रख कर राम कृष्ण को अभेद रूप में चित्रित करता है।

दशरथ शिशु राम को (कनियाँ) गोद में लिये हुए हैं, इस वात्सल्य सुख को सखियाँ लूट रही हैं। कवि के शब्दों में–

"सखी कहत कुल वधुन सैं देखहुँ रूप अनूप।
शोभा मूरत राम शिशु कनियाँ लीने भूप।।"[39]

उक्त पंक्तियों में सखियों द्वारा अनूप रूप को देखा जा रहा है। एक ओर यह अनूप विशेषण है, जो बालक राम के लिये प्रयुक्त है दूसरी ओर अनूप श्लेष से संज्ञा पद के रूप में है जो कवि के पिता 'अनूप गिरि' का संकेत करता है। इस प्रकार वात्सल्य में ऐतिहासिक संदर्भो को जगाने की क्षमता भी कवि 'निधानगिरि' के काव्य में पायी जाती है।

कृष्ण कथा के प्रसंग से 'निधानगिरि' ने सूर की भांति वात्सल्य के शत्–शत् चित्रों और बिम्बों से रस को मूर्तमन्त किया है। कृष्ण माँ से खिलौना मांग रहे हैं। कवि के शब्दों में–

"मांगत माई देव खिलौना। सनमुख दीख कलानिधि लौना।।
जौ लग पै माखन नहिं चाखैं। मोर मुकुट माथे नहिं राखैं।।
काल्ह विवाहन जाउगी नवल दुलइया आन।
भए नींद बस श्याम सुन पौढ़ए नंदरान।।"[40]

उपर्युक्त चित्र में कृष्ण के द्वारा दूध और माखन न चखने का तथा माथे पर मोर मुकुट न धारण करने का हठ व्यक्त किया गया है, जिसमें बालकों की हठीली (जिद्दी) प्रकृति का श्रेष्ठ मनोविन्यास है, तो दूसरी ओर माँ के द्वारा नवल दुलईया लाने का आश्वासन भी कम जिज्ञासा जागृत करने वाला नहीं है, यद्यपि बाल कृष्ण को अभी नई दुल्हन का पता नहीं है किन्तु नई दुल्हन के आने का प्रस्ताव सुनकर कृष्ण का नींद में चले जाना सिद्ध करता है कि उनके अचेतन में भी आगामी दुल्हन राधा बसी हुई है। जो जन्म–जन्मान्तरों के अनुबन्धों की सहचरी के रूप में आगामी जीवन में सूत्र के रूप घटित होगीं। ऐसे गहरे बाल मनोविज्ञान का पता बड़े–बड़े रस सिद्ध कवियों को भी नहीं है।

बाल्यजीवन के अति प्राकृत चित्र भी सूर की प्रतिस्पर्धा करते हुए दिखाई पड़ते है। एक प्रातः गोपाल ने मुंह में माटी खा लिया। बृज बालाओं ने देख लिया, यशोदा लकुटी लेकर दौड़ी, कुँवर कन्हाई से बोली– माटी उगलो कैसी अनुरुचि हो रही है कि माखन, दूध और मेवा को छोड़कर माटी खाई जा रही है? कृष्ण ने कहा– माँ माखन नहीं, मिठाई खा रहा हूँ। माँ ने कहा मुंह खोलो, कृष्ण ने मुंह फैला दिया फिर क्या था स्वर्ग, पाताल, धरती, पर्वत, उपवन, समुद्र, सुमेरू, देवगण, मानव, नाग सभी कुछ मुंह में दिखाई पड़ा। माँ आश्चर्य चकित हुई और बालक को प्रभु के रूप में पहचान लिया। माँ को गर्ग के वचन याद आ गए। महाकवि 'निधानगिरि' के शब्दों में–

अ – "प्रात होत उठ चले गुपाला। माटी खात निरख ब्रज बाला।।
लकुट हाथ जसुधा लै घाई। उगलौ माटी कुँवर कनाई।।
अनरुच होत तात बलि जाऊ। माखन पै मेवादि खवाहू।।
मांटी खात नहीं मै मायी। देख लेव मुंख भरी मिठाई।।
बदन पसार दियो हरि आपा। देखन लगी मातु मन काँपा।।
सुरग पताल घरन गिर कानन।संमद सुमेर दीष प्रभु आनन।।
सुर नर नाग जीव जग नाना। देखे सकल अनेक विधाना।।
भई चक्रत तब सत जिय जाना। गर्ग वचन चित प्रभु पहिचाना।।"41

ब – " कहु कहु दघकन अंग पर, कछु उर में लपटाय।
पहराए जनु जलज से सुन्दर कण्ठ सुहाय।।
बोल स्याम हंस कोमल वचनी। मोह बड़ो कर लीजै जननी।।
मागंहु मै जब माषन मेवा। दूध दही घृत पुरी कलेवा।।
तब–तब देव निरष रुचि मोरी। होंहु सबल सबसैं कहु टेरी।।
रंगभूमि मैं कंस पछारौं। सबकौं सब विधि दुःष निवारौं।।
सुनत मातु हंस कण्ठ लगाए। रुचि कै भोजन तुरत कराएं।।
पुनि–पुनि बदन कमल कौं चूमैं। बड़ भागिन जसुमति हैं भूमैं।।"42

कवि 'निधानगिरि' के कृष्ण माँ से बड़ा कर देने की कामना करते हैं और दूध, दही तथा घृत पूरियों का कलेवा मांगते हैं ताकि वह सबसे अधिक बलशाली बन सकें और रंगभूमि में कंस को भी पछाड़ सकें तथा सभी का दुःख निवारण कर सकें। बाल्यकाल से ही बलिष्ट शरीर की कामना, सर्वोपरि शक्ति सम्पन्ता की इच्छा और दानवी शक्तियों को नष्ट करके समस्त लोक को सुख प्रदान करने का भाव सिद्ध करता है कि 'निधानगिरि' के कृष्ण लोक रक्षक के रूप में प्रारम्भ से ही सतर्क हैं। सूर ने अंगूठा पीते हुए कृष्ण के प्रसंग में सकटासुर के मारने की बात तो कही है किन्तु वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया गया है जो कि कवि कथन के अन्तर्गत है किन्तु 'निधानगिरि' ने कृष्ण के मुख से ही सीधे कंस को अर्थात् प्रतिपक्ष के खलनायक को संहार करने का प्रसंग उठाकर कृष्ण के बाल चरित्र को भी राष्ट्रीय संदर्भ प्रदान किये हैं। चरित्रों के इस प्रकार का परिवर्तन कवि की उद्देश्यनिष्ठता को व्यक्त करता है तथा यह भी सिद्ध करता है कि 'निधानगिरि' का कवि परम्परा से हटकर कितने मौलिक हैं। ऐसे प्रसंगों से सिद्ध होता है कि कृष्ण बाल्यकाल से ही पुष्ट शरीर होकर मोर्चे की तैयारी कर रहें हैं। कवि की चरित्र चित्रण में यह सैन्य भावना राष्ट्रीय और सृजनात्मक है।

कौशिल्या राम को गोद में लिये हुए कभी लेट कर दूध पिलाती है, कभी उठाकर कण्ठ में लगाती है, कभी हिलाती है और कभी गीत गाती है,। रानी के भाग्य की सराहना शिव और ब्रह्म भी करते नहीं थकते। कवि 'निधानगिरि' के शब्दों में–

> "सुभग सेज कौसिल्या सोहे। गोद राम शिशु विधि मुष जोहे।।
> कबहुं पौढ के दूध पिवावे। कबहुं उठाकर कण्ठ लगावे।।
> कबहुं हलावत पुलक शरीरा। बाल केलि गावतं गम्भीरा।।
> प्रेमामृत पीवत सुख पागी। सिव बिध कहत रानि बढ भागी।।"[43]

वात्सल्य के नए–नए क्षेत्रों का रसोन्मीलन करने में कवि की प्रतिभा अत्यन्त विदग्घ एवं रसग्राहिणी प्रतीत होती है। मां की यह आकांक्षा कि उसका शिशु कब बड़ा हो जायेगा, नुपुर कंगन और पहुँची कब पहनेगा, टोपी और झंगुली तथा श्रेष्ठ वस्त्रादि कब धारण करेगा और कब उसके बेटे को अलंकृत परिधानों में देखकर लोग सिहायेंगे? माँ के मन में उठने वाले इस प्रकार के भविष्यत् की परिकल्पनाएँ तो सूर के काव्य में भी दुर्लभ हैं। महाकवि 'निधानगिरि'की शब्दावली में –

> "अहो लाल मैया बलि जाई। होहु बड़े कब चारहु भाई।।
> नुपुर कंगन पहुँची आदी। टोपी झंगुली वर वस्त्रादी।।
> कब पहरैगें अंगन माहीं। देष–देष सब लोग सियाहीं।।
> कहत सुमित्रा लाइ उर प्रेम पुलक भर गात।
> निज चरनन सैं किलक कब चलहौं चारहु भ्रात।।
> मनि खम्भन प्रतिबिम्ब कब, अजर माहिं छलकाय।
> चलन नचन भागन हंसन मिलन मनोहर ताय।।
> नख शिष लौं भूषन बसन कब पहरौहुगे तात।
> तृन तोरे छवि निरष कैं लेत बलइया मात।।"[44]

मातृ अभिलाषाओं के मनोरम बिम्ब भक्ति मनोहर में प्रतिबिम्ब हुए हैं। मां की यह अभिलाषा कि बिना अर्थ वाली तोतली वाणी कब सुनने को मिलेगी और बिना श्रम के ही जन्म का फल कब मिलेगा, सहज ही माया और मोह का विनाश कब होगा अर्थात् शिशुओं की तोतली वाणी ही जिनके कोई विशेष अर्थ नहीं होते, वह भी फलवती हो जाती है। भाषा, काव्य और निरूक्त में बिना अर्थ के शब्द की कोई सत्ता नहीं होती किन्तु शिशुओं के तोतले वचन बिना अर्थ के ही रस निष्पत्ति करते हैं और सुखानुभूति प्रदान करते है। डॉ0 ललित का यह कथन कि 'निर्वचन से अनिर्वचन सुख को अभिव्यक्ति करने की कला या तो मौन में होती है अथवा शिशुओं की तोतली वाणी में', सत्य प्रतीत होता है।

वात्सल्य रस के अनूठे चित्र कवि'निधानगिरि'ने अपनी कल्पनाओं के माध्यम से व्यक्त किये हैं। कनक रत्नों से जटित पालना है, जिसे मदन शिल्पकार द्वारा बनाया गया है। उसे खिलौनों तथा कमलों की मालाओं से गूंथा गया है अंग प्रत्यंग की शोभा को देखकर माँ का मन भाव भावित हो उठता है। महाकवि'निधानगिरि'के शब्दों में–

"कनक रतनमय सोहत पलना। मनहु मदन बडई रचि झुलना।
लागे अति किंकिनी षिलौना। बहु विधि जलजहार छवि मौंना।
तिहि पालन रामंह पौढ़ाए। कौसिल्या मन मुदित झुलाए।
मोद कन्द रघुवंश वर कुमुद चन्द श्रीराम।
वत्स छबीले लाल कह झुलवत लै लै नाम।।
प्रेम मगन स्वर ताल बजावै। कीरत सुन्दर प्रभु की गावै।
केकि कण्ठ दुत घन तन छौना। पलना सोहत रूप सलौना।
कठुला मनिन जटित हिय माँही। केस कुटिल लटकन गुह ताही।
मोतिन गुच्छन की रच कीनी। भ्रू पर लटक करन ससि छीनी।
नील कमल दल राजिव लोचन। निरषत जे जन भव भय मोचन।"[45]

शिशु स्वाभाविक रूप से दोनों हाथों से पैरों को पकड़ रहा है और अंगूठे को मुंह से चूसना चाहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो नाग कमलों से भर–भरकर चन्द्रमा को छू करके अमृत का पान करना चाहता है–

सिसु सुभाव दुहु कर गह चरना। मुष पर करत प्रभा कवि बरना।
मनहु नाग कंजन सै भर–भर। लेत चन्द सै अमी परस कर।[46]

चारों पुत्र झूलने में पड़े हुए हैं। कभी–कभी प्यार में पलोटते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे शिशु लड़ रहें हों। परस्पर अंगों, प्रत्यंगों में एक दूसरे से मिलना अत्यन्त छविशाली दृश्य उपस्थित करता है–

"झूलत चंचल लगत षिलौना। तिनहि देष किलकत प्रभु छौना।
जनु आनन्द छवि बालक छोटे। लरत परस्पर प्रेम पलोटे।"[47]

प्रभु एकटक होकर अपनी प्रतिच्छाया को देख रहे हैं। माँ भयभीत है, कहीं शिशु डर न जाए? माँ की इस चिन्ता का एक चित्र देखें–

"इकटक प्रभु परछाहिं विलोकी। निरष निरष हरषत छवि रोकी।
माता देष देष भय पागै। डरन जाए सिसु नजर न लागै।
कनियां धाइ लिऐ रघुराई। उमा चरित प्रभु कह न सिराई।"[48]

माँ की चिन्ता यह भी है कि उसका बालक गायों को चराने जाता है, वह चाहती है कि कृष्ण उसके पास ही खेलता रहे। गाय कृष्ण को न मारे अतः वह कृष्ण पर उतार करती है–

"गोपि धैनु गन गनत घनैरे। षेलत निकट रहौ तुम मेरे।
गाय कांन कौं कहू न मारै। अस कह लाल उतार पधारै।"[48]

बालक के हंसने पर माँ हंसती है और उसके उदास होने पर वह भी उदासीन हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे छाया के प्रतिबिम्ब का प्रकाश हो –

"लिये गोद भर मोद सुमित्रा। सोवहु बाल भानकुल मित्रा।
तुम हंस हंसत उदास उदासा। जिन छाया प्रतिबिम्ब प्रकाशा।
तुम सब जीव जिवावनवारे। सबको मंगलदायक प्यारे।"[50]

माँ सुमित्रा हृदय से पुत्र को लगाकर, गा–गाकर हिलाती हुई, नींद को बुला रही है। कवि के शब्दों में–

"गाइ गाइ हलराइहौ सुष की नींद बुलाइ।
कह दुलरावै वत्स भल लाल छबीले माइ।
छगन मगन अब सोहिए नींद समय दरसान।
हृदय लगाइ लगाइ कह मुदित सुमित्रा रान।"[51]

'निधानगिरि' की सुमित्रा नींद को बुलाती है और नींद उसके आमन्त्रण पर आती है, इतना ही नहीं नींद बालक को सुलायेगी साथ ही दुर्भाव दृष्टि को अलग करेगी, डीठ, मूंठ, टोना को नष्ट करेगी, रोगों का निवारण करेगी तथा शिशु को आरोग्य प्रदान करेगी–

"लालन नींद कहत मैं आऊँ। सुष सौं चारहु भाइ सुवाऊँ।
त्रिय दुरभाव दिष्ट बिलगाहौं। डीठ, मूठ, टौना बिनसांहौं ।
तन विल विल चारौं कर नीके। रोग निवारहु सिसु सब हीकै।
जागत गोद लियै हलरावहुँ। बोलन किलकन हसन करावहुँ।"[52]

करुण-वात्सल्य के अन्तर्गत राम के वियोग में मातृ हृदय की पीड़ा का एक चित्र देखें–
"सुन रनिवास दृगन जल ढ़ारी। रघुवर विरह पीर उर भारी।
प्रभु बिन मंदिर जब अविलोकी। नित प्रति होत दुगुन दुष सोकी।
रघुवर बाल केल सुष सूला। सुमरत प्रगट मात उर सूला।
मांग कलेऊ कौंन प्रभाता। रूठ चलै रावत को ताता।
किहिं कौं हृदय लगावहुं धाई। जियत सहौं दुष मर पछताइ।
विपन गमन अवसर सुत केरा। बदन मंयक न दृग भर हेरा।
चरन कमल सैं कोमलताई। बहरे अजर नहीं निकसाई।
सौ पद विपन चलैं कहुं कैसे। समझत हृदय वज्र लग जैसे।"[53]

पुत्र के वियोग में माँ व्याकुल होती है। धनुष और वांण को देखती है। उन्हें हृदय से लगा लेती है। माँ की विकल अवस्थाओं का वर्णन कवि ने बड़ी मार्मिकता के साथ किया है–

"सुत वियोग के विरह में कौसिल्या बिलषात।
धरे चाप सर षेल के निरष निरष दुष गात।।
सुन्दर पनही राम की लोचन हृदय लगाइ।
कबहूं प्रथम प्रभात सम सोवत सदन जगाइ।।

कबहूं रघुवर वनगमन समझ हृदय भर नैन।
रहत चित्र कै सी लिषी कहत बनत नहि बैन।।
विपन गमन श्रीराम कौं सपनो है कै सांच।
नहीं कोऊ समुझाइ मुह सषी हृदय दुष मांच।।"[54]

कृष्ण के मथुरा–गमन प्रसंग में मातृ हृदय का कारुणिक चित्रण कवि ने करुण वात्सल्य के रूप में किया है–

"यह सुन गिरी धरन तब माई। कह अक्रूर ठगौरी लाई।
लियै जात दोऊ सुकुमारा। वृद्ध समय किय घाउ दुधारा।
बैठे रथ पर जुगल कुमारा। जसुमत लोटत धरन पुकारा। "[55]

रौद्र रस

जहाँ विरोधी दल की छेड़खानी, अपमान, अपकार गुरूजन–निन्दा तथा देश और धर्म के निरादर आदि से प्रतिशोध लेने की भावना जागृत होती है, वहाँ रौद्र रस होता है। रौद्र रस के अंग इस प्रकार है– वर्ण–अरुण, देवता–रुद्र, स्थायीभाव क्रोध, विभाव–आलम्बन शत्रु एवं उसका पक्ष आदि। उद्दीपन–शत्रु द्वारा किये गये अनिष्ट कार्य, अपमान, अपकार, कठोर वचन आदि। अनुभाव–नेत्रों व मुख मण्डल पर लालिमा, भृकुटि भंग, दाँत किटकिटाना, अधरों को चबाना, आँखें ततेरना, कटु शब्दों का उच्चारण करना, गर्जन–तर्जन, शस्त्रों का उठाना, आवेग रोमांच, कंप, मद, असूया अपने कार्यो की प्रशंसा आदि।

रौद्र रस का स्थायीभाव क्रोध है। जिसमें संहारक शक्ति निहित है। अनिष्ट करने वाले प्रतिपक्षी से प्रतिशोध लेने की भावना क्रोध में निरन्तर जागृत रहती है। यद्यपि क्रोध कोई प्रशंसनीय भाव नहीं हैं। फिर भी क्रोध के अभाव में आत्मगौरव की भावना प्रायः समाप्त हो जाती है। अतएव स्थायीभाव क्रोधयुक्त रौद्र आत्मगौरव रक्षक एवं अपकार प्रतिशोधक होने से महत्वपूर्ण है।

'भक्तिमनोहर'में भीम द्वारा जरासन्ध दानव के वध के प्रसंग में भीम द्वारा क्रोधपूर्वक जरासन्ध को चीरकर भूतल पर फेकने के वर्णन में रौद्र रस का परिपाक हुआ है–

"जरासन्ध कौ गह चरन पटको बीच अखार।
एक जाधं पर पग धरो दूसर पद कर धार।।
अधिक क्रोध कर भीम ने, चीरो जनु दातौन।
डार खण्ड भूतल दये, मृतक भयो दुःख भौन।।"[56]

भयानक रस

भयोत्पादक वस्तुओं के देखने व सुनने से अथवा प्रबल शत्रु आदि के विद्रोहपूर्ण आचरण से जब हृदय में वर्तमान भय स्थायीभाव होकर परिपुष्ट होता है तब भयानक रस उत्पन्न होता है। भयानक रस के अंग–वर्ण–कृष्ण, देवता कालदैव (भैरव), स्थायीभाव भय। विभाव–आलम्बन–व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु निर्जन स्थान, शमशान वन, अत्याचारी शत्रु, भूत, प्रेत आदि। उद्दीपन–शत्रु

या हिंसक जीव की भयानक चेष्टा, असाहय होना, भंयकर दृश्य, भयानक स्थान की निर्जनता, निस्तब्धता, विस्मयोत्पादक ध्वनि आदि। अनुभाव रोमांच, स्वेद कंप, रुदन, कंठावरोध, स्वर भंग, गिड़िगिड़ाना, वैवर्ण्य, करुणाजनक काव्य आदि। संचारीभाव–त्रास, जुमुप्सा शंका, चिंता, मूर्छा, आवेग, दैन्य, मोह, ग्लानि, दीनता, अपस्मार आदि हैं।

भयानक रस अपने मूल में संरक्षण की प्रवत्ति को संजोए रहता है। भयानक रस का मूल भय है जो दुखादि की आशंका से मन क्षेत्र को पूर्णरूपेण व्याप्त रखता है। पलायन प्रवृत्ति इसी के अन्तर्गत रक्षण के ब्याज से विद्यमान रहती है। अपमान या दुःख के कारण करुणा अथवा वियोग भय के कारण श्रृंगार आदि रसों में भी इसकी व्याप्ति पायी जाती है। यही भय आनन्द का रूप धारण कर लेता है और अदभुत में भी अस्तित्वमान हो उठता है। धर्मक्षेत्र मेंआकर यह धर्मभीरुता का रूप धारण करके एक गुण रूप आरितकता का आश्रय बन जाता है। इस प्रकार भयानक रस अपने महत्व को अक्षुण्ण बनाये हुए है।

लंका–दहन के प्रसंग में हनुमान द्वारा जिस आग को प्रज्जवलित किया गया है, ासकी लपटों से लंका पुरी जल रही है। दशानन और मंदोदरी दोनों व्याकुल हो उठे हैं कोई हॉथी, कोई घोड़े छोड़ने को अधीर हो रहें हैं, कोई अग्नि के बीच जल रहें हैं और कोई जल उलीच रहें हैं। पानी–पानी की आवाज लगाते हुए, वस्त्र और आभूषणों के जलने तथा हा–हा कार की ध्वनियों के जो चित्र 'निधानगिरि'ने चित्रित किये हैं वे भय स्थायी को भयानक रस तक ले चलने में सर्वथा समर्थ सिद्ध हुए हैं। महाकवि का शब्द विधान दृष्टव्य है–

"जात घान अकुलान, विकल जाम घानी सकल।
देखत कोप कृसान हा–हाकार पुकार सब
जित जित जरत निकेत समूहा। झपट लपट लागत भट जूहा।।
कोउ कह हाय हाथी छोरो। महषी बृषभ निसार बटोरो।।
कोउ परे अगिन के बीचा। कोंउ तन पर वार उलीचा।।
हा हा तात मातु कह कोउ। भगनी भामिन संग न सोउ।।
पुत्रन सैं कह भाज अभागे। प्रबल हुसातन जारन लागे।।
कोउ भजत जात जल मागैं। कोउ काहु संग न लागै।।
पानी–पानी कह वररानी। गजगामिन तै जात परानी।।
बसन विभूषन जरत बिसारे। सूखे मुंख दुख प्रगटे भारे।।
सुन पुर हा हा कार धुन दस सिर करत प्रचार।
धाइ –धाइ मेलौ सलिल सावन जल अनुहार।।
भर भर डारत सकल झपट लपट झहरान।
भये विकल जे भट प्रबल भाजत नारि समान।।"[57]

'भक्तिमनोहर' में भयानक रस का एक बिम्ब निधानगिरि के शब्दों में–

"जृंभाइ लेत पसार आनन भयंकर जनु काल से।
बहु दंत चमक कराल दीपत मनहु पग विसाल से।।

रसना लफावै वाखारहि अंतरछु कैसी मनू।
ऊँचे श्रवन गिर कंदरा सम नाक बड़ चौड़ी हनू।।
अति पुष्ट ग्रीवा कंठ केसर वज्र सम छाती महा।
सितराम गन ससि करन लाजत निपट कठ कृस अस कहा।।
भुजवर प्रलंब प्रचंड लस नष वृंद जनु हथयार से।
तीषन नषत कौं देष भय वस चक्र आदि कहार से।।" [58]

वीभत्स रस

घृणित वस्तु के देखने से जहाँ घृणा जुगुप्सा का भाव परिपुष्ट हो, वहाँ वीभत्स रस होता है।

वीभत्स रस के अंग–

वर्ण–नीला, देवता–महाकाल, स्थायीभाव–जुगुप्सा, आलम्बन–दुर्गधिंत मांस, रुधिर, चर्बी, वमन, श्मशान, शव, मल–मूत्र, दुर्गधिन्त द्रव्य आदि घृणोत्पादक वस्तुएँ और विचार। उद्दीपन विभाव–गीधों का मांस नोचना, मांसभक्षी जीवों का मांसार्थ युद्ध, कीड़े–मकोड़ो का बिलबिलाना, आहत–आत्मीय का छटपटाना, कुत्सित तथा विकृत रूप रंग आदि। अनुभाव–थूँकना, मुँह फेर लेना, आँखें बन्द कर लेना, स्वयं वमन करने लगना, कान पर हाथ रखना, धिक्कारना आदि। संचारी भाव इस प्रकार हैं– मोह, आवेग, ब्याधि, जड़ता, चिन्ता, अपस्मार, मरण, उन्माद, निर्वेद, ग्लानि, दैन्य आदि।

वीभत्स रस को प्रधानता देकर किसी काव्य की रचना नहीं की गई। इसके आस्वादन की तीव्रता एवं वैचित्र्य के कारण रसों के मध्य इसका अक्षुण्ण स्थान बना ही रहेगा। निधानगिरि के 'भक्तिमनोहर महाकाव्य में वीभत्स रस का वर्णन किया गया है। वहाँ भूत, प्रेत, वैताल, योगिनी नृत्य और गान कर रहे हैं। खप्पर लिए हुए रुधिर पान कर रहे हैं। पिशाच-वधूटियाँ नृत्य कर रही हैं, खग, काक, श्रृंगाल प्रसन्न होकर मांस खा रहे हैं। कवि के शब्दों में –

"जहँ मूत प्रेत विवाल, जनु मज्जही मुनिमाल।
बहु जोगिनी कर गाान, मरती लिये षपरान।
सरतीत जनु पनहार, चल हंस चाल समार।
नाचहि पिसाच वधूट, फिर लेत श्रोनित घूँट।
षग काक कॅंक श्रृंगाल, मक मास मोद विसाल।
मक मास मोद विसाल षग वहु गीध गह आतैं उडै।
जनु वाल येकै गुन लियै घर चंग परषे कै चड़े।
बलवान मरकट माल अति श्री राम अनुकंपा यहाँ।
मोर तमीचर जुत्थ जुथ्थन वचा दसंकघर तहाँ।" [59]

शिशुपाल–वध के प्रसंग मे कवि निधानगिरि ने वीभत्स का चित्रण किया है–
"श्रगाला बिसाला कितीं लोथ फारैं।
लियै गिद्ध कागा सु आंतै सिधारै।
करै जोगनी गांन पींवत रक्ता।
डकारै हकारै सुनै दैत्य चक्ता।"[60]

अद्भुत रस

किसी विचित्र वस्तु को देखने या सुनने से जो भाव उत्पन्न होता है, वहीं विभावादि से पुष्ट होने पर अद्भुत रस के रूप में व्यक्त होता है। अद्भुत रस का वर्ण–पीत, देवता ब्रह्मा, स्थायी भाव आश्चर्य या विस्मय आदि। इसके विभावादि के आलम्बन पक्ष–अलौकिक व्यापार, अद्भुत वस्तु, असंभावित कार्य व्यापार, विचित्र दृश्य, आश्चर्यजनक व्यक्ति आदि। उद्दीपन विभावादी में–विस्मय कारक वस्तु की विलक्षण तथा अलौकिक घटना का आकस्मिक रूप में घटित होना। अनुभाव में आंखे फाड़ कर देखना, पुलक, स्तम्भ, स्वेद, मुख पर हर्ष और घबराहट आदि के चिन्ह आदि। संचारी भावों में भ्रान्ति, हर्ष, वितर्क आवेग, उत्सुकता, स्वेद स्तम्भ, मोह, त्रास जड़ता, चंचलता, चिन्ता आदि हैं।

कतिपय आचार्यों के मतानुसार अद्भुत रस सर्वप्रमुख रस माना गया है। अद्भुत रस को प्रधानता देने वाले नारायण पण्डित का तर्क है कि रस का सार ही चमत्कार है और उस चमत्कार का सार स्वरूप अद्भुत रस है तथा चमत्कार की विलक्षणता ही मन को अपनी ओर खींचती है। इस विलक्षणता का स्रोत एक मात्र अद्भुत रस ही है। चमत्कार के बिना रस सार विहीन हो जाता है। चमत्कार सर्वत्र भासित होता है। साहित्यदर्पण कार विश्वनाथ ने धर्मदत्त की मान्यता–"सर्व रसों का मूल 'चमत्कार' अद्भुत में सर्वाधिक है को उदधृत करते हुए लिखा है–

"रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते। तज्जमत्क्रारसारत्वे सर्वत्राप्यदृभुतो रसः।।"[61]

अर्थात् चमत्कार रस का सार है। सर्वत्र चमत्कार ही दिखाई पड़ता है। अद्भुत चमत्कार का सार है। अतः सर्वत्र अद्भुत रस ही है। इस प्रकार कतिपय आचार्यों ने अद्भुत रस को श्रृंगार, करुण, शान्त, वीर के समकक्ष बताने का प्रयास किया है। इतना ही नहीं, अपितु अद्भुत को रसराज तक मान लिया है। हनुमान जी द्वारा लंका दहन किया जा रहा है जलती हुई लंका को देखकर दसानन ने मेघों को मुसलाधार वृष्टि करने का आदेश किया। बादल लंका पुरी में जलवृष्टि करने लगे किन्तु राम का विरोध करने के कारण उस जल की धारायें सर्पाकार हो गयीं। महाकवि 'निधानगिरि' ने इस 'आश्चर्य' जनक दृश्य को अद्भुत रस में रूपान्तरित किया है–

"कोप दसानन मेघ बुलांए। आइस पाए सकल चल आए।।
तिनको दसमुष दीन रजाई। जात लंक पुर देउ बुझाई।।
महावारि मैं बानर बोरौं। बेग बहाय मारि तन घोरौं।।
नाइ माथ बादर चले बरसे मुसलाधार। भयो वार तब सर्प सम, राम विरोध विचार।।
बढ़त गगन को ज्वाल घन जूहा। गरे ग्लानि सकोच समूहा।
सकल बलाहक आन पुकारे। हम द्वादस दिन नाथ निहारे।।
पुनि अनन्त मुष अनल विलोकी। अधिक कृसान जरत हम रोकी।
अस कबहू कहु सुना न काना। नीर भयौ है घीव समाना।।
अति आचरज कहा नहिं जाई। सुन दसकन्ध रहा सिर नाई।।"[62]

रामजन्म के अवसर पर अवधपुरी में जिस भण्डार से जो कुछ दान किया जाता है, दान के बाद वह दुगुना हो जाता है आश्चर्यजनक इस घटना का वर्णन कवि निधानगिरि ने किया है–

"लेतदान पुनि देत हैं औरन को हरषाय।
औरन औरन देत हैं सम्पद बरन न जाय।।
देत जाचकन दान बहु अवधपुरी नर नार।
बिथरे मुक्ता रतन मनि जनु चावर जव ज्वार।।
जेहि भँडार सै देत हैं दुगुन होत तिहिं काल।
पूरन राम प्रताप सैं सम्पद् नगर विशाल।।
जो मूरत मुनि मन अगम निगम न बरन सिराय।
सो कौसिल्या गोद में किलक–किलक मुस्काय।।"[63]

हास रस

'साहित्य-दर्पणकार' के अनुसार "वागादिवै कृतैश्चेतो विकासोहास उच्चयते![64] अर्थात् किसी व्यक्ति या पदार्थ का साधारण से भिन्न विकृत आकृति, विचित्र वेशभूषा और बातचीत, विभिन्न प्रकार की चेष्टा आदि को देखकर हृदय में जो विनोद का भाव उत्पन्न होता है, उसे 'हास' कहते हैं। यह 'हास' स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव से पुष्ट होकर 'हास्य रस' कहलाता है। हास रस के अंग है– वर्ण–स्वेत, देवता–प्रमथ, स्थायीभाव–हास, विभावादि–विकृत रूप, विचित्र वेशभूषा, आकार आदि, व्यंग्यपूर्ण वाक्य, मूर्खता भरी चेष्टाओं का देखना या सुनना आदि। उद्दीपन विभाव आश्रय की चेष्टायें, हास्यापद बातचीत, विचित्र अंग–भंगिमा, क्रिया कलाप, विलक्षण चेष्टायें। अनुभाव आदि इस प्रकार हैं, कपोल नासिका तथा ओठों का स्फुरण, आँखों का मिचना, मुख का विकसित होना, पेट का हिलना, व्यंग्य भरे वचन कहना, आँसू आना आदि। संचारी भाव–हर्ष, अवहित्था, निद्रा, आलस्य, स्मृति, चपलता, रोमांच, असूया आदि। हास रस के छः भेद होते हैं। स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित, प्रतिहसित हास्य स्वभावजन्य, सहज–प्रवृत्ति एवं उद्भावक है। क्रीड़ा प्रवृत्ति के रूप में भी इसे माना जा सकता है। इस प्रकार शैशव से लेकर हँसते–हँसते मृत्युवरण करने में भी यह अस्तित्वमान है। अतः स्थिरवृत्ति के रूप में यह महत्वपूर्ण है। वाक्य चातुरी, व्यंग्य, वकोक्ति, आदि में प्राणस्वरूप हास्य की विद्यमानता अनिवार्य रूप से पायी जाती है। उत्साह शक्ति को उच्छवसित करने में हास्य रस महत्वपूर्ण कार्य करता है। अतएव ग्राहाता एवं व्यापकता के दृष्टिकोण से यह महत्वपूर्ण ही है, साथ ही मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि से भी इसका अत्यधिक महत्व है।

पवन कुमार लंका को जला रहे है मानो उसमें नानाप्रकार के पकवान बनाये जा रहे हैं और अग्नि देवता को पाहुन बनाकर अत्यन्त सम्मानपूर्वक परस–परस कर (अग्नि का स्पर्श कराकर) वॉया कराया जा रहा है। इस प्रसंग में कवि ने हास्य रस की सृष्टि की है। कवि निधानगिरि के शब्दों में –

"कनक कराही लंक बनावा। आपुन क्रोध षजा का भावा।।
पुर मे जात धानु बलवाना। नाना विघ कीने पकवाना।।
पाग–पाग टेरी कर दीनै। अगिन पाहुनैं सादर कीनैं।।
परसत हर्ष समीर कुमारा। अति सम्मान जिवाय सभारा।।"[65]

एक अन्य प्रसंग है कुंभकर्ण को अचेत अवस्था से जगाने का, जिसमें कवि ने हास्यरस की सृष्टि की है। दानव के शरीर में सुगंध का लेप किया जा रहा है। उसके कानो के पास भारी शब्द जा रहे हैं। गोमुख, तुरही और नगाड़े बजाये जा रहे हैं, फिर भी वह नही जाग रहा। कोई उसके बाल पकड़कर खींच रहा है, कोई उसके कान खींचते हुए डर रहा है, कोई सिर और वाहु बाँध रहा है। खींचने से नहीं खिंच पा रहा है। कोई मूसल और गदा प्रहार कर रहा है। कोई बहुत बड़ा बोझा उसके ऊपर गिरा रहा है। जब किसी तरह से कुंभकर्ण नहीं जागा तो उसके ऊपर मतवाले हाथियों को कई बार इधर–उधर फिराया गया। इस प्रकार से हास्य की भरपूर साम्रगी कवि ने एकत्र की है। प्रतिपक्ष के दानव पर हास्य किया गया है जो विनोद की साम्रगी उपस्थित करता है। कवि निधानगिरि के शब्दो मे–

"लेपत अंग सुगंध अपारा। करत सब्द श्रवनन हो भारा।
बाजत गोमुष तूर नगारे। संष मृंदग धोर अधिकारे।
कोउ केस पकर के तानै। कोउ श्रवन षैंच भय मानै।
कोउ पास बांध सिर बाहू। षैचों षिचत न बल थल जाहू।
कोई मूसल गदा प्रहारै। कोउ डार भार बहु मारै।
जगा न कीन उपाय घनेरे। बाज उरस्ट षरजू पर फेरे।
तदिन न जाग निसाचर भारी। पच पच हार रहे धनुधारी।
मत्त मतंग सहज बुलवाए। तिहि तन पर बहु बार फिराए।"[66]

शान्त रस

संसार की असारता, सांसारिक वस्तुओं की क्षण-भंगुरता तथा परमात्मा के रूप का ज्ञान होने से चित्त को ऐसी शान्ति मिलती है जो सांसारिक विविध भोगों से कभी नहीं मिलती। इसी शान्ति का वर्णन पाठक या श्रोता के ह्रदय में 'शान्त रस' की उदभावना करता है। कुछ विद्वान शान्त रस को स्वीकार नहीं करते। शान्त रस को मानने वालों में कोहल, उदभट, अभिनव गुप्त ने शान्त का रसत्व सिद्ध करने का प्रयास किया है।

(क) "क्वचित धर्मः क्रीड़ा क्वचिदर्थः क्वचित शाम।[67]

(ख) दु:षार्तानां श्रमार्ताना शोकार्ताना तपस्विनाम्।
विश्रान्तजननं लोके नाट्यमेतत भविस्यति।।"

आचार्य विश्वनाथ भी शान्त को नवम रस मानते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार इस जगती तल पर सर्वथा अभाव ही विद्यमान है। इस संसार में राग द्वेष का अखण्ड साम्राज्य उजृम्भित हा रहा है। व्यक्तियों का ह्रदय राग द्वेष की वृत्तियों का क्रीड़ा स्थल है। जिसके वश में होकर जीव किसी से प्रेम करता है तथा दूसरे से वैर करता है। यह प्रवाह इतना प्रबल

होता है कि उसका उन्मूलन करना नितान्त असाध्य है। आनन्दवर्धन के मत में शान्त रस के मुख्य कारण हैं, 'सर्वजनानुभव गोचरता का अभाव'। रस के लिए सर्वजनों के अनुभव का गोचर होना नितान्त आवश्यक है।

अन्तर्भाववादी शान्त रस की सत्ता तो स्वीकार करते हैं परन्तु उसे स्वतन्त्र रस की स्थिति में रखना पसन्द नहीं करते। यथा स्त्री पुरुष रूप आदि आलम्बन विभावों से जो रति स्थायीभाव जहाँ श्रृंगार रस को उत्पन्न करता है वहीं रति स्थायीभाव आध्यात्म चर्चा आदि विभावों से परिपोष को प्राप्त का शान्त-रस को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार हास आदि अन्य स्थायी भाव भी अपने विभावों को छोड़कर श्रुत आदि अन्य विभावों के द्वारा शान्त रस को उत्पन्न करते हैं। समस्त वस्तुओं के विकृत होने से हास्य रस का स्थायी भाव हास शान्त रस को उत्पन्न करते हैं। करुण, रौद्र, वीर, विभत्स, अद्भुत आदि स्थायी भावों के द्वारा आत्मस्वरूप की प्राप्ति के कारण विस्मयप्राप्त साधक को अद्भुत रस का स्थायीभाव 'शान्त रस' की अनुभूति कराता है।

आचार्य मम्मट ने निर्वेद को शान्त रस का स्थायीभाव माना है– 'निवेदस्थायीभावोऽपि शान्तोऽीप नवमो रसः!'[68] इसके अनुसार तत्वज्ञान से होने वाला निर्वेद रस का स्थायीभाव है। जिस निर्वेद की उत्पत्ति दारिद्रय आदि से होती है, यह तत्व ज्ञान रूपकारक के भिन्न होने से उस निर्वेद से भिन्न है, जो शान्त रस का स्थायीभाव है। तत्वज्ञान से उत्पन्न हुआ निर्वेद ही मोक्ष का कारण है। इसलिये भरत ने नाट्यशास्त्र में व्यभिचारी भावों की गणना में निर्वेद को पहले गिनाया है। क्योंकि तत्वज्ञान निर्वेद ही शान्त रस का स्थयीभाव है तथा मोक्ष का साधन है। जिन विद्वानों ने शान्त रस के स्थायीभाव को शम माना है। उनके निष्कर्ष इस प्रकार हैं–

1. भरत के अनुसार 'शम' नामक स्थायी भाव है।[69]
2. अभिनव भारती में 'शान्तोनाम स्थायिभावात्मकः' कहा गया है।[70]
3. हेमचन्द्र भी 'तृष्णाक्षयरूप शमः स्थायीभावाः' लिखते हैं।[71]
4. विद्यानाथ भी 'वैराग्यादिना निर्विकारचित्तत्वम् शमः' शम को स्थायीभाव स्वीकार करते हैं।[72]
5. आचार्य विश्वनाथ ने युक्त वियुक्त दशा में अवस्थित 'शम' को स्थायीभाव स्वीकार किया है।[73]
6. 'रामचन्द्र गुणचन्द्र भी 'शम' स्थायी शान्तो रसो भवति' कहते हैं।[74]

निर्वेद को शान्त रस का स्थायीभाव मानने वाले विद्वानों के अभिमत इस प्रकार हैं–

1. 'श्रृंगार हार कर्ता' हम्मीर ने निर्वेद को नवम स्थायीभाव शान्त रस का स्वीकार किया है।[75]
2. पण्डितराज जगन्नाथ ने 'नित्यानितवस्तुविचार जन्माविषयविरामाख्र्यानिर्वेदः को शान्त रस का स्थायी भाव कहा है।[76]
3. कुछ प्राचीन विद्वानों के अनुसार भरत ने संचारियों में निर्वेद को प्रथम मानकर उसे स्थायी भाव का गौरव प्रदान किया है।[77]
4. भूदेव शुक्ल ने तत्वज्ञान से वैराग्य कहाने वाली चित्त वृत्ति को निर्वेद कहा है। वह शान्त रस का स्थायी भाव है।[78]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि विद्वानों ने शान्त रस के स्थायी भाव के विषय में विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। वस्तुतः तत्वज्ञान से उत्पन्न 'शम' और निर्वेद एक प्रकार की चित्तवृत्तियाँ हैं। क्योंकि तत्वज्ञान उचित–अनुचित, युक्त–अयुक्त, स्थिर–अस्थिर, नश्वर–अनश्वर, माया–अमाया के विवेक को ही कहते हैं। 'महाकवि निधानगिरि' कृत भक्तिमनोहर में शान्त रस के कतिपय चित्र दृष्टव्य हैं–

(क) "कर आचरन भागवत धर्मा। धर्म विरोध जतै ते कर्मा।
दृढ़ विश्वास राष अस भांती। सरनागत हौं असुर अराती।
मम अपराध विलोकत भाई। करहिं छिमापन राम गुसाई।
दोऊ लोकन रक्षक मेरौं। आप सिवाइ न दूसर हेरौ।"[79]

'भक्तिमनोहर' में उद्दव द्वारा गोपिकाओं के प्रबोध के प्रसंग में शान्त रस का परिपाक कराया है। कवि निधानगिरि के शब्दों में–

"ईश्वर पर पूरन सब माही। तुमरे ह्वदय दूर कहू नाही।
महा तत्व आपहिं बलवीरा। गगन घरन जल अनल शरीरा।
आपहिं नार पुरुष पित माता। आपतिं भ्रात सुवन तनु जाता।
आपहिं धन धरंक महिपाला। आप निरजंन श्री गोपाला।
आद न अन्त अलष अविनासी।अस विध दीसा स्वयं प्रकासी।[80]

'भक्ति-मनोहर' में भक्ति-रस

भक्ति-रस काव्य के अन्य रसों की अपेक्षा निम्नलिखित बातो में श्रेष्ठ है–

1. श्रृंगार, हास्य आदि रसों का आनन्द तो ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है पर भक्ति रस का आनन्द साक्षात ब्रह्मानन्द है। आलम्बन भेद के करण अन्य रस जडोन्मुख हैं जबकि भक्ति रस का आलम्बन ईश्वर होने के कारण वह चिन्मुख है। मधुसूदन सरस्वती कहते हैं–
"किंज्चयून्यूना च रसतां याति जाड़यविमिश्रणात्।"[81]

वस्तुतः रस के ब्रह्मानन्द सहोदर होन के लक्षण की व्याप्ति भक्ति रस में ही है। अन्य रस ब्रह्मानन्द की यथा तथ्य प्राप्ति नहीं करा सकते। रूप गोस्वामी के मत में तो भक्ति रसानन्द सर्वोपरि हैं, ब्रह्मानन्द इसकी तुलना में नहीं टिक सकता। उन्होंने भक्ति रस के आनन्द को 'सान्द्रानन्दविशेवात्मा' कहा है। भक्ति की काव्य रस के रूप में प्रतिष्ठा होन पर उसका आनन्द किसी शुकदेव जैसे महायोगी को ही हो सकता है, जबकि भक्ति रस का अनुभव केवल सूर, तुलसी, मीरादि को नहीं होता, वरन् सहृदय मात्र को होता है।

2. भक्ति-रस का सम्बन्ध मानव जीवन के परम पुरूषार्थ मोक्ष से है। यह मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। भक्ति रस सागर में आहवान करने से संसार रूपी कूल–किनारे विलान हो जाते हैं और चित्त शाश्वत आनन्द में गोते लगाने लगता है। भक्ति का उद्देश्य दिव्य ईश्वरीय प्रेम की उत्पत्ति करते हुए सांसारिक बंधनों को समाप्त करना है।

3. भक्ति रस की विशेषता यह है कि भगवत प्रेम सदानन्दैक रस रूप है। इस कारण इस रस में विषय और आश्रय दोनों ही रस स्वरूप होते हैं। यहाँ भगवान की लीला, उसका स्थान, वंशी, वंशी ध्वनि, भगवान के अलंकार आदि उद्दीपन सभी रस स्वरूप होते हैं। आशय यह है कि रस के सभी अवयवों का निरूपण न कर, केवल उद्दीपन, या आलम्बन आदि के वर्णन से ही भक्ति रस की पूर्ण निष्पत्ति हो सकती है।

4. भक्ति रस में शान्त रस की भाँति अभिनेयता की समस्या भी नही है। भक्ति रस पूर्ण नाटकों एवं रूपकों का रंगमंच पर सफलतापूर्वक अभिनय किया जा सकता है। भक्त के विभिन्न अनुभावों–भगवान के गुणों का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद–सेवन, अर्चन, वन्दन, आत्म–निवेदन आदि तथा भगवान की विभिन्न लीलाओं एवं भक्तों के विलक्षण चरित्र के प्रदर्शन एवं सहृदयों द्वारा उनकी रसानुभूति में कोई कठिनाई नहीं है।

5. साहित्य के आचार्यों ने काव्य रस की स्थित सामाजिक में ही मानी है परन्तु भक्ति रस की एक बड़ी विशेषता यह है कि यह रस अनुकार्यनिष्ठ भी होता है क्योंकि भगवान स्वयं रस स्वरूप है। भगवान जिस प्रेम रस का आस्वादन करते हैं उसमें उनकी रति के कारण, कार्य और संचारीभाव अपने स्वाभाविक रूप को छोड़ रस के कारण, कार्य आदि नही बनते हैं।

6. भक्ति रस केवल कल्पना नहीं, नितान्त सत्य है। श्रृंगार, वात्सल्यादि अन्य रसों के अस्तित्व की सच्चाई जितनी ठोस है, उससे कहीं अधिक सत्य भक्ति रस की उपलब्धि है। भारतीय संस्कृति के विकास एवं उत्कर्ष में भक्ति रस का विशेष योगदान रहा है।

स्थायीभाव पर विचार

भक्ति रस के स्थायीभाव के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार–वैभिन्य दृष्टिगत् होता है। संस्कृत साहित्य–शास्त्र में एक ऐसे मत का उल्लेख मिलता है जिसमें भक्ति रस का स्थायीभाव 'श्रद्धा' माना गया था।[82] भक्ति में इष्टदेव के प्रति पूज्य बुद्धि का भाव या श्रद्धा अवश्य रहती है, पर प्रधानता प्रेम की रहती है अतः भक्ति रस का स्थायीभाव 'श्रद्धा' मानना ठीक नहीं है। वोपदेव ने भगवन्मनों–निवेश को[83], रूपगोस्वामी ने 'कृष्णरति'[84] को मधुसूदन सरस्वती ने भगवदाकारता को तथा कवि कर्णपूर ने देवविषयक रति को भक्ति रस का स्थायीभाव माना है।[85] हिन्दी के विद्वानों में भी श्री कन्हैया लाल पोद्दार 'भगवतद्विष्यकअनुराग को, श्री रामदहिन मिश्र ईश्वरनुराग को तथा डा0 भागीरथ मिश्र भगवत्प्रेम को स्थायी मानते हैं।

हमारे विचार से भक्ति रस का स्थायीभाव भगवद्रति मानना ठीक रहेगा मध्युगीन हिन्दी वैष्णव भक्ति काव्य में राम तथा कृष्ण दोनों से सम्बन्धित रति रस रूपता को प्राप्त हुई है। रूप गोस्वामी का स्थायीभाव एकांगी है। वह राम-विषयक रति को नहीं समेट पाता। भगवद्रति से राम विषयक तथा कृष्ण विषयक दोनों रतियों का बोध हो जाता है। तात्विक दृष्टि से भगवद्रति एवं भगवदाकारता में कोई विशेष अन्तर नही है। साहित्यशास्त्र में प्रेम के लिए रति शब्द का प्रयोग होता आया है अतः भगवद्रति ही ठीक है, देवविषयक रति कहने से समान देवों के बोध होने का भ्रम हो सकता है जिससे सम्बन्धित रति पूर्ण रसरूपता को प्राप्त नहीं हो पाती। भगवद्रति को भक्ति रस का स्थायीभाव मानने से भक्तिरस श्रृंगार रस के अधिक

निकट आ जाता है। केवल आलम्बन को छोड़कर भाव का मनौविज्ञान दोनों अवस्थाओं में (लौकिक तथा ईश्वरीय प्रेम) एक सा ही रहता है।

हिन्दी के मध्युगीन वैष्णव भक्ति काव्य में भगवद्रति की अभिव्यक्ति पांच रूपों में हुई है। तद्नुरूप भक्ति रस के भी पांच भेद समन्वय करते हुए इन रसों के भी पांच भेद होंगे। परम्परागत् काव्य शास्त्र एवं रूपगोस्वामी दोनों के मतों में समन्वय करते हुए इन रसों के वर्ण व देवता इस प्रकार माने जा सकते है।

स्थायीभाव	**रस**	**वर्ण**	**देवता**
शान्ति रति	शान्त भक्ति रस	श्वेत	नारायण
दास्य रति	दास्य भक्ति रस	चित्र	माधव
सख्य रति	सख्य भक्ति रस	अरुण	उपेन्द्र
वात्सल्य रति	वात्सल्य भक्ति रति	शोण	जगदम्बा
मधुरा रति	मधुर भक्ति रस	श्याम	नन्दनन्दन

भक्ति रस का आस्वादयिता

वैष्णवाचार्यों में से जीव गोस्वामी ने भक्ति रस की निष्पत्ति सामाजिक के अतिरिक्त अनुकार्य एवं अनुकर्त्ता में भी मानी है। उनके दृष्टिकोण से भक्ति रस की अलौकिकता के कारण यह सम्भव है। परम्परागत् काव्यशास्त्र में भट्ट लोल्लट ने भी रस की स्थिति मुख्यतः अनुकार्य अर्थात् रामादि पात्रों में तथा उनके रूपादि के अनुसंधान वश अनुकर्त्ता नट में मानी थी। पर यह मत काव्यशास्त्र में गृहीत नहीं हुआ । रूप गोस्वामी ने इसकी स्थिति सामाजिक में मानते हुए उसे भक्त होना आवश्यक बताया है। वे भगवद्रति के उत्पन्न होने के लिए श्रद्धा साधुसंग भजन क्रिया आदि नौ बातों का क्रम से होना आवश्यक मानते हैं। कृष्णदास ने भी भक्त रस निष्पत्ति के लिए इन्हीं बातों का होना आवश्यक बताया है। भक्तिशास्त्र के इन आचार्यों ने भक्ति रस का आस्वादयिता केवल भक्त को ही मानकर उसका क्षेत्र सीमित बना दिया है तथा उसे सांम्प्रदायिक कोटि के ऊपर नहीं उठने दिया। काव्य शास्त्र की परम्परा क अनुसार भक्ति रस से सम्बन्धित सामग्री इस प्रकार है। स्थायी भाव–भगवद्रति जिसके शान्त भक्ति, दास्य सख्य, वात्सल्य एवं मधुर भक्ति रसों के अनुसार पांच भेद होंगे। आलम्बन विभाव–परमेश्वर राम, कृष्ण आदि एवं भक्ति के विविध भावों से युक्त भक्तगण। उद्दीपन विभाव–भगवान के अद्भुत कार्य, अनुपम गुणावली, नख–शिख चित्रण, भगवान की चेष्टाएँ, हंसी, अंग सौरभ व प्रसाधन, वंशी नुपुर शंख पद चिन्ह, तुलसी भक्तों का सतसंग, तथा चित्रकूट, अयोध्या, वृन्दावन आदि का वर्णन। अनुभाव–भगवान के नाम तथा लीला का कीर्तन व श्रवण, गदगद हो जाना, आवेश वश नाचना, गायन करना, भूमि पर पड़ जाना, रोना–गिड़गिड़ाना, शरण के लिए याचना करना, अपने अपराध स्वीकार करना, श्रेष्ठ रूपत्व, आत्म–विस्मृत आदि। सात्विक भाव–स्तम्भ, स्वेद आदि भावों के अतिरिक्त वात्सल्य भक्ति में 'स्तन्यस्त्राव'। संचारीभाव–मति, हर्ष, वितर्क, औस्युक्त, गर्व, निर्वेद आदि परम्परागत् भावों के अतिरिक्त श्रद्धा पश्चाताप, सन्तोष–असन्तोष व सरता को भी भक्ति के नये संचारी भावों के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। श्रृंगार रस की भाँति भक्ति रस भी द्विविध हैं–

1. विरह।
2. संयोग।

भगवत् प्रेम के इन द्विविध पक्षों में भक्तों की भावना विशेष ही मुख्य है, क्योंकि संयोग पक्ष में भगवान का सानिध्य प्रत्यक्ष रूप से नहीं होता और न ही विरह पक्ष में शारीरिक असानिध्य संभव है। ये अनुभूतियाँ केवल मानसिक हैं। हरिभक्तिरसामृतसिन्धु तथा उज्जवल नीलमणि आदि भक्ति शास्त्रीय ग्रन्थों में भक्ति रस के इन द्विविध पक्षों का विवेचन केवल माधुर्य भक्ति रस को ही लेकर किया गया है, क्योंकि इस भक्ति में भक्त और भागवान की मिलन माधुरी के सरस चित्र खींचे हैं। इसी प्रकार सूरदास के काव्य में वात्सल्य भक्ति के संयोग तथा वियोग दोंनो पक्षों का मधुर उद्‌घाटन हुआ है।

भक्ति रस में संयोग की अपेक्षा विरह को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। बिना वियोग के संयोगावस्था का प्रेम पुष्टि को प्राप्त नहीं होता। भक्त के भगवान के प्रति सच्चे प्रेम की परख विरह की व्याकुलता से ही आँकी जाती है। भक्ति रस के विरह पक्ष में भक्त यह अनुभव करता है कि मैं भगवान से वियुक्त हूँ। भगवान मुझे त्यागकर कहीं दूर चले गये हैं। अब उनसे मिलन हो सकेगा या नहीं इस प्रकार की भावना से वह अधीर हो उठता है। विरह रूपी अग्नि में तप कर भक्त का आराध्यविषयक प्रेम अधिक निखर उठता है उसके ताप पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रृंगार का विरह कष्टदायी होता है क्योंकि वह वासना मूलक होता है पर भक्ति की विरह दशा भक्त को अधिकाधिक शान्ति एवं आनन्द प्रदान करती है। भगवान का विरह जन्य कष्ट भी सुखदायी होता है क्योंकि वियोग की चरम स्थिति में भक्तगण् भगवान से भावनात्मक संयोग का अनुभव करते हुए परमानन्द में लीन रहते हैं।

मधुसूदन सरस्वती ने विरह दुःख के तारतम्य के अनुसार भगवद्रति की तीन कोटियाँ मानी हैं– मृदुतीव्रा, मध्य तीव्रा, तीव्र-तीव्रा। यह भगवान की बैकुण्ठ लीला में मृदुतीव्रा, द्वारका लीला में मध्य तीव्रा, वृन्दावन की लीला में तीव्रतीव्रा रूप से अनुभव की जाती है।[86] भारत के साहित्य में भी भक्तों की विरहानुभूति के मर्मरपर्शी उदाहरण प्राप्त हैं। भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित गोपियों का विरह अद्वितीय है। हिन्दी भक्त काव्य में वैष्णव कवियों के अतिरिक्त मध्यकालीन संतों कबीर, दादू, नानक, मलूकदास, चन्द्रदास, मीरा आदि का काव्य भी विरह विलक्षण अनुभूति से भरा पड़ा है। 'नारद-भक्ति-सूत्र' में भी भक्ति की अनुभूतियों में से एक परमविरहाशक्ति मानी गई है। श्रृंगार की भांति भक्ति रस में भी विरह पक्ष के अन्तर्गत भक्ति की भावनाएं व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित हो जाती है। उसकी दृष्टि में ऐसा कुछ हो जाता है कि सारा संसार उसे अपने ही समान विरह से पूर्ण दिखाई देने लगता है। ब्रज की गोपियों का प्रेम विश्व प्रेम की पराकष्ठा को प्राप्त हो जाता है। तुलसी के मानस में भगवद्विरही भरत की दशा भी बड़ी विलक्षण हो गई थी। चित्रकूट में जब वे राम से मिलने जाते हैं तो उन्हे अणु–परमाणु में भगवान के ही दर्शन होते हैं।

विरह की अवस्थाएं

परम्परागत् काव्यशास्त्र में वियोग की चार अवस्थाएं मानी गई है–

(1)पूर्वराग (2) मान, (3) प्रवास, (4) करुणात्मक।

सूरदास, नन्ददास आदि वल्लभ संप्रदाय के भक्त कवियों तथा मीरा में भी प्रेम वैचित्र्य की स्थिति का चित्रण मिलता है, इसके तीन भेद हैं–

रूपानुराग

इसमें प्रेम की अधिकता के कारण, राधा और गोपियों के हृदय में कृष्ण के रूप–दर्शन की सर्वदा इच्छा रहती है।

आपेक्षानुराग

इसमें प्रेमावेश के कारण राधा और गोपियाँ कभी अपने को कभी मुरली को कभी कृष्ण पर दोष लगाती हैं।

रसोद्‌गार

इसमें अतीत क्रीड़ाओं का स्मरण चित्रित किया जाता है।

यह प्रेम वैचित्र्य की दशा प्रेमाधिक के कारण होती है। वल्लभ संप्रदाय के कवियों में भक्ति रस के पूर्वराग, मान, प्रवास आदि का विस्तारपूर्वक चित्रण हुआ है। कृष्ण भक्त कवियो के भ्रमर गीत वियोगात्मक माधुर्य भक्ति के अन्तर्गत है। आत्म–निवेदन की पूर्णता इसी में मिलती है। गोपियों का प्रेम भक्ति की उच्चतम स्थिति 'महाभाव' की अवस्था में रहता है।

1. पूर्वराग

माधुर्य भक्ति के क्षेत्र में आलम्बन के अलौकिक होने के कारण पूर्वराग विरह का मूल है। यहाँ प्रेम की अनुभूति का आरम्भ ही विरह मूलक होता है क्योंकि इसमें मिलन की अनुभूति केवल कल्पना का ही विषय है। माधुर्य भक्ति में विरह साधना की चरम परिणति मिलन सुख में होती है, अतः यहाँ मिलन या संयोग अंतिम सीढ़ी है और पूर्वराग का प्रथम। पूर्वराग में गुण–श्रवण, स्वप्न, चित्र या साक्षात रूप दर्शन से प्रेम का उदय होता है और प्रेमी निरन्तर अपने आराध्य के ध्यान व चिंतन में लीन रहता है।

2. मान

वल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियों ने इसका पर्याप्त चित्रण किया है। मान मुख्य रूप से राधा की ओर से होता है कृष्ण की ओर से नहीं। राधा वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों में सूक्ष्म विरह की भांति सूक्ष्म मान की भी कल्पना मिलती है।

3. प्रवास

कृष्ण के चले जाने पर राधा और गोपियों की विरहदशा प्रवास के अन्तर्गत है। भक्तिमनोहर में भक्ति रस का एक चित्र दृष्टव्य है–

> "जागत सोवत सपन में श्याम स्वरूप दिषाए।
> वह मूरत हिय से कबहुं छिन भर नहीं विहाय।
> लोक लाभ उद्धव कथा तुमहू कहत बढ़ाय।
> हृदय कलस प्रेमह भरों कैसे जलध समाय।
> श्याम गात सरसिज बदन ललित चरन मृदुहास।
> मधुकर ऐसे रूप के मरत विलोचन प्यास।"[87]

4. प्रेम वैचित्य

प्रियतम के निकट रहने पर भी वियोग के दुःख का प्रदर्शन करना आदि।

संयोग पक्ष

भक्ति में वासना मूलक प्रेम के अभाव के कारण योग के स्थान पर शुद्ध आत्मानुभूति रहती है, अतः ऐसे प्रेम के मिलन पक्ष को संयोग नाम देना ही अधिक उपयुक्त है। राधा–कृष्ण अथवा राम–सीता श्रृंगारिक क्रीड़ाओं का मर्यादित चित्रण होता है या भक्त और भगवान के मिलन का वर्णन किया जाता है, वहाँ संयोग भक्ति रस की निष्पत्ति होती है। इसमें भक्त की मानसिक अनुभूति यह रहती है कि मैं भगवान के संयोग में हूँ भगवान मेरे समीप उपस्थित है और मैं उनके रूप–माधुर्य का साक्षात अनुभव एवं रसास्वादन कर रहा हूँ।

कृष्ण भक्त कवियों ने माधुर्यभाव के संयोग पक्ष के अन्तर्गत रास लीला, राधा के मान, गोपियों की खण्डिता, अभिसारिका, पनघट, गो, दोहन, जल केलि, वन–विहार आदि अवस्थाओं तथा ऋतु वर्णन यमुना वर्णन आदि के विशद चित्र उपस्थित किये हैं। इस संयोगात्मक रास–रस की अनुभूति केवल माधुर्य भाव में ही होती है, दास्य, सख्य या वात्सल्य भावों में नहीं।

रूपगोस्वामी ने माधुर्य भक्ति के संयोगात्मक पक्ष के चार मुख्य भेद इस प्रकार बताये हैं ये भेद वस्तुतः वियोग के चार भेदों पर ही आधारित हैं।[88]

1. संक्षिप्त संयोग।
2. संकीर्ण संयोग।
3. सम्पन्न संयोग।
4. समृद्धिमान संयोग।

इस प्रकार की भक्ति को परम माधुरी भाव कहा गया है। निम्बार्क तथा हरिदासी सम्प्रदायों में भी भक्ति रस के संयोग पक्ष का अधिक चित्रण मिलता है। भक्ति रस के निम्नलिखित पांच भेद किये जा सकते हैं–

1. शान्त भक्ति रस।
2. दास्य भक्ति रस।
3. सख्य भक्ति रस।
4. वात्सल्य भक्ति रस।
5. मधुर भक्ति रस।

शान्त भक्ति रस

शान्त भक्ति रस परम्परागत् शान्त रस से थोड़ा भिन्न है। जहाँ केवल संसार की असारता नश्वरता एवं क्षणभंगुरता का चित्रण अंकित करके उसके द्वारा निराशा, विरक्ति या घृणा के भाव जागृत करायें जायें, वहाँ शुद्ध शान्त रस मानना चाहिए। जहाँ कवि संसार की नश्वरता पर प्रकाश ड़ालता हुआ चित्त को संसार के विषय पदार्थों से हटाकर अन्त में भगवान की शरण में लीन होने के लिए प्रार्थना करता है तथा उसके दयालुता एवं पतित पावनता पर दृढ़ विश्वास की अभिव्यक्ति करता है, वहाँ शान्त भक्ति रस का परिपाक होता है। शान्त भक्ति रस की काव्यगत् सामग्री इस प्रकार है– स्थायीभाव–शान्ति रति।आलम्बन भाव– भागवान के चतुर्भुज के रूप के अतिरिक्त राम और कृष्ण आत्माराम भक्त व तापस यथा

सकादि, सुकदेव, ध्रुव,मनु, सतरूपा, भीष्म पितामह आदि। उद्दीपन विभाग–उपनिषद्, भागवत, रामायण आदि सद्ग्रन्थों का अध्ययन चित्रकूट, अयोध्या, वृन्दावन आदि तीर्थों का सेवन, एंकान्तवास,सत तत्वों का ज्ञान,भक्तों की संगति, संसार की असारता एव क्लेशों का चित्रण आदि। अनुभाव–निरभिमानता, राग–द्वेष, संतों जैसा व्यवहार, संसार सॅंवारने के लिए प्रार्थना करना,भक्ति का उपदेश, अपने पापों को स्वीकार करना आदि। सात्विक भाव–प्रलय को छोड़कर, स्वेद, कपंन आदि। संचारी भाव–निर्वेद, विषाद, हर्ष, मति, स्मृति शंका, आवेग, वितर्क आदि।

'भक्तिमनोहर'में शान्तभक्ति रस का उदाहरण कवि के शब्दो मे इस प्रकार है–

(क) "अक्रिय अकल अवद्धअसंगी। अविनासी अनंत अनरगी।
अचल अखण्ड अग्रह अमानी। सकल जगत आधार भमानी।।
आदि अंत नहि अंतरजामी। सो है सर्वलोक पति स्वामी।
मै मेरौ मिथ्या कर मानौ। आतम ऐक सत्त उर आनौ।।
यह सहस्र मै ऐक उपाई। वच मन कर्म करौ सब भाई।
भोजन हवन तपादिक कीजे। ईश्वर को अर्पन कर दीजे।।
गुरुपद सेवन सैं मिल ग्याना। का हरि पूजन विविध विधाना।
सुनै चरित नित श्रद्धा राषै। कीर्तन कर गुन कर्म न भाषै।।"

. .

(ख) "साधन कौ सतसंत कर धर पद पंकज घ्यान।
सर्वभूत व्यापक परत ईश्वर कौ पहचान।।"[89]

दास्य-भक्ति रस

भक्ति का मूल अर्थ है 'सेवा'। भक्त सबसे पहले यही भाव रखता है कि परमात्मा मेरा प्रभु है, मैं उसका सेवक हूँ। इस सेवा से धीरे–धीरे भक्त में यह भावना जागृत होती है कि मेरा प्रभु से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह सोचता है कि प्रभु मेरे हैं, मेरे माता–पिता, बन्धु हैं, स्वामी हैं मैं उनका अनुगाह्य हूँ। दास्य भक्ति के दो रूप होते हैं। एक तो अपने शुभ कर्मों को प्रभु के प्रति समर्पित करना तथा दूसरे उन्हें स्वामी समझ कर सतत् सेवा मे लगे रहना।

रूपगोस्वामी ने दास्य भक्ति रस को प्रीति रस कहा है तथा उसका स्थायीभाव प्रीति रति मानकर इसके दो भेद किये हैं। सम्भ्रम प्रीति अर्थात् दासत्व का भाव, गौरव प्रीति। मधुसूदन सरस्वती इसे प्रेयान रस कहते हैं तथा इसका स्थायीभाव 'प्रेयो रति'मान कर उसके तीन भेद किये हैं। दास्य, सख्य, मिश्रित। दास्य भक्ति में भक्ति की दीनता तथा आराध्य का महत्व प्रतिपादित किया जाता है। भक्त अपने दोषों ,अपराधों व पापो का वर्णन करता हुआ भगवान के प्रति विनय याचना, आत्म–निवेदन, उनकी शरणागतवत्सलता पर विश्वास आदि के भाव व्यक्त करता है। दास्य भक्त अपनी सतत् निष्ठा एवं मर्यादावादि प्रवृत्ति के कारण सदैव नम्र रहता है, वहाँ सख्य भाव की भांति जाने–अंजाने भगवान के अनादर की संभावना नही रहती। दशरथ,कौसिल्या, वसुदेव, देवकी नन्द, यशोदा वात्सल्य भाव के उपासक हैं, अर्जुन सख्य रस के तथा गोपियाँ माधुर्य भाव की उपासिका हैं, पर ऐश्वर्य रूप के दर्शन पाते ही ये

सभी दास्य भावना प्रगट करने लगते हैं। 'निधानगिरि' के 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य मे दास्य भक्ति के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं,उनमें से कुछ के इस प्रकार हैं–

(क) "पुरुष प्रवाज अवनि षनवाइ। तापर एकन कुटी बनाइ।
तामै कुस आसन विछवाई। मरतवास किय नेम निकाही।
वसन कुरंग चर्म तन धारी। कंद मूल फल अल्प अहारी।
चौदह बरष अवध चित लागा। प्रभु पद पद्म प्रेम मन पागा।
ज्यों ज्यों दुषल होत तन, त्यौं त्यौं बाढ़त प्रीत।
मयौ न है हौने न जग मरतभक्त पथ जीत।।"[90]

(ख) "सुमिरौ प्रभु बाल रूप।कोटि काम से अनूप।।
धन्य भूप भक्ति ब्रह्म। नर तन धर आयो।।
सेवत नर देव इन्द्र। नारद सनकादि वृन्द
नित नव गुन कह फनिन्द। सो नृप गृह भायो।।"[91]

(ग) "सुमिरौ रघुवीर राम, पूरन मन करन काम।
दैन मुक्त धाम श्याम, सुन्दर सुख दाई।।
चर मंजु अरून कंज़, नख गन मनि प्रभा पुंज
मोह अन्धकार भंज, सुर सर प्रगटाई।।
पद तल छवि पद्म राग, अंकुश धुज पद्म लाग
संजुत कुल सादि चिन्न, निरखहुं मन लाई।।
कनक रतन मनिन जटित, पैजनि पद पद्म अटित
झुंन–झंन धुनि अजर रटत, ठुमुक–ठुमुक धाई।।
जानि जंग कदलि खण्ड, किंकनि कटि संग मण्ड
नाभि जमुन भ्रमर भंग, भृगु पद उर भाई।।
उर हर नख सुभग लाग, मनहुँ चन्द विविध भाग
निरखहुँ अनुराग पाग, सुषमा सरसाई।।
सोह कण्ठ रतन माल, पहुंची कर कंज लाल
पीतम तन विसाल, स्याम अंग भाई।।
जनु विधि तड़ित बटोर, थिर कर राखी निहोर
शोभा हित कीन जोर, जलदहुँ पर छाई।।
ललित वदन लजत चन्द, भाल लाल स्याम बिन्दु
मानहु बैठहुँ मलिन्द उपमा दरसाई।।
नील कन्ज सरस नयन, सिर पर कच प्रभा अयन
जिमि ससि लग कीन सयन, अहि सुत समुदाई।
लघु–लघु रद दमक हसत, मनहुँ कन्दु कली बसत
अधर अरूण विद्रुम लज, पट तर नहिं पाई।
मूरत मन हरन आन, हिरदय मन धरहुँ ध्यान
सुमिरहुं छवि गिरि निधान, भव भय बिन साई।"[92]

सख्य-भक्ति-रस

रूपगोस्वामी ने भक्तिरस सम्बन्धी जिन स्थायी भावों का निरूपण किया है उनमें संभ्रम प्रीति (दास्य), सख्य तथा वात्सल्य तीन स्तम्भ स्थायी भाव हैं। प्रेयान में सख्य का भी समावेश किया है। आचार्य कवि चंददास ने भी सख्य को दास्य से पृथक स्वीकार किया है। महाकवि 'निधानगिरि' ने भक्ति के वर्गीकरण में सख्य भक्ति का संकेत किया है तथा सख्य भक्ति के प्रतिनिधि 'सुदामा' भक्त को माना है। सख्य रस का स्थायी सखा (सख्य) को स्वीकार किया है। आलम्बन और आश्रय के पारस्परिक सख्यपूर्ण स्नेह एवं प्रेम के कार्यों द्वारा भाव उद्दीप्त होकर हर्ष, आवेग, रोमांच, प्रेम आदि अनुभावों से पुष्ट होकर सख्य भक्ति की निष्पत्ति का कारण बनता है।

'निधानगिरि' ने 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में सख्यभक्ति रस के अन्तर्गत सख्य एव सखी भावों से इस रस को मूर्तित किया है–

(अ) "सखी कहत कुल वधून सै देषहु रूप अनूष।
सोभा मूरत राम सिसु कनियाँ लीन्हें मूप।।"[93]

(ब) "चपल नयन चितवत चित चोरत। मानो सुधा सरोवर बोरत।
प्रेम मगन सुन सखी के मधुर मनोहर बैन।"

(स) सरयू तट पुनि किय गमन गेंद षेल कौ कर्त्त। राम लक्ष्मण एक दिस इक दिस रिपुहन मर्त।
बालसषा सब संग के लीन्ह बराबर वॉट। चाहत निज निज जीत कौ षेलन कंदु चुक नाथ।

वत्सल्य-भक्ति-रस

'निधानगिरि' के 'भक्तिमनोहर' काव्य में अभिव्यक्त भक्तिरस का एक और प्रकार वत्सल्यभक्ति रस है। कवि के वात्सल्य रस में पाल्य पालक भाव एवं भगवद्रति का दर्शन होता है। 'भक्तिमनोहर' में वत्सल्य भक्ति रस का श्रेष्ठतम परिपाक हुआ है। संयोग और वियोग की विविध दशाओं में आश्रय की चित्तवृत्तियों के अनुभावों और संचारी भावों की हृदयहारिणी अभिव्यंजना हुई है। वाल्यसुलभ चेष्टाओं एवं उनके मनोगत उल्लास का जैसा मनोहारी चित्रण 'निधानगिरि' ने प्रस्तुत किया है, वह सूर के वात्सल्स भक्तिरस का स्मरण दिलाने लगता है। 'निधानगिरि' के 'भक्तिमनोहर' में वत्सल्य भक्ति रस का उदाहरण इस प्रकार है–

(अ) "वसुधा पै सुकृत कियौ नंद जसोधा संग।
पान गुपाल गहै फिरत बाड़त प्रेम तरंग।।
ताकौं गोद लिअैं हलरावै। सादर तुतरे बोल बुलावै।
कहुँ करताल बजावत गावत। कबहुँ अजर गह आन नचावत।
कबहुँ चुंम मुष लावत छाती। कनियाँ लेत प्रेम मद माती।
मोहत रवि रथ पथ न चलाई। सुर मुन निरष ठगें से भाई।
प्रात होत उठ चले गुपाला। माटी षात निरष ब्रजबाला।

लकुट हाथ जसुधा लै धाई। उगलो माटी कुँवर कन्हाई।
बदन पसार दियौ हरि आपा। देषन लगी मात मन काँपा।
सुर्ग पताल धरन गिरि कानन। समद सुमेर दीष प्रभु आनन।
सुर नर नाग जीव जग नाना। देषे सकल अनेक विधाना।
भई चकृत चित्त प्रभु पहचाना। गर्ग वचन तब सत जिय जाना।"[94]

(ब) "लीनी बैनु लकुट कर छोटी। धैनु षिरक सै निकसी कोटी।
धौरी कारी कह–कह टेरत। अधिक प्रीति कर प्रभु तन हेरत।
धन्य धन्य सुरमी सकल जिन सै हरि कर प्रीति।
भई पुष्ट विंदा विपन चरत हरत मन मीत।
नंद नंदन वन सै सजे आवत वृज के माँहि।
रंग रंग के सुमन हिय अंग पहरै छवि छाँहि।
संग गोप सुरमी लियै नाना गत उपजाइ।
कुछ गावत कोऊ नचत कोऊ ताल बजाइ।
राँमत सुरभी वत्स हित आवत दूध चुचाइ।
आइ गए मोहन तनहि जननी हृदय लगाइ।"[95]

(स) गाइ–गाइ हलराइहौं सुष की नींद बुलाइ।
कह दुलरावै वत्स भल लाल छवीले माइ।।
छगन मगन अब सोइये नींद समय दरसान।
हृदय लगाइ लगाइ कह मुदित सुमित्रा रान।
राम बाल छवि सुष मरजादा। प्रभा मदन सत निरष विषादा।
परछाहीं लष नचन पधारे। तोतर वचन लगत अति प्यारे।
चितवत हरत मोहनी मन कौ। तू मनि तज चितवन गुंजन कौ।
कौसिल्या सुन सषी सुवानी। लिए अंक भर सिसु सुष षानी।
श्री दसरथ महाराज के प्रथवी तल बड भाग।
चारहु सुकमारन ललित देषत मन अनुराग।।

उपर्युक्त उद्धरणों में महाकवि 'निधानगिरि 'का कृष्ण और राम के बाल्य-प्रसंगों के माध्यम से दशरथ नंद कौशल्या और यशोदा का वत्स के प्रति अनुराग एव भक्ति भाव वत्सल्य भक्ति-रस के अन्तर्गत वर्णित है।

(द) "कौसिल्या गोद लिये उमगत अति हर्ष हिये
नयन सुधा रूप पिये दिन–दिन अधिकायो।
बहरत प्रभु अजर आन फिरै मात गहै पान मुस्क्यान लागौ
अंबु देषत भ्रम छायो। निरषै दस चार लोक बहु विधि के जीव थोक,
नाना ब्रहाण्ड बदन अचरज अति पायो।
व्याकुल मन जननि जान मृदु चित्त करुणा निधान

दीन पूर्वज्ञान रानि चरनन सिर नायो।
सुमिरत पद अरुन कंज, नष गन जनु जलज पुज
जंघ कदलि गर्व खण्ड हर कटि मन भायो।
बध नष प्रभु हृदय लसत, मनहुँ चन्द षण्ड बसत
मुक्त माल कण्ठ रमत, स्यांम रूप भायो।
नहीं आदि मध्य अन्त, पावा को प्रभु अनन्त
माया बलवन्त नाथ तेहि ने भरमायो।
मोह विवस मै अजान बालक परब्रह्म जान
जननि कहै जोरि पान ज्ञाना दरसायो।
दीजै पद पद्म प्रीति बाढ़ा नित नव प्रतीति
व्यापाह नहीं जगत भीति गिरि निधान गायो।"[96]

मधुर भक्ति- रस

'निधानगिरि'ने रस की बातों को रसिकजन ही जानते हैं,कहकर रसिकोपासना की ओर संकेत किया है। रसिकोपासना से प्रभावित होने के कारण'निधानगिरि'के काव्य में मधुर भक्ति रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। रसिकोपासना के अनुकूल रास की रसमय क्रीड़ाएँ, बाल्यक्रीड़ाएँ एवं जेवनार, शयन, झूला आदि का रसात्मक चित्रण कवि ने किया है।

माधुर्य की प्रधानता के कारण सगुणोपासक भक्तों ने मधुर रस का भरपूर उपयोग किया है। मधुरभक्ति निर्गुण और सगुण दोनों के लिए अर्न्तमुखी होने के कारण समान महत्व की है। रागमयी भक्ति को कवि ने सर्वत्र परम गोपनीय कहा है।

मधुर रस का स्थायीभाव 'मधुरा रति' है। कृष्ण ही मधुर रस के विभाव हैं और उनकी वल्लमाएँ इस रस के आश्रय हैं, दोनों मिलकर रस के आलम्बन हैं। श्री कृष्ण का गोपियों के साथ लीला विलास ही मधुर रस की आत्मा है। संस्कृत के अलंकार-शास्त्रों में परकीयाः प्रेम को रसाभाव के अन्तर्गत माना गया है। प्राकृत नायक के सम्बन्ध मे परकीया प्रेम को अनौचित्यपूर्ण माना गया है।'निधानगिरि'ने इस औचित्य के परिहरण के लिए राधा को स्वकीयत्व प्रदान किया। कवि ने यशोदा के द्वारा राधा की गोद भरने का उल्लेख भी इसी स्वकीयत्व के लिए किया है। श्रृंगार-रस निरूपण में कवि ने स्वकीया नायिका को मधुर रस के लिए अनुकूल माना है। उद्दीपन विभाव में कोकिल कूजन, चंद्र-दर्शन, वसन्तागम आदि का चित्रण कवि ने किया है। कायिक सौन्दर्य के रूप में लावण्य, मार्दव आदि मुख्य है। श्रीकृष्ण का नाम, चरित लीलाएँ, वंशीवादन, गो-दोहन, गोवर्धन, चीरहरण आदि विशेष रूप से उद्दीपन विभाव के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं। रसमय चेष्टाएँ एवं विलास लीलाओं को उद्दीपन रूप में चित्रित किया गया है।

अनुभावों में बाईस अलंकार, सप्त उदभास्कर और तीन अंगज है। अंगज अनुभावों में भाव, हाव, हेला और स्वभावज में लीला, विलास, विच्छित, मोट्टायित आदि मुख्य हैं। प्रियतम के चरित्र का क्रीड़ामय अनुकरण लीला, क्रीड़ा के संकेत विलास अलंकरण, विच्छति एवं

इच्छा का स्पष्ट उल्लेख 'मोट्टायित' है। सात उदभास्वर सर्वथा नूतन हैं। ये है नीवी विस्रसन, उत्तरीय–स्खलन, जंभा जँभाई लेना, केस–स्ंसन इत्यादि। ये वस्तुत विलास और मोट्टायित के अन्तर्गत अन्तर्मुक्त है। द्वादस वाचिक अनुभावों में आलाप, विलाप, प्रलाप, अनुताप, अपलाप, संदेश, अतिदेश, अपदेश, उपदेश, निर्देश और व्योपदेश हैं।

मधुर रस के संयोग श्रृंगार के दो भेद हैं–मुख्य और गौण। मुख्य संयोग मिलन और गौण स्वप्नादिक मिलन है। इन दोनों के पुनः चार भेद हैं– संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न और समद्धिमत। इसके अनेक प्रकार हैं– दर्शनस्पर्श, मन्द–मन्द वार्तालाप, राह रोकना, रास, जलक्रीड़ा, वृन्दावन क्रीड़ा, यमुना जलकेलि, चीरहरण, वंशीचोरी, दसलीला, कृष्ण का स्त्री वेश धारण करना, चुबंन, अलिंगन एवं सम्भोग आदि। सम्प्रयोग की अपेक्षा लीला विलास को सुखमय कहा गया है।'निधानगिरि'के 'भक्तिमनोहर' में लीला विलास के उपर्युक्त समस्त प्रकारों का रसमय चित्रण उपलब्ध होता है। कतिपय दृष्टव्य हैं–

(अ) "रघुवर निज कर कमल सैं तोरत फूल नवीन।
कोमल पल्लव दलन जतु रचत सेज सुष कीन।।
नाना जात सुमन अधकाई। भूषन सिय हित किय रघुराई।।
अर्ध चंद्र कर सीस गुहाई। कलिन मालती माँग बनाई।।
वेंदा भाल श्रृवर वर फूला। चंद्रहार हिय सोभा मूला।
कंकन पहुँची कर भुज बांजू। जेहर नुपुर चरन विराजू।।
अंग अंग भूषन पहराये। मृग मद तिलक ललाट लगाय।।
करत परस्पर प्रेम गंभीरा। चौंसठ कला निपुन रघुवीरा।।
कहि न जाइ प्रभु रास विलासा। अनुचित लगत भक्ति पथ वासा।।"[97]

(ख) स्याम अंकभर लीन उछंगा। पट से पुन पुन पौंछत अगा।।
प्रेम निरष वृषभान दुलारी। मोसै हरि कौं अपर न प्यारी।।
जोइ–जोइ कहत करत सोइ–सोई। मये मोर बस प्रभु नहिं गोई।।
कबहूँ बैठत हरि गह पाना। कबहुँ कहत मो तन भ्रम साना।
निर्त करत भ्रम भयौ अपारा। दूषत मम पद बारहि बारा।।
धरन धरत पद नहिं बनत कंध चडावहु स्याम।।
राधा जिय अस गर्व बड सुन तब हंस जग धाम।।"[98]

(ग) "श्रेनिक रूप रास गोपाला। तेतिक अंतर भऐ उताला।।
गए स्याम सब बन तन त्यागी। चकृत भई सकल निस जागी।।
राधा कौं ले गए विहारी। हेरत चहु दिस घोष कुमारी।।
व्याकुल भई सकल ब्रज वाला। षोजन लागी विपन नंदलाला।।
चरन चिन्ह षोजत जग जांही। राधा स्याम गए बन माही।।"[99]

उपर्युक्त छंदों में मधुर भक्ति रस का पूर्ण परिपाक परिलक्षित होता है तथा कवि'निधानगिरि'की मधुर भक्ति भी प्रमाणित होती है। मधुर भक्ति के प्रसगों से सम्पूर्ण कथानक गढ़ा

गया है। मधुर भक्ति रस के कारण 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य का भाव–सौन्दर्य और भी मोहनीय हो गया है।

भाव

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाडज्जितः भाव प्रोक्ताः। देव आदि विषयक (सभी स्थायीभाव) और व्यड.गय व्यभिचारी कहलाते हैं। व्यभिचारी भाव शब्द वि+अभि+चारी से बना है। वि का अर्थ है विशेष रूप से, अभि का अर्थ है 'और' 'अथवा' 'प्रीति' तथा चारी का अर्थ है 'चलने वाले'। अतः वे भाव जो स्थायीभाव की ओर चलते है जिससे स्थायीभाव रस का रूप धारण कर लेते हैं।

भाव काव्य का आधार तत्व है। भावाभिव्यंजना के आधार पर ही कवि अपनी रसात्मक अनुभूतियों को रस के माध्यम से सम्प्रेषित करता है।'निधानगिरि' के भक्तिमनोहर में प्रायः काव्य-शास्त्र के सभी स्थायीभाव रति, शोक, उत्साह, सम, वात्सल्य, ईश्वरानुराग आदि पाए जाते हैं। महाकवि ने मानो मन की विविध भाव दशाओं को, मनों-दशाओं और भावानुभूतियों को अभिव्यक्ति देने में सफलता का वरण किया है। कवि ने वात्सल्य और भक्ति विषयक भावों के मार्मिक पक्षों का उद्घाटन किया है।'भ्रमरगीत'प्रसंग में श्रृंगार और विरह की दशाओं का चित्रण किया गया है। विरह की दशाओं में अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्छा एवं मरण आदि दशाओं के 'मर्मस्पर्शी' प्रसंग है। सूर के 'भ्रमरगीत' की भाँति 'निधानगिरि' ने भी भावों के साथ संचारी भावों और अनुभावों का सुन्दर चित्रण करके रसानुभूति को सप्राण किया है। श्रृंगार रस के अन्तर्गत प्रीति आदि भावो की मार्मिक अभिव्यक्ति की गई है। वचन की भाव प्रेरित वक्रता और प्रेम प्रसूत अर्न्त-प्रवृत्तियों के उद्घाटन में'निधानगिरि'सूर से प्रभावित प्रतीत होते हैं। सूर के'भ्रमरगीत'की भांति ही कवि ने भी वक्रोति एवं उक्ति-वैचित्र्य का आश्रय लिया है। वक्रोक्ति के माध्यम से गोपियों की विलक्षण प्रीति अभिव्यक्ति हुई है। भाव प्रसूत वक्रोक्तियों से 'निधानगिरि ' का 'भ्रमरगीत'जाने कितने भावों और उनकी नयी–नयी दशाओं से आपूरित है।

महाकाव्य 'भक्तिमनोहर' भाव सम्पदा की दृष्टि से एक अत्यन्त समर्थ काव्य सिद्ध होता है। उसमें मानव जीवन के विशद कार्य व्यापारों की व्यंजना तो की ही गई है। सौन्दर्य, प्रेम और प्रकृति विषयक भाव व्यंजनाओं भक्ति और योग-ज्ञान तथा कर्म आदि प्रसगों को महाकवि ने भावों की जिस ऊँचाई और मानवीय संवेदनाओं को जिस व्यापकता के साथ मूर्तित किया है, वह कवि की भाव-सम्पदा के उत्कर्ष को ही अभिव्यंजित करता है। भाव विषयक कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं–

(क) "पुनि पुनि पूछत द्रुमन को, यह गृह मय कोउ नाय।
आपहि कह नहिं लेत कोउ, और तरुन तर जाहिं।।
कबहुं कुन्ज भीतर गमन, करत श्याम सुधि केर।।
चौंक परत आवत सुरति, षिझत सषिन तन हेर।।"[100]

उपर्युक्त प्रसंग में प्रेम विव्हल एक गोपी वृक्षों से बार–बार पूछती है क्या इस घर में कोई नहीं है? उसे द्रुमो में ही भवनों का भ्रम हो रहा है! पुनः अपने आप गोपी यह कथन

करती है कि यहाँ कोई दधि लेने वाला नहीं है चलो किसी और तरुण तरु के पास चलें। कभी वह कुंज के भीतर गमन करती है और कभी श्याम की सुधि करती है, कभी चौंक पडती है पुनः प्रकृतिस्थ होने पर सखियों की ओर देखकर खीजने लगती है। महाकवि निधानगिरि भावों के ऐसे मर्मस्पर्शी शिल्पी हैं, जिन्होंने प्रीति के अन्तर्गत विविध भाव भूमियों को समेट कर जिस प्रकार की शिष्ट भाव व्यंजना की है, वह अद्वितीय है–

(ख) "एक सषी कह मन मुदित,लीन्ह सबन चित चोर।
ये किसोर कोमल वपुष, धनु कठोर पन घोर।।
इनकों नित निरषत रहहिं, कै कर लोचन वास।
कै जित जै जावहिं तितहिं, चले जाय दृग पास।।"[101]

उपर्युक्त पंक्तियों में जनकपुर में श्रीराम का दर्शन कर एक सखी ने मुदित मन से यह आरोप लगाया कि राम ने सभी का चित्त चुरा लिया है। ये किशोर और कोमल वपु वाले हैं, धनु अत्यन्त कठोर है और राजा का प्रण भी अत्यन्त कठोर है। हे सखी मेरी कामना है कि इनको नित्य देखते रहें और इन्हें लोचनों में बसा लें अथवा ये जिस ओर, जहाँ जाएं हमारे नेत्र भी इन्हीं के पास चले जाएं। कैसी मनोहारी भाव कल्पनाएँ महाकवि की प्रतिभा शक्ति से प्रस्फुटित हो उठी हैं। लावण्य के साथ लोचनों के शास्वत अनुबन्ध की यह लालसा कैसी अपूर्व है। निधानगिरि महाकवि तुलसी की 'गिरा अनयन नयन बिन वाणी 'को एक और नयी भाव भूमि प्रदान कर देते हैं, जहाँ लोचनों के सामने कोई संकट ही नहीं रहेगा। रूप और सौन्दर्य का यह साहचर्य जिसे महाकवि ने भाव सृष्टि के द्वारा रसवत् किया है, विश्व साहित्य में दुर्लभ है।

(ग) "ठाड़ी नंद द्वार पर जाई। नंद भवन कित देउ वताई।।
यही ग्राम कै अपर कहू है। संमर चितवत दिसा चहूँ है।।"[102]

नंद के द्वार पर खड़ी हुयी गोपी पूँछती है, नंद का भवन किधर है? नंद का यही ग्राम है, अथवा अन्यत्र है? चारों ओर संभ्रम हो कर देखती है। कवि ने दधि प्रसंग में गोपी की चिरव की 'संभ्रम' भाव स्थिति का मार्मिक वर्णन किया है।

(घ) "इत तै उत उव तै इतै आवत निकट न सूझ।
लइ विहाल नंदलाल हित दीनौ तन मन बूझ।।"

नंदलाल के प्रेम में एक गोपी इधर से उधर, उधर से इधर जाती है। उसे निकट नहीं सूझता, वह प्रिय के लिये व्याकुल हो उठती है। उसने तन और मन बुद्धि को खो दिया है। कवि निधानगिरि ने उक्त प्रसंग में विरह की व्याकुल भाव दशा का मार्मिक निरूपण किया है।

(ङ) "सिर धर मटकी नंद गृह फिर आवै फिर जाइ।
लेउ लेउ गोपाल कह दीनौ दहौ भुलाइ।।"

सिर पर मटकी रखे हुए नंद के घर की ओर एक गोपी आती है और लौट जाती है। वह दही बेचने को भूलकर गोपाल ले लो, गोपाल ले लो की ध्वनि मे कृष्ण को खोजती फिरती है। कवि निधानगिरि ने उक्त प्रसंग में 'आत्म विस्मृत' का अत्यन्त कलात्मक चित्रण किया है।

(च) "ऊँची स्वास दृगन बह नीरा।
तजै चहत जनु सकल सरीरा।।"

विरहणी ऊँची–ऊँची स्वासे भर रही है, नेत्रों से नीर प्रवाहित हो रहा है। मानो वह प्राण को त्यागना चाहती है। कवि निधानगिरि ने उच्छावस, अश्रु आदि सात्विक भावों की सुदर व्यंजना की है।

(छ) "रैन गई जागत सकल विकल विपुल वृज लोग।
मोहन बिछुरन जिय समझ भए मृतक के जोग।।"

मोहन के विछोह में सम्पूर्ण रात्रि जागते हुए गयी, ब्रज के लोग व्याकुल हो उठे, ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मृत्य का योग आ गया हो। कवि निधानगिरि ने उपर्युक्त प्रसंग में मरण दशा का संकेत करके भावसिद्व के प्रमाण प्रस्तुत किये है।

नये भावों एवं अनुभावों का वर्णन

प्रतिभाशाली महाकवियों की वाणी में नाना प्रकार के नवीन भावों और अनुभावों का चित्रण पाया जाता है। महाकवि 'निधानगिरि' के काव्य में कतिपय अनुभावों का वर्णन इस प्रकार है–

कसमसाना

वानर वृंद विदारन लागा। सह न जात सर कपि दल भागा।
निरषत राम उठे रनधीरा। बांध जटा सिर कट तूनीरा।
साजा पान पद्म सांरगा। कसमसात सर सरस निषंगा।[103]

उपर्युक्त छन्द में कसमसाहट अनुभाव का चित्रण कवि ने अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है। प्रायः इस अनुभाव का चित्रण कम कवियों ने किया है। इसी प्रकार एक नये अनुभाव सकपकाहाट (सशंकित होने का) अनुभाव कवि ने व्यक्त किया है, जो इस प्रकार है।–

सकपकाना

"समिट सकल भट गह चरन भूंम सहित उठ जाइ।
कोल कमठ अहि सकपकात भार सहा नहि जाइ।।"[104]

कवि इसी प्रकार अनेक नये भावों तथा अनुभावों का चित्रण करके अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। रस और भावों के यदा कदा अनुचित रूप भी पाये जाते हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है–

भावाभास

श्रृंगार आदि रसों अथवा भावों का अनुचित रूप से वर्णन क्रमशः 'रसाभास' तथा 'भावाभास' कहलाता है। अनौचित्य अनेक प्रकार का हो सकता है। गुरू आदि को आलम्बन बनाकर हास्य रस का प्रयोग अथवा वीतराग को आलम्बन बनाकर करुण आदि का प्रयोग, माता–पिता विषयक रौद्र तथा वीर रस का प्रयोग, वीर पुरुषगत् भयानक का वर्णन, यज्ञीय पशु आदि को आलम्बन बनाकर वीभत्स का ऐन्द्रजालिक आदि विषयक अद्‌भुत और चाण्डाल आदि विषयक शान्त रस का प्रयोग भी अनुचित माना गया है, इसलिए वे सब रसाभास भावाभास के अन्तर्गत होते हैं। कवि 'निधानगिरि' ने अपने 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य मे निम्नलिखित प्रसंग में भावाभास का उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

> "टेरत स्यामह सैन दै जसमत वारहिं वार।
> चितवत नाहीं तिहि समय जनु कदु नहीं चिनार।।
> अविनासी अविगत अलष माया रहित अंनत।
> को माता को पित सषा ब्रह्म सदैव सुतंत।।"[105]

उपर्युक्त प्रसंग में मां कृष्ण को बुला रही है, बार–बार उसकी ओर देख रही है, कृष्ण इस प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं, जैसे उनकी चिन्हार पहचान हीन हो 'वात्सल्य' में इस प्रकार वैराग्य और शान्त भावों के क़ारण य़हाँ भावाभास हो जाता है।

> "अपर सषी अस विध कहत सुन उपंग के पूव।
> धरैहंस को वेष है करे काग करतूत।।"[106]

प्रस्तुत पंक्तियों में हंस के वेश में काग की करतूत वाला कहकर उद्धव जैसे ज्ञानी पर व्यंग्य उपहास किया गया है, जो भावाभास के अन्तर्गत है।

भावोदय

जहाँ किसी भाव के विलीन होते ही शीघ्र किसी दूसरे भाव के उदय होने का वर्णन कर दिया जाता है, वहाँ 'भावोदय' होता है। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में भवोंदय नामक भाव का उदाहरण इस प्रकार है–

(क) "बोली अपर सषी सुंन हेली। पायो लोचन लाभ नवेली।।
देषन जोग निरष मन मोहत। लघु वय श्याम गौर तन सोहत।।
जटा मुकुट सिर सुमन गुहाए। नव पल्लवत दल छत्र लगाए।।
हय कोउ वीर धरे मुनि वेषा। कट निषंग कर धनु सर देषा।।
नहिं पहचान परत ये को है। कोमल चरन चलत महिं मोहें।।
बिन पनहीं बन अवनि कठोरी। कौन भांत विचरत मति भोरी।।
कैसे मात पिता पुर वासी। जिन्ह पठए बन छवि धन रासी।।"[107]

उपर्युक्त पंक्तियों में राम–सीता को बन पथ पर देखकर मोहित होना तथा लोचनों का लाभ प्राप्त करना, उनके शीश पर गुथे हुए सुमनों और नवपल्लव दल के छत्र आदि का वर्णन

श्रृंगार रस के अन्तर्गत रति आदि भावों को उद्दीप्त करने वाला है किन्तु दूसरे क्षण ही सखी ने मुनि वेष में किसी वीर का दर्शन किया जो हाथों में धनुष बाण लिये और कटि में निषग कसे हुए हैं। इस प्रकार के रूप दर्शन में वीर और तापस भावों का उदय हो जाता है: साथ ही फिर अगले क्षण सखि का यह कथन कि भूमि कठोर है और ये कोमल चरन वाले राम–सीता किस प्रकार वन की यात्रा पूरी कर सकेगें। इनके माता–पिता तथा पुरवासी कैसे कठोर हैं जिन्होंने ऐसी छवि वाले सम्पत्ति रास को जंगल की ओर भेज दिया है। इस प्रसग से शोक, चिन्ता आदि के भाव उद्दीप्त हो जाते हैं और एक भिन्न भावानुभूति और रसानुभूति होने लगती है। उपर्युक्त प्रसंग में श्रृंगार के बाद वीरता और पुनः करुण आदि रसो के स्थायीभाव तथा संचारियों का उदय होने लगता है जो भावोदय का श्रेष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है।

भावशवलता

जहाँ दो से अधिक भावों का वर्णन एक साथ कर दिया जाए, वहाँ भावशवलता होती है। भावशवलता का एक उदाहरण कवि 'निधानगिरि' के काव्य में देखें– यशोदा प्रातः दधि मंथन कर रही है और कुंवर कन्हाई ने नेत को पकड़ लिया है। मथनी को पकड़ कर रार करने लगे। माखन के लिए आँसू बहाने लगे। सागर कँपने लगा, सुर और असुरों के हृदय दुःख से झंकृत हो उठे। कृष्ण ने मंथानी छोड़ी पुनः सबको सुख की अनुभूति हुई। माँ अपने पसीने की बूंदे पोछने लगी, कृष्ण को माखन खिलाया। कृष्ण इधर–उधर दौड़ने लगे कहीं टेक कर खड़े हो रहे हैं। कहीं गिर कर फ़िर उठ रहे हैं मां यशेदा ने कृष्ण को गोद में ले लिया और प्रिय शिशु का चुम्बन करने लगी। इस पूरे प्रसंग मे अनेक भावों का उदय वात्सल्य के साथ होने लगता है। सागर के कम्पित होने और देवताओं के भयभीत होने आदि के भय के प्रसंग से वात्सल्य रस के बीच भय का उदय होना 'भावशवलता' का उदाहरण है–

"दधि मथ प्रात यसोदा मायी। रहे नेत गह कुवंर कनाई।।
रार करत मथनी गह ठाड़े। माषन चहत नैन जल बाडे।।
वासुक मन्दिर सागर कम्पे। उग्र असुर सुर हिय दुष झम्पे।।
छोड माथनी मोहन दीनी। तब सबकौं सुष उपज नवीनी।।
मुष श्रम कन पोछत तब माता। माषन देत मोद भर गाता।।
जान पान विहरन प्रभु लागे। आवत दौर जात पुन भागे।।
कबहुं टेक कर होवैं ढ़ाडे। फिर गिर परत उठत छवि बाढे।।
जसुमति झपट गोद भर लीन्हे। चुम्म बदन त्रृन तोरन कीन्हे।।"[108]

भावशान्ति

एक भाव की व्यंजना के मध्य में किसी विरोधी भाव की व्यंजना हो जाने पर पहला भाव समाप्त होने का जो चमत्कार होता है, वह भावशान्ति कहलाता है। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में भावशान्ति का उदाहरण इस प्रकार है–

(क) "मन बुध अगम करत मुनि जो हैं। अस अवसर नैयनन के सोहैं
नीके निरषहुँ राम सुनयनी काहे को सकुचत पिक बैनी
मष कारन महि सोध मनीषा। लागो घट हल में जग दीसा
तासैं प्रगटी सुता पुनीता। जासैं नाम कहा मुनि सीता।।"[109]

उपर्युक्त प्रसंग में सतानंद मुनि की बाला के द्वारा राम के रूप को सुनयनी द्वारा अच्छी प्रकार देखने का अनुरोध किया गया है, तथा लज्जा और संकोच छोड़ने का भी अनुरोध है क्योंकि राम के रूप दर्शन का यह अवसर जो नेत्रों के लिए मिला है वह मुनियों के लिए भी दुर्लभ है किन्तु इसी प्रसंग के साथ यह कथन कि महाराज जनक ने यज्ञ के लिए पृथ्वी का शोध किया तथा हल्याकर्षण से घट से सीता की उत्पत्ति होने से मुनि ने पुत्री का नाम सीता किया, इस प्रकार का प्रसंग जो यज्ञ और सीता की उत्पत्ति से सम्बन्धित है, वह श्रृंगार भावों के विपरीत है और पूर्ववर्ती भावों को शान्त कर एक नये जिज्ञासु भाव को जन्म देने वाला है, जो भावशान्ति का उदाहरण है।

रसविषयक अवधारणा

रस को कविता का प्राण मानने वाले कवियों में निधानगिरि का स्थान अन्यतम है। वे काव्य में रस की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। वे भाषा को महत्व देते हैं, किन्तु उनकी दृष्टि में कृति की रस–सिक्तता ही उसे महत्वपूर्ण बनाती है। कवि ने सर्वत्र रचना की सरसता का संकेत किया है। रसिक ही रसिवत्ता को जानते हैं, सहृदयों को कवि की रसकता तल्लीन करती है और तन्मयीभाव को प्राप्त कराती है। तन्मयता का यह भाव कला की सार्थकता है। रससिद्धि की दृष्टि से कवि 'निधानगिरि' ने भक्ति रस को अंगी रस मानकर वात्सल्य, माधुर्य और दास्य की जैसी रसवृद्धि की है वह अद्वितीय है। भक्ति के क्षेत्र में महाकवि निधानगिरि ने मधुराभक्ति प्रेमाभक्ति को विशिष्ट स्थान दिया है। वैष्णव आचार्यों में भक्ति रस के भेदों में इसे प्रमुख माना है। इधर डा0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' ने प्रीति रस को एक नये रस के रूप में प्रतिपादित करते हुए उसे स्वतंत्र एवं मौलिक रस की संज्ञा दी है, जिसमें परस्परावलम्न के कारण ऐन्द्रिक भावना प्रधान श्रृंगार और भगवद् रति प्रधान भक्ति से पृथक माना है।[110]

डा0 ललित की इस स्थापना में यह भी कहा है कि 'प्रीतिरस' एक व्यापक रस है श्रृंगार, वात्सल्य, प्रेयस, सख्य, प्रकृति प्रेम, देशभक्ति आदि को इसी में अन्तर्मुक्त किया जा सकता है। डा0 ललित ने कहा है कि प्रीत ही ऐसा रस है जो भक्ति रसों की प्राण-शक्ति है। प्रीत के अभाव में भक्ति की कोई सत्ता नहीं है क्योंकि भक्ति में प्रेम ही प्रमुख है अतः आधारभूत शक्ति ही प्रीति है। भक्ति साम्प्रदायिक है, प्रीति संप्रदाय मुक्त है। अतः प्रीति ही रस बनने के योग्य है। महाकवि भवभूति के एकोरसः करुण निमित्त भेदात की भांति डा0 ललित प्रीति रस को ही अंगी रस मानते हैं। उनके अनुसार–

"एकोरसः प्रीति रसो हि शंसितः।
नान्यः रसः तत्समोऽस्ति कश्चित्।।"[116]

प्रीति रस का स्थायी प्रीति मात्र है, जिसे प्रतीत भी कहा जा सकता। गोस्वामी तुलसीदास ने 'जाने बिन न होय परतीती। बिन परतीत होय नहि प्रीती का प्रमाण दिया है। यह प्रीति वत्सल्य प्रीति होकर वात्सल्य रस, भगवद् प्रीति होकर भक्ति रस बनाती है। समस्त रसों के स्थायीभाव इस प्रीति स्थायी से जुड़कर ही वैविध्य को एक रस (अद्वयरस) में रूपान्तरित करते हैं। मानवता और रसों के उद्धार के लिए प्रीति रस से बड़ा और कोई रस नहीं है। प्रीति रस सार्वभौमिक एवं व्यापक है अतः यह अंगी रस है। इतनहिं जसू प्रीति रस

माहि' कहकर तुलसी ने इसी प्रीति रस का संकेत किया है जिधर काव्याचार्यो का ध्यान नही गया है। डा0 ललित की इस स्थापना से पुष्ट होता है कि प्रीति रस अगी रस है, शेष अंग हैं। जहाँ तक आलोच्य महाकवि 'निधान गिरि' का प्रश्न है, वे प्रेम रस का उल्लेख तो करते हैं परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भक्ति रस के ही अन्तर्गत उसे रखते हैं। 'निधान गिरि' की रस विषयक उक्तियाँ इस प्रकार हैं–

(अ) "हरि हर हरि नाराइन भाषै। हरिगुन सुमर भक्तिरस चाषै।।"[112]

(ब) " जो हरि मूरत अरचन करही। ईश्वर भाव प्रीत उर धरही।।
'प्राकृत भक्त कहत अस भांती। प्रीति भाव सै हरिपद पाती।।"[113]

(स) "नितनव प्रीत होइ हिय नीकी। विसद आचरन कर अस लीकी।।"[114]

(द) "षोडस विध भगवत आराधन। प्रीति भाव जुत अपर न साधन।।"[115]

(य) " तथा भाव तस रीत।"[119]

(र) "भक्ति सवन सिर मौर है करहु प्रीत बडमाग।"[117]

(ल) "होइ भक्ति सब एक सी प्रगट निरंतर प्रीति।"[118]

(व) " जे नहि नर पावत निपट भाव हींन संचार।"[119]

संस्कृति, परिवेश और युग बोध के परिर्वतन के साथ महाकवि 'निधान गिरि' ने भी राष्ट्रीय एकता के लिए भक्ति का एकाकार किया तथा भक्ति रस के अन्तर्गत समस्त रसों को पिरोया है। विभिन्न भक्ति पंथों, सम्प्रदायों के बिखराव को रोक कर 'निधान गिरि' ने भक्ति का एक ही बताया है–

(क) "जस–जस विध सै मन लगै भक्तन कौ तस रीत।
होइ भक्ति सब एक सी प्रगट निरंतर प्रीति।"[120]

(ख) "अस प्रकार इक भक्ति है भक्तुन मन अनुसार।
विविध भांति की लष परत सबक एक विचार।"[121]

भक्ति के अन्तर्गत सभी भक्त पंथो एवं भक्ति ज्ञान मार्गो को एकाकार करने की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चिन्ता कवि के रस विधान में भी परिलक्षित होती है। समस्त रस की धाराएँ अन्त में भक्ति रस में परिणत हो जाती हैं। इतिहास और काव्य की सार्थकता भी कवि के अनुसार 'भक्ति' में है। ईश्वराधन के बिना कविता और इतिहास दोनों धिक्कारने योग्य हैं। कवि के शब्दों में–

"धृग इतिहास राम गुन नाही। धृग कविता हरि चरित न गाही।"[122]

कवि इस अद्वैत रस विधान को मानते हुए श्रृंगार, वात्सल्य, करुण, शान्त, वीर, रौद्र, और वीभत्स रसों को भक्ति रस में पर्यवसित करता है, यहाँ तक कि वीर, रौद्र और वीभत्स रसों को भी भक्ति रस से जोड़ देते है। मित्र रसों में अमित्र रसों को जोडने से प्रायः अखण्ड रसानुभूति में व्यवधान होता है किन्तु निधानगिरि ने कवि ने मित्र रसों में अभिन्न रसों को इस प्रकार जोड़ा है कि परस्पर विरोधी प्रतीत नहीं होते।

विभिन्न रसों के द्वारा सहृदय समाज साधारीकरण की अभेदमयी भूमिका पर सिथत होकर समान रूप से अभीष्ट रस भक्ति का आस्वादन करता है। विभन्न रसों के भीतर से विश्वात्मा की अभिव्यक्ति होती है। किसी रस की सिद्धि ही भक्तिमनोहर काव्य का आत्यान्तिक लक्ष्य है। कवि का साधारणीकरण वैयक्तिक अनुभूतियों को देशकाल के बन्धनों से मुक्त कर देता है। कवि की अनुभूतियाँ साधारणीकरण के द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति की अनुभूतियाँ बन जाती हैं।

रस के कारण निधानगिरि की कृति अमर रहेगी। क्योकि रस सृष्टि के आदि से अन्त तक रहेगा, यह बात और है कि वह अभिव्यक्तिकरण के लिए शैलियों में परिवर्तन कर लेगा।

संदर्भ संकेत-

1, बाल्मीकि नारद सुकदेवा। तुलसी सूरदास जयदेवा।। निधानगिरि, भक्ति मनोहर, ह0प्र0, पृ0 13।
2, तदुपरिवत्, पृ0 4।
3, तदुपरिवत्, पृ0 6।
4, तदुपरिवत्, पृ0 7।
5, 'नाट्यशास्त्र', भरत, अ-6 श्लोक, 32 के पश्चात्।
6, तैतिरियोपनिषद्, ब्रह्मानन्द वल्ली,. सप्तम् अनुवाद।
7, 'साहित्य दर्पण', आचार्य विश्वनाथ, प्रथम अनुच्छेद।
8, 'नाट्यशास्त्र', भरतमुनि, अ-6 श्लोक, 32 के पश्चात्।
9, 'साहित्यदर्पण', आचार्य विश्वनाथ, प्रथम अनुच्छेद।
10, 'रसगंगाधर', पण्डितराज जगन्नाथ।
11, 'ध्वन्यालोक', आनन्दवर्धन, प्रथम अध्याय, श्लोक-5।
12, 'कला और संस्कृति', पृ0 219।
13, 'रतिर्मनोऽनुकूलेऽर्थेमनस्य' प्रणायितम्। साहित्य दर्पण, 3/185।
14, 'भरत नाट्यशास्त्र' (सं0 बाबूलाल शुक्ल), 6/33-34।
15, 'संस्कृत नाट्यसिद्धान्त', डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 182।
16, 'उत्तर रामचरित', भवभूति, पृ0 42।
17, 'आर्यासप्तसती', गाथा, पृ0 36।
18, 'नाट्यदर्पण', रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ0 148।
19, 'रस तरंगिणी', पृ0 64।
20, 'भाव-प्रकाश', शारदातनय, पृ0 64।
21, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 64।
22, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 84।
23, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 78।
24, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 224।
25, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 155।
26, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 155।

27, 'भक्ति मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 224।
28, 'सरस्वतीकण्ठाभरण', भोज, 5/3।
29, 'संस्कृत नाट्यसिद्धान्त', डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी, पृ0 175।
30, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 75।
30ख, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 86।
31, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 124।
32, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 124।
33, उत्साह स्थायीभाव। महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृत:।। साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, पृ0 232।
34, 'वीर-सतसई', विनोवा भावे, पृ0 8।
35, 'नाट्यशास्त्र, भरत, गायकवाड ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, अध्याय-6, पृ0 299।
36, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 134।
37, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 111।
38, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 54।
39, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 55।
40, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 187।
41, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 187।
42, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 188।
43, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 48।
44, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 48।
45, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 53।
46, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 53।
47, 'भक्ति मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 53।
48, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 54।
49, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 197।
50, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 52।
51, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 52।
52, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 52।
53, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 88।
54, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 61।
55, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 223।
56, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 247।
57, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 111।
58, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 26।
59, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 159।
60, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 243।
61, 'साहित्य-दर्पण', विश्वनाथ, 3/76, पृ0 41।
62, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 48।

63, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 112।

64, 'साहित्य-दर्पण', विश्वनाथ, 3/76, पृ0 41।

65, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 112।

66, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 138।

67, 'नाट्यशास्त्र', भरत, अध्याय-6, पृ0 268-269, म0ओ0ई0।

68, 'काव्य-प्रकाश', मम्मट, पृ0 93।

69, 'नाट्यशास्त्र', भरत, गा0ओ0सी0 6/17, बड़ौदा, 1930।

70, नाट्यशास्त्र अभिनव भारती, पृ0 340, भाग-1, गा0ओ0सी0।

71, 'काव्यानुशासन', अ0 2/17, सू0प्र0 120।

72, 'प्रतापरूद्रयशोभूषणम्', रस प्रकाश, पृ0 236, बुम्बई, 1909।

73, 'साहित्य-दर्पण', 3/50, पृ0 265, डॉ0 सत्यव्रत सिंह, बनारस।

74, 'नाट्यदर्पण', 3 विवेक, श्लोक-126, गा0ओ0सी0, 1929, भाग-1, पृ0 176-177।

75, 'भरतकोश', रामकृष्ण कवि तिरूपति, पृ0 974, सं0 1951।

76, 'रस-गंगाधर', पं0 जगन्नाथ, स्थायीभाव प्रकरण, पृ0 132।

77, 'अभिनव-भारती नाट्यशास्त्र', सं0 बद्रीनाथ, गा0ओ0सी0, भाग-1, पृ0 269।

78, 'रस विलास', प्रेमलता शर्मा, द्वितीय स्तवक श्लोक-46, पृ0 26।

79, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0, पृ0 12।

80, तदुपरवित्, पृ0 227।

81, 'भक्ति-रसायन', मधुसूदन सरस्वती, 1/13।

82, 'भक्ति-रसामृत सिन्धु', रूपगोस्वामी, 1/1/19।

83, 'सारंगदेव:', संगीत रत्नाकर, परि0 7, भानुदत्त रसतरंगिणी, छठी तरंग।

84, 'भक्ति रसामृत सिन्धु', रूपगोस्वामी, 1/1/19।

85, 'सारंगदेव:', संगीत रत्नाकर, परि0 7, भानुदत्त रसतरंगिणी, छठी तरंग।

86, 'भक्ति-रसायन', मधुसूदन सरस्वती, पृ0 101।

87, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 229।

88, 'उज्जवल नीलमणि', रूप गोस्वामी, पृ0 571-78।

89, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 229।

90-109, तदुपरिवत्, पृ0 क्रमंश: 96, 43, 44, 52, 187, 187, 43, 86, 219, 219, 213, 65, 60, 137, 137, 222, 227, 227, 187, 187।

110, 'प्रीति-रस', डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', शोध लेख, (अप्रकाशित)।

111, तदुपरिवत्।

112, 'भक्ति-मनोहर', 'निधान गिरि', ह0लि0प्र0 बांदा, पृ0 25।

113-122, तदुपरिवत्, पृ0 क्रमश: 6, 11, 17, 9, 9, 10, 86, 10, 10, 78।

चतुर्थ परिवर्त्त

'भक्ति–मनोहर' में भक्ति, दर्शन एवं सौन्दर्यानुभूति

भक्ति का स्वरूप एवं प्रकार
गीता के अनुसार वर्गीकरण
भागवत की नवधा भक्ति
भक्ति की भूमिकाएँ एवं प्रेम की दशाएँ
दार्शनिक चिन्तन
उपनिषद् दर्शन, न्याय दर्शन, सांख्य दर्शन,
वैशेषिक दर्शन, योग, मीमांसा
वेदान्त दर्शन
तंत्र दर्शन
जीव
जगत
माया
भाव एवं कल्पना सौन्दर्य
प्रकृति सौन्दर्य
संदर्भ-संकेत

चतुर्थ परिवर्त्त
'भक्ति मनोहर' में भक्ति, दर्शन एवं सौन्दर्यानुभूति

भक्ति का स्वरूप एवं प्रकार- "भज सेवायाम्" धातु के आगे 'क्तिन' प्रत्यय जोड़ने से भक्ति शब्द निष्पन्न होता है। इसका मूल अर्थ सेवा है। गरूड़ पुराण में कहा गया है-

"भजै इत्येष वै धातु सेवायां परिक्रीर्तित:।
तस्मात् सेवा बुधै: प्रोक्ता भक्ति: साधन भूयसी।।"[1]

विभिन्न विद्वानों एव आचार्यों ने भक्ति की विभिन्न प्रकार से परिभाषाएँ दी है जो निम्नवत् है-

मय्यर्पित मनोबुद्धियों मद्भक्त: स में प्रिया।[2]

जिसने अपना मन एवं बुद्धि मुझे अर्पित कर दी है, वह भक्त मुझे प्रिय है।

"या प्रीतरविवेकाना विष्येष्वनपायिनी
ल्पामनुस्मरत: सा मे हृदयान्मासर्यतु।।[3]

जिस प्रकार अविवेकी जनों की प्रीति विषय पदार्थो में होती है उसी प्रकार अनपायिनी प्रीति जब भक्त के हृदय में भगवान के प्रति होती है तब वह भक्ति कहलाती है।

"सत्व एवैक मनसोवृत्ति स्वाभाविकी तु या।
अनिमित्त भगवती भक्ति: सिद्धर्गरीयसी।।"[4]

वेद विहित कर्म में लगे हुए व्यक्तियों की भगवान के प्रति अनन्य एवं स्वाभाविक सात्विक प्रवृत्ति का नाम भक्ति है।

"पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्य:।[5]
पाराशर्य के मत में पूजादि में अनुराग ही भक्ति है।

सा परानुरक्तिरीश्वरे।[6]
ईश्वर में परानुरक्ति ही भक्ति है।

"भोक्षकारणसामग्रया भक्तिरेव गरीयसी।
स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते।।"[7]

मोक्ष की कारण सामग्री में भक्ति का स्थान सर्व प्रथम है। अपने स्वरूप का अनुसंधान ही भक्ति है।

माहात्म्यज्ञान पूर्वस्तु सुदृढ़: सर्वतोऽधिक: स्नेहे भक्तिरिति प्रोक्त:[8]
भगवान में माहात्म्य ज्ञानपूर्वक सुदृढ़ और सतत् स्नेह ही भक्ति है।

''अन्याभिलाषितशून्यं ज्ञानकर्माथनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलन् भक्तिरूत्तमा।।''[9]

अन्य अभिलाष से शून्य, ब्रह्मज्ञान तथा फलयुक्त नित्य, नैमित्तिक, कर्म आदि से अनावृत कृष्ण में रूचियुक्त प्रवृत्ति के साथ कृष्णानुशीलन ही उत्तमा भक्ति है।

द्रुतस्य भगवद्धमद् धारावाहिकताँगता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते।।[10]

भगवान के गुण, महिमा आदि श्रवण करके सात्वगुण के उद्रेकवश जब मनद्रवीभूत होकर भगवान के प्रति धारावाहिक वृत्ति में लीन हो जाता है, तब उसे भक्ति कहते हैं।

श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।

(क) भक्ति स्वरूप एवं प्रकार- केनाप्युपायेन मन: कृष्णे निवेशयेत्[11] अर्थात् किसी भी उपाय से भगवान में मन का स्थिर करना ही भक्ति है।
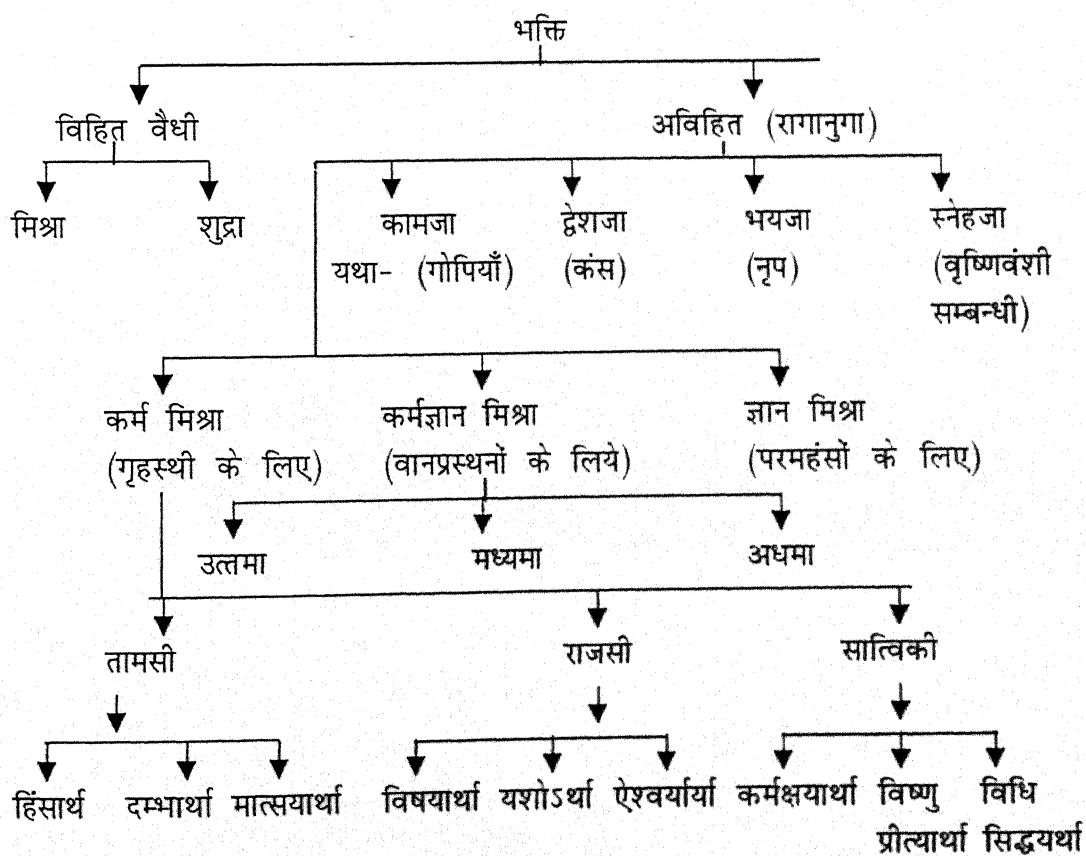
गौडीय सम्प्रदाय के चैतन्य चरितामृत, संदर्भ, भक्ति संदर्भ, भक्तिरसामृतसिन्धु एवं उज्जवल नीलमणि के अनुसार निरूपित भक्ति का स्वरूप इस प्रकार है-

रूप गोस्वामी ने भक्ति की परिभाषा देते हुए लिखा है-

अन्यभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्मधनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरूत्तमा।।[12]

अर्थात् अन्य अभिलाषाओं से रहित होकर, ज्ञान, कर्म, वैराग्य आदि का भी मोह न रखते हुए श्रीकृष्ण के अनुकूल उपासना करना ही उत्तमा भक्ति है। समस्त गौड़ीय वैष्णव साहित्य में भक्ति को कर्म, ज्ञान तथा वैराग्य से साध्य न मानकर स्वत: पूर्ण माना गया है। श्री रूप गोस्वामी ने इस सम्बन्ध में दृढ़तापूर्वक कहा है कि जब तक हमारे अन्त:करण में कर्म से प्राप्य भोंगों के प्रति तथा ज्ञान से प्राप्य मोक्ष के प्रति जरा भी रूचि रहेगी, तब तक भक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती-

''युक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
तावद् भक्तिसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्।।[13]

कविराज कृष्णदास ने भी इसी का समर्थन किया है।[14] ऐसा प्रतीत होता है कि गौड़ीय वैष्णव आचार्य भक्ति को ज्ञान व कर्म के आवरण से रहित मानने में नारद भक्ति सूत्र से प्रभावित हैं, जहाँ भक्ति को स्वयं फलरूपा कहा गया है।[15] इस भक्ति के छै: गुण बताए गए हैं-

क्लेशध्नी शुभद्रा मोक्षलधुताकृत् सुदुर्लभा।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षणी च सा ।।[16]

अर्थात् यह भक्ति सब प्रकार के दु:खों को नाश करने वाली, सम्पूर्ण कल्याण को देने वाली, मोक्ष को भी तुच्छ समझने वाली, अत्यन्तदुर्लभ, अपरिमेय आनन्द से पूर्ण तथा श्री कृष्ण भगवान को आकर्षित करने वाली है। रूपगोस्वामी के अनुसार भक्ति रसानन्द सर्वोपरि है, ब्रह्मानन्द इसकी तुलना में टिक नहीं सकता-

ब्रह्मनन्दो भवेदेष चेत् परार्द्धगुणेकृत:।
नैति भक्तिसुखाम्भोघे: परमाणुतुलामपि।।[17]

रूप गोस्वामी के अनुसार भक्ति के भेद उपभेद इस प्रकार है-

सामान्य भक्ति- भगवान के प्रति सामान्यत: श्रद्धा एवं प्रेम से युक्त भक्ति सामान्य भक्ति कहलाती है।
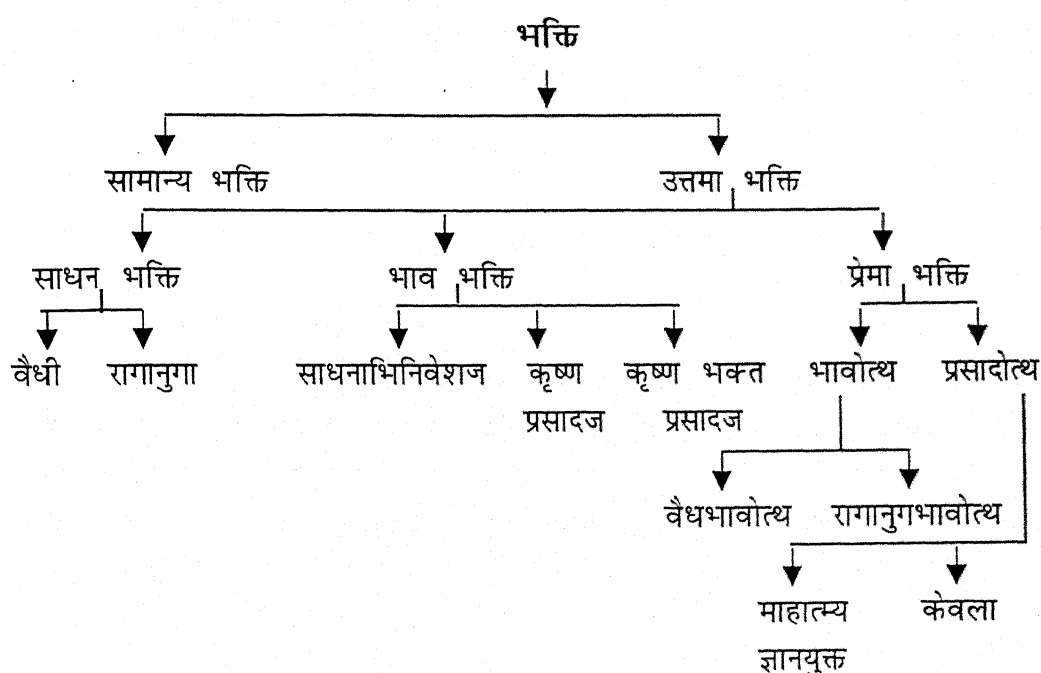
उत्तमा भक्ति- यह सामान्य भक्ति से श्रेष्ठ है। इसके तीन भेद कहे गये हैं, साधन भक्ति, भाव भक्ति, व प्रेमा भक्ति। साधन भक्ति वह है जिसमें साधक बाहरी साधनों से भगवान की ओर उन्मुख होता है-

''कृते साध्या भवेत् साध्यभावा सा साघनाभिधा।''[18] इसके दो भेद कहे गये हैं- वैधी, रागानुगा।

वैधी- शास्त्रविधि से जो भगवान का भजन किया जाता है, उसे वैधी भक्ति कहते है। इसको मर्यादा मार्ग भी कहा गया है । इसके 64 अंगों का निर्देश किया गया है जैसे नाम कीर्तन, गुरूपादाश्रय, जप, भागवत श्रवण आदि। इस भक्ति में राग की स्थित नहीं प्राप्त होती।

रागानुगा भक्ति- यह भक्ति कृष्ण के सतत् ध्यान एवं स्मरण से उत्पन्न होती है। इसमें ब्रज वासियों की रागात्मिका भक्ति का अनुकरण करना पड़ता है। इसमें कृष्ण के प्रति कोई न कोई मानवीय सम्बन्ध जुड़ जाता है। यह भक्ति वैधी भक्ति का विकल्प है, पर कभी-कभी यह स्वत: ही उत्पन्न हो जाती है। इसमें शास्त्रीय आचार विचार तथा पूजा विधान आदि गौण हो जाते हैं, प्रेम ही सब कुछ बन जाता है। इसमें परमात्मा के प्रति सहज प्रेम उत्कट एवं तन्मयतापूर्ण स्थित को पहुँच जाता है-

''इष्टे स्वारसिकी राग: परमाविष्टता भवेत्।
तन्मयी या भवेद् भक्ति साऽरागात्मिकोदिता।।''[19]

कामानुगा तथा सम्बन्धानुगा इसके दो भेद कहे हैं।

भाव भक्ति- यह साधन भक्ति का परिपक्व रूप है। यह आन्तरिक भाव के फलस्वरूप होता है, पर दशा नहीं पहुँचती। यह भक्ति शुद्धसत्व विशेषात्मा तथा प्रेम सूर्याशुसदृश है और भक्त में इष्ट देव के प्रति रूचि उत्पन्न कर उसके चित्त को स्निग्ध बना देती है, यह साधनों से, अनुष्ठान से तथा कृष्ण अथवा उनके भक्तों की कृपा से उत्पन्न होती है।[20]

प्रेमा भक्ति- यह सर्वोत्तम प्रकार की भक्ति है तथा भाव भक्ति की परिपक्व अवस्था है। चित्त जब सम्यक् रूप से मसृण हो जाता है तब ममत्व की अतिशयता होती है- यही परमानन्द से पूर्ण धनीभूत भाव प्रेम कहा जाता है। यह वैधी. अथवा रागानुगा भाव दोनों से उत्पन्न हो सकती है परन्तु कभी-कभी यह इष्टदेव की कृपा से भी उदित हो जाती है।इस प्रेमा भक्ति के उदय का क्रम इस प्रकार है- श्रद्धा -साधुसंग-भजन क्रिया-अनर्थ निवृत्ति-निष्ठा असक्ति भाव तथा अन्त में प्रेम उत्पन्न होता है जो कृष्ण भक्ति रस का स्थायी भाव है।[21] कविराज कृष्णदास ने भी इन सब बातों का उल्लेख किया है। प्रेमा भक्ति के दो भेद- भावोत्थ तथा प्रसादोत्थ कहे गये हैं।

भक्ति का यह विभाजन क्रमशः एक दूसरे का विकसित रूप होकर भगवत् प्रेम की बुद्धि में सहायक तथा भक्ति रस की निष्पत्ति करने वाले सोपानों की भाँति है। अन्तिम भेद प्रेमा भक्ति रस की निष्पत्ति में पूर्ण सहायक है। निधानगिरि के काव्य में भक्ति का भेद इस प्रकार किया गया है-

> ''प्रथम विहित अविहित है दूजी। निगमागम पुरान मति सूजी
> शास्त्र रीत आइस अनुसारा। विहित नाम सो कह विधचारा
> काम अर्थ इक्षा सै एका। जथा गोपका ध्रुव गज टेका
> दुतिय दोष रिपु तासै जानौ। रावन सिसुपालादि बषानौ।।
> मय सै त्रतिय कंस मारीचा। चतुरथ परम सनेह वगीचा ।।
> सिव नारद सनकादिक जैसे। प्रीत प्रतीत करै जन तैसे ।।
> तहाँ उपासक दो कौ त्यागी। जौ रिपुतामय अनुचित लागी ।।
> काम अर्थ अरू प्रीत समेता। ऐ उपासना रीत निकेता।।''[22]

अर्थात् निधनगिरि के अनुसार भक्ति का वर्गीकरण निम्नवत् किया जा सकता है-
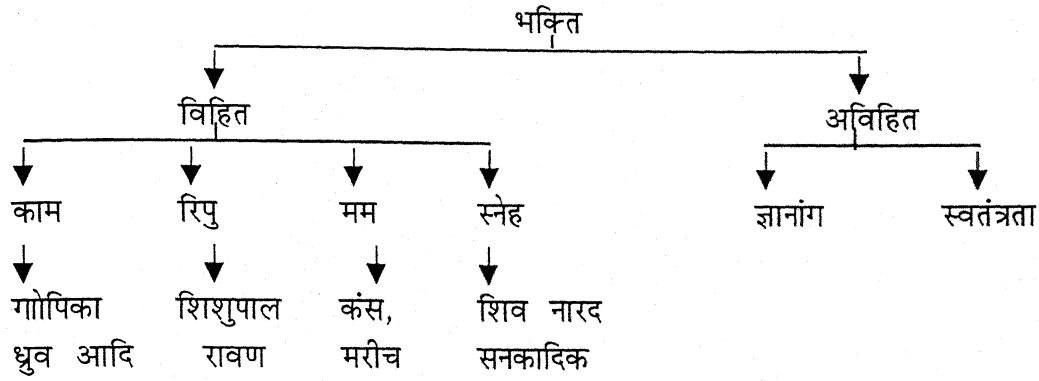
(ख) तीन प्रकार भक्ति पुन गाई। उत्तम मध्यम प्राकृतताई।।

× × × × × × ×

जास प्रीत भगवत मै गाई। भगवत भक्त मित्र समताई।।[23]

भागवत के अनुसार भक्ति का अन्य वर्गीकरण त्रिविधात्मक है जो कवि गिरिनिधान के अनुसार इस प्रकार है-

गीता के अनुसार वर्गीकरण-

भक्ति के उच्चतम परिपाक को पराभक्ति, शुद्ध भक्ति, प्रेमाभक्ति, पुष्टिभक्ति, अविरलभक्ति, रागात्मिका भक्ति आदि विभिन्न नामों से आचार्यो ने पुकारा है। सभी आचार्यो का परम् तात्पर्य तो एक ही है, किन्तु कुछ भावानगत सूक्ष्म अन्तर इन नामों में झलकता ही है। श्रीमद्भागवत गीता के अनुसार भक्ति इस प्रकार है।
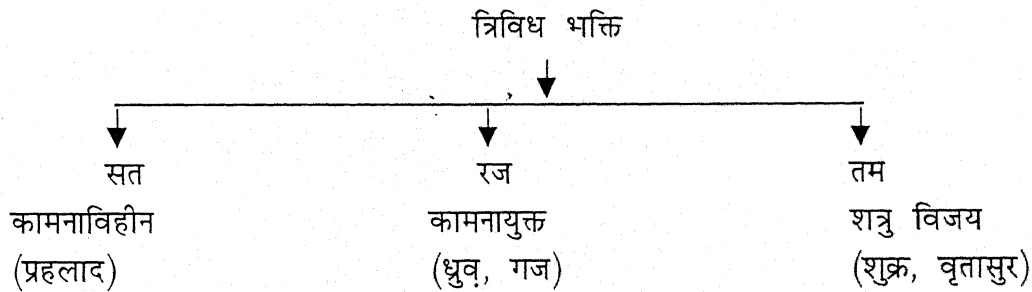
भक्त को भगवान से अभिन्न कर देने की अपनी अपूर्व महिमा के कारण ही पराभक्ति को सर्वोत्कृष्ट माना जाता है अन्य भक्तियों के द्वारा आर्त्त निवारण, जिज्ञासा पूर्ति या अर्थ प्राप्ति जैसे आंशिक उपलब्धियाँ ही होती हैं। गीता के साँतवे अध्याय में प्रभु ने आर्त्त, जिज्ञासु, अथार्थी और ज्ञानी इन चार प्रकार के भक्तों की चर्चा करते हुए ज्ञानी भक्त को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया हैं। ज्ञानी भक्त की महिमा ही पराभक्ति है। ज्ञानी भक्त की विशेषताएँ बताते हुए प्रभु ने कहा है कि वह नित्ययुक्त, एकमात्र मुझमें ही भक्तिमान् एवं मुझसे अत्यधिक प्रेम करने वाला होता है।[24]

गीता में प्रभु ने कहा है कि ज्ञानी भक्त यह जानकर मुझे भजते हैं कि मैं सब की उत्पत्ति का कारण हूँ और सब मुझसे ही प्रवृप्त किये जाते हैं-

''अहं सर्वस्य प्रभवो मन: सर्व प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमविन्ता:।।''[25]

अन्य भक्त मानकर प्रभु को भजते है और ज्ञानी भक्त जानकर भजते हैं, यह बहुत बड़ा अन्तर है। सबके रक्षक, सबके जनक, सबके प्रेरक के रूप में प्रभु को जान लेने के बाद राग, द्वेष, शोक-मोह, भय-लाभ आदि अपने आप निर्मूल हो जाते हैं।

कवि निधानगिरि ने अपने महाकाव्य में गीता के अनुसार वर्गीकरण को निम्नवत् व्यक्त किया है-

''अस विध व्यास भागवत साषा। श्रीमुष आप परम मत भाषा।।
चार प्रकार भक्त कह गीता। आरति एक सहित दुष प्रीता।।
तव भागवत अवराधन होई। द्रोपदसुता जथा विध सोई।।
दूसर जम्यास अस भाँता। षोजत मुक्ति पंथ दिन राता।।
जथा परीछत अदिक सादू। तीसर अथार्थी ध्रुव आदू।।
चतुरथ ग्यानी विमत् विषा्दा। नारद सनकादिक प्रहलादा।।[26]
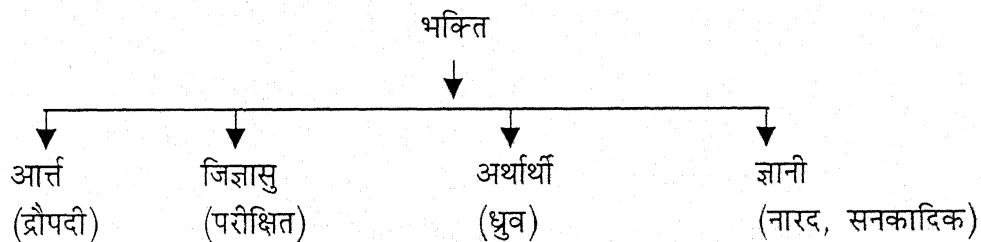
भागवत की नवधा भक्ति- भागवत की भक्ति के अनुसार नवधा भक्ति इस प्रकार है-

''श्रवणं कीर्तनं विष्णो: स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिस्वेन्नवलक्षणा
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्।।''[27]

अर्थात् भगवान के सम्बन्ध में श्रवण उन्हीं का कीर्तन, स्मरण, चरण, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन मूलक नौ लक्षणों वाली भक्ति यदि भगवान के प्रति समर्पण के भाव से की जाये तो मैं उसी को सर्वोत्तम अध्ययन समझती हूँ। आचार्यो ने श्रवण, कीर्तन, आदि को साधन भक्ति कहा है और आत्म निवेदन को उसकी पराकाष्ठा बताया है। कुछ आचार्य आत्म निवेदन को पराभक्ति ही मानते है। साधन भक्ति वैधी भक्ति के अन्तर्गत ही आती है। वैधी भक्ति करते-करते चित्त द्रवीभूत हो जाता है और इष्ट

देव के रंग से रंग जाता है। इसलिए भक्ति की इस स्थिति को रागानुगा भाव भक्ति कहा जाता है। निधानगिरि ने भागवत की नवधा भक्ति के वर्ग निम्नवत् किए हैं-

श्रवण-नवधा भक्ति में पहली ही है श्रवण भक्ति। इसी प्राथमिकता से यह संकेतित है कि अन्य भक्तियों के मूल आधार के रूप में विराजमान है श्रवण। भक्ति के क्षेत्र में श्रवण का अर्थ है श्री भगवान के नाम, चरित्र, गुण आदि को सुनना- श्रवणं नाम चरित गुणादीना श्रुतिर्भवेत।
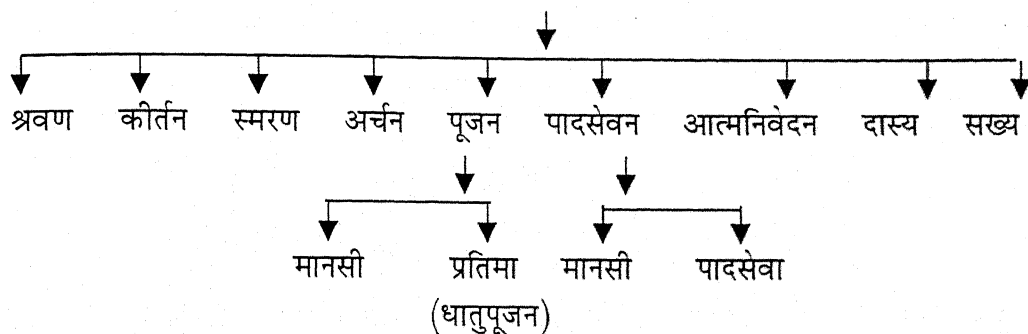
महाकवि 'निधानगिरि' के अनुसार श्रवण-भक्ति का स्वरूप इस प्रकार है-

"श्रवण भक्ति अब सुनहु मुनीसा। भागवत कथा करन रस चीसा-।।
सदा करन पुट पान कराई। सहजहि कलुष पुंज विनसाहीं-।।
जात परमपद कौसक नाहीं। भगवत चरित सुधा समताई।।
जे हरि चरित छोड़कर निंदा। काम कथा सुन हौई अंनदा।।
ते सठ सारहीन सुन बानी।ज्यौ सूकर बिट करउ चढ़ानी।।
जे वक्ता कौ हरि सम लैषी। सुनह चरित प्रिय प्रेम विसेषी।[28]

कीर्तन-श्रवण भक्ति का सहज विकास कीर्तन में होता है। कीर्तन का शब्दार्थ है, कीर्ति फैलाने की क्रिया। भक्ति के क्षेत्र में कीर्तन का तात्पर्य भगवान के नाम, लीला गुण, आदि का श्रद्धापूर्वक सस्वर उच्चारण, कथन, विवेचन आदि है। श्रीमद्भागवत में भी 'संकीर्तन भगवते गुणकर्मनाम्नीम्'।[29] कहकर उसे जीवों के पापनाश के लिए पर्याप्त बताया गया है। सम्यक् प्रकार से किये गये कीर्तन को ही संकीर्तन कहते हैं। निधानगिरि ने 'भक्ति-मनोहर' में कीर्तन का उल्लेख इस प्रकार किया है-

"कह हरि चरचा आपुस माहीं। कीर्तन ताह शास्त्र अवगाहीं।।
करै काव्य रचना हरि लीला। कीर्तन ताह कहत बुध सीला।।
कहत पुरान कथा विस्तारी। अथवा नाम जपहिं हिय धारी।।
पड़ै पड़ावै हरिगुन गाना। कीर्तन ताकौ करत वषाना।।
है जे गये हौहिं जे आगै। दृढ़ विस्वास कीर्तन पागै।।
जो जिहि पद लह भक्ति कंदवा। केवल कीर्तन के अवलंवा।

भय भक्ति यहसै सब ताता। सत्य तास तारन पद दाता।।
कीर्तन भक्ति महेस विलासी। सर्व ईस पद लह अवनासी।।[30]

स्मरण- स्मरण नवधा भक्ति का तीसरा सोपान है। स्मरण श्रवण और कीर्तन में ही होता है। क्योंकि यह स्वाभाविक ही है कि प्रभु के नाम, रूप, लीला, गुण आदि की चर्चा सुनने या करते समय उनकी स्मृति बनी रहे। इसलिए यह मानते हुए भी कि श्रवण कीर्तन में स्मरण गौण रूप से बना रहता है, साधारण तौर पर एकान्त में बैठकर अन्य किसी व्यक्ति या वस्तु पर निर्भर न रहकर मनोयोग पूर्वक प्रभु के नाम, रूप, लीला आदि का चिन्तन करने को स्मरण भक्ति कहते है।भक्ति-मनोहर में स्मरण नामक नवधा भक्ति इस प्रकार है। निधानगिरि ने अहर्निश मनस: हरि स्मरण को स्मरण भक्ति कहा है-
"निस दिन मन सुमरन करे सुमरन भक्ति कहाई।"[31]

अर्चन-अर्चन का साधारण अर्थ है पूजा करना। भक्ति के क्षेत्र में नारायण तीर्थ के अनुसार उसका अर्थ है- 'श्रवणादिभिन्नो विष्णुप्रीतिहेतुर्व्यापार: प्रतिमाऽऽदौ गन्धपुष्पाध ार्पणरूप:[32] इसके अनुसार श्रवण आदि से भिन्न श्री विष्णु की प्रीति प्राप्त करने के हेतु रूपी क्रिया कलाप को उनकी प्रतिमा को गन्ध पुष्प आदि अर्पण करने को अर्चन या पूजन कहते है। अपने इष्टदेव के प्रति मन को लगाने का, अपने प्रेम भाव को दृढ़ करने का सुगम शास्त्रीय उपाय है अर्चन। आचार्यो ने विधान किया है कि अर्चावतार के रूप में प्रभु की प्रतिमा को देव स्थान में या अपने घर के ही किसी कक्ष में प्रतिष्ठित कर सामर्थ्य के अनुसार षोडशोपचार या पंचोपचार या किसी भी प्रकार उसका पूजन किया जाना चाहिए। "अर्चन के पाँच अंग है- अभिगमन, उपादान, योग स्वाध्याय और इज्या। श्रद्धापूर्वक अन्त:करण लेकर पूजन के संकल्प के साथ देव स्थान तक जाना, उसे स्वच्छ करना, उसे सुसज्जित करना अभिगमन के अन्तर्गत आता है। पूजा की सामग्री का संग्रह करना उपादान है। इसमें आर्थिक क्षमता का महत्व नहीं है, भाव का महत्व है। कपट और दम्भ को त्याग कर यदि अर्चक पत्र-पुष्प द्वारा ही प्रभुकी पूजा करे तो वे उसी से प्रसन्न हो जाते हैं।"[33]

गीता में प्रभु ने कहा ही है- "पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मन:।"[34] अर्थात यदि कोई मुझे भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल, जल अर्पित करता है तो मैं उस भक्तिमय उपहार को आग्रह पूर्वक ग्रहण करता हूँ।" तुलसीदास ने सन्तों की इसी मन:स्थिति को रेखांकित करते हुए कहा है कि वे "निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध'। तुलसीदास के अनुसार अनन्य संवक का लक्षण ही है 'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त।' इसलिए अर्चन अपने विकसित व्यापक रूप में जगत् के कण-कण में व्याप्त प्रभु का अर्चन हो जाता है। 'निधानगिरि' ने अर्चन भक्ति के अन्तर्गत षोड्स विभागों का उल्लेख किया है तथा हरि पूजन की दो विधियाँ बतलाई हैं, प्रथम मनसी, द्वितीय प्रतिमा पूजन-
"अर्चन विध वरनन करत समझ करो बड़भाग
चीत सहित ताके सुनहु षोड्स भांति विभाग।"

हरि पूजन दो विध से भाखा। प्रथम मानसी कर अवलासा।।
दूसर प्रतमा धात पखाना। तामैं जान भाव भगवाना।।[35]
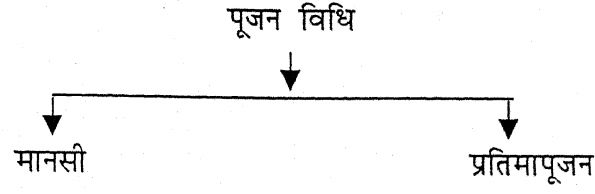
महाकवि 'निधान गिरि' ने अर्चन भक्ति के अन्तर्गत जिन षोड्स विभागों का वर्णन किया है, वे इस प्रकार है-

(1) **आवाहन-**
"प्रथम प्रभात जगावहु स्वामी। आवाहन अस अन्तर जानी।।"

(2) **सिंहासन-**
"दूसर सिंहासनह बिछाना। तापर आसन डार सुजाना।।"

(3) **अंगौछ-**
"पुन मन्दिर की करहु बुहारी। तीसर चरन अंगौछ मुरारी।।"

(4) **अर्धवदन स्नान-**
"अर्धवदन कर धोवहुं चारा।।"

(5) **आचमन और दंत प्रच्छालन-**
"पंच आचमन दन्त पखारा।।"

(6) **मार्जन-**
"षट मज्जन कर पौंछा देही। धोती करा सम्भार सनेही।।"

(7) **पट भूषण-**
"सप्तम पट भूषन करे"

(8) **उपवीत-**
"अष्टम् रच उपवीत। होई कनक कै पाट को सूतरंग कर प्रीत।।"

(9) **चन्दनादिक-**
"नवम् चन्दनादिक कर भूरी, केसर गन्ध मलय कस्तूरी।।"

(10) **मुकुट पर फूल गूथना-**
"दशम् मुकुट पर गूथा फूला पुष्प माल पहरा छविमूला।।"

(11) **धूपादि-**
"ग्यारहिं करहु अगर धूपादि।।"

(12) **गौ घृत कपूरादि दीप-**
"बारहिं गो घृत करपूरादि
सादर द्वीप प्रकासिक करना। सो सब महामोह तम हरना।।"

(13) मधुर असन-

"त्रैदश बहुविध असन मधुर रच। थार लगा दूपवाइस हित रूच।।
अचवन सहित करा जल पाना। भल प्रछाल कर बदन सुजाना।।
पुन अगोछ मुख पौछ सुलैना। सज ताम्बूल परम कर दैना।।"

(14) भेंट धरना-

"बहुर चतुरदस भैंट धराई।।"

(15) आरती-

"पन्द्रह करह आरती भाई।
करह प्रदक्षित प्रेम जुत विनय कहाँ कर जोर।।
पुष्पांजल दैवे बहुर नाना भात निहोर।।"

(16) पलंग सेज सजाना-

"षोड्स कला पलंग पर सुभग सेज कर साज
चादर तकिया आदि दै अतर पान प्रभु काज
असन पान कछु पलंग तर धरिये प्रीति समेत
सैन समय भगवत चरन कमल पलोट निकेत।।"

कवि 'निधान गिरि' ने षोड्स विधियों से प्रीति भावना से युक्त होकर आराधना का उल्लेख किया है जो उनकी साधना पद्धति का भी अंग प्रतीत होता है। षोड्स हरि पूजन का वर्गीकरण कवि 'निधान गिरि' के उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर इस प्रकार है-

कवि ने आरती के संदर्भ में प्रभात काल में मंगलआरती, एवं सायंकालीन नियत आरती करने तथा मध्यान्ह में राजभोग का उल्लेख भी किया है और इस प्रकार की त्रिकाल आराधना को जनन्म-मरण की बाधाओं से मुक्त कराने वाला बतलाया है-
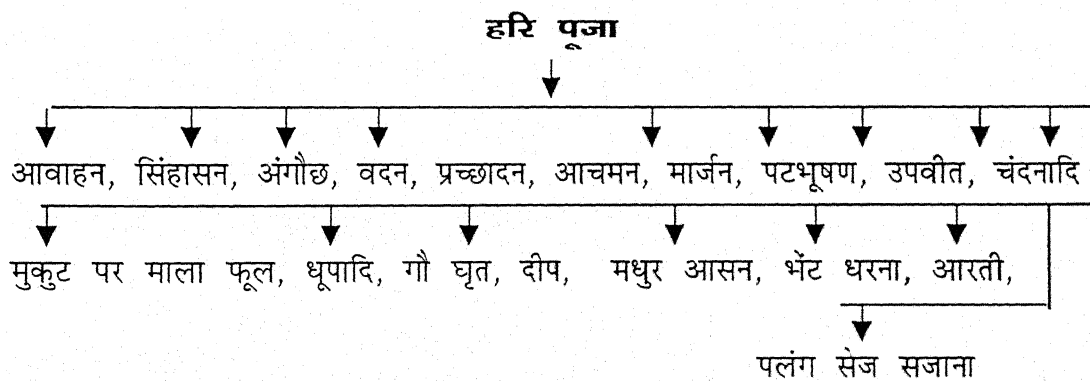
"मंगलारती करै प्रभाता। राजभोग मध्यान सुहाता।
नियत आरती सायंकाला पूजन दरसन करह विसाला।
तीन काल प्रभु इम आराधा। नासह जन्म मरन की बाधा।।"[36]
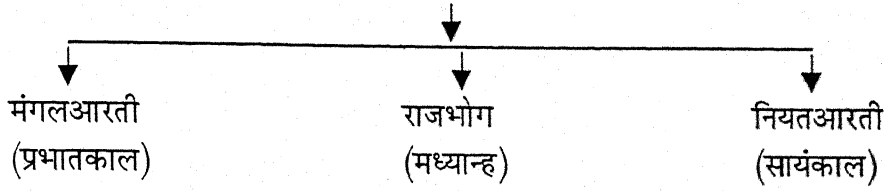
हरि सेवा को भक्त कवि ने द्विधि बताया है। प्रथम मानसी, द्वितीय प्रतिमा सेवा। प्रथम मानसी सेवा के आदर्श पवनसुत हैं, दूसरी पदसेवा के अधिकारी लक्ष्मण को बताया गया है, जिन्होंने गृह को छोड़कर बन में रहकर प्रभु की सेवा की, कवि के शब्दों में-

"हरि सेवा दो विध सै गाई। प्रथम मानसी मन सै भाई।
भगवत रूप ध्यान में लावै। कर विस्वास अनूप दिखावै।
दूसर तन से कर पद सेवा। निशदिन परम मूर्त वसदेवा।
जथा पवनसुत प्रभु पद प्रीति। करहिं सेव अति हृदय प्रतीती।।"[37]

पादसेवन- भगवान के चरणों की सेवा और इस भक्ति की प्रधान अधिकारिणी भगवती लक्ष्मी मानी गयी हैं। किन्तु साधन भक्ति के रूप में पाद सेवन को स्वीकार करने वालों को साक्षात् भगवान की प्राप्ति ही नहीं हुई होती तो वे उनके चरणों का संवाहन आदि करने का महान सौभाग्य कैसे प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में पाद सेवन मुख्यत: मानसिक स्तर पर ही किया जा सकता है। पाद सेवन करने का मतलब है, प्रभु के चरणों में अपने मन को लगाकर अर्थात् निरन्तर प्रभु के सुभग शीतल, कमल-कोमल, जग ज्वालाहारी चरणों का ध्यान करते रहना, अपने मन के द्वारा उनका स्पर्श करते रहना। स्मरण में भी ध्यान सन्निहित हैं, किन्तु उसमें नाम, रूपलीला आदि के विस्तार के कारण वह धनीभूत सान्द्रता नहीं आ पाती, जो केवल प्रभु चरणों में मनोनिवेश करने के कारण सहज सुलभ है।[38]

प्रभु के चरणों के ध्यान पर बल देते हुए भागवत में कहा गया है- "सच्चिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दम तथा ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम" अर्थात् प्रभु के चरण कमलों का चिन्तन या ध्यान सम्यक् रूप से एवं चिर काल तक करना चाहिए।

पद सेवन के अधिकारी निधानगिरि के अनुसार लक्ष्मण हैं जिसने गृह को छोड़कर वनवासी राम की सेवा की कवि के शब्दों में-

"पद सेवा लक्ष्मण अधिकारी। गृह तज विपिन संग पग धारी।[39]

लक्ष्मण के अतिरिक्त षोड्श पार्षद भी प्रभु का पद सेवन करते रहते है,

वन्दन-वन्दन का अर्थ होता है; नमस्कार, अभिवादन, श्रद्धापूर्वक चरणस्पर्श आदि। प्रभु को उनके श्री विग्रह के गुरू को, भगवद्भक्तों को, विनम्र भाव से प्रणाम करना, इसी

भक्ति-भाव के अन्तर्गत आता है। भक्ति का अर्थ ही है प्रभु के प्रति माहात्म्य बोध पूर्वक सुदृढ़, सर्वतोऽधिक स्नेह। प्रभु के महत्व बोध के साथ ही अपने लघुत्व का भी ज्ञान होता है। भक्ति की दृष्टि में न तो प्रभु से कोई बड़ा है न अपने से कोई छोटा। इसीलिए तुलसीदास जी ने कहा है-

> ''राम सो बड़ा है कौन मों सौ कौन छोटो
> राम सो खरो है कौन मो सो कौन खोटो।''[40]

एक साथ इन दोनों भावों को प्रकट करने का साधन है नमस्कार करना अर्थात् हाँथ जोड़कर सिर झुकाकर, वाणी से नमस्कार या प्रणाम का उच्चारण करते हुए हृदय से प्रभु की महिमा और अपनी तुच्छता को निष्कपट भाव से स्वीकारते हुए वन्दना करना। श्रीमद्भागवत में इसको स्पष्ट करते हुए कहा है-

> ''तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो, भुंजान एवात्मकृतं विपाकम्
> हृद्वाग्वपुर्भिविदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभक्ति।।''[41]

अर्थात् हे प्रभु जो व्यक्ति सर्वत्र प्रत्येक व्यापार में आपकी कृपा का अवलोकन करता हुआ अपने ऊपर आये सुख-दुख क्रो अपने कर्मो का फल मानकर उन्हें धीरता के साथ भोगता हुआ शरीर, वाणी और मन से आपको नमस्कार करता हुआ जीता है, उसे मुक्ति तो उत्तराधिकार में मिली वस्तु-सी सहज ही प्राप्त है।

अपने स्वामी की पहचान करके नित्य दण्डवत् करना तथा अनुराग पूर्वक विनय करना वन्दन भक्ति है। कवि निधानगिरि के शब्दों में-

> ''करहु दण्डवत् तिन अधिक निज स्वामी पहचान।
> सहित विनय अनुराग जुत वन्दन भक्ति प्रमान।।[42]

दास्य

श्रवण से वन्दन तक की भक्तियों में क्रिया मुख्य है और भावना गौण। उन्हें इसलिए स्पष्टत: साधन भक्ति कहा जाता है। साधन भक्ति में साध्य भक्ति प्रेमा या पराभक्ति बनने का जो आन्तरिक सामर्थ्य है, उसका आभास दास्य, सख्य और आत्म निवेदन के द्वारा प्राप्त होता है इसमें भाव की प्रधानता होती है और जब प्रभु कृपा से भाव धनीभूत एवं निष्काम हो जाता है, तब साधन सिद्ध राम पग नेहू की मान्यता के अनुसार इनका रूपान्तर पराभक्ति में हो जाता है। अत: इनकी महत्ता स्वत: सिद्ध है।

रूपगोस्वामी पाद के अनुसार- दास्यं कर्मार्पणं तस्य कैङ्क.र्यमपि सर्वथा।[43] अर्थात् अपने समस्त कर्म ओर उनके फल प्रभु को अर्पित कर उनकी आज्ञा एवं प्रसन्नता के अनुकूल उनकी सेवा करते हुए जीवन यापन करना ही दास्य है।

'निधानगिरि'के अनुसार दास्य भक्ति चतुर फलों की आशा को छोड़कर स्वामी की सेवा करने का निर्देश करती है, स्वामी को स्वाधीन समझकर प्रभु की आज्ञा से कर्म करते हुए दास्य भक्ति को परमपद प्राप्त होता है-

''दास्य भक्ति अब कहत हौ अपर निपट नहिं आस।
चार-चार फल तज करै स्वामी सेवा पास।।
ईश्वर कौ स्वामी पहचानै। दास भाव निज अंतर जानै
समझ आप स्वामी स्वाधीना। प्रभु रजाइ कौ केवल चीना
सुष दुष तज कीजे सिव काई। लोभ मोह भय मांन विहाई
दास भाव पद सेवा सोई। भेदन कछु जन मन रूच दोई।।[44]

सख्य-सख्य की साधना अपने इष्टदेव को अपना सर्वाधिक विश्वास भाजन और स्नेही मित्र मानकर की जाती है। प्रभु से निर्भयतापूर्वक अपने मन की गुप्त से गुप्त बात कहना और उनका भी तद्नुकूल विश्वास युक्त स्नेह प्राप्त करना उसकी सिद्धि मानी जाती है। जीव मायावश अपने स्वरूप को भूलकर अपने को कर्ता भोक्ता सुखी-दुखी, सीमित परिच्छिन्न मान बैठता है। फिर भी श्वेताश्वतर उपनिषद की घोषणा है कि उस अवस्था में भी वे दोनों सखा ही है-

''द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते
तयोरन्य: पिप्पल स्वद्धत्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति।।''[45]

अर्थात् ये प्रकृतिरूपी वृक्ष पर बैठे सुन्दर पंख वाले, साथ-साथ रहने वाले दोनों सखा पक्षी ब्रह्म और जीव ही हैं। इनमें से जीव स्वाद ले-लेकर उस वृक्ष के मीठे कड़वे फल तो खाता है (सुख-दुख भोगता है) और ब्रह्म कुछ न भोगता हुआ साक्षी बना रहता है, फिर भी दोनों सखा हैं।

गीता में उनकी स्पष्ट घोषणा है- सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्ति मृच्छति।''[46] प्रभु को सब प्राणियों का सुहृद जानकर ही शान्ति प्राप्त की जा सकती है। सुहृद कहते हैं, सुन्दर हृदय वाले मित्र को। प्रभु की विशेषता यह है कि न केवल वे सुहृद हैं बल्कि सब जीवों के हृदय में वासकर उन्हें भी सुहृद बनने की प्रेरणा देते है। प्रभु मेरे ही नहीं सब प्राणियों के सुहृद हैं।

'निधानगिरि' के अनुसार सख्य भक्ति में ईश्वर और जीव के बीच में परस्पर प्रीत भाव होता है, जीव में बिना ईश्वर और ईश्वर के बिना जीव की सत्ता नहीं होती। कवि के शब्दों में-

''सषा भक्ति बरनन करत सुनहु सुजन कर प्रीति
दोऊ ईश्वर जीव सो सषा परसपर रीत।।
जीव बिना ईश्वरता नाहीं। ईश्वर बिना जीव कहु काहीं।

सब विध देत भागवत साषी। कथा पुरजन की विध भाषी।
निर्भय कीन सख्य विस्तारी। ईश्वर जीव मित्रता धारी।।[47]

सख्यभक्ति का आदर्श कवि ने पार्थ और सुदामा को मानक के रूप में स्वीकार किया है। कवि के शब्दों में-

''सषाभक्ति पारथ करी विदित सुदामा प्रीत।
ईश्वर प्रत पालन करै तथा भाव तस रीत।।[48]

आत्मनिवेदन- आत्म-निवेदन का अर्थ है भगवान को अपना सब कुछ अर्पित कर देना। इस सब की व्याख्या करते हुए आचार्यो ने बताया है कि इसके अन्तर्गत अपने अहं का आस्पद देही जीवात्मा अर्थात अपना सच्चा आपा और उसका आवास अपने ममत्व का आस्पद अर्थात अपना शरीर एवं उससे जुड़े हुए आत्मीय स्वजन धन, सम्पत्ति, यश, मान, कर्म, कर्मफल आदि सबकी गणना हो जाती है। अपना आपा क्या है, इसका निर्णय करना ज्ञानियों के लिए भी कठिन हो जाता है।

आचार्य यामुनाचार्य ने कहा है कि-

''मम नाथ यदस्ति योऽम्यहं सकलं तद्धि तवैव माधव
नियतस्वमिति प्रबुद्धधीरथता किं नु समर्पधामि ते।।''[49]

हे प्रभु, मेरा जो कुछ है और मै जो कुछ हूँ वह सब तुम्हारा ही है। मैं तुम्हारा नियत धन हूँ, मेरी ऐसी बुद्धि सदा जागरूक रहे। अब भला मैं तुम्हें क्या समर्पित करूँ? सब कुछ प्रभु का है, यह स्वीकार कर कैसी मार्मिक उक्ति कही थी कबीर ने- ''मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ सो तेरा, तेरा तुझको सौपता क्या लगता मेरा।''

आत्मनिवेदन के द्वारा अपने साथ एक हो जाने की प्रक्रिया का संकेत स्वयं प्रभु ने श्रीमद्‌भागवत में करते हुए कहा है कि 'अपने को निवेदित कर निवेदात्मा होकर जब कोई मनुष्य अपने सब कर्मो के कर्त्तृत्व भोक्तृत्व का त्याग कर देता है तब मैं उसका विशेष कल्याण करना चाहता हूँ। वह सह अमृतत्व की उपलब्धि करता हुआ मेरे साथ एक होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

आत्मनिवेदन की इस ऊँची भूमिका पर पहुँचते-पहुँचते साधन भक्ति कब परा भक्ति बन जाती है, पता ही नहीं चलता है। उस स्थिति में भी भक्त अभिन्नता बोध के बावजूद अपना भक्ति भाव नहीं छोड़ता और सम्पूर्णत: प्रभु-निर्भर रहता है।

कवि 'निधान गिरि' ने आत्मनिवेदन भक्ति का उदाहरण विभीषण का रघुकुल तिलक की शरण में जाना, सुग्रीवादि का राम की शरण में जाकर आत्मनिवेदन करना स्वीकार किया है। कवि के शब्दों में-

''आत्म निवेदन भक्ति अस सादर सुनहु मुनीस।
तन मन धन अर्पन करै हरि हित अपर न दीस।

वंध ग्लान विभीषण गयऊ। रघुकुल तिलक सरन सो भयऊ।
सुग्रीवादिक संगत कीना। बांध लेउ रिपु बंध मलीना।।"

"होई सरन सब आस तज जे नर सहित सनेह।
मम माया कौ तरत ते नाहिन कछु संदेह।।
दोऊ लोकन रक्षक मेरौ। आप सिवाइ न दूसर हेरौ।
नाथ छोड़ नहि मोर ठिकाना। देव पतित पावन जस गाना।।
दीनबंध प्रभु अधम उधारन। यह सम्बंध मोर भव तारन।।
जैसै हौ तैसौ मै तेरौ। जानिय नाथ मोह निज पेरौ।।"[50]

नवधा भक्ति पराभक्ति या रागात्मिका भक्ति को पाने के लिए ही नहीं, अवस्था विशेष में स्वयं प्रभु को पाने के लिए साधन स्वरूप हैं। सच बात तो ये है कि प्रभु में ही हम सब निवास करते हैं। अत: वे सहज सुलभ है, किन्तु हमारे असंख्य पूर्वजन्मों के वासनाजन्य कर्म संस्कार हमें इस सत्य की उपलब्धि नहीं होने देते। तुलसीदास ने करूणाकातर होकर कहा है-

"आानंद सिन्धु मध्य तब वासा।
बिनु जाने कस मरसि पियासा।।"[51]

जीव आनन्द सिन्धु प्रभु में निवास करते हुए भी इस सत्य को न जानने के कारण सांसारिक विषयों से आनन्द पाने की लालसा में भटक-भटक कर उसी प्रकार प्यासा मरता है, जिस प्रकार मरूस्थल में जल की भ्रान्ति मृग को दौड़ा-दौड़ाकर मार डालती है।

तुलसीदास ने भी कई साधनों का समुच्चय कर भजन करने का निर्देश देते हुए लिखा है-

"स्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि सिर प्रनाम सेवाकर अनुसरू।
नयनन निरखि कृपा समुद्र हरि, अग जग रूप भूप सीतावरू।।"[52]

असली बात प्रभु में अपना मन लगाना है। चाहे वह नवधा भक्ति के एक अंग से हो, चाहे अनेक अंगों के समुच्चय से हो, चाहे किसी अन्य उपाय से हो। साधन भक्ति के अन्तर्गत प्रमुख है नवधा भक्ति, किन्तु अन्य किसी उपाय से भी प्रभु में भक्ति हो तो उसका भी स्वागत है। भागवत के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि भक्तिपूर्वक ही प्रभु में मनो निवेश हो। गोपियों ने काम भाव से, कंस ने भय से, शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि ने द्वेष से, यदुवंशियों ने पारिवारिक भावना से, युधिष्ठिर आदि ने स्नेह से और नारद आदि ने भक्ति से अपने मन को भगवान में लगाया था। भगवत कृपा पर दृढ़ विश्वास और अपने साधन का सानुराग सतत् अभ्यास ही वह पारस है जो हमारे अभावग्रस्त-दुखमय जीवन को सच्चिदानन्दमय बना सकता है।

भक्ति की भूमिका एवं प्रेम दशाएँ

भक्ति अर्थात् भगवान के प्रति परा अनुरक्ति भगवत्प्रेम की भावना अत्यन्त प्राचीन काल से मानव मन को आप्लावित करती रही है। वैदिक ऋषि ने उदार घोषणा की 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्तिः' सत्ता तो एक ही है किन्तु विद्वान उसे अग्नि, इन्द्र, यम मातरिश्वा आदि अनेकानेक नामों के उसकी भिन्न-भिन्न क्षमताओं के कारण पुकारते हैं। एक ओर वैदिक ऋषियों ने उसी सत्ता को ईश, कवि परिभू, स्वयंभू आदि कहकर उसके महत्व के प्रति श्रद्धा व्यक्त की, दूसरी ओर उसे माता, पिता, सखा पुकार कर उससे अपना प्रेममय सम्बन्ध भी जोड़ा। भक्ति के मूल में श्रद्धा और प्रेम का युगपत् अस्तित्व ही है। उस परमतत्व को सत्, चित् आनन्द स्वरूप मानकर कर्म को सत् से, ज्ञान को चित् से अथवा भक्ति को आनन्द से जोड़ना भी सहज ही संभव हुआ।

भक्ति शब्द के अर्थ भंजन, भाग, और भजन तीनों होते हैं। भक्ति को ईश्वर के प्रति परानुरक्ति कहने का अर्थ यह है कि पहले गुरू सन्तों या शास्त्रों के द्वारा अपनी क्षमता के अनुरूप प्रभु का बोध होने के उपरान्त उनके प्रति उत्पन्न प्रेम। प्रेमपरिचय से पनपता है, अपरिचय से नहीं। इसीलिए माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ स्नेह को भक्ति कहा जाता है। नवधा भक्ति के अन्तर्गत कवि ने भक्ति की 11 भूमिकाओं का भी उल्लेख किया है, जिनका क्रम इस प्रकार है- सत्संग, शान्त आचरण, श्रद्धा, विश्वास, भगवद् चरित श्रवण, हृदय में प्रभु रस धारण, आत्मरूप में भगवत् ध्यान, हृदय में प्रभु प्रकाश, भगवत धर्म विस्तार, ईश्वरता का अनुभव, हरि से अचल प्रीति। इन भूमिकाओं से ही भक्त और भगवान का एकाकार हो जाता है। कवि 'निधानगिरि' के अनुसार एकादश भाव भूमियाँ इस प्रकार वर्णित की गई हैं-

"नवधा भक्ति अनूप सुहाती। भक्ति भूंम है ग्यारा भाती।।
प्रथम भूमका है सतसंगा। जासै जनम मरन भव भंगा।।
दूसर भक्ति आचरन जेते। सॉत दया आदिक हैं तेते।।
तिन मैं कर श्रधा विस्वासा। सपनहु करह न दूसर आसा।।
भगवत चरित श्रवन कर चारी। पंचम धर हिय श्रप मुरारी।।
होइ प्रेम की उतपत तासैं। रहैं मगन मन निस दिन जासैं।।
लोभ मोह मद छोभ विमंगा। प्रेम अमी निध विमल तरंगा।।
भगवत रूप सु आपनौ जांन जथा विध लेइ।
जैसी है तैसौ सही षष्ट भूमिका सेइ।।
हरि सरूप मै प्रेम अपारा। होवै सो सप्तम् निरधारा।।
प्रभु प्रकास दिन दिन हिय मॉही। निवसह सो अष्टम कह ताहीं।।
सब विध निर्मल दया अगारा। भगवत धर्म हृदय विस्तारा।।
नवम भूमका अस विध गाई। दसम कहत मुनि ईस्वरताई।।
पूरन भगवत धर्म अनंता। आइ मनुज मै हौ हि तुरंता।।
षट गुन जुत सर्वग्य प्रवीना।। जांन सर्व लीला प्राचींना।।
येकादस अस कहत पुनीता। निज तन नर कर जस प्रीता।।
तस कर हरि तन अचल प्रतीती। काहू छिन न होइ विपरीती।।[53]

कवि ने भक्तियों के भेदों को तीस प्रकार का बताया है, तथा पृथक-पृथक रूचि भेद के अनुसार भक्तों की रीतियाँ भी प्रचलित हो गई। वस्तुत: सम्पूर्ण भक्तियाँ एक ही रूप में हैं और उनका प्राकट्य निरन्तर प्रीति के रूप में होता है। यह प्रीति अखण्ड होकर सचराचर में एक ही परमेश्वर का बिम्ब प्रतिबिम्ब देखती है और इस प्रकार ईश्वर और जीव का अभेद जिसे रहस्यवाद की संज्ञा दी गई है, वही भगवत साधना का लक्ष्य है। कवि 'निधान गिरि' ने इन सभी भक्ति भेदों को एकता प्रदान की है-

"अधिक होत क्रम-क्रम भगत बरनी तीस प्रकार।
भक्त भेद केवल यही समझहु सहित विचार।
जस-जस विध सैं मन लगै भक्तन कै तस रीति।
होइ भक्ति सब एक सी प्रगट निरन्तर प्रीति।।

कवि 'निधान गिरि' ने भक्ति की आधार भूमि प्रेम को स्वीकार किया है। प्रेम दशाओं को द्विविध बताते हुए संयोग और वियोग में वर्गीकृत किया है तथा वियोग में दु:ख का विस्तार न करने का संकेत किया है। गोपिका नन्द और यशोदा कृष्ण के वियेग में जिस प्रकार प्रेम में मुदित मन रहते है तथा प्रिय वल्लभ के वियोग में द्वादस प्रेम दशाओं में स्थित रहकर आनन्द का अनुभव करते है वे दशाएँ इस प्रकार हैं- उप्त, विकलता, युत ललित, दलित, मीलित, कलित, छलित, चलित, कान्त, विहृत, गलित, जीवनमुक्त।

1. उप्त

"प्रेमा दसा द्वादस विध गावत। हरि गुन सुनत मिलन सुध आवत।।
प्रभु जब कवनहु भांति दिखावै। फिर वह रूप नहीं बिसरावै।।
उप्त दशा अस नाम बखाना।

2. विकलता (युत)

"दूसर दसा कहत प्रिय प्राना।
प्रभु संदेस चर मुख सुन पाई। पूछह धाइ विरह विकलाई।।
अथवा प्रीतम चरचा होई। पुन-पुन पुलकावलि तन गोई।।
तासु नाम जत कहत मुनीसा।।
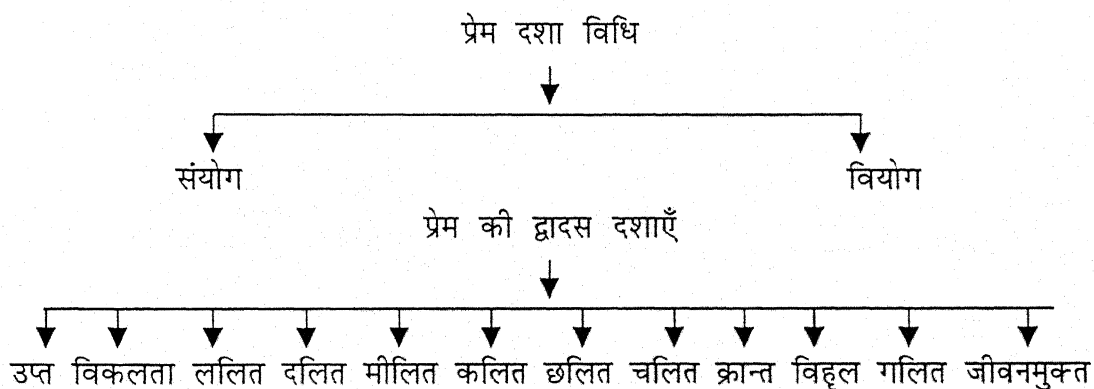
3. ललित

"तीसर ललित नाम रस चीसा।
प्रीतम देख उमंग तरंगा। गुरूजन लाज करै सब भंगा।।
ताड़न तरजन मनह न आनै। पुन-पुन लोचन लख ललचानै।।"

4. दलित

"चौथी दसा बखान अब दलित नाम मुनि राय।।
प्रीतम लोचन आगे नाहीं। तास वियोग वरन बदलाहीं।।
निपट न कवनहुं वस्तु सुहावै। रूदन करह बेसुध हो जावै।।
हिय मै ध्यान धरै अत प्रीती। मन होइ जाय जथा नवनीती।।"

5. मीलित

"पंचम दसा बषान बहोरी। नाना चाह मनोरथ जोरी।।
होइ विकल मन कष्ट अपारा। तिहि अवसर मिल प्रान पियारा।।
जीवन सुफल जान छवि छाकौ। मिलत नाम भावत मुनि ताको।।"

6. ललित

षष्टम ललित नाम विख्याता। तासु रूप अस बरनत ग्याता।।
जिहिं अवसर संजोग अनन्दा। पद पंकज मन बसै मलिन्दा।।

7. छलित

"सप्तम छलित दसा कहत होइ प्रीत मै क्रोध।
कंपरू तन फरकै अधर करै दोस अनुरोध।।
भ्रमरगीत मैं गोपकन प्रेम क्रोध जुत कीन।
कहत मधुप तू कृष्न सौं कपटी कुटिल प्रवीन।।"

8. चलित

"अष्टम् चलित दसा अस भावे। देह त्याग के अवसर गावे।।
जहँ-जहँ जन्म होइ जग माहीं। मिलहिं राम स्वामी मो माहीं।।
जथा सती वाली सरभंगा। दसरथादि जे भक्ति प्रसंगा।।"

9. क्रान्त

"नवम दसा बरनन करत हरि चरित्र मन लाइ
सुनत परम स्रवनन सुखद अपर वृतांत विहाय।।
निरषहि प्रभु छवि सब दुष दाहन। देष अपन दिस सपनहुं नाहिन
नहिं काहू सै बोलह थोरा। खेलन हसन वचन प्रभु ओरा।।
रूपासक्ति भक्ति सुष धामा। अस विध क्रान्त दसा पर नामा।।"

10. विहृत

"दस दिसा अस विध अनुसारी। मृत्यु समय हरि प्रेम विचारी।।
जीवन कोट सरस सो मुक्ती। जामै अपर न जानहुं जुक्ती।।
तो वह मुक्ति भृत्य सम जानै। विहृत नाम अस तासु बषानै।।"

11. गलित

"गलित दसा येकादस होई। ताकौं प्रगट कहत हौं सोई।।
प्रांन नाथ सुन्दर बदन निरषत मन लग जाए।
गलित होइ कंचन सरस गलित दसा अस गाए।।"

12. जीवनमुक्त

प्रेम दसा द्वादस अस गावहिं। पूरन ब्रह्म सकल जग भावहिं।।
जहाँ तहाँ देखह हरि रूपा। होइ मगन मन प्रभा अनूपा।।
अपर और मन वृत्य न जाई। सब दिस अवलोकहि रघुराई।।
याही प्रेम दसा को ताता। कहत भागवत गीता ग्याता।।
परा भक्ति सोइ अवगाई। जीवन मुक्त कहत हैं ताही।।"[54]

दार्शनिक चिन्तन

दृश्यमान जगत के पीछे एक अदृश्य सत्ता अथवा तात्विक पदार्थ कौन सा है? इस वैज्ञानिक प्रश्न के साथ दार्शनिक चिन्तन का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। भारतीय चिन्तन में दर्शन का व्यवस्थित प्रारम्भ उपनिषदों से हुआ। प्राचीन उपनिषद् बृहदारण्यक और छान्दोग्य में ब्रह्म,आत्मा और अमृतत्व,मोक्ष विषयक जिज्ञासा प्रधान है। उपनिषदों में परा और अपरा विद्याओं तथा श्रेय-प्रेय का भेद किया गया है और ज्ञान के महत्व पर, जोर दिया गया, विशेषत: ब्रह्म ज्ञान पर अथवा ब्रह्म और आत्मा की एकता के ज्ञान पर जिससे मोक्ष सम्भव होता है।[55]

भारतीय दर्शन धर्म और अध्यात्म से संम्पृक्त रहा है। तथ्यजगत अथवा वस्तुओं का संसार जहाँ वैज्ञानिक अध्ययन का विषय होता है, वहीं मूल्य जगत का अनुचिन्तन दर्शन का कार्य है। इस प्रकार दर्शन के क्षेत्र में नैतिक, कलात्मक सौन्दर्यपरक और आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश है। भारतीय दर्शन में मुख्यत: आध्यात्मिक मूल्यों पर विचार हुआ है, मुख्यत: भारत में जो दर्शन पाए जाते हैं, उनमें सॉंख्य के प्रवर्तक, कपिल; न्याय दर्शन के प्रतिष्ठाता गौतम; बौद्ध विचारक नागार्जुन एवं धर्मकीर्ति; कुमारिल, शंकराचार्य, रामानुज आदि हैं। पश्चिम के दार्शनिकों में प्लेटो, अरस्तू, कान्ट, हंगेल, क्रोचे आदि हैं। भारतीय धर्म ग्रंथ जीवन का ध्येय मोक्ष को मानते हैं, लेकिन मोक्ष का स्वरूप और उपाय क्या है, ये दर्शन बताता है। यही नहीं प्रत्येक दर्शन मोक्ष तत्व की व्याख्या पृथक प्रकार से देता है, तथा मोक्ष की अवधारणा के सम्बन्ध में भारतीय दर्शन के अलग-अलग मत हैं, हिन्दू धर्म मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग, ज्ञानकर्म समुच्चय मार्ग, भक्तिमार्ग

इन अनेक मार्गो का निर्देश करता है। भारतीय दर्शन में आत्मा की कल्पना भी अत्यन्त सूक्ष्म एवं भव्य है। भरतीय दर्शन से भिन्न ईसाई तथा इस्लाम दर्शन में ईश्वर को आत्मा का श्रेष्टा बताया गया है और ईश्वर आत्मा को नष्ट भी कर सकता है। इस धारणा को पुष्ट किया गया है। भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा अनादि, अजर और अमर है। उसे कोई मार नहीं सकता। इस प्रकार आत्मा अमरणशील है। अज्ञान के कारण तथा ममत्व बुद्धि रखने से सांसारिक वस्तुओं में आसाक्ति को बन्धन बताया गया है।

'निधान गिरि' शंकर के वेदान्त को स्वीकार करते हैं। किन्तु वे बौद्ध दर्शन के विज्ञानवाद को भी मान्यता प्रदान करते हैं। वे वैराग्य को ग्रहण करते हैं किन्तु अपनी जाति, देश, राष्ट्र को समुन्नत बनाने के लिए स्थिर-प्रज्ञ होकर नहीं बैठे रहते, बल्कि राष्ट्र की प्रगति में सक्रिय अभिरूचि लेते हैं। भगवद्‌गीता के कृष्ण की भांति वे निष्काम भाव से राष्ट्र की प्रगति और चिंतन में सक्रिय हैं। जीवन और कर्म के भावात्मक पक्ष पर बल देते हैं। शंकराचार्य जहाँ सन्यास और वैराग्य पर अधिक जोर देते है, वहीं 'निधान गिरि' गीता के कर्मपरक वेदांतों को महत्व देते हैं।

रामानुज ईश्वर को नारायण या विष्णु कहते हैं। धार्मिक अनुभूति की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नारायन पांच रूपों में स्थित है। इनमें सबसे श्रेष्ठ या पर रूप नारायण है। सृष्टि के नियामत के लिए वह ब्यूह रूप में स्थित है। वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरूद्ध ये चार ब्यूह हैं। भक्तगणों को पृथ्वी पर अपना साह्चर्य प्रदान करने के लिए तथा दुष्ट लोगों से उनकी रक्षा करने के लिए पर-तत्व विभव या अवतार ग्रहण करता है। 'निधान गिरि' ने भी नारायण रूप को सर्वोपरि बताया है- 'नारायण अवतार लिये सर्वोपरि भगवान।''[56] 'निधान गिरि' ने सांख्य-योगियों की भांति ज्ञानयोग साधन करते-करते देहाभिमान का नाश करने पर सिद्ध का होना बताया है, साथ ही कवि योगियों की निष्ठा की भांति कर्मयोग का साधन करते-करते कर्मो में और उनके फल में ममता, आसक्ति और कामना का अभाव होकर सिद्धि-असिद्धि में समत्व होने पर होती है। 'निधानगिरि' में ये दोनों निष्ठाएँ पाई जाती हैं-

(क) दसकंधर रघुनाथ कौ मानुष निपट न जांन।
नाराइन अवतार लिय सर्वोपर भगवान।।
सीता चेतन सक्ति है जगत मात भव भास।
अख जंगम जीव कौ कर श्रज पालन नाथ।।
जगत मात पित सीता रामा।पल मै नास करत जग दोई।।

(ख) पुन्य पाप सै जनित कुरोग। सुख दुष जीव करत संभोगा।।
जब लग कह यह देह मम यह सै कर अह काल।।
माया वस जीवात्मा अहंकार कौ साज।।
सो सुभाव वस सै जगत जन्म मरन विस्तार।।
देहादिक अभमान तुम तासै देउ विसार।

(ग) देष ग्यान कर आतमरूपा। सुच निर्मल विज्ञान सरूपा।।
अव्यय अचल सदा अविनासी। ताह मूल अग्यान विवासी।।
बंधन होत मोह क्रत सानौ। सुद्धभाव कर आतम जानौ।।
सुत वित नार राज परवाारा। इनसैं प्रीत तजो यह वारा।।
जो तुम कहौ मोम कहु नाहीं। सो सूकर कूकर मैं पाहीं।।
यह नर तन विवेक कौ गेहा। तामै मिली विप्र की देहा।।
भरत खंड मै जन्म सु पावा। कर्म भूंम दुर्लभ श्रुति गावा।।

(घ) नाथ ब्रह्म कुल उपेज आई। आप विश्रवा पुत्र कहाई।।
धारे भोगन कौ फिरत जिम पावर अग्यान।
विषयादिक आसा तजहु तुम कैसे बुधवान।।[57]

(ड.) मेरी माया अति अंगम कोअलहै न अंत।
कछु जानत सनकादिक सुक नारद संकर संत।।[58]

उपनिषद् दर्शन

वेदरूपी वृक्ष की 'ब्राह्मण' यदि शाखाएँ है तथा आरण्यक उन शाखाओं से उद्‌भूत पुष्प है, तो यह भी मानना होगा कि उस आरण्यक रूपी पुष्प की सुगन्ध 'उपनिषदें' ही हैं। भारतीय दर्शन के बीज यद्यपि ऋग्वेदादि में भी उपलब्ध होते है; परन्तु भारतीय दर्शन का स्वरूप अपनी पूर्णता के साथ उपनिषदों में ही प्राप्त होता है। उपनिषदों में प्रमुख रूप से ब्रह्मविद्या की ही विवेचना की गयी है। उपनिषद् का मूल अर्थ उपासना है, उपासना में उप+आस और उपनिषद् में उप+निषद् दो भिन्न-भिन्न धातुएँ है। किन्तु ये मत पूर्ण नहीं है।[59]

आचार्य शंकर ने उपनिषद् का अर्थ ब्रह्मविधान बताया है। ब्रह्मविद्या में उपनिषद् के तीनों लक्षण मिलते हैं, क्योंकि सद् धातु के तीन अर्थ है नाश करना, ले जाना और शिथिल करना।[60] उपनिषद् सभी भारतीय दर्शनों के मूल है।

उपनिषदों के अनुसार यह व्यक्त जगत अव्यक्त ब्रह्म का ही रूप है। जगत का निमित्तकारण और उपादान कारण ब्रह्म ही है। जिस प्रकार मकड़ी जाला बुनती है। उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से क्षर जगत की उत्पत्ति होती है। आचार्य शंकर भी ब्रह्म को सत्य एवं जगत-मिथ्या स्वीकार करतें हैं, जैसा कि इस कथन से परिलक्षित है- ''ब्रह्मसत्यंज-गन्मिथ्या ''उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त उपनिषदों में प्राणसिद्धान्त, पुनर्जन्म विधान-अविद्या, सम्भूति-असम्भूति आदि अन्यान्य विषयों का वर्णन किया गया है।

न्याय दर्शन

'न्याय' शब्द की व्युत्पत्ति है- 'नीयते विवक्षितार्थ: अनेन इति न्याय:।[61] जिस साधन से हम अपने विवक्षित (ज्ञेय) तत्व के पास पहुँच जाते है, उसे जान पाते है, वही साधन 'न्याय' है।

न्याय दर्शन एक वस्तुवादी दर्शन है। यह अनुभव के आधार पर दर्शनशास्त्र के विवेचनीय तत्वों-जीवन, जीवन के लक्ष्य, जगत आदि की व्याख्या करता है। इसकी दृष्टि में जीवन तो अद्वैत वेदान्त के सिद्धान्त की तरह निष्क्रिय तथा भोगशून्य तत्व है और न बौद्धौ की तरह क्षणभंगुर विज्ञान परम्परा ही। इसका जीवकर्त्ता, भोक्ता, नित्य एवं ज्ञानादि सम्पन्न तत्व है। जीवन का परम लक्ष्य अपवर्ग है। अपवर्ग दु:ख की निश्चित और शास्वत निवृत्ति है इसमें भी न्याय दर्शन का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। दु:ख निवृत्ति का मानव जीवन में जितना महत्व है उतना सुख प्राप्ति का नहीं।

भारतीय चिन्तकों के अनुसार दर्शन का उद्‌भाव दु:ख सम्बन्धी विचारणा से होता है।[62] न्याय शास्त्र का लक्ष्य भी दु:ख निवृत्ति करना अर्थात् मोक्ष प्राप्ति है।

यह जगत न्याय शास्त्र के अनुसार सत्य है, यह मात्र मायाजाल नहीं है। मानव के चरम लक्ष्य के लिए नि:श्रेयस की प्राप्ति के लिए न्याय शास्त्र में 16 पदार्थो का तत्व ज्ञान का साधन माना गया है। न्याय दर्शन ईश्वरवादी है। किन्तु न्याय सूत्र में ईश्वर का विशेष विवेचन नहीं है। न्यायभाष्यकार ईश्वर को आत्मा का ही एक विशेष रूप मानते हैं।[63] जिस प्रकार जीवात्मा में ज्ञान आदि गुण है, उसी प्रकार ईश्वर में भी ये गुण हैं। इसलिए जीव और ईश्वर दोनों ही आत्मा है। हाँ जीवात्मा और ईश्वर में यह अन्तर अवश्य हैं कि जीवात्मा के ज्ञान आदि गुण अनित्य होते हैं, जबकि ईश्वर के ये गुण नित्य हैं। जीवात्मा बन्धन तथा मोक्ष का अधिकारी है जबकि ईश्वर इन सबसे रहित है। अतएव ईश्वर को 'नित्यमुक्त' कहा जाता है। जीवात्मा अनेक हैं, ईश्वर एक है।[64] न्याय दर्शन के अनुसार दो-दो परमाणुओं के संयोग से द्वयणुक और तीन-तीन द्वयणुकों के संयोग से त्रयणुक के निर्माण के माध्यम से इस जगत की रचना हुई है।[65]

सांख्य दर्शन

हिन्दुओं के षड्दर्शनों में सांख्य का स्थान विशेष महत्वपूर्ण रहा है। मैक्समूलर के अनुसार अद्वैत वेदान्त के बाद हिन्दुओं का प्रमुख दर्शन सांख्य है। सांख्य दर्शन में प्रकृति और उसके परिणामस्वरूप तत्व मिलकर कुल चौबीस होते हैं। सांख्य का पच्चीसवा तत्व है पुरूष जो विशेष महत्वपूर्ण है। पुरूष चैतन्य-स्वरूप, निष्क्रिय और निर्गुण है सांख्य का एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त यह है कि बुद्धि, अहंकार आदि जिसमें ज्ञान आदि क्रियाएँ होती हैं, वास्तव में प्रकृति के कार्य हैं। बुद्धि में होने वाले सुख, दुख आदि को पुरूष अविवेक में कारण अपने में घटित हुआ मान लेता है। यह मान लेना ही बन्धन है। इस अविवेक से छुटकारा पाना ही मुक्ति है। पुर्नजन्म या देहान्तर प्राप्ति वास्तव में लिंग शरीर की होती है। लिंगशरीर 18 तत्वों का बना हुआ है, अर्थात् बुद्धि, अहंकार ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पाँच तन्मात्राएँ।

सांख्य का मोक्ष-सिद्धान्त बड़ा ही क्रान्तिकारी है। मोक्ष का अर्थ है पुरूष द्वारा किसी बाह्य वस्तु या लोक की प्राप्ति नहीं है। पुरूष की अपने स्वरूप में अवस्थिति ही मोक्ष है। पुरूष वास्तव में असंग है उसमें प्रकृति के संसर्ग की प्रतीति उसमें अज्ञान या अविवेक के कारण है। इस प्रकार सांख्य दर्शन विवेक या ज्ञान को विशेष महत्व देता है।

भारतीय सांख्य दर्शन की विचार-पद्धति में निहित प्रकृति और उसके परिणाम द्वारा सृष्टि की धारणाएँ नितान्त मौलिक और क्रान्तिकारी है। सांख्य मत में अन्तःकरण बुद्धि या चित्त प्रकृति के ही परिणाम है। एक प्रकार से हमारी तथाकथित मानसिक क्रियाएँ मुख्यतया भौतिक तत्व हैं। यह सिद्धान्त आधुनिक फिजियालॉजिकल साइकॉलॉजी के बहुत समीप है। सांख्य की भांति अद्वैत वेदान्त भी ज्ञान से मोक्ष मानता है। ज्ञान बन्धन को काट सकता है क्योंकि बन्धन वास्तविक नहीं है। सांख्य के अनुसार पुरूष के बन्धन का कारण उसका प्रकृति या बुद्धि सेवादात्म्य अनुभव करना है, बुद्धिगत सुख-दुःख आदि की बृत्तियों का पुरूष में आरोप ही बन्धन है।

वैशेषिक दर्शन

वैशेषिक दर्शन सप्तपदार्थवादी है। द्रव्य, गुण, कर्म, समवाय, सामान्य, विशेष और अभाव इन सात पदार्थों के अन्तर्गत विश्व की हर चीज आ जाती है। पाँच महाभूत, काल, दिक, आत्मा ओर मन ये नौ द्रव्य हैं। गुणों की संख्या चौबीस तक बतलायी गयी है। कर्म के चार भेद हैं। वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक कणाद ऋषि कहे जाते हैं। अन्य भारतीय दर्शनों के समान वैशेषिक दर्शन का उद्देश्य भी मोक्ष या अपवर्ग प्राप्ति के मार्ग का निर्देश है। कणादि के अनुसार द्रव्य आदि पदार्थों के तत्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति संभव है।

योग

सांख्य और योग दोनों समान विद्या के प्रतिपादक शास्त्र है। सांख्य अध्यात्म विद्या का सैद्धान्तिक रूप है, योग उसका व्यावहारिक रूप है। सांख्य दर्शन में यह सिद्धान्त प्रतिष्ठित हुआ कि 'विवेक-ज्ञान' किस प्रकार प्राप्त हो सकता है, इस व्यावहारिक पक्ष का व्याख्यान करता है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों दर्शनों की ज्ञान-मीमांसा, कर्म-मीमांसा, प्रमाण-मीमांसा, सृष्टि-मीमांसा, तत्व-मीमांसा, संसार-मीमांसा तथा कैवल्य-मीमांसा तुल्य हैं। योगदर्शन में जड़ और चेतन दो प्रकार के पदार्थों का वर्णन उपलब्ध होता है। ईश्वर चेतन वर्ग के अन्तर्गत है। चेतन तत्व पुरूष है, अतः ईश्वर भी पुरूष है, लेकिन यह सर्वसाधारण पुरूष नहीं है, अपितु 'पुरूष-विशेष है।

मीमांसा

मीमांसा दर्शन का प्रधान विषय धर्म है अन्यान्य दर्शनों के समान इस दर्शन में भी प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद ज्ञान के दो भेद माने गये हैं। मीमांसा दर्शन की दृष्टि में यह जगत वास्तविक है; शांकर वेदान्तियों की तरह मिथ्या नहीं। इसलिए इस दर्शन को वास्तववादी दर्शन कहते हैं।

मीमांसा दर्शन जगत और उसके सम्पूर्ण विषयों को सत्य समझता है। मीमांसा, वैशेषिक की तरह परमाणुवाद को भी मानते हैं। फिर भी दोनों में भेद यह है कि मीमांसकों के मत में परमाणु ईश्वर के द्वारा संचालित नही होते। कर्म के स्वाभाविक नियम के अनुसार ही वे इस तरह प्रवर्तित होते हैं।

वेदान्त दर्शन

वेदान्त शब्द का निर्माण 'वेद+अन्त' से हुआ है। इसका शब्दार्थ हुआ 'वेद का अन्त'। वेदान्त दर्शन को उत्तर मीमांसा या 'ब्रह्मसूत्र' भी कहते हैं। इसका उद्गम वेदों से है। उपनिषदों के आधार पर जिस धार्मिक एवं दार्शनिक परम्परा का विकास हुआ, वह वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ है- 'वेदान्तोनामोपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरिक सूत्रादीनि च।'[66] वेदान्त का विषय ब्रह्म और जगत है। जगत की सृष्टि किस प्रकार होती है; ब्रह्म ही एकमात्र प्रमुख तत्व है। जिसकी एक शक्ति माया है जो आवरणमूला तथा विक्षेपमूला दो रूपों में प्राप्त है। वेदान्त दर्शन का मुख्य कथन यही है कि सम्पूर्ण संसार का मूलतत्व एक ही है। जड़, चेतन, स्थावर, जंगम इत्यादि सब भेदों में वह मूलतत्व व्यापक है। अद्वैत वेदान्त में केवल ब्रह्म को एक अद्वितीय एवं सत्य माना है; शेष सृष्टि मिथ्या है।

रामानुजने विशिष्टाद्वैत वेदान्त में भक्ति को तीन अवस्थाओं में बांटा है जिन्हें साधन और साध्य भक्ति के दो रूपों में बांटा जा सकता है। साधन भक्ति प्राथमिक अवस्था है। संसार और कर्म-फल-चक्र से उद्वेलित मन जब परमात्मा की सत्ता में विश्वास कर आध्यात्मिक अनुभूति के लिए विकलता का अनुभव करने लगता है। तब वह आत्मावलोकन प्रारम्भ करता है।

वेदान्त दर्शन में महावाक्यों का विशेष महत्व है- प्रज्ञानंब्रह्म, तत्वमसि, अहंब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म। वेदान्त दर्शन में मोक्ष प्राप्ति के साधनों का उल्लेख किया गया है- बहिरंग, अन्तरंग बहिरंग साधन में नित्यानित्य वस्तु विवेक, वैराग्य, शमादिषटक, मुमुक्षुत्व आदि अन्तरंग साधन भी चार हैं- श्रवण, मनन, निदिध्यासन, समाधि। अद्वैत वेदान्त की सर्वोच्च उपलब्धि जीवन्मुक्ति की मानी गयी है।

तन्त्र दर्शन

भारतीय चिन्तन जगत में वेदों की दार्शनिक परम्परा के समानान्तर ही तन्त्रों की दार्शनिक परम्परा विकसित हुई। वैदिक परम्परा की तुलना में तान्तिक परम्परा की यह विशेषता है कि यहाँ कर्मकाण्ड द्वारा प्राप्त 'अनुभव' को अत्यधिक महत्व दिया गया है। तन्त्र को शिव का प्रकाशन कहा जाता है।

तन्त्र दर्शन में चेतना को शक्ति का रूप माना गया है जो स्वभावतः स्पन्दित होती रहती है। यह स्पन्दनात्मक क्रिया स्वतः स्फूर्त होती है जो आनन्द में स्वाभाविक रूप से उत्थित होती है। इसलिए सृष्टि क्रिया शिव का लीला विलास या आनन्द-नर्तन है जो नटराज के प्रतीक से ध्वनित होता है। चूंकि तन्त्र दर्शन में चैतन्य केवल निष्क्रिय ज्ञान रूप नहीं है वरन् क्रियारूप भी है, अतः यहाँ परमतत्व का केवल शिव, ज्ञान या प्रकाश न मानकर शिव शक्ति, ज्ञान-क्रिया, प्रकाश-विमर्श, माना गया है। इसी सत्य को तन्त्र में प्रतीकात्मक भाषा में अर्द्धनारीश्वर के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

तन्त्र की जीवन-मूल्य या पुरूषार्थ विषयक विशेषता है प्रेय तथा 'श्रेय' में समन्वय स्थापित करना। तन्त्र के अनुसार प्रेय और श्रेय में कोई मौलिक विरोध नहीं है। केवल दृष्टि भेद के कारण ही विरोध जनित होता है। तन्त्र के अनुसार जगत तथा जागतिक भोग परमतत्व की ही अभिव्यक्ति है। इसलिए तान्त्रिक दर्शन में मोक्ष को केवल रेय नहीं माना गया है वरन् श्रेय और प्रेय दोनों का समन्वय माना गया है।

महाकवि 'निधान गिरि' ने भक्तिकालीन विभिन्न धाराओं को समीकृत करने के लिए तथा विभिन्न भारतीय दार्शनिकों के मत मतान्तरों को मिलाकर एक ऐसी सुसंगत दार्शनिक व्यवस्था करना चाहते हैं जिसमें वेदान्त दर्शन, उपनिषद् दर्शन, सांख्य दर्शन, शैव दर्शन, एवं योग की विभिन्न धाराएँ एक साथ समनुक्रान्त होकर एक नई सामाजिक संस्कृति का निर्माण करते हैं, जो आधुनिक युग के अनुकूल हो।हिन्दी के प्रथम जागरण काल में बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कुछ पूर्व ही राष्ट्रीय आन्दोलन और सांस्कृतिक समन्वय उत्पन्न करने के लिए जो भगीरथ प्रयत्न उनके पूर्व तुलसी और महाकवि चन्द द्वारा किये गये हैं, उस कड़ी को आगे बढ़ाने के लिए महान जननायक 'निधान गिरि' ने जहाँ एक ओर भक्ति परम्पराओं के बीच सेतु-बन्धन का कार्य किया, वहीं विभिन्न दर्शनों के बीच एक वैधानिक संगति प्रदान करके जीवन, जगत, सृष्टि एवं रचना-संसार के क्रम को अधिक सुसंगत, अधिक वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय जीवन के अनुकूल बनाया।

'निधान-गिरि' ने जीवन, जगत, सृष्टिकर्ता आदि दार्शनिक प्रसंगों की बोधगम्यताके लिए जिस विचार-भूमि को तैयार किया है तथा अपने सुचिन्तित दार्शनिक दृष्टिकोणकोदिया है, वह इस प्रकार है-

1. ब्रह्म- शंकराचार्य जो अद्वैत मत के प्रमुख प्रतिष्ठाता माने जाते हैं, अपने प्रस्थानत्रयी उपनिषद्, ब्रह्म सूत्र और भगवतगीता पर रचे गये भाष्यों में अपने अद्वैत का प्रतिपादन और समर्थन किया है। 'निधान गिरि' ने अपने दार्शनिक चिंतन का आधार प्रस्थानत्रयी को ही स्वीकार किया है। अद्वैत वेदान्त की मान्यताएँ हैं- एक मात्र तात्विक पदार्थ निर्गुण कूटस्थ नित्य सच्चिदानन्द ब्रह्म है, (2) जीव और ब्रह्म एक ही हैं (3) जीव और ब्रह्म में जो भेद दिखायी देता है अथवा जीव जो बन्धन-ग्रस्त दिखायी पड़ता है, उसका कारण अनादि अविद्या है।

अद्वैत वेदान्त का लक्ष्य एक परमात्म-तत्व की स्थापना है। अद्वैतमत में आत्मा और ब्रह्म में अभेद है। इस अभेद के समर्थन में शंकराचार्य श्रुतियों को उद्धत करते हैं- अहं ब्रह्मास्मि[67], तत्वमसि[68], अयमात्मा ब्रह्म[69] अद्वैत के अनुसार केवल ब्रह्म या आत्मा ही तात्विक पदार्थ है, इसके समर्थन में ही शंकर ने अनेक श्रुतियाँ उदधृत की हैं जैसे- 'एकमेवाद्वितीयम्', सर्वसल्विदं ब्रह्म[70], नेह नानास्ति[71] किंचन। आत्मा, न शब्द का विषय है और, न ही सीमित। आत्मा चैतन्यरूप है।[72] श्री चित्सुखाचार्य ने प्रत्यक्तत्व प्रदीपिका में ब्रह्म को ज्ञान का विषय न होते हुए भी प्रत्यक्ष व्यवहार योग्य अर्थात् स्वप्रकाश कथित किया है। उनके अनुसार- अवेधत्वे सति अपरोक्ष व्यवहार योग्यत्वम स्वप्रकाशत्वम्।[73] आत्मा

को सत चित आनन्द भी कहा गया है इसका आशय है आत्मा असत, जड़ और दु:खात्मक जगत से भिन्न है। वास्तव में आत्मा निर्गुण है। ब्रहदारण्यक में उसे अस्थूल, अनणु, अहस्व, अदीर्घ कहा गया है।

जीवन अनुभूतिमय है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, सुख-दु:ख आदि का अनुभव अपनी चेतना का अनुभव ये जीवन की साधारण घटनाएँ हैं। किसी प्रकार की अनुभूति या अनुभव चैतन्य तत्व के बिना नहीं हो सकती। चेतन तत्व के बिना विश्व नेत्रहीन हो जाएगा। आत्मा की सत्ता अनुभव या अनुभूति की सत्ता में ओत-प्रोत है। आत्मा व्यापक है और अनुभव व्याप्त, व्यापक के बिना व्याप्त नहीं रह सकता, अग्नि के बिना धूम की सत्ता सम्भव नहीं है।

ब्रह्म अथवा आत्मा के सम्बन्ध में 'निधान गिरि' ने भक्ति मनोहर में जिस प्रकार की अभिव्यक्ति है, उनका सारांश इस प्रकार है-

(क) ''निराकार निर्गुन भगवाना। परा परेस अनंत पुराना।।
पुरूष प्रकृत संजोग कराई। उपजावत जग पाप नसाई।।
विप्र धनर सुर सुजन हित लीन मनुज तन राम
दुखद दनुज दारून दमन भक्तन के सुष धाम।।[74]

निधानगिरि के ब्रह्म गोलोक बिहारी हैं, वे भक्तों के हितार्थ अवध में प्रगट होते हैं-

(ख) ''सो रघुवर गोलोक बिहारी। प्रगटें अवध भक्ति हितकारी।[75]
उनके नारायण का अवतार सर्वोपरि है-

(ग) नारायण अवतार लिय सर्वोपरि भगवान।[76]

(घ) निराकार निर्गुन भगवाना। माया गुनन गृहन कर नाना
सब सैं विष्नु रजो गुन धाता। तामस रूद्ररूप विष्याता
तुम माया से ढपे गुसाई। नरलीला क्रत जानन जाई।।[77]

सृष्टि का रचयिता परमेश्वर विभूतिमना सर्वत्र है व्याप्त एवं सर्व व्यापक है।

(ड.) ज्ञान पंथ निर्गुण भगवाना। सगुण सरूप भक्तिमय जाना।।''[78]

(क) सर्वभूत व्यापक परम ईश्वर कौ पहचान।[79]

(ख) आश्रय ईश्वर के सदा अर्थ धर्मजुत काम।[80]

(ग) नाराइन व्योपार बिन सबसै भिन्न सुभाव
पंच तत्व के संग से ईस्वर जीव कहाव।।[81]

श्रुति का साक्ष्य देते हुए निधानगिरि ने परमेश्वर के अलौकिक रूप का वर्णन किया है-

(घ) "करत नही करता परम चलत नहीं पुनचाल।
नहि निरषत-निरषत रहत सुनत नहीं सुन हाल।।
अप्रवान पर वान जुत अस-श्रुति करै वषान।
नाथ जठर ब्रह्मांड वस दीसत भव पर वान।।[82]

(ड.) असथेल कहाँ जहाँ तुम नाहीं। व्यापक सकल विश्व के मांही।
निराकार निगुन भगवाना। परा परेस अनन्त पुराना।।[83]

(च) करता हरता भोगता विस्वभंर दातार।
जसमत उखल बांध सो माखन-चोर विचार।।
बट रस अरपत भोग जो मुनि मन जहाँ न जाहिं
सो प्रभु ग्वान संग मैं हस-हस जूठन षाइ।।[84]

(छ) जोत रूप जग रूप पिता माता सषा जगदीस।
दुर्लभ जप मष जोग सै सो हरि गोकुल ईस।
रोम रोम प्रत करत जो अमित कोट ब्रह्मांड।
तिहिं उदंग जसमत लियै अपनै भर भुजदंड।।"[95]

जीव- बुद्धि, अहंकार, मन, इन्द्रिय और शरीर की उपाधियों से परिछिन्न आत्मा ही जीव है। जीव शरीर, अन्त:करण आदि भौतिक उपाधियों से युक्त है। अविद्या में प्रतिबिम्बित होने वाला चैतन्य (आत्मा) उस अविद्या के परतन्त्र होने से 'जीव' कहलाता है। अविद्या में रहने वाले सत्वादि गुणों के कारण इसे अल्पज्ञ कहा जाता है। जीव संसार में जन्म लेता है और मर जाता है। अविद्या की उपाधि से युक्त जीव साक्षीरूप एवं भक्ति होता है। वह प्रत्येक शरीर में पृथक-पृथक रूप से विद्यमान होने के कारण अनेक है।

जीव की तीन अवस्थाएँ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति है। अन्नमय कोश रूप स्थूल शरीर का अभिमानी जीव जागृतावस्था में विश्व कहा जाता है। मनोमय, प्राणमय एवं विज्ञानमय, कोशत्रय रूप सूक्ष्म शरीर के अभिमानी जीव की स्वप्नावस्था होती है और वह तैजस कहलाता है। सुषुप्ति अवस्था में जीव आनन्दमय कोश स्वरूप कारण शरीर होता है और उक्त अवस्था में वह प्राज्ञ कहलाता है। भूत, भविष्य का जानने वाला तथा सम्पूर्ण विषयों का ज्ञाता होने से वह 'प्राज्ञ' है। रजस, तमस के प्रभाव से उसका सत् गुण दबने से वह जागतिक विषयों को प्रकाशित नहीं कर पाता, अत: 'प्राज्ञ' कहाँ जाता है। जीव माया के आवरण और विक्षेद नामक शक्तियों से आवृत्त रहता है। अत: जीव को अज्ञानी कहा गया है। 'निधान गिरि' कृत भक्ति मनोहर महाकाव्य में जीव की उत्पत्ति इस प्रकार बतायी है-

"तत्व पचीस समेत सरीरा! छिनु भंगुर विचार धर धीरा।।
आमष अस्वत मूल मल ऐही। रेत रक्त तुच संभव देही।।
अहंकार आगार सरीरा। सो जड़ पतित होत जनु कीरा।।[86]

(ख) "जो देह सो नहि मिल रहहीं। ता कौ गर्व अनित्थया करहीं।
पुन्य पाप सै जनित कुरोगा। सुष दुष जीव कस संयोगा।
जब लग कह यह देह मम यह सै कह अह काज।
माया जब जीवात्मा अंहकार कौ साज।
सै सुभाव वस सै जगत जन्म मरन विस्तार
देहादिक अमभांन तुम तासै देउ विसार।।।"[87]

(ग) "जड़ माया चेतन सुजीवा। कठिन गांठ विन गुन की सींवा।
बिन श्रम ताकौं छोर न कीना।निज सरूप सोधव परवीना।
चार भांत वैराग कहावै। बड़ भागी कोऊ कर पावै।
विष सम जानै विषय विलासा। ताह हेत वेराग्य प्रकासा।
करै कर्मफल आसन करही। फल वैराग ताह निरधरही।
कर्म सरूपह निपट बिहाई। सो सरूप वैराग कहाई।
स्वर्गादिक फल त्यागहि जेहि। अवधि विराग कहत मुनि तेही।
सारा सार विचार विवेका। देह आत्मा पय धृत ऐका।।"[88]

जगत- सांख्य के अनुसार जगत का मूल कारण अचेतन है, न कि ब्रह्म या ईश्वर। जगत का अनुभव स्वप्न के अनुभव के समान होता है।[89] प्रत्येक जीव का जगत अलग-अलग है। जीव ही इस जगत की सृष्टि करता है। सब जीव ब्रह्मा से उत्पन्न होते हैं। दृश्य जगत संसृत, महत्तमस, मोह, माया, आदि अनेक नामों से कहा गया है।[90] कल्प के अन्त में दृष्टा के नष्ट हो जाने पर सारा संसार और सारे प्राणी नष्ट हो जाते हैं। प्रलयकाल में केवल ब्रह्म ही रह जाता है। फिर संसार ही सृष्टि उसी ब्रह्मा से होती है। वह ब्रह्म ही स्वयं को बाह्य जगत के रूप में परिणत कर लेता है। इसी ब्रह्मा से आकाशादि भूत प्रपंच और जीव-प्रपंच की उत्पत्ति होती है।

सांख्य दार्शनिकों में अव्यक्त का प्रथम विकार महत्तत्व है, महत से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अहंकार तीन प्रकार का होता है- सात्विक अथवा वैकारिक, राजस अथवा तैजस और तामस अथवा भूतादि। अहंकार के सात्विक रूप से पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ एवं मन कुल ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। मन एक अन्तरिन्द्रिय हैं यह ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों का कार्य करता है, इसलिए इसे उभयात्मक कहा जाता है।

जगत का उपादान कारण प्रकृति एक पारमार्थिक तत्व है, अतः उसका विकार मिथ्या या असत् कैसे हो जायगा? ब्रह्म के ईक्षण द्वारा प्रकृति से साक्षात् या परम्परया जगत की सृष्टि बतायी गयी है। प्रकृति जड़ नित्य, परिणामी तत्व है। काल, तीनों गुण, अहंकार, मन, इन्द्रियाँ, तन्मात्राएँ, और काल तीनों गुण आदि को साक्षात् उत्पत्ति होती है। प्रकृति की साम्यावस्था का नाम प्रलय है।

सांख्य और रामानुज मत तथा 'निधान गिरि' के मत में सृष्टि कर्म के विश्व में जो मतभेद है वे इस प्रकार हैं- सांख्य दार्शनिकों के अनुसार तामस अहंकार से पंचतन्मात्राओं की और (पंचतन्त्राओं से महाभूतों की उत्पत्ति होती है।) रामानुज के मतानुसार क्रमिक उत्पत्ति मानते हैं। सबसे पहले भूतादि से शब्द तन्मात्रा उत्पन्न होती है, शब्द तन्मात्रा से वायु महाभूत की उत्पत्ति होती है। वायु से रूप तन्मात्रा और जिससे तेज की उत्पत्ति होती है, तेज रस तन्मात्रा को उत्पन्न करता है, जो आप (जल) की उत्पत्ति करता है। जल सुगन्ध तन्मात्रा को उत्पन्न होता है और गन्ध तन्मात्रा से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। सांख्य दर्शन में त्रिगुणात्मिका प्रवृतित को जगत का मूल कारण कहा गया है। रामानुज भी सृष्टि के मूलभूत कारण को प्रकृति कहते हैं। परन्तु रामानुज सांख्य दार्शनिकों की तरह पुरूष और प्रकृति से आत्यन्तिक भेद पर आधारित द्वैत को स्वीकार नहीं करते उनके मत में प्रकृति ईश्वर पर आधारित उसकी विशेष शक्ति है।

'निधान गिरि' ने अपने काव्य में सृष्टि का क्रम इस प्रकार किया है-

''नाथ प्रभाव निगम अस पेला। प्रलय काल मैं आप अकेला।।
निज इक्षा माया उपजाई। जासै सक्ति कहत रिषराई।।
कोऊ मूल प्रकृत कह रहहीं। वेदांती अव्याकृत कहहीं।
कहत अविद्या ताह सौ सो तुमरे संजोग।
महातत्व उतपत कियौ जगत मूल ता जोग।
अहंकार तासै प्रगटाना। तीन भात किय तास प्रवाना।
सात्वक राजस तामस भाषा। भिन्न भिन्न कीनी तिन साषा।।
तामस अहंकार सै कोनी। तन मात्रा सूक्ष्म गह लीनी।।
सब्द परस रस गंध सरूपा! पंचतत्व पुन किऐ अनूपा।।
गगन पवन जल पावक धरनी। धूल देह नहीं की बरनी।
राजस अहंकार से ताता। प्रगटी दस इंद्री विख्याता।
सातक अहंकार उपजाए। मनइ दस इन्द्रिन कै देव गनाऐ।।
जाग्रत सुख सु पोषत देही। तात मनुज से उपजी तेही।।
चेतन रूप विराट तुव धावर जंगम कीन।
जौन तिरोछी सुर मनुज काल कर्म रच दीन।।
तुम रजगुण सै विधतन धारा। उतपत कींन सकल संसारा।।
सतगुण रूप विष्नु तुम लीना। पालन सकल भांत जग कीना।।
रूद्र देह धर प्रलय कराई। निज माया गुन रूप धराई।।
तुम हौ सबसै भिन्न दुलारे। सकल जगत कौ देखन हारे।।
तुम मय सब संसार प्रकासी। नाथ सदैव अचल अविनासी।।
जब ईक्षा कर जग के कारन। त्रगुन भई माया विस्तारन।।
अंगीकार करत तुम ताही। तब गुन वान लगत सुषदाई।।''[91]

निधानगिरि कृत वर्गीकरण
प्रकृति के विकास की प्रक्रिया
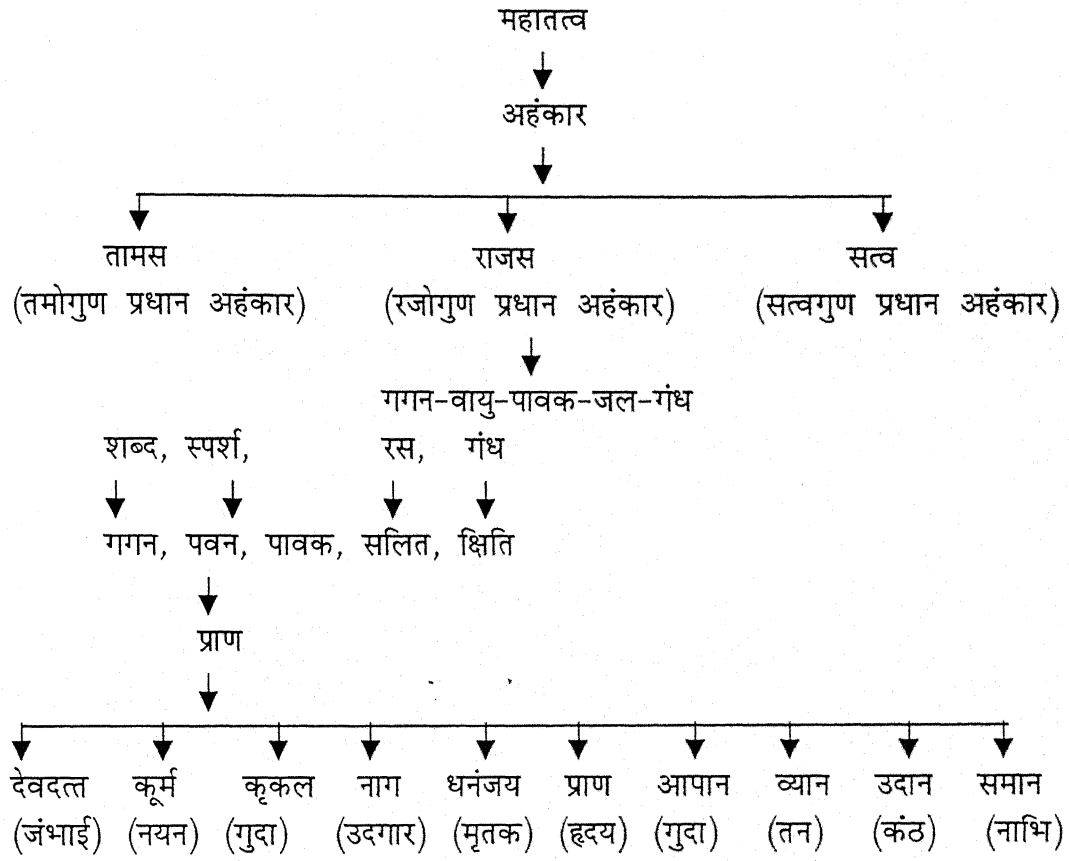
अहंकार राजस

श्रवन, त्वचा, दृग, रसना, ध्राण (ज्ञानेन्द्रिय)
मुख, गुदा, लिंग, हाथ, पद (कर्मेन्द्रिय)

सात्विक अहंकार

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अन्त:करण
क्षेत्रज्ञ- शशि
महेश- प्रजेश
चतुर्देव
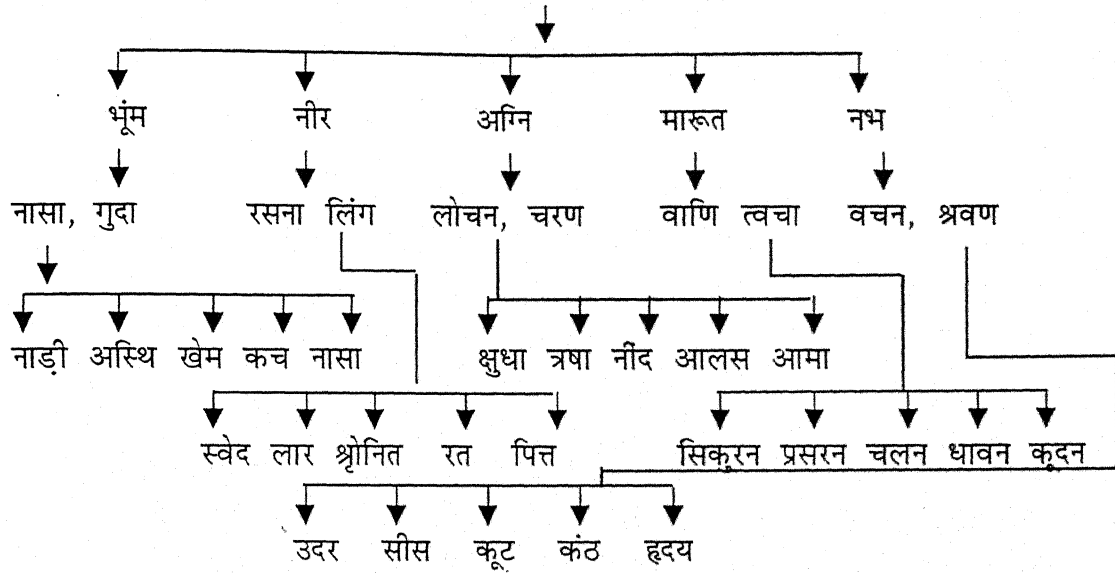
पंचतत्व से इन्द्रियों का विस्तार
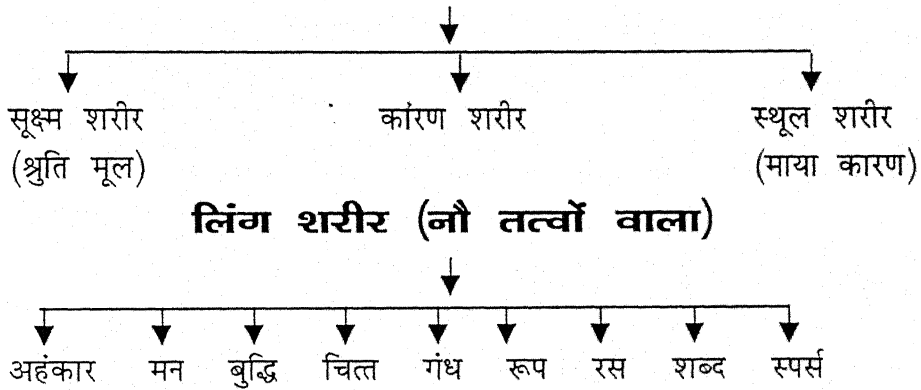
माया

आचार्य शंकर ने माया और अविद्या शब्दों का प्रयोग प्राय: एक ही अर्थ में किया है, ब्रह्म के अतिरिक्त जो कुछ भी प्रतीति है; जिसकी भी प्रतीति है वह अविद्या है। शंकर का कथन है- ''सर्वज्ञस्येश्वरस्यात्मभूत इवाविद्याकल्पते नामरूपे तत्वान्यत्वाभ्यामनिर्वचनीये संसार प्रपंचबीज भूते सर्वज्ञस्येश्वरस्य माया शक्ति प्रकृतिरिति च श्रुतिस्मृत्योरभिलप्येते।''[92]

अर्थात सत् और असत् से विलक्षण (अनिवर्चनीय) संसार प्रपंच के पंचभूत नाम और रूप, जो आविद्या कल्पित है, सर्वज्ञ ईश्वर के मानों आत्मभूत हैं, इन्हीं को ईश्वर की माया शक्ति और प्रकृति नामों से श्रुतियों तथा स्मृतियों में पुकारा गया है। गीताभाष्य (13।1) के उपादेद्या में सातवें अध्याय का संदर्भ देते हुए शंकर ने लिखा है कि ईश्वर की दो प्रकृतियाँ हैं जिनसे सहचरित यह जगत का कारण बनता है। यहाँ आठ रूपों वाली प्रकृति को त्रिगुणात्मिकता बतलाया है। गीता भाष्य (9।10) में शंकर ने स्वयं मारल को त्रिगुणात्मिका, अविद्यालक्षण प्रकृति कहा है, जो सचराचर जगत को उत्पन्न करती है।माया से संयुक्त परमेश्वर ही जगत का सृष्टा है। माया का आश्रय परमेश्वर है, ब्रह्म नहीं।

शंकराचार्य ने अविद्या को तामस प्रत्यय कथित किया है। गीता भाष्य (13।2) में तमसो हि प्रत्यय: आवरणात्मकत्वात अविद्या। अर्थात् आवरण कर्त्ता होने के कारण तामस प्रत्यय ही अविद्या है, ऐसा प्रत्यय अंत:करण का धर्म होता है। इस प्रकार अविद्या जीव में आश्रित होती है।

अद्वैत दर्शन के अनुसार मन, बुद्धि आदि अन्त:करण के ही नाम है जो उनके विभिन्न कार्यो को प्रगट करते हैं। सुचरित अवस्था में वस्तुत: जीव की जो कर्ता और भोक्ता है, सत्ता नहीं रहती। प्रमाणों से उत्पन्न अर्थात् सत्य ज्ञान को प्रभा कहा गया है। वेदान्त में एक प्रकार से ब्रह्म या आत्मा ही पदार्थ है, जो सदैव एक रूप रहता है, कहीं तात्विक है और उसका ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में माया को आत्मा से युक्त ईश्वर! माया की उपाधि से उपहित होकर ब्रह्म सगुण हो जाता है और उसकी संज्ञा ईश्वर हो जाती है। उसका निगुर्ण ब्रह्मरूप उपाधि से ढ़क जाता है। वह माया के संयोग से सक्रिय होकर जगत की सृष्टि करता है। अत: समस्त कार्य-व्यापारों की कारण शक्तियों का सामूहिक रूप माया है। यह जगत माया का ही परिणाम है। जैसे सूर्योदय के बाद अंधकार का। अत: माया ज्ञान विरोधी है,उसकी सत्ता न व्यावहारिक है न परमार्थिक और न प्रतिभासिक। उसका आशय जीव है और विषय ब्रह्म माया ही बह्म के वास्तविक स्वरूप को जीवों से छिपाये रहती है।

'निधान-गिरि' के काव्य में माया को विभीषण द्वारा रावण को उपदेश देते समय दार्शनिक विचार इस प्रकार व्यक्त हुआ है-

(क) ''माया जीव कठिन जग जाना। सहित सुभाव कर्म गुन काला।।
थावर जंगम जग विस्तारे। सब प्रेरक अवधेस दुलारे।।
सब व्यापक प्रभु सब जिहिं माहीं। निज इक्षा ब्रह्मांड बनाहीं।।''[93]

(ख) ''देष ग्यान कर आतम रूपा। सुच निर्मल विग्यान सरूपा।।
अव्यय अचल सदा अविनासी। ताह मूल अग्यान निवासी।।
बंधन होत मोह क्रत सांनौ। सुद्ध भाव कर आतम जानौ।
सुत वित नार राज पखारा। विन सै प्रीत तजौ यह वारा।।''[94]

(ग) ''जड़ माया चेतन्न सुजीवा। कठिन गांठ विन गुन की सींवा।।
विन श्रम ताकौ छोरन कीना। निज सरूप सोधाव परवीना।।''[95]

(घ) ''मेरी माया अति अगम कोऊ लहै न अंत
कहु जानत सनकादि सुक नारद संकर संत।।''[96]

(ड.) ''राम तुमार दुगन है माया। विद्या अपर अविद्या काया।
जे नर विद्या वस रहत ते निवृत्य पथ जाहिं
भए अविद्या के विवस सो प्रकृत्य मग माहिं

पुन-पुन जन्म मरन जग लागा। लहहिं दुसह दुष दोष अभागा।
जे सपनहु मै मुक्ति न पावहिं। कदली सम कछु सार न लावहिं।
जे विद्या मारग पग धरहीं। वेदभ्यास निसदिन ते करहीं।
कहै सुनै समझौ सनमांही। सो निवृत्य मग मै सुध पांही।
तुमरी भक्ति करत चित लाई। राम नाम निज मंत्र जपाई।।
तिनकौ विद्या प्रापत होई। औरन कौ दुरलभ है सोई।।
प्रभु गुन सुमर कहि पद नेहा। पावहि मुक्ति नहीं संदेहा।।
कहत नाथ जग संग प्रसंगाा। मुक्ति होत साधान के संगा।
नित समदासी ऐकरस पित्र शत्रु नहिं कोइ।।
इन्द्रीजित सुच सांत चित्त जगत वासना कोइ।।''[97]

भाव एवं कल्पना सौन्दर्य

महाकाव्य का सौन्दर्य भाव और कल्पना सौन्दर्य पर आधारित रहता है, महाकवि 'निश्चान गिरि' ने जहाँ भावों को उदात्ता प्रदान की है, वहीं कल्पना की सर्जनात्मक शक्ति से भावों को मूर्तरूप में बिम्बित किया है, भाव और कल्पनाओं ने रस को साकार किया है। चरित्रों को उद्‌घाटित किया है, तथा महाकाव्य को गरिमा प्रदान की है। 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य के कतिपय प्रसंग जो भाव और कल्पना को मूर्तित करते है इस प्रकार हैं-

जनकपुर की नारियों द्वारा शिव से प्रार्थना की गई कि धनुष को रघुवीर ही तोड़े, यदि राम को जनक ने पहले देख लिया होता तो शायद वे कठिन प्रण न करते-

''देष रूप प्रमुदित सकल जनक नगर नर नार।
वय किसोर कोमल कुंवर धनुष कठोर विचार।।
जिन भट परवत सहज उठाई। तिन धनु टारौ टरौ न भाई।।
कैसे उठा सकै रघुवीरा। बहुविध विलषत लोग अधीरा।।
एक कहत इनके विनजासैं। कींन भूप मन उख पछतानैं।।''[98]

'गिरजा-पूजन' प्रसंग एवं 'पुष्पवाटिका' प्रसंग में सात्विक-प्रेम एवं पूजा के भावों को कवि ने व्यक्त किया है-

''पाइ रजाइ उठे दुह भाई। चले कूल बीनन फुलवाई।।
बूझ सेवकन प्रबेस वामा। तोरत सुमन सुभग मन लागा।।
वांम हाथ फूलन के दौना। तरु-तरु वहर रूप के मौना।।
भूप कुमार परम सुकुमारा। जनु वय गुन सोभा आभारा।।
गमनी सिया सषिन के संगा। जनु विध किय संजोग अभंगाण।।
तहाँ उमा पूजन कौ आई। राम लषन की निरष निकाई।।
मानहु दिप बसंत जुत कामा। विदरत परम भूप आरामा।।
मोह गई छवि निरष जिम मदन मोहनी डार
राम जानकी द्रग मिले सो सुष कहत न पार।।

सषी सकल मोहत महो रघुवर रूप बिलोक।
प्रभु मूरत सिय हिय धरी गमनी कर पन सोक।।
पारवती पूजन भलकींना। क्रिय हिय विनय प्रेम लवलींना।।
तन पुलकित अति सिथल सरीरा। वचन न आवत नयन भर नीरा।।
अंतरजामिन स्वामिन मोरी। संकर भामिन करत निहोरी।।
हृदय मनोरथ प्रगटत नाहीं। जानत संकल मात मन माहीं।
हौं बालक कहुँ निज रूचवानी। सौ अनुचित जिन जान भमानी।।
गिरजा मूरत भई क्रपाला। सियकौं दिय प्रसाद मैं माला।।
बोली पुन सुन जनक कुमारी। मनभावत वर मिलहिं दुलारी।।
रघुनंदन हरि चंदन पाई। तुम वेली सन कैलहु भाई।।
लाग सुमन फल विमल मति रहहैं मांग सुहाग।।
जनहौं बालक वीरवर रहौं कुसल षडमाग।।
पूरन दोवै कामना कर जिन हृदय विलाष।
कही उमा सांची-सकल तब कहहौंगी आप।
सुन असीस आनंद वय देही मन भावत वर पावा तेही।
तब जानकी गहे पद धाई। गिरजा सिरकर गरस उठाई।।
बार-बार चरनन सिर धारी। उमा रजाइस पाय पधारी।।[99]

जनकपुर में राम के रूप को देखकर भाव विमुग्घता और धनुर्भंग की आशा का संचार हुआ। कवि के शब्दों में-

(ख) "सो किम रहै चांप बिन तांरैं। जिन संदेहु करहु मति मोरैं।।
जब सै राम लषन सषि देषे। प्रेमानंद मगन सब देषे।
इकटक रूप विलोक ठगे से। जनु विध विविध विदेह करे से।।"[100]

राजा जनक को प्रण छोड़ने के लिए प्रस्ताव करने की योजना ओर कन्या के विवाह को प्राथमिकता प्रदान करने का संकेत-

(ग) "बोली अपर अली तब सोऊ। नृप समझाइ कहै नहिं कोऊ
बड़े भाग ऐ तुव आए। छौड़ देउ पन सब मन भाऐ।
अस विचार सै सुता विवाहू। नाहिन होइ हृदय पछताहु।।
कहँ शिव धनु कठोरता गाथा। कहँ किसोर कोमल रघुनाथा।।
इनै रचित विध सुंदर ताई। षोजी सकल भुवन नहिं पाई।।

उत्तरदेत सषी इक आनी। कीनी भली विदेह सयानी।
धनु तोरन पन सुनत कुमारा। आये सहज रूप आगारा।।
नगर नारि नर जियत विलोकी। जिम रवि उदय कोकनद कोकी।।

बोली सतानंद मुनि बाला। सिया मात सै वचन विसाला।
मन वुध अगम करत मुनि जो हैं। अस अवसर नैनन के सो हैं।।
नीवै निरषहु राम सुनैनी। काहे सौ सकुचत पिक बैनी।।[101]

गोपियाँ रास के बाद घर गयीं, सभी ब्रजवासी सोते मिले। जागने पर ब्रज के लोगों ने कहा आज की रात्रि छोटी हो गई, और फिर अपने कार्य में लग गये। शरद की रात्रियाँ बड़ी होती है, किन्तु यहाँ कृष्ण के कारण एक आश्चर्य हुआ और रात्रियाँ छोटी हो गई। कवि निधानगिरि के शब्दों में-

(घ) "गोपी सुन घर घर गई गए भवन निजकाम।
बृजवासी सोवत मिले गिरधर अस मति ठान।
जाइ जगाऐ लोग घर उठे अंग जमुहात।।
आज रैन छोटी भई सब बोले अस बात।।
जो जैसे तैसे लगे अपनै अपनै काज।
चरित अगोचर स्याम के राषी सब कुल लाज।।"[102]

(ड) "आपस मै वृजवाल कह धर निश्चय यह वान।
कहा कीजिऐ जो नफा ज़ानै जिय की हान।।
लोक लाज सब कोच सम कनन षान घन स्याम।।"[103]

जिसमें हृदय की हानि होती है, वही नफा है। लोक लज्जा काँच के समान है घनश्याम कनक की खान है। काँच से मूल्य हीनता और कनक खान से समृद्धता की व्यंजना की गयी है।

(च) "कहा पोत संग्रह करौ मन अमोल कौ डार।
गरल मेर नहिं कांम कौ सुधा ऐक कन सार।।"[104]

मन अमूल्य है उसे फेंककर, पोत संग्रह करने से क्या लाभ है? गरल का सुमेर मिल जाए तो किस काम का अमृत का एक कण भी सारयुक्त है। प्रीति के क्षणों की मूल्यक्ता व्यंजित है।

कृष्ण का यह कथन कितना मार्मिक है; हे गोपियों तुम्हारा दोष है अथवा रास लीला का दोष है? मेरा मन कहाँ है? मेरा-वास तो तुम्हारे मर्म के भीतर है। और तुम्हारा मन मेरे भीतर है। अतः हम दोनों अस्तित्व रहित है। एक दूसरे में ही एक दूसरे का अस्तित्व है। सह अस्तित्व और सहव्यक्तिव का अद्भुत उदाहरण है-

(क) "सुनहु ग्वालिन बात इक मन भीतर मम वास।
जान छिपायौ मुह कहाँ तुमहि दोष की रास।।

अवहु कहहु हम रह अनत तुम अपनौ मन लेउ।
पछतानी कुल लाज कर हमै छोड़ भाल देउ।।
तुम बिना मन घृग धृग कुटम घृग पित मात अनुप ।।
प्रभु विन मन धृग धृग भवन वन भीतर के कूप।।"

(ख) " रीती मटकी सीस धर गमनी घोष कुमार।
बनही मैं वेचत फिरत घर की सुरत विसार।।
लोक वेद कुल कान की मरजादा सब तोर।
लेउ लेउ दध अस कहत वन मैं करती सोर।।
पुन पुन बूझत द्रुमन को यह गृह में कोउ नाहि।
आपहि कह नहि लेत कोउ और तरूनतर जाँहि।।[105]

प्रभु के रूप सौन्दर्य में जहाँ कवि भावों में तन्मय हो जाता है, वहीं कल्पना का सौन्दर्य अद्भुत चित्रों को रच करके मन को मुग्ध कर लेता है। कवि निधानगिरि के शब्दों में-

"सुन्दर दिव्य नवल पट पीता। कै चम्पक गन सुमन सभीता।
कैधो राजत तड़ित समूहा। कैधों कनक भ्रमर के जूहा।।
प्रभु को रूप समद् सषि पीजै। निज निज दृगन मकर सम कीजै।।[106]

उपर्युक्त चित्र में भगवान राम ने नवल पीत वस्त्र धारण किये हैं मानों चम्पक दल सुमनों के साथ मित्रतापूर्वक रह रहा है अथवा तड़ित का समूह सुशोभित हो अथवा स्वर्ण भ्रमरों के झुंड हों, हे सखि प्रभु के रूप समुद्र को पीने के लिये अपने-अपने नेत्रों को मछली के समान कर जिये। एक अन्य संदर्भ भी दृष्टव्य है। जिसमें प्रभु श्री राम अपने उलझे हुए केशों को दोनों हाँथों से सुलझाने की चेष्टा करते हैं-

"उरझ कुटिल कच बदन पर, दुहु कर प्रभु सुलझान।।
जनु अहि बालक वृन्द मिल, चन्द अमी हित घेर।।
तहाँ उरग दो जिमि करत बीच बराह निवेर।।[107]

कवि की यह कल्पना कि उलझे हुए केश मानों सर्पो के शिशु हैं जो मुख रूपी चन्द्रमा के अमृतपान के लिए मुख के चतुर्दिक घेरे हुए है और श्री राम की दो भुजाएं सर्पाकार मानों दो बड़े सर्प है जो अपने शिशु सर्पो के बीच के संघर्ष को रोकने के लिए बीच बचाव कर रहे हैं। यहाँ कवि ने योद्धाओं की भिड़न्त और उनका निपटारा कराने के युद्ध और सन्धि के जो बिम्ब प्रस्तुत किये हैं, वे कवि की कल्पना के ही उपज हैं।

कवि कल्पना ने भाव सौन्दर्य को सहत्र गुणित कर दिया है। अधरों के रस का पान करने के लिए दो नेत्र भम्ररों में द्वन्द्व छिड़ गया है। किन्तु नासिका ने बीच में आकर दोनों नेत्रों में सन्धि करा दी है और अब नेत्र अपनी-अपनी सीमाओं से आगे नहीं बढ़ते कवि निधानगिरि के शब्दों में-

"मनहुं पदम रस पान हित लरत भ्रमर द्वय आन।।
करो बीच सुक नै तहाँ शोभा अति अधिकान।।[108]

वस्तुत् कवि का भाव सौन्दर्य और कल्पना सौन्दर्य अत्यन्त परिष्कृत एवं उदात्त रूप में चित्रित है। भाव सौन्दर्य और कल्पना सौन्दर्य की दृष्टि से सर्वाधिक ऐसे प्रसंग हैं जो महाकवियों की पंक्ति में निधानगिरि को अग्रगामी बनाते हैं।

प्रकृति सौन्दर्य

'भक्ति-मनोहर' महाकाव्य में प्रकृति का रमणीय एवं मंजुल रूप मूर्तिमन्त हुआ है। प्रकृति के अधिकांश चित्र ललित मनोहारी एवं कोमल भावनाओं को उद्धीप्त करने वाले हैं। कवि नें दृश्यों को मूर्तित करने के लिए उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों की सहायता से जितनी सफलता से प्रकृति को बिम्बित किया है, वह सचमुच आश्चर्यजनक है।

चित्रकूट प्रसंग में सात्विक मनोरम प्रकृति के चित्रांकन में तपोवन की भव्यमूर्तियाँ अंकित हो उठती हैं। सीता का श्रृंगार मात्र कुछ पुष्पों से नहीं होता राम द्वारा चुन-चुन कर पृथक-पृथक पुष्पों से सीता का नखसिखण अलंकर देखते ही बनता है।

"रघुवर निज कर कमल सैं तोरत फूल नवीन।
कोमल पल्लव दलन जुत रचत सेज सुख कीन।।
नाना जात सुमन अधिकाई। भूषन सिय हित किय रघुराई।।
अर्ध चन्द्र कर सीस गुहाई। कलिन मालती मांग बनाई।।
बेंदा भाल श्रवर वर फूला। चन्द्रहार हिय सोभा मूला।।
कंकन पहुँची कर भुज बाजू। जेहन नूपुर चरन विराजू।।
अंग अंग भूषन पहराये। मृग मद तिलक ललाट लगाये।।[109]

चित्रकूट की प्रकृति में वेतव कुल, सुरतरू, पनस, केर, कंदव, तमाल, चंपक, केतकी, मालती, जूही, गुलाब, रसाल हैं-

"वेतवकुल सुरतरू पनस केर कदबु तमाल।
चंपक केतिक मालती जुही गुलाव र साल।।
विटप समूह फूल फल सोहैं। देव विपन लघु भाजत जोहैं।।
नव पल्लव तरू लतन समेता। मनहु कीन कंदर्प निकेता।।[110]

हाँथी और हाँथियों का सुंड में जल भर-भरकर क्रीड़ा कर रहे हैं। मानों तरूण और तरूणियाँ परस्पर पिचकारियाँ मार रहे है। वानरों को अपने बच्चों के पीठपर लादकर क्रीड़ा करने वाले चित्र भी भुलाए नहीं भूलते। वानरों की रूपाकृति उनकी चंचल मन:प्रकृति के दृश्यों के साथ जिस मार्मिकता के साथ चित्रित है, वह कवि की सूक्ष्म निरीक्षिका शक्ति का भी परिचायक है-

"करि करिनी सुंडन जल भर-भर। जहाँ तहाँ डारत भूतल पर।।
मनहुं तरून त्रिय पुर छवि हारी। मार परस्पर भर पिचकारी।।
लंघत डार डार कपि जूहा। धरे पीठ निज सिसुन समूहा।।
जनु मुष लगा मेर जुत स्याही। षरन चडाइ स्वांग करवाही।।[111]

प्रकृति चित्रों में जहाँ करि करिनी के सुंड़ों से जल क्रीड़ा के चित्रों में तरूण तरूणियों की पिचकारियों के चित्र गोचर हो उठते है, वहीं कलमुंए और ललमुहें वन्दरों का डाल-डाल पर लांघते हुए, पीठ पर बन्दरों के शिशुओं के चित्र भुलाएं नहीं भूलते।

स्यामगौर शोभा वाले राम-लक्ष्मण की जटाओं और मुकुट में सुमनों को गुहा गया है; तथा छत्र में नव्य पल्लवदलों ने अलंकरण किया है। प्रकृति का यह संसार अद्वितीय है। सखियों ने इस रूप सौन्दर्य का लोचन लाभ किया है-

"बोली अपर सषी सुन हेली। पायौ लोचन लाभ नवेली।
देषन जोग निरख मन मोहत। लघु वय स्याम गौर तन सोहत।।
जटा मुकुट सिर सुमन सुहावे। नव पल्लव दल छत्र लगावे।।[112]

चित्रकूट में स्फटिक शिला के चतुर्दिक नाना तरूओं का छवि धारण करना, उन पर सघन लताओं का फैलाव, दिनकर के तेज का उन लताओं के मध्य प्रवेश न कर पाना, घनी छाया मानों वरण करती रहती है। झरनों का झिरना, उनमें बूंदों का अधिक्य, सूर्य किरणों से जल का चमकना, चपल-चंचला के सदृश्य ज्योति का गति करना, सकल तरूओं के जूहों का फूलना और फलना, इधर-उधर भ्रमर समूहों का गुंजार विपुल विहंगों के साथ कोकिल का कुंजन ऐसा प्रतीत होता है मानों मदन की चतुरंगिणी सेना हो। विपिन की शोभा ऐसी मनोहारी है, जैसे काम के विहार की कोई वाटिका हो। ऐसे प्राकृतिक सुरम्य वातावरण में लक्ष्मण ने ललित पर्णशाला की रचना की है। राम और जानकी शोभा के अथाह समुद्र की भांति वहाँ निवास कर रहे हैं। महान कवि निधानगिरि की सौन्दर्य सृष्टि और उसमें प्रकृति की समष्टि देखते ही बनती है-

"फटिक सिला सुंदर सुखकारी। चहुँ दिस नाना तरू छवि धारी।।
सघन लता तिन पर फैलानी। दिनकर तेज कवहुँ नहिं आनी।।
जनु बरषा किय घन तरू छाहीं। झिरना झिरत बूँद अधकाहीं।।
भानु किरन सै चमकत नीरा। सोई चपला सम नहिं धीरा।।
सीतल मंद सुगंध बयारी। मनमथ अगिन बड़ावन हारी।।
फूलहिं-फलहिं सकल तरूजूहा। नित-नित गुंजर भ्रमर समूहा।।
कुजत कोकिल विपुल विहंगाा। मानहु मदन सैन चतुरंगा।
सोहत विपन मनोहर कैसे। काम विहार वाटका जैसे।।
ललित परनसाला रची लखन विपन के माहिं।
राम जानकी नित बसत सोभा समद अथाहिं।।[113]

'निधानगिरि' की प्रकृति मानवीयता को पढ़कर महाकवि जायसी की पंक्तियों का स्मरण होने लगता है। राम के विरह में प्रकृति की दशा का मार्मिक चित्रण कवि की सहृदयता भावुकता का परिचायक है, पराधीन पक्षियों की पीड़ा और विकलता कितनी मार्मिक है-

"जड़वन जरत अगिन मय पागै। आतुर निकस निकस षग भागे।।
सिवका बैठ-बैठ सब रानी। चित्रकूट कौ कीन पयानी।।
रघुवर सुक सारिका पड़ाये। रहे पीजरन ते पछताए।।
व्याकुल हिय सुक से कह सारौ। राम लषन यिनित दुष भारौ।।"[114]

राम लक्ष्मण को मख रक्षा हेतु दशरथ से पाकर विश्वामित्र इस प्रकार प्रसन्न हुए मानो चैत्र और वैशाखा मिल गए है। रवि उत्तरायण में आ गया हो। ऋतु के फलीभूत होने का बिम्ब है-

"मनहु चैत्र वैसाष सुहाए। उत्तराइन रवि मुनि छवि छाएँ।।[115]

कवि ने राम लक्ष्मण की उपमा मेघ और तड़ित जैसे प्राकृतिक उपमानों से देकर प्रकृति को सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का साधन बनाया है-

"तड़ित वरन लक्ष्मन दरसाई। मेघ समान सोह रघुराई।।"[116]

महाराज दशरथ के सुकृत के बीज जम कर निकले है। विमल विरवा फूलों के साथ विकसित हुए हैं-

"जनु नृप सुकृत बीज जम निकसे। विरवा विमल सुमन जुत विकसे।"[117]

प्रकृति के सौन्दर्य विम्बों में कवि की मौलिक कल्पनाएँ कल्पना विलास के साथ नृत्य करती हुई दिखाई पड़ती है-

(क) तरु-तरु विलमत तन की छाँही। तोरत कुसुम सुगंध सुहांही।।
कंदमूल फल दीन मुनि की: असन दुहु भ्रात।
षडरस विजन सै सरस सुधास्वाद अधिकात।।
चले बहुर सर सरिलतट तोरत कमल नवीन।
पीवत अमृत समांन जल सीतलता लव लींन।।
कूजत विहंग भ्रमर गुंजारैं। नचत मोर कोकिल सुर धारै।।
मानहु सत्य करत रंमासी। गावत जस गंधर्व हुलासी।।
बोलत सुक सारका सुहावत। जनु श्रुनितन धर प्रभु गुन गावत।।
सीतल मंद सुगंध समीरा। त्रविध तापहर सकल सरीरा।।
सुमन सुफल जुत विटप निकेता। जनु वसंत वस सैन समेता।।
बस अमीर वन तान जुत ::ानन। पाइ जन्म फललष प्रभु आंनन।।

किशोर काल में केकी पंख और नवीन सुमनों से कवि ने अलंकार विधान किया है-

''वय किसोर के भूषन सोहै। केकी पंष सुमन नव गोहै।[119]

प्रकृति के सौम्य रूप के साथ ही रौद्र रूप के भी दर्शन होते हैं। हिरण्यकश्यप के जन्म के समय प्रकृति को अमंगलकारी रूप का वर्णन करके कवि ने अमंगल की मूर्ति के अवतरण का संकेत किया है। अनेक प्रकार के उत्पातों का होना, भूतल और आकाश में अधंकार का फैलना, लूहरयुक्त गाज का गिरना, धूमकेतु का उदय होना, तेज ध्वनियों वाली आँधियों का चलना, वृक्षों का टूटना वर्णित है-

''प्रगट होत उतपात अनेका। अंधकार नभ भूतल ऐका।।
गिरन लाग लूहर जुत गाजैं। उदय केत नभ अधिक विराजै।।
आंधी चलत सबद कर भारी। उषट साल वटतार अपारी।।[120]

बसन्त ऋतु का समाज बना हुआ है, मानों मदन महाराज हो गया है। गिरि प्रदेश की राजधानी में शोभित है। शिलाओं के सुभग सिंहासन पर आसीन है। वन्य प्रदेश की शोभा मानों रविरानी है। स्वेत पुष्पों के छत्र तने हुए हैं। मारूत प्रवाही हो रही है, मानो चमरों की भीड़ है (हिरणों के झुंड हैं) चमर की पूंछ जो पंख का काम कर रही है। मधु और माधव धीर सेनापति हैं। अनेक् प्रकार के विटप वीर बलवान हैं, सुक, पिक, भ्रमर वंदी जन है। कलयुग प्रिय सचिव जो जग में अनीति का फाग खेलता है, किन्तु यहाँ होली के बहाने पुर सत्रु को मानो जार में जीत लिया, कामदेव ने अन्य शत्रुओं को लोभ मोह, क्रोध को जीत लिया और काम ने इस अरण्यक के भक्तों को छोड़ दिया तथा पत्ते रूपी प्रजा को उजाड़ दिया है निधानगिरि के वंसत ऋतु में राज्य का रूपक वर्णित किया है-

रितु वसंत वन बनौ समाजा। मानहु मदन भयौ मँहराजा।।
रजधानी सुंदर गिर सोहा। सिलासुभग सिंहासन जोहा।।
वन सोभा मानहु रति रानी। सेत सुमन जनु छत्र बषानी।।
मारूत बहत चमर जनु मीरा। भजु माधव सैनापति धीरा।।
बहु विध विटप वीर बलवाना। सुक पिक भ्रम बंदी जन नाना।।
कलयुग सोई प्रिय सचिव कर जग फाग अनीत।
होरी मिस पुर सत्र कौ मनहु जार लिय जीत।।[121]

दक्षिणायन सूर्य के होने से हिमयुक्त (हेमंत) में अवधपुरी सरोवर के लोग सरसिज की भांति मलीन हो गएं प्रकृति और ऋतु के माध्यम से विरह व्यंजना इस प्रकार है-

''जैसे दक्षिन रवि अयन हिम रितु विरहा पीन।
अवधपुरी सर लोग सब सरसिज भए मलीन।।[122]

प्रकृति से स्वाधीनता की व्यंजना कवि ने इस प्रकार की है-

"रघुवर सुक्र सारका पठाऐ। रहे पींजरन ते पछताऐ।।
व्याकुल हिय सुक सैं कह सारौ। राम लषन सिय बिन दुष भारो।।

रघुवर ने जिन शुक-शारिकाओं को पढ़ाया था वे पिजड़ों में रहकर पछता रहे हैं। यदि वे पराधीन न होते तो वे भी राम के साथ उड़ जाते। कवि ने पक्षियों की पराधीनता से व्यंग्य किया है तथा स्वाधीनता के महत्व को रेखांकित किया है। शुक से सारिका ने कहा कि हमारा ह्रदय अत्यन्त व्याकुल है। राम लक्ष्मन सिय के बिना दुख से मारी है। और यह दु:ख पराधीनता का है। प्रकृति के माध्यम से स्वाधीन भावों की व्यंजना की गयी है। पराधीनता में वंदी पक्षियों को व्याकुलता और पीड़ा का अनुभव हो रहा है-

"प्यारे भ्रात भरत के साथा। चले सचिव पुरजन मुनि नाथा।।
हम षर पंष जाहिं छिन मांहीं। परवस परे बंध तरसाहीं।
तासै अधिक अभाग हमारे। सुन अस गिरा कहत सुत प्यारे।।
जननी प्रेम पंथ है न्यारा। रहा मौन सुन वचन हमारा।।"[123]

जनकपुर में राम को पाकर पुरवासियों को ऐसा प्रतीत हुआ मानों सर-सरिताओं ने मघा का जल पा लिया हो। जल को पाकर सर-सरिताएँ उमंगित होकर समुद्र की ओर दौड़ पड़ी हों-

"जनु सर सरिता मघा जल पाई। उमग समद सनमुष कौं धाई।।"[124]

वस्तुत: कवि ने काव्य के माध्यम से मानव मुक्ति का संदेश प्रदान किया है। नदी का समुद्र की ओर अभिगमन मानव की सर्वोत्कृष्ट मिलन की अभिलाषा है, जो ईश्वराविभमुख होकर पूर्णत: को प्राप्त करती है। कविता की यह पहुंच कवि को एक नई उपलब्धि से गौरवमण्डित करने में समर्थ्य सिद्ध होता है।

सन्दर्भ—संकेत

1, गरूड पुराण, 23/1
2, गीता, 12/14
3, विष्णु पुराण, 1/20/19
4, भागवत्, 3/25/32
5, नारद भक्ति, 16
6, शांडिल्य भक्ति सूत्र 2
7, शंकराचार्य: विवेक चूडामणि, 32
8, वल्लभाचार्य: तत्वदीप निबन्ध श्लोक 46
9, भक्ति रसामृतसिन्धु, रूपगोस्वामी, पूर्व विभाग, प्रथम लहरी ,श्लो.सं 11
10, भक्ति रसायन मधुसूदन सरस्वती, 1/3
11, वोपदेव: मुक्ताफल कलकत्ता ओरियन्ट सीरीज 5,1944,5/1,पचंम अध्याय,पृ.83-90 ।
12, ह0भ0र0 सिन्धु, रूप गोस्वामी, पूर्व विभाग, 1/11

प्रकृति से स्वाधीनता की व्यंजना कवि ने इस प्रकार की है-

"रघुवर सुक्र सारका पठाऐ। रहे पींजरन ते पछताऐ।।
व्याकुल हिय सुक सैं कह सारौ। राम लषन सिय बिन दुष भारो।।

रघुवर ने जिन शुक-शारिकाओं को पढ़ाया था वे पिजड़ों में रहकर पछता रहे हैं। यदि वे पराधीन न होते तो वे भी राम के साथ उड़ जाते। कवि ने पक्षियों की पराधीनता से व्यंग्य किया है तथा स्वाधीनता के महत्व को रेखांकित किया है। शुक से सारिका ने कहा कि हमारा हृदय अत्यन्त व्याकुल है। राम लक्ष्मन सिय के बिना दुख से मारी है। और यह दुःख पराधीनता का है। प्रकृति के माध्यम से स्वाधीन भावों की व्यंजना की गयी है। पराधीनता में वंदी पक्षियों को व्याकुलता और पीड़ा का अनुभव हो रहा है-

"प्यारे भ्रात भरत के साथा। चले सचिव पुरजन मुनि नाथा।।
हम षर पंष जाहिं छिन मांहीं। परवस परे बंध तरसाहीं।
तासै अधिक अभाग हमारे। सुन अस गिरा कहत सुत प्यारे।।
जननी प्रेम पंथ है न्यारा। रहा मौन सुन वचन हमारा।।"[123]

जनकपुर में राम को पाकर पुरवासियों को ऐसा प्रतीत हुआ मानों सर-सरिताओं ने मघा का जल पा लिया हो। जल को पाकर सर-सरिताएँ उमंगित होकर समुद्र की ओर दौड़ पड़ी हों-

"जनु सर सरिता मघा जल पाई। उमग समद सनमुष कौ धाई।।"[124]

वस्तुतः कवि ने काव्य के माध्यम से मानव मुक्ति का संदेश प्रदान किया है। नदी का समुद्र की ओर अभिगमन मानव की सर्वोत्कृष्ट मिलन की अभिलाषा है, जो ईश्वराविभमुख होकर पूर्णतः को प्राप्त करती है। कविता की यह पहुंच कवि को एक नई उपलब्धि से गौरवमण्डित करने में समर्थ्य सिद्ध होता है।

सन्दर्भ—संकेत

1, गरूड पुराण, 23/1
2, गीता, 12/14
3, विष्णु पुराण, 1/20/19
4, भागवत्, 3/25/32
5, नारद भक्ति, 16
6, शांडिल्य भक्ति सूत्र 2
7, शंकराचार्य: विवेक चूडामणि, 32
8, वल्लभाचार्य: तत्वदीप निबन्ध श्लोक 46
9, भक्ति रसामृतसिन्धु, रूपगोस्वामी, पूर्व विभाग, प्रथम लहरी ,श्लो.सं 11
10, भक्ति रसायन मधुसूदन सरस्वती, 1/3
11, वोपदेव: मुक्ताफल कलकत्ता ओरियन्ट सीरीज 5,1944,5/1,पचंम अध्याय,पृ.83-90 ।
12, ह0भ0र0 सिन्धु, रूप गोस्वामी, पूर्व विभाग, 1/11

13, ह0भ0र0 सिन्धु, रूप गोस्वामी, पूर्व विभाग, 2/11
14, कविराज कृष्णदास: चैतन्य चरितामृत,मघ्यलीला, परि0 19पृ0 251
अन्य बाँदा अन्य पूजा छाड़ि ज्ञान कर्म । आनुकूल्ये सर्वेन्द्रिय कृष्णानुशीलन।
भुक्तिमुक्ति आदि बॉदा जदि मने हय । साघन करि ले प्रेम उत्पन्नना हय।
15, नारद भक्ति सूत्र, 30 स्वयं फलरूपतेति ब्रह्म कुमारः ।
16, भक्तिः रसामृत सिन्धु, रूप गोस्वामी, पू0 वि0 1/13
17, तदुपरिवत् , 1/11
18, तदुपरिवत्, 3/1
19, तदुपरिवतृ,
20, तदुपरिवतृ
21, 'चैतन्य चरितामृत', कविराज कृष्णदास, मध्यलीला, परि.23 पृ0 258
22, 'भक्ति मनोहर' 'निधानगिरि',ह0प्र0च0सा0सो0सं0 बॉदा पृ08
23, तदुपरिवत्, पृ08
24, 'भागवतगीता' दसवॉं अध्याय, श्लोक 8, पृ0 361
25, भक्ति और शरणागति,विस्णुकान्त शास्त्री, पृ012
26, 'भक्ति मनोहर', निधानगिरि, हस्तलिखित प्रति च0सो0सं0 बांदा, पृ09

पंचम परिवर्त्त

'भक्ति–मनोहर' में भाषा दर्शन

शब्दानुशासन, शब्दावली
हिन्दी तथा उपभाषाओं के विभिन्न पद
संज्ञा, सर्वनाम ,विशेषण, कारक, क्रियाऐ
काल
ध्वनि परिवर्तन
भाषागत उपलब्धि
मुहावरें एवं लोकोक्तियाँ
संस्कृत प्रधान भाषा
भावानुकूल भाषा
अलंकृत भाषा
मिश्रित भाषा
देशज अथवा नवीन गढ़ी हुई भाषा
चित्रात्मक भाषा
अनुकरणात्मक भाषा
प्रतीकात्मक भाषा
अर्थ स्फोट भाषा
छंद
संदर्भ-संकेत

पंचम् परिवर्त्त
भक्ति मनोहर में भाषा दर्शन

भाषा प्रथमत: अभिव्यक्ति है और सम्प्रेषण का साधन है। अभिव्यक्ति रूप सम्प्रेषण का कार्य करें एवं तद्नुसार प्रयोजन सिद्ध हो तो भाषा संदर्भ के अनुकूल मानी जायेगी। पन्त ने भाषा को संसार का नादमय चित्र कहा है।[1] भाषा प्रभावोत्पादक, ओजगुण सम्पन्न, सहज,सुन्दर, शुद्ध, स्वाभाविक तथा रचना के अनुकूल होनी चाहिए। भाषा की वाक्यावली सुसंगठित और परिमार्जित होनी अवाश्यक है। शब्दावली स्पष्ट, सरल और मधुर होनी चाहिए, क्योंकि शब्दावली पर ही वाक्यावली निर्भर करती हे। भाषा की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह भावों को प्रकट करने में समर्थ हो, ऐसी ही भाषा साहित्योपयोगी होती है। डा0 भोलानाथ तिवारी की यही मान्यता है कि भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते है। संस्कृत के एक प्रसिद्ध शब्कोष अमरकोष में भाषा गिरा और वाक का अन्तर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है-

1. जो व्यक्त वर्णो के रूप में बोली जाती है वह भाषा है।
2. जो वाणी मुख से निकलती है और अर्थ बताती है वह गिरा है।
3. जिसका उच्चारण किया जाता है वह वाक् है।

इस अन्तर को अपने शब्दों मं दिखाना चाहें तो इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-सहज अभिव्यक्ति ध्वनि वाक् है यत्नज अभिव्यक्ति ध्वनि भाषा है और मुख से अभिव्यक्त सार्थक ध्वनि 'गिरा' है। भाषा की परिभाषा विद्वानों ने इस प्रकार दी है-''विचार आत्मा की मूक अथवा अध्वन्यात्मक बातचीत है। जो ध्वन्यात्मक बनकर होठों पर प्रकट होते ही भाषा कहलाती है।''[2]

हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान कामता प्रसाद गुरु ने भाषा को इस प्रकार स्पष्ट किया है- ''भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भांति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्पष्टतया समझ सकता है।''[3]

भाषा एक सामाजिक सर्जना है। भाषा के बिना प्रत्यक्ष अभिव्यंजना सम्भव नही है। भाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया जाने वाला साहित्य कलाओं में सर्वाधिक लोकप्रिय है। भाषा क्योंकि एक ऐसा माध्यम है जो समस्त मानव समूह के लिए पूर्णत: परिचित है, इसलिए उसके द्वारा व्यंजित कोई भी भाव निश्चय ही सर्वाधिक लोकप्रिय होगा। अत: भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढ़ग ही शैली है।

शब्दावली

'निधानगिरि' का भाषयिक शब्द भण्डार विशाल है, जिनके कतिपय उदाहरण इस प्रकार है-

तत्सम शब्द

तत्सम शब्द तत+सम से मिलकर बना है; जिसका अर्थ है-उसके समान। अर्थात् जो शब्द संस्कृत भाषा से हिन्दी में आए हैं और ज्यों के त्यों प्रयुक्त होते हैं; तत्सम शब्द कहलाते है।

तद्भव शब्द

तत+भव से मिलकर बना है; जिसका अर्थ है-विकसित या उससे उत्पन्न। अर्थात् वे शब्द जो संस्कृत से उत्पन्न या विकसित हुए हैं तद्भव शब्द कहलाते हैं। हिन्दी की सब क्रियाएँ सर्वनाम, बहुत सी संज्ञाएँ विशेषण और क्रिया विशेषण तद्भव शब्द हैं। उदाहरण स्वरूप 'भक्तिमनोहर' में उदाहरण इस प्रकार हैं-

तत्सम शब्द

वादित[4]	वयोवृत[5]	आयुर[6]	जापक[7]
वृतांत[8]	श्रम[9]	वदित[10]	चटसार[11]
ऐवमस्तु[12]	दुर्जय[13]	दैत्य[14]	किमि[15]
जूह[16]	परमेष्ठी[17]	मेकलसुता[18]	मणिल[19]
सर्व[16]	विदित[20]	सूत्र[21]	सिद्धान्त[22]
दातार[23]	सुखद[23]	आत्मनिवेदन[24]	दुर्वचन[24]
त्रिय[24]	सर्वभूत[24]	भिक्या[24]	तपादिक[24]
पुलकावलि[24]	अक्रिय[24]	अक्रल[24]	अवद्ध[24]
असंगी[24]	अविनाशी[24]	वंदन[24]	अर्चन[24]
अनंत[24]	अखंड[24]	आदि[24]	अंत[24]
सहस[24]	भंयकर[24]	प्रचंड[24]	नृसिंह[24]
दुर्जय[24]	दमन[24]	अभय[24]	वदित[25]
मुंच[26]			

तद्भव शब्द

उतपत[27]	मरन[28]	तरपन[29]
लछमन,[30]	श्रवन[31]	जुत[32]

प्राकृत के शब्द

कंपी[33]	भूंम[34]	शरद्ध[42]
छण्डे[42]	मण्डे[42]	

देशज और बुन्देली शब्द

'निधानगिरि' के काव्य में देशज और बुन्देली भाषा के शब्द इस प्रकार है-

वैराग[43]	विलम[44]	पकवान[45]	झंल[46]
दुहनी[47]	दोहनी[48]	चिरजी[49]	बुलंदा[50]
लीधोइ[51]	टोरा[52]	हेली[53]	धुजाई[54]
दूवर[55]	उमैनी[56]	मझार[57]	सिंहानी[58]
बैठक[59]	मझाँरी[60]	कूँप[61]	थोर[62]

चिनार[63]	नका[64]	झारी[65]	ख्याल[66]
चौताली[67]	काटनवारे[68]	थोक[69]	बछरा[70]
दूला[71]	बछरा[72]	एकठा[73]	बिरवा[74]
कनियाँ[75]	चुटकी[76]	मालपुवा[77]	जेवहिं[78]
षैंचना[79]	ठिकाना[79]	गरुव[79]	जलामई[79]
घुढ़ाई[80]	अरगाना[81]	नगरावहु[81]	झपट[81]
थोक[82]	थापिय[82]	ओली[83]	मंडित[84]
दूर्वा[85]	चुनरी[86]	तोतर[87]	विथुरे[88]

अरबी फारसी के शब्द

'निधानगिरि' के काव्य में अरबी फारसी के शब्द इस प्रकार हैं-

तनंन्जल[89]	जरूर[90]	गरीब निवाज[91]	बाग[92]
बाजार[93]	दरबार[94]	जहाज[94]	शिकार[94]
कैदी[94]	खजाना[94]	फकीर[94]	नजर[94]
दूला[95]	षुसाली[96]	ज्वान[97]	यार[97]

तुर्की के शब्द

'निधानगिरि' के महाकाव्य में तुर्की के शब्द इस प्रकार हैं-

तोप[98]	गोला,[99]	गलीचा,[100]	बहादुर[101]

चीन के शब्द- तूफान[102]

पंजाबी के शब्द

करवार[103]	अकाल[104]	सरदार[105]	चंगे[106]

अनुकरणात्मक शब्द

धकपकिया[107]	सकपकिय[107]	झलमल[108]	झलकारी[109]
धुरधुरात[110]	हाहाकार[111]	अंधन्धंध[112]	ढुमढुम[113]
डगै[114]	धाइ धाइ[115]	मर मर[116]	झपट लपट[117]
धमर[118]	धुक-धुक[119]	चमक चमक[120]	चकचौंधत[121]
अंधाधुंध[121]	छिन-छिन[121]	झकझोरत[121]	गर्जत[121]

मिश्र शब्द

नमकहारम[122]	चोरबाजार[123]	बाल बच्चे[124]	जुवापन[124]
वृद्धापन[125]	चकचौंधी[126]	बीचबटोर[127]	बुधवाना[128]
छिमापन[128]	मूसलाधार[129]	व्याहु वरेषा[130]	मुक्तिदायक[131]

यौगिक शब्द

दशानन[131]	पीताम्बर[131]	देवालय[132]	प्रजामीस[132]
कुमादिक[133]	महीस[134]	लोकेश[134]	औषधीशगिरि[135]
मुख्येश[136]			

हिन्दी तथा उपभाषाओं के विभिन्न पद

'हिन्दी' शब्द मूलतः सिन्धु से सम्बद्ध है। सिन्धु शब्द ईरानी में जाकर हिन्दु और फिर हिन्दी बनकर देश के व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इसे हिन्दी में ईरानी का 'इ' प्रत्यत्य लगाकर 'हिन्दी' शब्द बना, जिसका अर्थ था 'हिन्दी का'। हिन्दी का ही परिवर्तित रूप वाला शब्द हिन्दी है जो विशेषण से संज्ञा बन गया है। 'सिंधु' 'सिंध' नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आसपास की भूमि को 'सिन्धु' कहने लगे। यह सिन्धु शब्द ईरानी में जाकर 'हिन्दू' और फिर 'हिन्दी हो गया और इसका अर्थ था 'सिंध प्रदेश'। बाद में धीरे-धीरे भारत के अधिक भागों से परिचित होते गये और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया यह 'हिन्दी' शब्द धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। प्रारम्भ में हिन्दी शब्द का प्रयोग हिन्दी और उर्दू दोनों के लिए होता था। यह हिन्दी 17 बोलियों का द्योतक है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'हिन्दी शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होता है। इस प्रकार उर्दू तथा दक्खिनी को मिलाकर हिन्दी 17 बोलियों, उर्दू तथा दक्खिनी को अपने अन्तर्गत समाहित किये हुए है। भाषाविज्ञान में प्रायः पश्चिमी 'हिन्दी' और पूर्वी हिन्दी को ही हिन्दी मानते हैं। आचार्य ग्रियर्सन ने इसी आधार पर हिन्दी प्रदेश की अन्य उपभाषाओं को राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी कहा था जिनमें 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग नहीं है, किन्तु अन्य दो को हिन्दी मानने के कारण 'पश्चिमी' 'हिन्दी' तथा पूर्वी हिन्दी नाम दिया था। इस प्रकार इस अर्थ में 'हिन्दी' आठ बोलियों (ब्रज, खड़ी बोली, बुन्देली, हरियाणी, कन्नौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी) का सामूहिक नाम है। हिन्दी शब्द का संकुचित अर्थ है खड़ी बोली साहित्यिक हिन्दी जो आज हिन्दी प्रदेशों की सरकारी भाषा है, पूरे भारत की राज्यभाषा है।खड़ीबोली हिन्दी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है, किन्तु यदि उसे पश्चिमी हिन्दी पूर्वी हिन्दी की 8 बोलियों का प्रतिनिधि माने तो उसका उद्भव शौरसेनी तथा अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। आज की आर्य भाषाओं की जननी के रूप में निम्नाकिंत अपभ्रंश बोलियाँ उल्लेख्य हैं-

अपभ्रंश बोलियाँ	**उनसे निकलने वाली आधुनिक भाषाएँ**
1.शौरसेनी	(क) पश्चिमी हिन्दी (ख) अपभ्रंश के नागररूप-राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी (ग) इस अपभ्रंश के पहाड़ी भागों में स्थ्ति रूप से पहाड़ी
2.पैशाची या केकय टक्क	(क) लंहँदा, पंजाबी
3.ब्राचड़	सिन्धी
4.महाराष्ट्री	मराठी
5.अर्धमागधी	पूर्वी हिन्दी (अवधी, बधेली, छत्तीसगढ़ी)
6.मागधी	बंगाली, उडिया, असमिया,।[137]

हिन्दी प्रदेश की भाषा को ग्रियर्सन आदि विद्वानों ने दो भागों में विभाजित किया है-पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी। इस भेद का आधार दोनों वर्गो की भाषाओं का भौगोलिक और ऐतिहासिक अन्तर भी है। पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र पश्चिमी और बिहारी के

बीच का भूभाग है। पूर्वी हिन्दी के अन्तर्गत अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी है। इनका परिचय इस प्रकार है-

अवधी

इसे कुछ विद्वान 'कौशली' एवं 'बैसवाड़ी' बोली भी कहते हैं। वैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से अवधी पूर्वी हिन्दी की एक बोली मात्र है, परन्तु इस विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए समाज के विचार-विनिमय का माध्यम होने का कारण इसे मध्य प्रांत की भाषा भी कहा जा सकता है। अवध इस भाषा का केन्द्र स्थल होने के कारण ही इसे उक्त नाम मिला है। अवधी का क्षेत्र जिला हरदोई को छोड़कर समस्त अवध प्रदेश है। डॉ0 बाबूराम सक्सेना ने अवधी के विकास को तीन कालों में बाँटा जा सकता है-

1. 10 वीं शती से 14 वीं शती तक-इसे निर्माण काल भी कहा जाता है।
2. 14 वीं शती से 17 वीं शती तक-इसे मध्य काल भी कहा जाता है।
3. 17 वीं शती से वर्तमान काल तक-इसे आधुनिक काल कहा जाता है।

मध्यकालीन अवधी का रूप मुल्ला दाऊद की रचना 'चन्दायन', ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा', कुतुबन की 'मृगावती', जायसी के 'पद्मावत', उसमान की 'चित्रावली', तुलसीदास की 'रामचरितमानस' आदि रचनाओं में सुरक्षित है।

अवधी एक जीवंत भाषा है और वह आज भी विकास के पथ पर अग्रसर है। साथ ही उसमें आज भी परिवर्तन हो रहा है। मध्यकाल में उसमें अरबी-फारसी के अनेक शब्द आए है तो आधुनिक काल में बोलचाल की अवधी खड़ी बोली से प्रभावित हुई है।

(क) अवधी में हिन्दी की सभी स्वर ध्वनियाँ हैं। इसमें ए-ओ का ह्रस्व रूप भी मिलता है, जो खड़ी बोली में नहीं मिलता, जैसे एतना कहत।

(ख) इसमें ऐ-ओ को अइ-उइ लिखने तथा बोलने की प्रवृत्ति है, यथा जैसे को जइसे।

(ग) अवधी में य-व श्रुतियों का अभाव मिलता है करिये का करिअ, छुवत का छुअत।

(घ) अवधी में ण, ड, य, व के स्थान पर क्रमशः न, र, ज, ब ध्वनियाँ मिलती हैं: जैसे- प्राण का प्रान, थोड़े का थोरे।

(ड़) अवधी में ल के स्थान पर र की प्रवृत्ति मिलती है, जैसे-मुरवल को मुखर, फल का फर आदि।

निधानगिरि कृत 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में अवधी भाषा के प्रयोग पर्याप्त रूप में पाए जाते हैं। 'रामचरितमानस' से प्रभावित होने के कारण भी ये प्रभाव कवि पर देखे जा सकते हैं। दृष्टान्त इस प्रकार हैं-

(क) ''सुनत भंयकर शब्द कर, हसा महामद अन्ध।।
कहत कोप जुत मै नहीं, कपि सुकण्ठ को बन्धु।।
नहिं विराध कबन्ध षर, नहिं मारीच सुबाहु।।

कुंभकरन मैं हौं कठिन, देषहुँ मुदगल बाहु।।
जिहि से दूषे दैत्य सुर जीते विनहिं प्रयास।।
ता मुदगल सैं आज मैं, सबकों करहौं नास।।
महाभूप इक्ष्वाक कुल, सारदूल हौं राम।।
मोह दिषावहुँ निज बलह तब हनहौं संग्राम।।
उमा निसचरह मल मंद भारा। काल बात बस बिगत बिचारा।।
राम काल के काल कराला। नर चरित्र कर परम विसाल।।[138]

उपर्युक्त उदाहरण में कोप, युत के स्थान पर कोप जुत, कुंभकरण के स्थान पर कुंभकरन तथा अवधी के कारक के और पर आदि प्रयोग भी मिलते हैं; जैसे काल के काल, नर चरित्र कर आदि। इस प्रकार क्षेत्रीय बुन्देली मिश्रित अवधी भाषा को भी कवि ने अपने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है।

(ख) "विगत वासना जन प्रहलादा। गदगद कंठ अधिक अहिलादा।
प्रगटी पुलकावली सरीरा। जोर पान बोला मत धीरा।
ब्रह्मादिक सुर मुनि अवतंसा। अधिक-अधिक ते करत प्रसंसा।
उग्र छोर मै असुर उजाती। किम कह सकहु नाथ गुन पाती।"[139]

(ग) "अरगांन अस कह धर्म जुत सुन वचन उचित मनोहरा।
हरि कह कपट छल सनी बानी श्रेष्ठ कुल जस जग मरा।।
परलोक के सब हैं सुधारन सभासद मन जानियै।
तुमरे गुरू बहु विध बड़े भृगुवंस छिद्र वषानियै।।
पुन पितामह पहलाद तुमरे वंस उत्तम अति सही।
जा कुल भयौ नहि कृपन ऐसौ देइ फिर पलटै नही।।"[140]

(घ) "कटिपट पीत निसंग सम्मारे, लघु धनु सर कर कमलन धारे।
सो छवि निरख अवध पुरवासी। लोचन फल पावत सुष रासी।।
नील मेघ तन राम कृपाला, लषन कनक तन सुभग विशाला।
भरत नेह शोभा के सागर, रिपु सूदन सोहत छवि आगर।।
जे शिव उर तड़ाग बस हंसा। ते विहरत रविकुल अवतंसा।।"[141]

उक्त उद्धरणों से कवि पर अवधी का प्रभाव परिलक्षित होता है।

बघेली

बघेलखण्ड में बोली जाने के कारण इसका नाम बघेली अथवा बघेल-खण्डी है। इसमें ध्वन्यात्मक विशेषाएँ इस प्रकार हैं-

(क) बघेली में उ-ओ स्वरों को 'था', 'वा' आदेश हो जाता है, जैसे खैत-ख्यात, जेहि-ज्याहि, धोड़ा-ध्वाड़, तुमरे-त्वारे।

(ख) बघेली में ध का ब उच्चारण अवश्य होता है, 'व ध्वनि की सुरक्षा भी अनेक स्थानों पर दिखाई देती है। जैसे-पावा-पाबा, आवा-आबा आदि।

छत्तीसगढ़ी

मध्य प्रदेश के निश्चित भूखण्ड छत्तीसगढ़ की भाषा का नाम छत्तीसगढ़ी के अतिरिक्त लरिया और खल्टाही भी है। इसका विस्तार क्षेत्र रायपुर-बिलासपुर के जिले आदि हैं। इसकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

(क) छत्तीसगढ़ी में संज्ञा सर्वनाम में ए, औ ध्वनियों का क्रमश: अइ और अउ रूप मिलता है जैसे- बेल-बइल, जौन-जउन।

(ख) इसमें शब्द के मध्य की ध्वनि का लोप होता है। जैसे-लड़का-लइका।

(ग) इसमें अल्पप्राण ध्वनियों के महाप्राण ध्वनियों में परिवर्तन की प्रवृत्ति है।

(घ) इसमें स के स्थान पर 'छ' मिलता है, जैसे-सीता का छीता, सात का छात।

पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत पाँच विभाषाएँ अथवा बोलियाँ हैं-खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रज, कन्नौजी, बुन्देली।

खड़ी-बोली

इसको कई नामों से पुकारा जाता है-हिन्दुस्तानी, नागरी, हिन्दी और सरहिन्दी, कौरवी। इसका क्षेत्र मेरठ, बिजनौर आदि हैं। खड़ी बोली हिन्दी की दो प्रधान बोलियाँ हैं-बिजनौर की खड़ी बोली, मेरठ की खड़ी बोली। खड़ी बोली हिन्दी में संस्कृत शब्दों के स्थान पर अरबी-फारसी के शब्दों के प्रयोग से हिन्दी उर्दू बन जाती है। हिन्दुस्तानी एक बोली मात्र है और इसका जन्म हिन्दी-उर्दू विवाद के शमन कि लिए हुआ है। इसमें संस्कृत, अरबी, फारसी के शब्दों के तद्भव रूपों का प्रयोग किया जाता है। इस खड़ी बोली में आधुनिक काल में गद्य और पद्य में विपुल तथा उत्कृष्ट साहित्य की रचना हुई है। इसकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

(क) हिन्दी के ऐ-औ ध्वनियों के स्थान पर ए-ओ ध्वनियाँ मिलती हैं, जैसे-ओ, और है, हे आदि।

(ख) हिन्दी की न ध्वनि के स्थान पर अधिकांश में ण का प्रयोग होता है, जैसे मानुस-माणुस, सुनना-सुणणा।

(ग) साहित्यिक हिन्दी में ड-ढ का ड़-ढ़ उच्चारण होता है।

(घ) स्वराघातयुक्त दीर्घस्वर बाद के व्यंजन का द्वित्व हो जाता है।

निधानगिरि कृत 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में खड़ी बोली के शब्दों का कम ही प्रयोग है, तथापि कुछ शब्द मिलते हैं, जो निम्नवत् हैं-

(क) "ऐक समय सनकादि मुनीसा।"[142]

(ख) "आप रसातल कौं गऐ जानहि का प्रभु भेव।"[143]

(ग) "अधिक अपुन से होइ गुन आनंद तासै मांन।
लघु गुन नर वर कर कृपा निदरै नहि वुध वांन।।
होई बराबर जास गुन करह मित्रता सोइ।
राजनीति उपदेश अस गन गुन राषौ जोइ।।"[144]

बांगरू

स्थान और बोली दोनों की जाति के अनुरूप यह बोली कई नामों से व्यवहृत होती है। हरियाणा के आसपास इसको हरियानी अथवा हरियाणवी कहते हैं। कुछ लोग देश की भाषा के नाते इसे देसाड़ी कहते हैं। बांगरू की ध्वनि सम्बन्धी विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

(क) हिन्दी न के स्थान पर ण का प्रयोग बहुलता से मिलता है, जैसे-अपना-अपणा।

(ख) मूर्धन्य ल का प्रयोग भी बहुलता से मिलता है, जैसे-काल-काल।

(ग) ड़ ध्वनि के स्थान पर ड का प्रयोग मिलता है।

(घ) द्वित्व व्यंजनों का प्रयोग बहुतायत से मिलता है, जैसे-भीतर-भित्तर।

बांगरू भाषा के प्रयोग कवि के काव्य में न के बराबर है।

ब्रजभाषा

यह ब्रज प्रदेश की भाषा है। ब्रज शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में चरागाह या बाड़े के अर्थ में हुआ है। डॉ0 ग्रियर्सन ने इसका एक और नाम अन्तर्वेदी दिया है अर्थात् गंगा-यमुना के बीच के प्रदेश की भाषा इसके अन्य नाम है ब्रजी, ब्रिज, ब्रिजकी, भाषामणि, माधुरी, मथुरही, पुरुषोत्तमभाषा तथा नागभाषा। ब्रजभाषा की प्रमुख बोलियाँ इस प्रकार हैं-

1. नैनीताल का भुस्सा।
2. एटा, मैनपुरी, बदायूँ तथा बरेली की अन्तर्वेदी,
3. धौलपुर और पूर्वी जयपुर की डांगी
4. गुड़गाँव भरतपुर की मिश्रित
5. करौली की जाटोवाटी।

ब्रजभाषा का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। वल्लभ सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियों तथा केशव, रसखान, रहीम आदि ने इस भाषा का प्रयोग किया है। ब्रजभाषा की लोकप्रियता इतनी बढ़ी कि समस्त उत्तर भारत में यह काव्य भाषा के रूप में गृहीत हुई। साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त ब्रज का लोक साहित्य भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ब्रजभाषा की ध्वनि सम्बन्धी विशेषताओं में उल्लेखनीय तत्व ये है कि यह अन्य विभाषाओं की अपेक्षा सही रूप में पश्चिमी हिन्दी का प्रतिनिधित्व करती है-

क. इसमें अपभ्रंशकालीन अन्य स्वरों के साथ ऐ-ओ ध्वनियाँ मिलती हैं।

ख. इसमें अपभ्रंशकालीन अन्य व्यंजनों के अतिरिक्त इह, न्ह, म्ह तथा ल्ह ध्वनियाँ भी मिलती हैं।

ग. इसमें तीन सकारों-श, ष, स, में केवल स मिलता है।

घ. इसमें ए, ओ के हस्व रूपों का भी प्रयोग होता है।

ड़. इसमें ऋ के स्थान पर रि अथवा 'इर' मिलते हैं।

च. इसमें आदि और मध्यस्थ अ के स्थान पर कभी-कभी इ मिलता है, जैसे-तस्थ-तिस्थ, तिसु आदि।

छ. ब्रजभाषा में व के स्थान पर म का आदेश मिलता है, जैसे-पार्वेग-पार्मेग।

ज. आधुनिक ब्रजभाषा में 'ण' के स्थान पर न मिलता है। ण लिखा जाने पर उच्चारण में न जैसा हो जाता है, जैसे-प्रवीण-प्रवीन, तरुणी-तरुनी।

झ. हिन्दी की ड-ड़-ल ध्वनियों के स्थान पर ब्रज में र ध्वनि हो जाती है, जैसे-घड़ी-घरी, पड़ा-परयौ।

ब्रज की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ इस प्रकार है-

क. खड़ी बोली हिन्दी की अकारान्त संज्ञाओं के स्थान पर ब्रजभाषा में ओकारात्न संज्ञाएँ मिलती हैं, जैसे-लड़कों, तिनकों, कारो आदि।

ख. ब्रजभाषा में कर्ता-बहुवचन में न-नि, कर्म-एकवचन और बहुवचन में हि, हि कारण-एकवचन में हि, सम्बन्ध-एकवचन में ह तथा अधिकरण में हि, इ-ए विभक्ति प्रत्यय अवशिष्ट हैं, जैसे-(कर्ता) श्रवनन, दृगनि (कर्म) कैलासहिं।

ग. ब्रजभाषा में निम्न परसर्गो का प्रयोग होता है।

कर्ता-	ने, नें, नै, नैं।
कर्म	कों, कू।
करण	सौं, तन, त, तैई
सम्प्रदान	कई, ताई, हेत, लागे
अपादान	हूँ, ती, तै, सै।
सम्बन्ध	कउ, का, के, की
अधिकरण	मांहि, मांझि, में, माँ।

घ. ब्रजभाषा में प्रेरणार्थक क्रिया बनाने के लिए अ, आ, आउ, ब आदि प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे-चलिइयौ, चलाउ, चलाइ है, चलाउँगो, चलबाउ।

ड़. वर्तमानकालिक कृदन्त में त-त प्रत्यय लगाये जाते हैं। भूतकालिक कृदन्त में ओ ए-यो प्रत्यय लगाये जाते हैं तथा भविष्यत्कालिक कृदन्त में गा-गे-गी के अतिरिक्त है-हैं प्रत्यय लगाये जाते है, जैसे-खेलत, पढ़ो, गयो, गये, पढ़गा आदि।

च. क्रियात्मक संज्ञाएँ 'व' तथा न लगाकर बनती हैं, जैसे-खेलनो, चलिबो आदि।

'भक्तिमनोहर' में ब्रजभाषा के उदाहरण निम्नवत् हैं-

क. "हम अबला कह जानहीं जोग जुगति की रीति।
नन्द नन्दन व्रत छाड़िकै को लिष पूजै भीति।।
हम ब्रज मैं गोपाल उपासी। जोग अंग जानै सन्यासी।।
ग्यान जोग गुन षेत पलानी। बैपारी बड़ ब्रज में आनी।।
स्याम आपनो पय प्यारे को। को जल पिये कूप षारे को।।
तुम ठग आसा जोग ठगोरी। लैइहैं ताह कौन ब्रज गोरी।।"[145]

ख. "जनु रावरे गुन विविध बरनत, सुनहुं लाल उचार कौं।"[146]

ग. "निपट त्याग दीनै सकल वाल केल के षेल
वासुदेव पद ध्यान धर फिर उनमत अकेल
असन पान बोलन सयन इनकौ वोध-विहाइ
वासदेव पद पदम पर मन मधुकर रस पाइ।।"[147]

घ. "कबंहू हसत रुदन कबंहू कर। गावत कबहुँ हर्ष कबहूँ धर।।
नाचत कबहुँ लाज कौ त्यागी। करत भावना प्रभु अनुरागी।।
कबहूँ पुलकावली सरीरा। होत कबहुँ चुपचाप गंभीरा।।
परस भावना कर प्रभु देही। उपज अनंद रहै थिर तेही।।"[148]

ड़. "बूझ मात प्यारी कहां आज लगाई बेर।
षिरक विलोकन हौं गई कहत राधिका फेर।।
षिरक मांहि आवहि हो आई। मोह दोहनी दीजे माई।।
दुहत ग्वाल सब निज-निज धैनू। पाछे मोर दुहत सुन बैनू।।
घरिक विलम्ब षिरक मै लागै। अस कह चली कुवंर अनुरागै।।
कनिया लिए नन्द तब आई। श्याम राधिका देष बुलाई।।
कहत नन्द दोऊ तुम षेलौ। जाहु न कितहूं इत मन मेलौ।।
गोपि धैनु गन गनत धनैरे। षेलत निकट रहौ तुम मेरे।।
गायि कान कौ कहूं न मारै। अस कह लाल उतार पधारै।।"[149]

कन्नौजी

डॉ० ग्रियर्सन ने इसे केवल जनमत के कारण ही स्वतन्त्र भाषा माना है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने भी इसे ब्रजभाषा के अन्तर्गत ही स्वीकार किया है। इसका एक नाम 'कनौजी' भी प्रचलित है। इसमें ध्वन्यात्मक विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

क. इसकी वर्णमाला-स्वर और व्यंजन-ब्रजभाषा की वर्णमाला से मिलती जुलती है।

ख. कन्नौजी में ब्रजभाषा के ऐ-औ के स्थान पर ए-ओ का प्रयोग अधिक मिलता है; जैसे-बड़ो, गओ आदि।

ग. कन्नौजी में स्वर मध्यस्थ ह का लोप हो जाता है, जैसे-कहिहैं-कइयौं।

घ. कन्नौजी में ब्रजभाषा की य, व श्रुतियों का अभाव मिलता है, जैसे-ब्रजभाषा के गयो, भयो, भवा आदि।

बुन्देली

बुन्देली समस्त बुन्देखण्ड की प्रधान जाति बुन्देलों की भाषा है। कुछ विद्वान इसे बुन्देखण्डी भी कहते हैं। न्यूनाधिक अन्तर को छोड़कर सारे प्रदेश में समान रूप से प्राय: एक ही भाषा का प्रयोग किया जाता है। फिर भी स्थानीय प्रभाव को ग्रहण किये हुए निम्न बोलियाँ है-

क. ग्वालियर के उत्तर-पूर्व दतिया जिले और पड़ोस में बोली जाने वाली पंवारी।

ख. हमीरपुर के राठ और जालौन के आसपास बोली जो वाली लोधान्ती अथवा राठौड़ी।

ग. बुन्देखण्ड के आसपास बोली जाने वाली खटोला।

साहित्य में ब्रजभाषा का प्रधान्य हो जाने के कारण बुन्देली में साहित्य नहीं लिखा गया। बुन्देली में काव्य रचना करने वाले एकमात्र कवि गोरेलाल है। इसकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ इस प्रकार है-

क. प्यारसूचक या-वा प्रत्यय से जुड़ने पर प्रथम वर्ण के ए-ओ का इ-उ हो जाता है। जैसे-बेटी-बिटिया।

ख. ब्रजभाषा की ऐ-औ तथा ऽ ध्वनियाँ बुन्देली में ए, ओ तथा र हो जाती हैं। जैसे-झगड़ो-झगरौ, छोड़ो-छोरो।

ग. आ के उपरान्त स्थित ह का लोप हो जाता है और उसके स्थान पर अवशिष्ट अ-इउ में बदल जाता है; जैसे-चाहत-चाइत।

घ. शब्द के आदि का य ज में और व , ब में बदल जाता है, जैसे-यदि-जदि, विचार-बिचार।

बुन्देली की व्याकरण सम्बन्धी विशेषताएँ-

क. बुन्देली ओकारान्त बहुल भाषा है। हिन्दी में संज्ञा, सर्वनाम तथा कृदन्त के रूपों में जहाँ अन्त्य 'आ' ध्वनि मिलती है, वहाँ बुन्देली में 'ओ' मिलता है, जैसे-ब्रजभाषा-भला, बुरा, मेरा, गया आदि के बुन्देली रूप भलो, बुरो, मेरो, गओ आदि है।

ख. ब्रजभाषा की ऐ-औ तथा ड ध्वनियाँ बुन्देली में ए, ओ तथा र हो जाती हैं। जैसे-झगड़ो-झगरौ, छौड़ौ-छोरो।

ग. आ के उपरान्त स्थित ह का लोप हो जाता है और उसके स्थान पर अवशिष्ठ अ-इउ में बदल जाता है। जैसे-चाहत-चाइत।

घ. शब्द के आदि का य, ज में और व, ब में बदल जाता है। जैसे-यदि-जदि, विचार-बिचार।

ड. संज्ञा के मूल तथा विकृत एकवचन और बहुवचन के रूप में ब्रजभाषा के ही समान है, जैसे-मइया-मइयन।

च. सर्वनाम रूपों में मध्यम तथा उत्तम पुरुष सम्बन्ध कारक में रो के स्थान पर ओ हो जाता है, जैसे-हमारो-हमाओ।

छ. बुन्देली में परसर्गो का प्रयोग इस प्रकार है-

कर्ता-नै, कर्म-खाँ, खौं, करण तथा अपादान-सैं, सम्प्रदान-के लानैं के नानै, सम्बन्ध-कौ, के की, खौ, खे, खी अधिकरण-मैं, पै, पर।

'निधानगिरि' कृत 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में बुन्देली की भाषा के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं-

क. ''तासैं कीर्तन कौं करो यह नर तन कौं पाइ।
निस दिन मन सुमरन करै सुमरन भक्ति कहाइ।।''''[150]

ख. ''बिध किसांन जग षेत मै सोभा बीज सुजांन।
काटनवारे मदन रति मंडप कर षर आंन।''[151]

ग. ''कानंन कुंडिल चपल सिहांहीं।परत कपोलन पर परछांहीं।
भाल तिलक त्रभुवन जयजागी। कंचन मनिन जटित सिर पागी।
तापर मौर मनोहर सोहैं। भूषन अमित अंग छवि गोहैं।।''152

घ. ''नीको औटो दूध लै भर भर वेला थार।
सिषरन वासी धी वहुत बरफी फैने चार।।''[153]

'निधानगिरि' के काव्य की भाषा में कारक इस प्रकार हैं-

	पश्चिमी हिन्दी (ब्रज)	पूर्वी हिन्दी (अवधी)	बुन्देली
कर्ता	न ने नै नैं		नै
कर्म	क, ख, कु, कुं, कू, कौ,	का, कां, कहं, के, को	खौ, खॉ
करण			
अपादान	सो, सू, से, सो, ते, तै	से, ते, सेनी, ले, ते	सै
सम्बन्ध	का के की कौ को	क, कर, को, की, के केर	के लानौ, नानै कौ के का
अधिकरण	मे मैं पर पे पै आदि	मं मंह मां पर	खौ खे खी मै पै पर

संज्ञा

संज्ञा का अर्थ होता है. नाम। विश्व में जितने भी व्यक्ति या वस्तुएँ हैं, उनका कोई न काई नाम अवश्य होता है, जिसे संज्ञा कहते है। हिन्दी में संज्ञा के तीन भेद होते है-(1) व्यक्तिवाचक संज्ञा (2) जातिवाचक संज्ञा (3) भाववाचक संज्ञा।

व्यक्तिवाचक संज्ञा

जिस शब्द से किसी एक ही व्यक्ति अथवा वस्तु का बोध होता है; उसे व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं भक्तिमनोहर महाकाव्य में व्यक्तिवाचक संज्ञा इस प्रकार है-

मेकलसुता जान्हवी जमुना। सिन्ध सरसुती सरजू पवना।।
गोदावरी गोमती वासी। सुभग चन्द्रभाग सुख रासी।।
भीमा भीमरथी कावेरी। सौन महानद आदि बसेरी।।
सरिता सकल दिव्य तन धारी। विषद आभरन भूषत भारी।।[155]

उपर्युक्त छन्द में कवि ने व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के सहयोग से चौपाइयों की रचना की है। यहाँ पर समस्त नदियों के नाम व्यक्तिवाचक संज्ञा के अन्तर्गत प्रकट हुए हैं; जबकि सरिता शब्द जातिवाचक संज्ञा है।

ख "गए राम सीता लषन गोदावरी समीप
पंचवटी आश्रम निरष निवसे रघुकुल दीप।।" 156

उपर्युक्त पद में अधिकांश शब्द व्यक्तिवाचक हैं।

लंका[157], ध्रुव[158], दशासन[159], नारद[160], प्रहलाद[161], त्रिकूट[162], रामेश्वर[163], चित्रकूट[164] आदि पद व्यक्तिवाचक संज्ञा के अन्तर्गत प्रयुक्त किये गये हैं।

जातिवाचक शब्द

जिस शब्द अथवा नाम से किसी व्यक्ति अथवा वस्तु की समस्त जाति का बोध होता है, उसे जातिवाचक संज्ञा कहते हैं। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में जातिवाचक संज्ञा इस प्रकार है-

समद[165] गुरू[166] वानर[167] अचल[168] निशाचर[169] भुंम[170]

भाववाचक संज्ञा

जिस शब्द से किसी वस्तु अथवा व्यक्ति के गुण, दशा, भाव, व्यापार, धर्म, अथवा अवस्था स्वाभाव का बोध होता है, उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं।

निधानगिरि के 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में भाववाचक संज्ञा शब्द इस 'पन' तथा 'न' प्रत्यय जोड़कर बनाए गए हैं, जो इस प्रकार हैं-

वालापन[171]	वृद्धापन[174]	बालपन[177]	हरषाई[180]
वृद्धापन[172]	सिथलाई[175]	हाहाकार[178]	अट्टहास[181]
अनुराग[173]	जरापन[176]	गदगद[179]	

सर्वनाम

1. जिस शब्द का प्रयोग संज्ञा के बदले होता है, उसे सर्वनाम कहते हैं।
2. नाम के स्थान पर आने वाले शब्द को ही सर्वनाम कहते हैं।
3. जो विकारी शब्द प्रसंग के अनुसार किसी संज्ञा के स्थान पर प्रयोग किये जायें उन्हें सर्वनाम कहते हैं।सवनाम के 6 भेद होते है-

(1) पुरुषवाचक सर्वनाम (2)निश्चयवाचक सर्वनाम (3) अनिश्चयवाचक सर्वनाम (4) सम्बन्ध ावाचक सर्वनाम (5) प्रश्नवाचक सर्वनाम (6) निजवाचक सर्वनाम।

पुरुषवाचक सर्वनाम

जो सर्वनाम किसी पुरुष के लिए प्रयोग में आता है, उसे पुरुषवाचक सर्वनाम कहते है। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में पुरुषवाचक सर्वनाम इस प्रकार हैं-

उत्तम पुरुष

बात कहने वाले को उत्तम पुरुष कहते हैं। 'निधानगिरि' के काव्य में उत्तम पुरूष इस प्रकार है- मम[182], मोर[183], निज[184], अपनै, मैं, हम[185], निज[186], मो[187], मैं[188]

मध्यम पुरुष

जिससे बात कही जाए, वह मध्यम पुरुष है।भक्तिमनोहर महाकाव्य में मध्यम पुरुष इस प्रकार है-

तुव[189], तुम[190], तोर[191]।

अन्य पुरुष

जिसके सम्बन्ध में बात कही गयी हो वह अन्य पुरुष है। भक्तिमनोहर महाकाव्य में अन्य पुरुष इस प्रकार हैं-

ताह[192], ताकी[193], तिनक[194], तिहिका[195] सो[196].
सोह[197], को[198], ते[199], तास[200], तिनहूँकी[201],
अपर[202], आन[203], आप[204], निज[205], आपुन[206]।

निश्चयवाचक सर्वनाम

जिस सर्वनाम से किसी वस्तु का निश्चित बोध होता है, वह निश्चयचावक सर्वनाम होता है। जैसे-'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में निश्चयवाचक सर्वनाम इस प्रकार है-

अवहूँ[207] सो प्रसंग[208]

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

जिस सर्वनाम से किसी वस्तु का निश्चित बोध नहीं होता उसे अनिश्चय वाचक सर्वनाम कहते हैं। उदाहरण स्वरूप निधानगिरि कृत भक्तिमनोहर महाकाव्य में अनिश्चयवाचक सर्वनाम इस प्रकार हैं।

को[207], का[208], कवनह[209] की कोई[210]
काहु[211] कोऊ[212]

सम्बन्ध वाचक सर्वनाम

जिस सर्वनाम से दो वस्तुओं अथवा व्यक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध प्रकट होता है, उसे सम्बन्ध वाचक सर्वनाम कहते हैं। भक्तिमनोहर महाकाव्य में सम्बन्ध वाचक उदाहरण इस प्रकार हैं-

इन[213]	सो[214]	परसपर[215]	तासै[216]	जे[217]
सोई[218]	ता[219]	ताह[220]	मेरो[221]	सो[222]
ते[223]	तिनकी[224]	ताह[225]	जित-तित[226]	जासु[227]

प्रश्नवाचक सर्वनाम

जिस सर्वनाम से प्रश्न का बोध होता है, उसे प्रश्नवाचक सर्वनाम कहते हैं। निधानगिरि के काव्य में प्रश्नवाचक सर्वनाम इस प्रकार हैं-

कैसे[228] कवन किनि[229] को[230] किमि[231]

निजवाचक सर्वनाम

जिस सर्वनाम से कर्ता का बोध होता है वह निजवाचक सर्वनाम होता है। 'निध ाानगिरि कृत 'भक्तिमनोहर' में निजवाचक सर्वनाम इस प्रकार है-

आपुन[232] मोर[233]

क. ''आप रसातल कौ गऐ जानहिं का प्रभु भव।''[234]

ख. ''हू हौ मोर तनय तव प्यारे। बैठहु भूपति गोद दुलारे।''[235]

ग. ''मो सम अभागिन नहीं जग मै ता उदर सै तुम भऐ।''[236]

घ. ''अधिक अपुन में होइ गुन आनंद तासे भांन।''[237]

ड़. ''आपुन अर्थ न जानह जोई।''[238]

विशेषण

विशेषण से संज्ञा का गुण अथवा विशेषण पद प्रकट होती है और उसके प्रयोग से जातिवाचक संज्ञा की व्यापकता मर्यादित हो जाती है। संज्ञा के साथ सा, नामक, सम्बन्धी रूपी आदि शब्दों को जोड़कर विशेषण बनाते हैं। अर्थात् संज्ञा अथवा सर्वनाम की विशेषता बताने वाले शब्द विशेषण कहलाते हैं। विशेषण एक ऐसा विकारी शब्द है जो हर हालत में संज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताता है। विशेषण के प्रयोग से जिस संज्ञा की व्यापकता सीमित होती है अथवा जिस संज्ञा का गुण अथवा धर्म प्रकट होता है उस संज्ञा को वैयाकरण विशेष्य कहते है। व्यवहार की दृष्टि से विशेषण के चार भेद होते है-(1)गुणवाचक विशेषण (2) संख्यावाचक विशेषण (3) परिणामवाचक विशेषण (4) सार्वनामिक विशेषण।

गुण, संख्या और परिणाम के आधार पर विशेषण के पदों के भेदों का वर्गीकरण इस प्रकार है-

गुणवाचक विशेषण
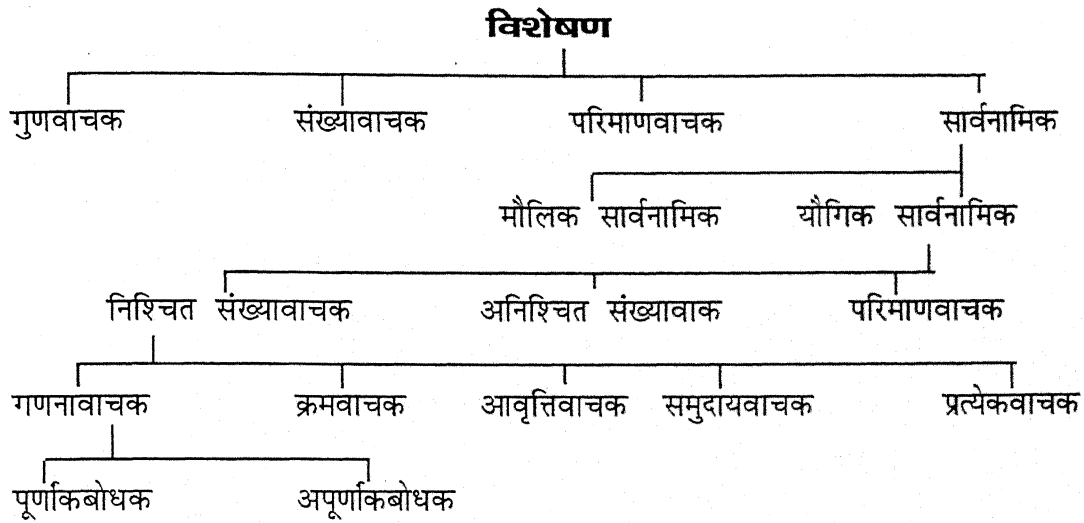
जिन विशेषणों से पदार्थ के गुण, रंग, आकार, दशा, अवस्था, रूप आदि का बोध होता है, उन्हें गुणवाचक विशेषण कहते हैं। भक्ति-मनोहर महाकाव्य में गुणवाचक विशेषण इस प्रकार हैं-

नीक[239]	मनोहर[239]	श्यामगौर[239]	नव[239]	कठोरी[240]
पावन[241]	परम[242]	उदार[243]	चौगुन[244]	सुगंधित[245]
शोभा[246]	सिरताज[247]	कठिन[248]	त्रि[249]	तीसर[250]
चतुरथ[251]	मृदुल[252]	ललित[253]	कपट[254] प्रलंब[255]	
सुभग[256]	पुलकित[257]			

संख्यावाचक विशेषण

जिससे वस्तुओं की संख्या का बोध होता हो, उसे संख्यावाचक विशेषण कहते हैं, यह पांच प्रकार का होता है-गणनाबोधक, क्रमबोधक, आवृतिबोधक, समुदायबोधक, प्रत्येक बोधक। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में संख्यावाचक विशेषण इस प्रकार हें-

दोऊ[258]	दोई[259]	दूसर	चहूँ[260]	इक[261]
तिहूँ[262]	तीन[263]	दूसर[264]	एक[265]	दुगुन[266]
एक[267]	दूसरो[268]	वृन्द[269]	सकल[270]	ऐकहिं[271]
इकै[272]	सबहिं[273]			

परिणामवाचक विशेषण

जो शब्द किसी वस्तु के परिणाम (माप-तौल) का बोध कराता है, उसे परिणामवाचक विशेषण कहते हैं। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में परिणामवाचक विशेषण इस प्रकार हैं-

थोरा[274]	अधिक[275]	अर्ध[276]	थोर[277]
ज्यौं ज्यौं[278]	त्यौं त्यौं[278]	अवि[279]	अधिकार[280]

सार्वनामिक विशेषण (संकेतवाचक)

जो सर्वनाम शब्द विशेषण की भाँति प्रयुक्त होते है, उन्हें सार्वनामिक विशेषण कहते हैं। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में सार्वनामिक विशेषण निम्नवत् हैं-

क. "ताकौ सब बरनन करत भिन्न भिन्न वुध मौन।" 281
ख. "तिहि गनती मै होत दो अपर भेद नहि तात।" 282

वाक्य में विशेषण दो प्रकार से होता है-विशेष्य विशेषण तथा विधेय विशेषण।

विशेष्य विशेषण

विशेष्य के पहले आने वाले विशेषण को विशेष्य विशेषण कहते हैं। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में विशेष्य विशेषण निम्नवत् हैं-

ललित बदन।[283]
नील कंज तन परम उदोता।[284]

विधेय विशेषण

विशेष्य के बाद और क्रिया के पहले आने वाले विशेषण को विधेय विशेषण कहते हैं। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में विधेय विशेषण इस प्रकार दृष्टण्य हैं-

"चरन कमल मष मोतिन ज्योति।"[285]
"लघु लघु उंगली चरन सुहाये।"[286]

प्रस्तुत उदाहरण में चरन विशेष्य है और विशेषण कमल है जो बाद में आया है। उंगलिया विशेषण और लघु-लघु विशेष्य है, जो पहले आई है।

तुलनात्मक विशेषण

दो या अधिक वस्तुओं की विशेषताओं के मिलन का तुलना कहते हैं। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में तुलनात्मक विशेषण के उदाहरण निम्नवत् हैं-

क. भक्ति सवन सिरमौर है करहु प्रीत बड़भाग।[287]
ख. अस वचन रसना अधिक सुन प्रभु षोल दृग पंकज दिये।[288]
ग. बाल स्वरूप अनुपम कहा मति अनुहार के।[289]

कारक

भारतीय भाषा में संज्ञाओं का सम्बन्ध उपसर्गों द्वारा प्रकट किया जाता था। अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, फारसी तथा अरबी आदि भाषाओं में उपसर्गों की सहायता से ही कारक प्रकट किये जाते हैं। प्राचीन भारतीय आर्य भाषाकाल में उपसर्ग क्रियाओं के साथ जुड़ने लगे। पदों में विभक्ति प्रत्यय के योग से भिन्न-भिन्न कारक रूप सिद्ध हो गये। आठ करकों और तीन वचनों की सत्ता से प्रत्येक शब्द के 24 रूप बनने लगे। मध्य काल में शब्दों के कारक रूपों में समीकरण की प्रवृत्ति से चौबीस शब्द रूपों के स्थान पर केवल पाँच, छः रूप शेष रह गये। इस समीकरण के फलस्वरूप कारक रूपों में तो कमी आ गई, परन्तु अस्पष्टता इतनी बढ़ गई कि उन्हें प्रकट करने के लिए सहायक शब्दों का प्रयोग आवश्यक हो गया। आधुनिक काल में विभक्ति प्रत्ययों में और कमी हो जाने के फलस्वरूप अपभ्रंश-काल से ही अस्पष्टता और बढ़ गई, अतः उसी अनुपात से सहायक शब्दों द्वारा कारक प्रकट करने की प्रवृत्ति भी बढ़ गई। डॉ0 श्यामसुन्दर दास के अनुसार ''हिन्दी के विद्वानों में विभक्तियों के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। कोई उन्हें प्रत्यय मानते हैं और इसी आधार पर इन्हें मूल शब्दों के साथ मिलाकर रखते हैं, परन्तु दूसरों का मत इनके विरुद्ध है। उनका कहना है कि विभक्तियाँ स्वतन्त्र शब्दों से उत्पन्न हुई हैं।

हिन्दी में आठ कारकों अथवा विभक्तियों में से कर्ता के कृतवाच्य प्रयोग में एवं सम्बोधन में कोई परसर्ग नहीं लगता। अन्य कारकों में निम्नलिखित परसर्गो का प्रयोग किया जाता है-

विभक्ति	कारक	वाच्य	चिन्ह
प्रथमा	कर्ता	कतृवाच्य	ने
द्वितीया	कर्म	कर्मवाच्य	को
तृतीया	करण		से, द्वारा
चतुर्थी	सम्प्रदान		को, के लिए
पंचमी	अपादान		से (पृथकता)
षष्ठी	सम्बन्ध		का, के, की
सप्तमी	अधिकरण		में, पर
	सम्बोधन		हे, रे, अरे

डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार-''हिन्दी में कर्ता के रूपों में कोई भी कारक चिन्ह प्रयुक्त नहीं होता।''डॉ0 श्यामसुन्दर दास के अनुसार-''हिन्दी में जब सकर्मक क्रिया भूतकाल में होती है तब कर्ता के साथ 'ने' विभक्ति लगती है।'' डॉ0 उदयनाराण तिवारी के अनुसार-''कर्ता के कर्तरि प्रयोग सम्बोधन में तो कोई परसर्ग नहीं लगता, परन्तु कर्मणि के प्रयोग में (ने) परसर्ग प्रयोग होता है।''

कर्ता-वाच्य में क्रिया के करने वाले को कर्ता कहते हैं। इसका चिन्ह ने आदि है। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में कर्ता कारक इस प्रकार है-

क. "प्रजा पाछे विध नै करी करौ धर्म विस्तार।"[290]

ख. "आँसू पोछ जननि दुष राचे। सरुची वचन कहे सब सांचो।"[291]

ग. "मुनि कह मांन मात की बांनी। कह हरि भजन चार फल आंनी।"[292]

घ. "इक दिन सुवन भवन बुलायौ। पिता मनोहर वचन सुनायौ।"[293]

ड़. "गुरू कहा अब तोह पढ़ायौ। तब प्रहलाद कहत मन भाया।"[294]

च. "अरगाइ रह प्रहलाद अस कह सुन असुर रिस किय महा।"[295]

छ. "इनहि ताड़का वध करी मारौ प्रबल सुवाहु।"[296]

कर्मकारक–कर्म तथा सम्प्रदान कारक के लिए 'को' परसर्ग का प्रयोग होता है। साथ ही सम्प्रदान के लिए 'के लिए' का भी प्रयोग होता है। हिन्दी की बोलियों में इसके विभिन्न रूप मिलते है-कन्नौजी में 'को', ब्रज में 'कौ', अवधी में 'क', रेवाड़ी में 'केहे', कुमाऊँनी में 'कणि', गढ़वाली में 'सणि', मारवाणी में 'नै', मेवाड़ी में 'ऐ' आदि। ' भक्तिमनोहर' महाकाव्य में कर्म कारक इस प्रकार है-

क. "होइ कनक कै पाट कौ सूत रंग कर पीत।"[297]

ख. "जन्म मरन कौ फंद छुड़ाई।"[298]

ग. "हरि चरित्र के सुनन कौं हर्ष सहित पृथुराज।"[299]

घ. "जे वक्ता कौं हरि सम लेषी।"[300]

ड़. "भव निध हरि कौ नाम उधारन। नहीं अपर साधन कौ कारन।"[301]

च. "जैसे चून पिसे कौ पीसे। सार नहीं तामै कछु दीसै।।"[302]

छ. "सुष लिंग रसना कौ धरै मन लहै किम विश्राम कौ।
करतब बुरे कौ भलौ जानत कुटुम पालन धांम कौ।।"[303]

करणकारक–करण कारक और सम्प्रदान करकों में 'से' का प्रयोग होता है। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भी निम्न मत प्रचलित हैं-

क. बीम्स के अनुसार उसका सम्बन्ध संस्कृत 'सम' से है। इनकी धारणा है कि अर्थ की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्य है। 'निधानगिरि' कृत भक्तिमनोहर महाकाव्य में करण कारण इस प्रकार हैं-सें, वानसे, सैं, सै, ते आदि।

ख. "दावानल सैं पुन कहत देषौं तुव बल आज।"[304]

ग. "भाइन सै कर नेह अति धर्मधुरंधर।"[305]

घ. "कीर्तन मुष धनु वचन सत ते छूटत तन लीन।"[306]

ड़. "पुरवासी तिन सें कहत निज निज पति किम चींन।"[307]

च. "हरि पूजन दो विध सै भाषा।"[308]

छ. ''दूसर तन सै कर पद सेवा। निस दिन परस मूर्त वसदेवा।''[309]

ज. ''हरि सेवा दो विध सै गाई प्रथम मानसी मन सैं भाई।''[310]

झ. ''सैल गुहा सै रतन प्रकासे।''[311]

सम्प्रदान–सम्प्रदान करण, 'कारण' में को, के लिए प्रयोग होता है। इसकी व्युत्पत्ति भी संदिग्ध है, इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत 'कृते' से मानी जाती है। संस्कृत में 'देवालस्य कृते' जैसे प्रयोग मिलते हैं। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है-कृते=कयाहि=केहि= के। सत्यजीत वर्मा के अनुसार 'के' का सम्बन्ध संस्कृत के पुराने कारक चिन्ह 'केरक' से है। 'निधानगिरि' कृत भक्तिमनोहर महाकाव्य में सम्प्रदान कारक इस प्रकार हैं-

क. ''सत्रु विजय के हित करै सो है तामस साज।''[312]

ख. ''जिम मुनिन इंन्द्री दुष होवै नर्क कौ पठवावहीं।''[313]

ग. ''सकल इन्द्रियन कौ सुष जोई। मिलत सर्व देहन मै सोई।''[314]

घ. ''धन जोषे की करत त्रस्ना हरत तस्कर ताह कौ।
जग जीव कर्म वचाउ मारण राष नहि भ्रम मरै।
जिम क्रम कुसेरा निकरवे कौ सक़ल मग मूदन करै।''[315]

अपादन– अपादान में पृथकता आदि चिन्हों का प्रयोग से के रूप में होता है। 'निधानगिरि' कृत 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में अपादान कारक इस प्रकार हैं-

क. ''माया सै छूटत तव जीवा। मुक्ति होत जब अत श्रम कीवा।''[316]

ख. ''तीन कमंडल सै जल पावन।''[317]

ग. ''तिन सै पावहि भक्ति अभंगा।''[318]

घ. ''ध्रुव प्रथम सुरूची कौं मिले फिर भेंट माता सैं करी।''[319]

ड़. ''फिर लै परवत सै पटक पुन हिमाल मै डार।''[320]

सम्बन्ध– सम्बन्ध कारक के पुल्लिंग एकवचन 'का' बहुवचन में 'से' तथा स्त्रीलिंग एकवचन तथा बहुवचन में 'की' परसर्गो का व्यवहार होता है। हार्नली, कैलाग और बीम्स की धारणा है कि 'क' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'कृत:' से हुई है-कृत = कृत = करितो = करिओ = केरको = करो = कर = के। इसके अतिरिक्त कैलाग इसे प्राकृत रूप 'किद' या 'कद' से भी विकसित मानते हैं। डॉ0 उदयनाराण तिवारी के अनुसार-इसका सम्बन्ध 'कृ' धातु से है और इसका विकास संस्कृत 'कृत' से हुआ है। क+अ=का। साथ ही 'के' 'की' तो 'क' 'के' ही विकारी रूप हैं; क्योंकि वे बहुवचन और स्त्री वाचक है। इसके चिन्ह 'का' 'के' 'की'। रा, रे, री, ना, ने, नी, के, कौ, कौ आदि हैं। 'निधानगिरि' कृत 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में सम्बन्ध कारक इस प्रकार है-

क. ''भगवत कौ स्वामी जिय जानै।''[321]

ख. ''हरि चरित्र के सुनन कौ हर्ष सहित पृथुराज।''[322]

ग. ''प्रभु रजाइ कौ केवल चीना।''[323]

घ. ''ईश्वर कौ स्वामी पहचानै।''[324]

ड़. ''सब धर मन कौ त्याग कै जो मम सरनह आइ।''[325]

अधिकरण-में, पे, पर अधिकरण कारक के चिन्ह के रूप में प्रयुक्त होते है। 'निधानगिरि' कृत भक्तिमनोहर महाकाव्य में अधिकरण कारक इस प्रकार हैं-

क. ''नाग फनन पर फनं धरे तीन कोट अरविन्द।''[326]

ख. ''प्राकृत भक्तन पै कर दाया।''[327]

ग. ''बैकुंठ द्वारे पर रहौ तुम सुथल अचल अनादि सो।''[328]

घ. ''निज रजधानी मै गयौ जाहर पुर मुलतान।''[329]

ड़. ''फरके अधर दृग अरुन कर षल धरन पर पटके तहाँ।''[330]

सम्बोधन कारक

सम्बोधन कारक में हे, रे, अरे, हा आदि कारक चिन्हों का प्रयोग होता है। 'निधानगिरि' कृत भक्तिमनोहर महाकाव्य में सम्बोधन कारक के उदाहरण निम्नवत् हैं-

क. ''रे कुल नास करन मति मंदा। तै नहि मानी सीष कविंदा।।''[331]

ख. ''महाराज हरि भक्ति हित मींन कमठ तन धार।''[332]

ग. ''नर हरि तन प्रभु जिम धरौ सो सुनियै नर राज।''[333]

घ. ''सादर मैं तुम सो कहत सो संवाद मुनीस।''[334]

परसर्ग-प्रचीन भारतीय आर्य-भाषाओं और मध्यकालीन आर्य-भाषाओं में किसी न किसी रूप में विभक्तियाँ वर्तमान थीं, परन्तु हिन्दी तक आते-आते इनका स्थान कुछ शब्दांशों ने ले लिया। भाषावैज्ञानिक ने इन शब्दांशों को परसर्ग नाम दिया है। धीरे-धीरे परसर्ग विकसित होकर संख्या में इतने अधिक हो गये कि हेमचन्द्र को व्याकरण में इनकी लम्बी सूची देनी पड़ी।

संस्कृत विशेषत: अपभ्रंश के व्याकरण से इस बात का स्पष्ट परिचय मिलता है कि प्रारम्भ में इन परसर्गो का प्रयोग शब्द के साथ किया जाता था। इस प्रकार एक ओर ये विभक्ति प्रत्यय अपनी अर्थ-बोधन क्षमता से परे होते जा रहे थे और दूसरी ओर इनके रूप का भी शनै:-शनै: क्षय होता जा रहा था। हिन्दी तक आते-आते कुछेक स्थानों कर्ता

(बहुवचन), करण (एक वचन तथा बहुवचन) सम्बन्ध (बहुवचन) और अधिकरण (एक वचन) को छोड़कर ये प्रत्यय पूर्णतः लुप्त हो गये और कारकों का बोधन पूर्णतः परसर्गो के हाथ में आ गया।

हिन्दी ने आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं की तुलना में कम से कम परसर्गो को अपनाया है। हिन्दी में इन परसर्गो का प्रयोग प्रातिपादित (मूल शब्द) के साथ भी होता है और सविभक्ति (रूपात्मक) शब्दों के साथ भी। हिन्दी में केवल दो ही कारक है-ऋजु और तिर्यक। ऋजु रूपों के अन्तर्गत केवल आकारान्त पुल्लिंग शब्दों के बहुवचन के साथ ही विभक्ति प्रत्यय अवशिष्ट है और वे भी कर्ता और कर्म कारक के द्योतन में। तिर्यक रूपों में केवल आकारान्त एक वचन में ही विभक्ति प्रत्यय के साथ परसर्ग प्रयुक्त होते हैं। शेष प्रातिपदिकों के साथ विभक्ति के स्थान पर परसर्गो से ही काम लिया जाता है।

स्त्रीलिंग शब्दों में ऋजु रूप के एकवचन में सभी शब्द प्रातिपादिक रूप में ही रहते हैं; किन्तु बहुवचन में एकारान्त और ओकारान्त शब्दों को छोड़कर शेष सभी प्रातिपादिक विभक्ति प्रत्यय के साथ प्रयुक्त होते हैं। तिर्यक रूपों के समस्त स्त्रीलिंग शब्द एकवचन में प्रातिपादिक रूप होते हैं और परसर्गो की सहायता से कारक बोध कराते हैं। बहुवचन में समस्त स्त्रीलिंग शब्द विभक्ति प्रत्यय के साथ होते हैं और परसर्गो के माध यम से कारक का बोध कराते हैं। 'निधानगिरि' कृत भक्तिमनोहर महाकाव्य में परसर्ग इस प्रकार हैं-

जामै[335]
मोर मेरा[336]
तिन (वे)[337]
मम (मेरी)[338]
जदिप[339]
कवनहु[340]
तुव (तुम्हारे)[341]
ताह[342]
ताकी[343]
अपुन से[344]
इन (इनके)[345]
को[346]
तुव तेरी[347]
वरियाई[348]
निवते[349]
झपटे[350]
ठरकगयो[351]
रहहु[352]
ठकरगयो[353]
दीनौ[354]
करहिं[355]
पहिरावै[356]
धुक-धुक[357]
हनी[358]
थापिया359
करीजै[360]
लसतीहं[361]
उत-इत[362]
पल ग्रहन[363]
चात्रक[364]
चिरई[365]
झंपट[366]
तुस[367]
तरुनी[368]
नवेली[369]
हेली[370]
गलिन-गविन[371]
लेउ-लेउ[372]

क्रियाएँ-क्रिया के समस्त रूपान्तरों में पाये जाने वाले मूल अंश का नाम 'धातु' है। जैसे चलता है, चला, चल रहा है। चलेगा आदि क्रिया-रूपों में 'चल' अंश समान रूप से विद्यमान है। यही 'चल' इन क्रियाओं की धातु है। हिन्दी में क्रिया के 'ना' युक्त सामान्य रूपों-खाना, लिखना, देखना, पढ़ना, से न हटा देने पर धातु स्पष्ट हो जाती है।

संस्कृत की धातुएँ दस गुणों में विभाजित है। संस्कृत में प्रत्येक धातु के छः प्रयोगों, दस लिगों, (तीन कालों), तीन पुरुषों और तीन वचनों को लेकर 540 रूप बनते हैं। इसके अतिरिक्त धातुओं से अनेक प्रकार के कृदन्त रूप भी बनते थे।

धातु–जिस मूल शब्द से क्रिया बनती है, उसे धातु कहते हैं। उपयुक्त क्रिया में क्रमशः दौड़, जा, खेल धातु आदि। धातु के अन्त में 'न' जोड़ने से जो शब्द बनता है, उसे क्रिया का साधारण रूप कहते हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से धातु दो प्रकार की होती है-मूल धातु तथा योगिक धातु।

मूल धातु– मूल धातु स्वतन्त्र होती है। यह किसी दूसरे शब्द पी निर्भर नहीं होती।

योगिक धातु-योगिक धातु स्वतन्त्र नहीं होती। यह किसी प्रत्यय के योग से बनती है।

हिन्दी की क्रियाओं के स्थूल रूप से दो भेद होते हैं-अकर्मक और सकर्मक। प्रायः सभी धातुएँ-चल, उठ आदि अनेक साधित धातुएँ तथा रूठना आदि धातुएँ अकर्मक है। सिद्ध अकर्मक धातुओं के सकर्मक बनाने के लिए, 'णिच्' प्रत्यय जोड़ना पड़ता है। क्रिया रूपों में भिन्नता के सात आधार हैं-(1) लिंग (2) वचन (3) पुरुष (4) प्रकार (5) वाच्य (6) काल (7) कृदन्त।

1. लिंग की दृष्टि से क्रिया रूपों में अन्तर होता है। उदाहरणर स्वरूप 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में लिंग क्रिया इस प्रकार है-

क. "तव जानकी गहै पद धाई। गिरजा सिय कौ हरस उठाई।।
बार-बार चरनन सिर धारी। उमा रजाइस पाइ पधारी।।"[371]

ख. "इनै सचित विध सुन्दर ताई। षोजी सकल भुवन नहिं पाई।।
उत्तर देत सषी इक आनी। कीन्हे भली विदेह सयानी।।"[372]

ग. "बोली पुन सुन जनक कुमारी। मन भावत वर मिलहिं दुलारी।।
रघुनंदन हर चंदन पाई। तुम बेली सम फैलहु जाई।।"[373]

घ. "पूरन होवै कर जिन हृदय विलाप।
कही उमा साँची सकल तब कहहौगी आप।।"[374]

ड़. "सिविका बैठ बैठ सन रानी। चित्रकूट कौ कीन पयांनी।।"[375]

च. "रघुवर सुक सारिका पढ़ाए। रहे पींजरन ते पछताए।।"[376]

2. वचन की दृष्टि से क्रिया

'निधानगिरि'. कृत .'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में वचन की दृष्टि से क्रिया का पन्रयोग इस प्रकार हुआ है-

क. "चले नगर दुहु भाइ।"[377]

बहुवचन के लिए चला के स्थान पर चले क्रिया का प्रयोग हुआ है।

ख. "बूझ जनक अवलोक लुनाई। ये बालक केहिके मुनिराई।"[378]

यहाँ बूझ शब्द एकवचन है।

आदरार्थक एकवचन के लिए बहुवचन की क्रिया का प्रयोग हुआ है उदाहरण स्वरूप-

क. "बोले गुरू भुसूर सचिव चले समाज समेत।"[379]

प्रस्तुत पद में गुरू एकवचन है, किन्तु उसके साथ क्रिया बोले बहुवचन की है जो विशेष आदर सूचक है अन्यथा सामान्य स्थिति में एकवचन के साथ क्रिया का एकवचन का रूप तथा बहुवचन के साथ बहुवचन की क्रियाओं का प्रयोग किया गया है।

यहाँ भुसूर और सचिव समाज के साथ है। अत: बहुवचन क्रिया का प्रयोग चले उपयुक्त है।

ख. "राम लषन तेहिं समय सुहाए। फूल वाटिका से चल आए।।"[380]

ग. "धनुष जग्य अब देषन आए। सादर मुनि के संग सिधाए।।"[381]

राम लक्षण में बहुवचन है इसलिए क्रियाओं के प्रयोग में आया के स्थान में आए और सिधाया के स्थान पर सिधाए का प्रयोग कवि द्वारा किया गया है।

बहुवचन बनाने के लिए कवि ने जन, पुंज, दल का प्रयोग किया है-

अ. गुरजन पुरजन सुरजन[382] (जन जोड़कर)

ब. सिसु पुंज पलोटे[383]

स. सो बरछन के पाछै डोलै[384]

द. वृजवासिन सादर कियौ पूरन विध सै सोइ।[385]

पुरुष की दृष्टि से क्रिया का प्रयोग

उत्तम पुरुष- बात कहने वाले को उत्तम पुरुष कहते हैं। 'निधानगिरि' कृत भक्तिमनोहर महाकाव्य में उत्तम पुरुष इस प्रकार है-

क.	मम अपराध विलोकव नाई। करहि छिमापन राम गुसांई।।[386]

ख.	मम माया कौं तरत ते नाहिन कछु संदेह।[387]

ग.	दोऊ लोकन रक्षक मेरौ। आप सिवाइ न दूसर हेरौ।।[388]

घ.	मोर भक्ति कर मन लगा नीक पंथ सुषदाइ।[389]

ड़.	हम सै हिलमिल कर जनु त्रनकी। स्याम करी घर की नहिं वन की।।[390]

च.	मो सम अभागिन नहीं जग मै ता उदर सै तुम भऐ।[391]

कवि ने उत्तम पुरुष में मम, मोर, निज, अपनै, मैं, हम, निज, मो, मैं आदि का प्रयोग किया है।

मध्यम पुरुष-जिससे बात कही जाए वह मध्यम पुरुष है। 'निधानगिरि' के काव्य में मध्यम पुरुष के उदाहरण इस प्रकार हैं-

क.	अस विध कीजे नित सुजन सब लाइक हरि देव।[392]

ख.	ताकौ सब बरनन करत भिन्न भिन्न बुध भौन।[393]

ग.	तौ वह मुक्ति मृत्य सम जानौ।[394]

घ.	ताके चतुर प्रकास है प्रथमहिं भक्ति प्रकास।[395]

ड़.	ता कारन यह गृंथ को भक्ति मनोहर नाम।[396]

च.	सो प्रसंग वरनन करहु सुमर उमा त्रिपुरारि।[397]

मध्यम पुरुष में कवि 'निधनगिरि' ने तुव, तुम, तोर, ताकौ आदि का प्रयोग किया है।

अन्य पुरुष-जिसके सम्बन्ध में बात कही गयी हो, वह अन्य पुरुष है। 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में अन्य पुरुष इस प्रकार हैं-

क.	तास नाम जत कह मुनीसा।[398]

ख.	सोई रात विंरच की सोवत प्रलय प्रवांन।[399]

ग.	जिहि विध हरि अवतार धर वरनत सहित हुलास।[400]

घ.	याहीं प्रेम दसा कौ ताता। कहत भागवत गीता ग्याता।।[401]

ड़.	तास दमन को प्रभु प्रगट मींन सरुष प्रचंड।[402]

च.	तासै विपुल बल मोर अनुचर भूम तल पठवावहू।[403]

छ.	यह वाराह चरित्र जे वाचै सुनै सुजांन।[404]

ज.	आप रसातल को गऐ जानहि का प्रभु भव।[405]

उत्तम पुरुष में कवि 'निधानगिरि' ने ताह, ताकी, तिनके, को, तिहि, काऊ, सो, सोह, ते, जे, तास, अपर, आप आदि का प्रयोग किया है।

प्रकार– हिन्दी में तीन प्रकार है-(1) निर्देशक (2) इच्छार्थक (3) आज्ञार्थक।

निर्देशक–'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में निर्देशात्मक क्रिया के उदाहरण इस प्रकार है-

"मम दासन दुःष दीजै नाहीं। असर जाहिं मानव मन माहीं।।
कहत मनोज भली यह गााथा। अब आयुष धरिहौ निज माथा।।
भक्तन की करिहौ सेवकाई। अस कह मदन रहा बर पाई।।"[406]

इच्छार्थक– 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में इच्छार्थक क्रियाएँ इस प्रकार है-

"अधिक विनय कींनी नृपति तब प्रभु ग्यान प्रकास।
मत्स पुरान वषांन अति सांष विविध इतहास।।
ब्रह्मा निसा कौ कल्पगत अस विध नृप हितकीन।[407]

आज्ञार्थक–'निधानगिरि' कृत 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में आज्ञार्थक क्रियाएँ इस प्रकार है-

धरऊ	करऊ[408]	करहु[409]	तजिए[410]	निहारौ
विचारौ[411]	सुना	धर[412]	लैआवहु[413]	छिवावहु[414]
सुनह[415]	जगावहु[416]	पहिरावै[417]		

वाच्य–वाच्य किसी क्रिया के उस रूपान्तर को कहते है जिससे यह जाना जाए कि वाक्य में कर्ता के विषय में विधान किया गया है अथवा कर्म के विषय में अथवा भाव के विषय में। वाच्य के भेद तीन प्रकार के होते है-(1) कर्त्तवाच्य (2) कर्म वाच्य (3) भाव वाच्य।

कर्त्तवाच्य– क्रिया के उस रूपान्तर को कहते हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्ता है अर्थात् क्रिया में कर्ता की प्रधानता है-

क. सषिन के संगा।[418]

ख. मथन लगे सागर बहुर निकसे रतन नवीन।[419]

ग. लै कर गदा हिरन चष धावा। अति दुर्वचन कहत बल आवा।[420]

घ. तुमै कहाँ नारद मिले गऐ तीरथन नाहिं।[421]

कर्मवाच्य– क्रिया के उस रूपान्तर को कहते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि वाक्य का उद्देश्य क्रिया का कर्म है; अर्थात् क्रिया में कर्म की प्रधानता है-

क. तहाँ उमा पूजन को आई।राम लषन की निरष निकाई।।[422]

ख. निशा विगत मञ्जन कर लीन्हा। गुरुपद पद्म दण्डवत कीन्हा।
पाइ रजाई उठहु दुहु भाई। चले फूल बीनन फुलवाई।[423]

ग. मंथन देव दानव लगे अमी हेत उर धार।[424]

घ. सुन तस वचन गदा तिहि मारी। प्रभु सो झपट भूम मै डारी।[425]

भाववाच्य– क्रिया के रूपान्तर को कहते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि क्रियाओं में न कर्ता की प्रधानता होती है और न कर्म की, केवल भाव प्रधान रहता है। 'निधनगिरि' के काव्य में भाववाच्य के उदाहरण इस प्रकार हैं–

क. समद त्याग मरजाद कौ चहु दिस धेरा दींन।
जलामई हो गई तब सुमरन प्रभु नृप कींन।।[426]

ख. देवासुर हित कमठ तन लछ जोजन कौ कींन।
मंदिर लगे आनंद हित विषम हलाहल दीन।।[427]

ग. स्याम सुभग तन मेघ लजाई। आनंद वदन मंद मुसक्याई।।
क्रीट मुकुट मनि ज़टित सुसिर पर। सोम प्रकास मोह तम दिनकर।।
सुभग कपोलन प्रभा बसाई। कांम कपोत न पटतर पाई।।
उर श्री वत्स कंठ बनमाला। नाग सुंड श्रुत भुजा विसाला।।[428]

काल–काल क्रिया के उस रूपान्तर को कहते हैं; जिससे उसके कार्य-व्यापार का समय और उसकी पूर्ण अथवा अपूर्ण अवस्था का बोध हो। काल के तीन भेद हैं वर्तमान काल, भूतकाल, भविष्यकाल।

वर्तमान काल–क्रिया अथवा क्रियाओं की निरंतरता को वर्तमान काल कहते हैं। हिन्दी में वर्तमान कालिक क्रिया के साथ 'है' का प्रयोग होता है।'निधानगिरि' कृत भक्तिमनोहर महाकाव्य में वर्तमान कालिक क्रियाएँ इस प्रकार हैं–

करहि[429]   दीनां[430]   झपेट[431]   बाड़े[432]   झपट[433]
चले[434]   उठे[435]   निरष[436]   खेलै[437]   करै[438]
बजावही[439]   चुपाइ[440]   पुजवहीं[441]   रहिंहै[442]   वदित[443]
कीने[444]   सकेली[445]   भरत[446]   गही[447]   कहौ[448]
झिरत[449]   सींचत[450]   लगावहु[451]   षैंच[452]   बनाऊँ[453]
बनवाई[454]   बिछवाई[455]   मिलत[456]   रहहिं[457]   उतरे4[58]
होई[459]   पकरिने[460]   मारे[461]   कहदीं[462]   सुन[463]
भींजत[464]   धुनत   पछताइ[465]   फरकत[466]   बजावै[467]
धरहीं 468   किये469   उड़त470   फहरान[471]   देखत[472]

आए[473]	बोलत[474]	छोट[475]	बड़ाई[476]	उड़त[477]
डारत[478]	पैरत[479]	गही[480]	बिलखानी[481]	गर्जत[482]
रिसान है[483]	पसारी[484]	भंगा[485]		

भूतकालिक क्रिया - जिससे क्रिया के कार्य की समाप्ति का बोध होता है उसे भूतकाल कहते हैं। इसके छः भेद होते हैं। सामान्य भूत, आसन्न भूत, पूर्ण भूत, अपूर्ण भूत, संदिग्ध भूत, हेतुहेतुमद भूत। 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में भूतकालिक क्रियाएँ इस प्रकार हैं-

रहहु[486]	हनी[487]	ढरक गयो[488]	कीन[489]	भलइ[490]
बीत गयौ[491]	गइब[492]	भयौ[493]	जराई[494]	लगाई[495]
सूखगए[496]	गयौ[497]	बई[498]	गईब	गई
गऐ	गया	आवा	आव	आ[499]

के भूतकालिक रूप इसी प्रकार भू के गयो के स्थान पर गयौ, भइल, गए जैसे प्रयोग मिलते हैं।

भविष्यकालिक क्रियाएँ- भविष्य में होने वाली क्रिया को भविष्य काल कहते हैं। 'निधानगिरि' कृत भविष्य काल इस प्रकार है-

करीजै[500]	छड़ाइहैं[501]	हरिहैं[502]	करिहौं[503]	मरिहौं[504]
तरिहौं[506]	होय[507]	मरिहौं[508]	मारहि[509]	जैहै
करैहैं	करिहैं	षड़िहौं	मडिह	जावही
करावहीं	मारहीं[510]	धारही[511]	गुहाऊँ	गाऊँ
होइ[512]	सुनिहैं[513]	हरौगी[514]	करौगी[515]	लगाँऊगी

ध्वनि परिवर्तन- 'निधानगिरि' के काव्य में आंचलिकता, बुन्देली प्रभाव स्थानीय भाषा बोली आदि प्रभावों के कारण जो परिवर्तन हुए हैं उनका विशलेषण निम्नलिखित परिवर्तनों के आधार पर दिया जा सकता है-

परिवर्तित ←	मूल	परिवर्तित ←	मूल
प्रवाना[516]	प्रमाण	पोरख[540]	पौरुष
जाहर[517]	जाहिर	चिनार[541]	चिन्हार
जदिप[518]	यद्यपि	विरतांत[542]	वृतांत
तद्दिप[519]	तद्यपि	श्रप[543]	रूप
सुफल[520]	सफल	चीते[544]	चेत
कवन[521]	कौन	उथान[545]	ज्ञान
ग्यात[522]	ज्ञात	उतपत[546]	उत्पत्ति
समद[523]	समुद्र	मरजाद[547]	मर्यादा
मात्रे[524]	माग	जाहर[548]	जाहिर
बमूर[525]	बबूर	उत्तरायन[549]	उत्तरायण

रितु[526]	ऋतु	हिमाल[550]	हिमालय
रिषी[527]	ऋषि	प्रवान551	प्रमाण
विध्वंत[528]	विध्वंस	परवान[552]	प्रमाण
निसषंक[529]	नपुसंक	व्राता[553]	वार्ता
जुंवन[530]	चुंबन	गमार[554]	गवॉर
अस्तुति[531]	स्तुति	आइस[555]	आयस
साद[532]	साधु	कंमडिल[556]	कमंडल
सवर्ग[533]	स्वर्ग	अखंडिल[557]	अखंडल
नाइक[534]	नायक	चिन्न[558]	चिन्ह
उतुंग[535]	उतंग	मूंक[559]	मूख
पिछान[536]	पहचान	मंडिल[560]	मंदिर
एकठा[537]	एकट्ठा	पोरूष[561]	पौरुष
ग्रेह[538]	गृह	श्रूप[562]	रूप
चात्रक[539]	चातक	त्रलोक[563]	त्रिलोक
अतीव[566]	अतएव	तुरु[564]	तरू
सामीपा[565]	समीप	साइक[567]	शायक
चम्बुक[569]	चुम्बक	निश्चर[568]	निशाचर[569(क)]

कवि के काव्य में जिन ध्वनियों का परिवर्तन हुआ है उनमें 'म' का 'व' या का 'ज' स का सु, कौ का, कव, ज्ञ, का ग्य मु का म, मू का बू, ऋ का रि, स का त, रु का श्र, चे, ची, वृ का विर, प्र का पर, चु का जु आदि प्रमुख हैं।

हिमालय के स्थान पर हिमाल का प्रयोग और य का लोप, स्तुति का अस्तुति अ का आगमन, जैसे प्रयोग भी 'निधानगिरि' में मिलते हैं।

वार्ता का व्राता जैसा परिवर्तन उल्लेखनीय है। कवि ने सरलीकरण जनबोध गम्यता तथा देशी भाषा को दृष्टि में रखते हुए जो शब्द प्रयोग किये हैं, उनमें ध्वनि परिवर्तन के जो रूप परिलक्षित होते हैं, वे हिन्दी के विकास तथा क्षेत्रीय भाषाओं के प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

करइ जैसे प्रयोग में 'ह' का लोप। करहि के स्थान पर करइ का प्रयोग मिलता है। 'ए' और 'ऐ' दोनों का प्रयोग मिलता है। करो और करौ दोनों प्रयोग कवि ने किये हैं, अर्धव्यंजन ऋ को रि किया गया है-ऋषि के स्थान पर रिषि जैसे इसी ध्वनि परिवर्तन के कारण हैं।

कवि ने श को स के रूप में प्रयोग किया है। नारायण को नारायन के रूप में प्रयुक्त किया है, देशी भाषा (जनभाषा) के कारण 'ण' का 'न' परिवर्तन प्रतीत होता है। नयन का नैन और नैन का नयन जैसे कवि के काव्य मिलते हैं। वयन का वैन ही मिलता है। इस प्रकार के परिवर्तन में 'य' का इ हुआ है और 'अ' और इ मिलकर

'ए' हो गया है। गया के अर्थ में 'गईब' जैसे प्रयोग 'भया' के अर्थ भईव जैसे प्रयोग भी कवि ने किये हैं। इसमें 'य' का 'ईय' परिवर्तन भाषा विज्ञान की दृष्टि से नवीन है। 'या' का 'ई' में परिवर्तन होकर व का अन्त्य आगमन हुआ प्रतीत होता है।

'निधानगिरि' की भाषा में स्वर और व्यंजनो का लोप और आगम भाषा के विकास का परिचायक है। भाषा के विकास की दृष्टि से निधानगिरि की काव्यभाषा वैज्ञानिक महत्व की है। कवि ने जनता के बीच से शब्द लिये हैं और जनसाधारण को ग्राहय बनाने के लिए उनकी जनभाषा को कविता में प्रतिष्ठा दी है। झाँसी के गरौठा तहसील के ऐरच और मोठ की बोली के शब्दों ने कवि की भाषा को नवीनता, ताजगी और स्भावाविकता प्रदान की है। महाप्राण ध्वनियों के स्थान पर भाषाओं को मधुरता प्रदान करने के लिए भी ध्वनियों के परिर्वन किये गये हैं।

भाषागत उपलब्धि

'निधानगिरि' ने भाषा के माध्यम से काव्य की जो सृष्टि की है वह प्रभावोत्पादक है कवि ने प्रत्यक्ष अभिव्यंजनाओं के लिए भाषा का चयन किया है; काव्य को लोकप्रिय एवं सर्वसुलभ बनाने में कवि ने सर्वाधिक प्रयत्न भाषा के गढ़ने में ही किया है अभिव्यक्ति के लिए सामान्य व्यक्तियों को ध्यान में रखकर इस प्रकार भावों को व्यंजित किया है कि वे भाव समूह बन जाते हैं। भावों की रसात्मक अभिव्यक्ति के लिए कवि ने भाषा को अपने ढ़गं से गढ़ा है, न भाषा में व्यर्थ का शब्दाडम्बर है और न व्यर्थ का घटाटोप। सर्वत्र एक जीवन का उल्लास कर्म का सौन्दर्य बच्चों की नई किलक नई गूँज और नए सौन्दर्य बोध के संवेदन व्यक्त होते हैं। कवि भाषा के माध्यम से ही चित्र गढ़ता है कवि का चित्र विधान वाल्मीक, तुलसी और सूर की भाँति रसात्मक है चलती और प्रवाहपूर्ण भाषा ने चित्र विधायनी शक्ति के द्वारा जो बिम्ब रचे हैं उनमें न चित्रकाव्य का चमत्कार है और न ही गोमूत्र और कमल का प्रदर्श है। भाषा में केशव भाँति साहित्य का पाडित्य का प्रदर्शन भी नहीं है। 'निधानगिरि' की भाषा ह्दय को स्पर्श करती हुई, मनोभावों को परिस्कार प्रदान करती है तथा उच्च रसात्मक त्याग तप की सौन्दर्य भूमि में ले चलने में समर्थ सिद्ध होती है।

'निधानगिरि' की भाषागत उपलब्धि ने एक दूसरी प्रमुख विशेषता लोकभाषाओं की शब्दावली को अभिव्यक्ति के लिए चुनना है जिसमें बुन्देली प्रयोगों को महाकाव्य के क्षेत्र में एक नवीन शुभारम्भ दिखाई पड़ता है। खड़ी बोली में 'प्रिय प्रवास' को जो श्रेय दिया जाता है वैसा ही श्रेय बुन्देली में प्रथम महाकाव्य 'भक्तिमनोहर' को दिया जा सकता है और यह श्रेय निधानगिरि को सहज ही प्राप्त हो जाता है उनके काव्य में जहाँ एक ओर ब्रज अवधी के मिले जुले प्रयोग हैं, वहीं कवि ने इन प्रयोगों को बुन्देली के मूल संस्कारों तथा उसकी आंचलिक शब्द शक्ति से संयुक्त करके इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह केवल क्षेत्रीय बोली के रूप में नहीं उभरती ब्लकि बुन्देली को सांस्कृतिक संस्कार देकर कवि ने उसे महाकाव्य का गौरव प्रदान किया है।

महाकवि 'निधानगिरि' ने भाषा के सम्बन्ध में जो अन्त:साक्ष्य निर्देश दिये हैं वे इस प्रकार है-

1. गही न जात कही जो बानी'' अर्थात् यह वाणी तुलसी की गही न जाय अद्भुत वाणी की भाँति अगम मनोव्यापार वाली तथा गूढार्थ भावों की अभिव्यंजक है।

2. भाषा भाषहु मानुषी छन्द प्रबन्ध मिलाय।
प्रगट अर्थ आषर करहिं सबकौ सुलभ सुहाय।।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि कवि भाष और मानुषी भाषा में छन्द प्रबन्ध की रचना कर रहा है। भाषा का अर्थ देववाणी संस्कृत से भिन्न देशी भाषा और बोली से है जिसके लिए विद्यापति ने 'देसिल बयना सब जग मिट्ठल' कहकर देशी भाषाओं का मधुर शक्तियों की प्रशंसा की थी। 'निधानगिरि' ने भाषा कहकर बुन्देली ब्रज आदि के माधुर्य की ओर संकेत किया है, साथ ही मानुषी कहकर उसे देवी की आर्य भाषा से भिन्न बताया है; मानुषी भाषा का अर्थ है जन सामान्य की बोलचाल की भाषा तथा मानवी संवेदनाओं की भाषा से है 'निधानगिरि' ने भाषा में छन्द प्रबन्ध के मिलाने का भी संकेत किया है, जिससे प्रतीत होता है कवि ने भाषा को छन्दोमय बनाया है तथा इसमें श्रुत ध्वनियों का विस्तार किया है श्रुत ध्वनियों के लिए जहाँ एक ओर कवि ने अनुप्रासादि कोमलावृत्ति वाली शब्द सम्पदा को संवर्धित किया है वहीं शब्दों की ध्वन्यात्मक शब्द का अपूर्व लावण्य भी संमिश्रित हो उठा है। कवि 'निधानगिरि' के शब्दों में ''मंगल गावत सुन्दरी कोविद श्रुत धनि कीन'' कहकर कवि कोविदों द्वारा श्रुत ध्वनि वाली संरचना पर बल भी दिया है इसके अतिरिक्त कवि ने प्रगट अर्थ आखर करहिं से स्पष्ट किया है कि काव्य में प्रयुक्त अक्षर अर्थ को प्रकट करने वाले हों अर्थात् उनकी भाषा अर्थ अभिव्यंज्जक है। भाषा में एक प्रकार से अर्थ गौरव पर कवि जोर देता है और इस प्रकार संस्कृत के महान महाकवि भारवि का अर्थ गौरव एक बार पुन: 'निधानगिरि' के काव्य लालित्य एवं भाषा के अर्थवान प्रयोगों से मूर्तित हो उठती है।

'निधानगिरि' ने भाषा के सम्बन्ध में एक और महत्वपूर्ण संकेत-''सबकों सुलभ सुहाय'' कहकर ऐसी भाषा के प्रयोग के सम्बन्ध में बल दिया है जो सर्व सुलभ हो और सर्वप्रिय हो भाषा को सर्वसुलभ बनाना तथा सर्वप्रिय बनाना अकेले किसी भाषा पण्डित के बस का नहीं है जब तक उसमें भाषाविद्, कलाविद् एवं मनोविज्ञानविद् का संयोग न हो जाए। भाषा की सर्वसुलभता तभी सम्भव है जब कवि मानो मनोभावों का पारखी हो उसे लोकरीति एवं लोकसंस्कृतियों की गन्ध की पहचान हो जब उसे सहज और स्वाभाविक जीवन की मार्मिकता से उसकी घनिष्टता हो सामान्य नागरिकों के भाव बोध का ज्ञान हो तथा अभिव्यंजना की विविध शक्तियों से कवि का परिचय हो नि: सन्देह 'निधानगिरि में ये सभी बातें एक साथ पायी जाती है। वे ग्राम्य जीवन की संवेदनाओं को, मानव मन के सत्यों को, प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य को, जीवन और जगत के, पारमार्थिक सत्य को इस प्रकार अपनी क्षेत्रीय भाषा के शव्द बिम्बों से व्यक्त करते है कि वे चित्र सरलता से पाठक के मनोजगत को प्रभावित करने लगते है। भाषा क्षेत्र में

जो कार्य गद्य में प्रेमचन्द्र ने किया, पद्य में जायसी, तुलसी और सूर ने किया, भाषाओं के समन्वय में जो प्रयोग महाकवि चन्द ने भाषा के द्वारा किया था उसकी अगली कड़ी के रूप में 'निधानगिरि' ने भाषा को सर्वग्राही, सर्वसुलभ बनाने के लिए भाषा चुना। कवि 'निधानगिरि' के शब्दों में-

''लीला परम सुहावनी, जन निधानगिरि भास
कहत सुनत मन भावनी, चरित ध्यान उर राष।''[569(ख)]

अर्थात् कवि चरित्र को ध्यान में रखकर मनभावानी कथा की रचना कर रहा है जो कहने में तथा सुनने में अत्यन्त मनभावनी है तथा लीला की दृष्टि से परम सुहावनी भी है ऐसी अभिव्यक्ति के लिए 'निधानगिरि' क्यों न 'जन निधानगिरि' भाषा वाले सूत्र का आश्रय लेते।

मुहावरे एवं लोक्तेक्तियाँ

भाषा जहाँ एक ओर प्रसाद गुण के कारण सरल एवं बोधगम्य है वहीं लाक्षणिक प्रयोगों से मुहावरे और लोकोक्तियों से संयुक्त होकर लोक के कण्ठ में प्रवेश करने लगती है।

बेकन की प्रसिद्ध उक्ति से स्पष्ध होता है कि किसी राष्ट्र की प्रतिभा, विदग्धाता तथा उसकी अन्तरात्मा का दर्शन उसकी कहावतों के द्वारा ही होता है। 'निधानगिरि' के काव्य में जिन मुहावरों का प्रयोग किया गया है। वे एक ओर बुन्देली संस्कृति को अभिव्यक्ति देते है, तो दूसरी ओर क्षेत्रीय सीमा से परे भारतीय संस्कृति एवं सार्वभौम सत्यों की व्यंजना में सहायक सिद्ध होते हैं। कवि के काव्य में प्रत्युक्त मुहावरों और लोकोक्तियों के मूल रूपों पर विचार करने पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते है-

क. निधानगिरि की कहावतें और लोकोक्तियाँ बुन्देली संस्कृति की परिचायिका हैं।
ख. अनेक कहावतें और मुहावरें भारतीय सांस्कृतिक परिवेश की अभिव्यक्ति करती है।
ग. अनेक मुहावरों और लोकोक्तियाँ देशकाल की परिधि से मुक्त सार्वभौमिक हैं।

मुहावरे एवं लोक्तोक्तियों के कतिपय उद्धरण इस प्रकार है-

1. '**झूठेगाल बजावहीं** अवहीं रहै चुपाइ।'[570] (झूठे गाल बजाना)
   व्यर्थ प्रशंसा
2. '**जनमै साग षाए** महतारी।'[571] (साग खाकर जन्म देना)
   शक्तिहीन होना
3. 'मारग सषी देव **त्रन तोरी**।'[572] (लज्जित होना)
4. '**त्रनतोरन** वृज वनता नागर।'[573] (त्रन तोरना)
5. 'कैसे **केर बेर को संगा**।'[574] (केर वेर का संग होना)
   विपरीत प्रवृत्तियों का होना

6. 'होहु केकई मति जुमैं **स्याही मुख** जग छोर।'[575] (कलंकित करना)
मुख में स्याही पोतना
7. **'होनहार नहि मिटै** विधाता।'[576] (होनहार नही मिटती)
विधान अमिट
8. **'धीरज धरहु** कुअवसर जानी।'[577] (धीरज धरना)
9. 'मात **बई विष वेल**।'[578] (विषनेल बोना)
10. '**कर मींजत सिर कौ धुनत** गिद्धराज पछताह।'[579] (हाथ मलना, सिर धुनना)
प्रायश्चित करना
11. '**साँपन सौ षेलै** बिन कीले।'[580] (साँपों से खेलना, खतरा मोल लेना)
12. 'मंदोदरि अस विध वदित **मीज हाथ धुन माथ**।'[581] (हाथ मींजना, माथा धुनना)
13. 'सूर न बोलत है **बड़बानी**।'[582] (बड़बोला न होना, अंहकार विहीन)
14. '**गरजत सो बरसत है नाही**।'[583] (जो गरजते है बरसते नहीं)
15. '**नाच नचाये** विविध विध अधिक निरादर कीना।'[584] (नाच नचाना)
16 'स्याम करी **घर की नहिं वन की**।'[585] (न घर का न वन का)
17. '**आव काल सिर** मम कर तोरा।'[586] (सिर पर काल मंडराना)
18. 'कठिन काल गति समझतु तात। **होनहार नहिं मिटै** विधाता।'[587]
(होनहार नहीं मिटती)
19 '**कहुँ चुटकिन सै उड़त सुमेरा**।'[588] (चुटकी बजाने से सुमेर नहीं उड़ता)
20. 'कंचन की चिरई उड़त **की गहबे लीधोइ**।'[589] (असंभव कार्य)

21. 'मंदोदरि अस विध वदित **मीज हाथ धुन माथ**।'[590] (हाथ मींजना, माथा धुनना)
22. 'नारिवृंद संन **पीटहि छाती**।'[591] (छाती पीटना)
23. '**जुड़ाव छुड़ाती**।'[592] (छाती पीटना)
24. 'कर कुठार भगवंत कौ **वेट पुत्र भौ मूर**।'[593] (कुल्हाड़ी का बेट होना)
25. 'प्रभु पद मिलै न फेर बैठ सिर **धुन पछतावत**।'[594] (सिर धुनना, पछताना)

'निधानगिरि' के काव्य में मुहावरों एवं लोकोक्तियों में ग्राम्य संस्कृति, बुन्देली संस्कृति का प्रभाव परिलक्षित होता है। परम्परित मुहावरों के अतिरिक्त कवि ने कुछ नए मुहावरों को भी गढ़ा है। मुहावारों ने भाषा को लाक्षणिक शक्ति प्रदान की है।

वस्तुत: 'निधानगिरि' की भाषा भावाभिव्यक्ति की सफल भाषा है; उसमें बुन्देली मिश्रित मानुषी भाषा के सफल प्रयोग हैं। कवि ने बुन्देली में महाकाव्य का प्रणयन करके एक बड़े खतरे को भी उठाया है। वह बुन्देली जो बृज और अवधी से मिलकर सीना तान कर खड़ी होती है, जिसकी अपनी अपार शब्द सम्पदा है। न ही वह क्षेत्रीयता की सीमाओं में जकड़ी है और न ही साहित्यिक धाराओं से कटकर पृथकता का बोध कराती है। बृज, अवधी और बुन्देली की त्रिवेणी का अवगाहन करना किसके लिए सुखद न होगा और 'निधानगिरि' की भाषा की ऊर्जा जीवंतता और श्रुत ध्वनियों से भाषाविद् निश्चय

ही गर्वित होंगे। डॉ0 ललित के शब्दों में 'निधानगिरि' की भाषा जंगली हवाओं के साथ दौड़ती है, समुद्र की अतल गहराइयों को नाँपती है, उड़ती हुई चिड़ियों के बिम्बों को शब्द चित्रों से भावविमुग्ध करती है, हिरणों की उछल कूद को भाषा चित्रित करती है, पानी की लहरों को भाषा पकड़ती है, सूर्योदय की भाँति नए बिम्बों को उदित करती है, सांध्य शून्यता की भाँति महाशून्य को अपने दर्शन में समेटती है। भाषा के रंगों में होली के रंग मूर्तित होते हैं। झूलने में झूलने वाली हवाएँ भाषा को ऋतु सौन्दर्य से गतिमान करती है। पूरे दृश्य को समाहित करने की महाशक्ति बुन्देली को 'निधानगिरि' ने ही प्रदान की है। कवि डॉ. ललित नें उपने उदगारों को काव्यात्मक रूप प्रदान करते हुए ठीक ही कहा है-

> ''रम्या रामायणी कथा कवि गिरनिधान नें गाई,
> बृज बुन्देली में उतरी फिर तुलसी की चौपाई।
> अमर सूर का भ्रमर गीत गोविन्दम की पद रचना,
> 'भक्ति मनोहर' नें कविता की धर्म ध्वजा फहराई।''[595]

कवि 'निधान गिरि' ने भाषा के अनेकघा विकासो को पहचानकर उनकी शक्तियों के अनुसार प्रयुक्त किया है। उदाहरण के लिए 'वत्स' शब्द को ही ले सकते हैं, इसके कई विकसित रूप वच्छ, बछड़ा, बछरा, बछरन, निधानगिरि के काव्य में मिलते हैं।

इसी प्रकार शुद्ध का सूध, सीधा, सुथरा आदि प्रयोग में विकास के परिचायक हैं। कवि ने कुछ नए शब्द भी गढ़े हैं, जो कवि की नवनिर्मित कहे जा सकते हैं। जैसे- गाय के अर्थ में 'पयदायिनी' शब्द की रचना की निजी रचना है।

(क) बडहै सुरमी बच्छ घनेरे।[596]
(ख) सो बछरन के पाछै डोलै।[597]

'निधानगिरि' ने भाषा को विकसित किया है। किसी कवि की भाषा की पहचान उसके क्रियापदों, सर्वनाम, प्रत्यय, विभक्तियों और अव्यय से होता है।'निधानगिरि' की भाषा में जो रस है, जो मिठास है, जो माधुर्य है, वह उन्हें तुलसी और सूर की भाषा से मिला हुआ है पर उसका अपना महत्व कुछ और ही है। देसज के ठाठ के कारण उनकी भाषा का लावण्य किसी भी पूर्ववर्ती कवियों की प्रतिस्पर्धा में अधिक हो जाता है।

भक्ति भावना के प्राबल्य के कारण तथा मधुरा भक्ति के प्रभाव से भक्त कवि 'निधान गिरि' अपनें को गोपी भाव, सखि (अलिभाव) में रखते हैं और भक्ति में एक रसता के कारण स्त्री पुरूष का भेद नहीं मानतें-

> भक्ति नहिं कछु दूसर आशा, गोपिन कीन यही विश्वासा।
> बनता पुरूष भेद कछु नाहीं भक्ति विवश हरि सुखद सदाहीं।।[598]

इसी अभेद भावना के कारण 'निधान गिरि' यत्र-तत्र व्याकरण में लिंग प्रयोग में भी भेद नहीं मानते। उदाहरणार्थ बृज बालाओं के साथ 'धाई' क्रिया के स्थान पर धाए

क्रिया का प्रयोग किया गया है-

धाए कामातुर ब्रज बाला। मन वच क्रम चित सै गोपाला।
सदा ध्यान गोपिंन के एही। अन्तर होय न श्याम सनेही।[598(क)]

कवि नें यहाँ स्त्रीलिंग कर्ता के साथ पुल्लिंग क्रिया का प्रयोग किया है, ठीक इसके विपरीत जहाँ कवि ग्वालों का वर्णन करता है, वहाँ पुल्लिंग कर्ताओं के साथ स्त्रीलिंग क्रिया का भी प्रयोग करता है। उदाहरण स्वरूप-

''श्याम नाम जब सुन श्रवन बोली ग्वाल झपेट।
दान लगायो आन बन चोरी भरो न पेट।।[599]

इसी प्रकार एक दूसरा प्रयोग भी देखें जो व्याकरण की दृष्टि से अभीष्ट नहीं है- ''प्रश्न तुम्हार मोह प्रिय लागी'' यहाँ पर प्रश्न पुल्लिग हैं किन्तु उसे स्त्रीलिंग की भाँति प्रियलागी कह कर प्रयुक्त किया गया है जबकि तुलसी नें ''प्रश्न अति नीका'' कहकर प्रश्न के साथ पुल्लिग जैसा प्रयोग किया है जो सुस्त प्रयोग प्रतीत होता है।[600]

मंगलाचरण में देववंदना के अन्तर्गत नमः प्रयोग भी अव्याकरण है। देवयुगल के साथ एक वचन का प्रयोग भी व्याकरण की दृष्टि से विलक्षण है जैसे- 'गौरी शंकराय नमः' गौरी और शंकर ये दो शब्द है और चतुर्थी में दो के लिए भ्याम् के आधार पर 'गौरी शंकराभ्याम् नमः' शुद्ध प्रयोग है, किन्तु 'निधानगिरि' ने अद्वैत सिद्धान्तानुसार एक ही परमार्थ अद्वैत तत्व को मानकर द्वितीय या दूसरे देवता के स्थान की आवश्यकता नहीं मानते। अतः मंगलाचरण में गौरी और शंकर को एक ही मानकर परम इष्ट के रूप में एकवचन की भांति ''गौरी शंकराय नमः'' का प्रयोग किया है। निष्कर्ष रूप में यह कह जा सकता है कि 'निधानगिरि' की काव्यभाषा महत्वपूर्ण है।

किसी भी काव्यकृति को काव्यत्व का रूप प्रदान करने में काव्यभाषा का महत्वपूर्ण योगदान अपरिहार्य है। वस्तुतः काव्य मार्मिक भावानुभूति जन्य भाषा का एक विशिष्ट कलात्मक रूप ही है। अतःएव काव्य का संप्रेषणीय तत्व उसका वस्तुपक्ष है जो कि कवि के मानसिक व्यक्तित्व का अंग है और जिसे काव्य के रूप में वाह्य प्रकटीकरण के लिए शाब्दिक स्वरूप (भाषा) को वरण करना होता है। इस प्रकार यदि भाव या विचार काव्य का वस्तु पक्ष है तो भाषा उसका अभिव्यक्ति पक्ष। सृष्टि के आदिकाल में आदि मानव की अस्फुट वाणी फूटी थी और काल प्रवाह में वही भाषा के रूप में विकसित हुयी।

भाषा ही काव्य का माध्यम-व्यक्त शरीर है, निराकार भावों की साकार परिणति है। अमूर्तभावों का ललित मूर्तन है। भाषा के बिना उस काव्य-पुरूष का अस्तित्व ही सम्भव नहीं।[601] वस्तुतः कविकर्म में भाषा को ही प्रचीनता प्रदान की गयी है। भाषा शिल्प का उपादान ही काव्य सौन्दर्य है, किन्तु उसी कलात्मकता, आकर्षण सम्पन्नता, प्रभविष्णुता उसके भाव-गाभीर्य की शक्ति एवं संप्रेषणीयता भाषा द्वारा ही सिद्ध होती है।[602] भाषा वह उत्तम काव्य की पोषिका है। भाषा के प्रमुख अवयव शब्द और अर्थ हैं अथवा शब्दों

से सुगठित वाक्य खंड या वाक्य है उनकी व्याप्यवृत्ति ही काव्य है-

मृदुललितं पदाढयं, गूढ़, शब्दार्थ द्वींन,
जनपद सुख बोध्यं युक्ति मन्नृत्य योज्यम्।
बहुकृत रसमार्ग संधि संधान युक्तं,
सभवति शुभ काव्यं नाटक प्रेक्षकाणाय।[603]

वस्तुतः निधानगिरि ने काव्यीय-वैचित्र्य की निष्पत्ति के लिए उन सभी सौन्दर्याधायक तत्वों से काव्य भाषा को सुसज्जित किया है। उसमें शब्द शक्तियों का चरम विकास है। काव्य में सौष्ठव विधान के लिए कवि ने भाषा के सौष्ठव को पहचाना है। शब्द को आत्माभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। आत्मअनुभूति और संस्कृति का ऐसा समर्थ अभिव्यंजन भाषा की आन्तरिक-सांकेतिक, अर्थगर्भित शक्तियों के कारण ही संभव हुआ है। महाकवि निधानगिरि के काव्य ने सहृदयों के हृदयों को, काव्य के मर्मज्ञों को रस एवं आनन्द से आपूर्ण किया है। शब्द और अर्थ के समान धर्म ने उनके काव्य को उत्तमोत्तम बना दिया है। महाकवियों की श्रेणी में महानता का प्रतिस्पर्धी बना दिया है।

संस्कृत प्रधान भाषा- संस्कृत प्रधान साहित्यिक शब्दावली वाली भाषा मंगलाचरण में कवि ने प्रयुक्त की है-

अ. हेरम्बं गज आननं ससिधरं लम्बोदरं सुदरं,
गौरी शंकर नन्दनं सिधनिधं ब्रम्हांड पूज्यंवरं।
कोटं कोट कलेस विध्नसमनं भृत्यं कृपालं चिंरं।
पारावार अपार वुद्ध वरदं वंदे निधानं गिरं।।''[604]

भावानुकूल भाषा- कवि ने ओज और माधुर्य के संदर्भो को भाषा से अभिव्यंजित किया है-

(अ) केहर कंध मनहु मदन गज भसुंड मुजदंड।
सोहै धनुसाइक सरस निसचर कुल बल षंड।।[605]

(ब) ललित वदन लगत चंद भाव लाल स्याम विंदु
मानहु बैठहु मलिंद उपमा दरसाई।
नील कंज सरस नयन सिर पर कच प्रभा अयन
जिम ससि लगन कीन सयन अदिसुत समुदायी।[606]

अलंकृत भाषा

अ ''दो दो दतियाँ जब हंसत निरषत विमल प्रकास।
मनहु अरून अरविंद पर कुंद कलिन कर वास।।''[607]

ब नासा श्रवन कपोल हनु भाल तिलक मस बिंदु।
जनु श्रृंगार सरांज पर सोभित भयौ मलिंद।।[608]

स　　दूधदंत दुत जब हसत अद्‌भुत उपमा पाइ।
मनौ जलद मै चंचला प्रगटत दुर दुर जाइ।।[609]

समन्वित भाषा (मिश्रित भाषा)

संस्कृत, तत्सम, तद्‌भव, बृज, अवधी, बुंदेली की शब्दावलियों से निर्मित समन्वित भाषा का प्रयोग कवि निधानगिरि ने किया है-

अ　　देत दान छवि जाचकन अनुरागिन द्रग वाट।
वहरत चौकन गलिन बिच वागन सरजू घाट।
सकल लोक जन द्रगन कौं दरसन करत निहाल।
सुष सुकाल पूरन अवध कहत देव सुरपाल।
आज तुम कर धनु लियौ सहज दसावन मार।
दुष दुकाल हमरौ हरै किंकर दीन विचार।।[610]

देशज अथवा नवीन गढ़ी हुयी भाषा

निधानगिरि ने अनेक शब्दों का निर्माण भी किया है, जिसमें बुंदेली क्षेत्र की संस्कृति का प्रतिबिम्बन किया गया है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है-

(अ)　　अंतर जामिन स्वामिन मोरी। संकट भामिन करत निहोरी।।
हृदय मनोरथ प्रगटत नाहीं। जांनत संकल मात मन माहीं।।

(ब)　　हौ बालक कहुँ निज रूप वानी।सो अनुचित जिन जांन भमांनी।।।
बोली पुन सुन जनक कुमारी। मन भाव वर मिलहि दुलारी।[611]

(स)　इनके बल सिव धनु नै तोले। समझे अंड विटप सम पोले।।
कोउर डर इनकौ नहि मांनै। कुलह लजावत वकत अयानै।।
झूठे गाल बजावहीं अबहीं रहै चुपाहं। नाहीं तौ त्रैदोष की सन्नपात बस भाई।।
कन्या सुंदर देष कै भऐ काम बस मूड़। प्रगट बात जनु बस सब कौं ताकै बस आरूढ़।।
प्रभुसौ क्रोध सुपित्त बड़ अस त्रदोष घमसान। सन्नपात बस तमकहीं काल रहौ नियरान।
असकह लछमन कोप तब सोहैं मौह चड़ाइ।।[615]

(द)　ढोल नगारे तूरमृदंगा। जलतरंग मुषचंग उपंगा।
कर तांबूर सितार ढफ सारंगी मंजीर। तासा झॉझरवावजुत नर सिंहा सुर मीर।[614]

भाषा में बोली के अनेक नए शब्दों को लेकर कवि निधान गिरि ने भाषा को गतिशील, समृद्ध बनाया है तथा भावाभिव्यंजन में अभिवृद्धि की है। आंचलिक शब्दावली ने काव्य को एक स्थायी श्री प्रदान की है।

चित्रात्मक भाषा- 'निधानगिरि' भावपूर्ण, सर्वांग सुन्दर मूर्ति खींचने में कृतविद्य है, इसलिए वे महाकवियों में भी श्रेष्ठ है। काव्य में बिम्ब अथवा चित्र विधान के कारण

कवि की उपलक्षित दृष्टि विलक्षण रूप से मूर्त विधान के द्वारा मानव प्रवृत्तियों को चित्रित करती है। आचार्य शुक्ल जी के अनुसार कवि का लक्ष्य बिम्ब ग्रहण कराने का रहता है केवल अर्थ ग्रहण कराने का नहीं।

'निधानगिरि' के बिम्ब निर्माण की श्रेष्ठता निम्न उद्धरणो से दृस्टव्य हैं-

(अ) वसुधा पै सुकृत कियौ नंद जसोधा संग।
बाल गुपाल गहै फिरत बाड़ल प्रेम तरंग।
ताकौ गोद लियें हलरावै। सादर तुतरे बोल बुलावै।
कहुँ करताल बजावत गावत। कबहुँ अजर गह आन नचावत।
कबहुँ चुंम मुष लावत छाती। कनियां लेत प्रेम मद माती।
मोहत रविरथ पथ न चलाई। सुर मुन निरष उगे से भाई।
प्रात होत उठ चले गुपाला। माटी खात निरष वृजवाला।
मकुट हाथ जसुधा लै धाई। उगलौ माटी कुँवर कन्हाई।[615]

(ब) सिर पर मटकी नंदगृह फिर आवै फिर जाई।
लेउ लेउ गोपाल कह दीनौ दही भुलाइ।।[616]

अनुकरणात्मक श्रुतिचित्र–भाषा- किसी विशिष्ट ध्वनि को ज्यों की त्यों व्यक्त करना नहीं वरन तद्रूप ध्वन्यात्मक शब्दों की योजना की गयी है, जिससे व्यंजक ध्वनि-योजना नाद तत्त्व की अलंकृत करती हुयी वातावरण को मूर्तित करती है। कवि ने ध्वन्यर्थव्यंजना (Onomatopie) प्रधान भाषा की रचना की है-

(अ) जननी चुटकी सुन नचत किलक किलक श्रीराम।
कर छोड़ै माता डरत गिर न परै धनश्याम।।[617]

(ब) गाइ-गाइ हलराइहौ सुष की नींद बुलाइ।
कह दुलरावै वत्स भल लाल छबीले माइ
छगन मगन अब सोइए नींद समय दरसान
हृदय लगाइ-लगाइ कह मुदित सुमित्रा राज।[618]

(स) चंचलचाल चलत चतुराई। नीके निरषहु नीक निकाई।[619]

(स) धुक-धुक पुहम परी बृज वाला।[620]

(द) चपला चमक-चमक चक चौंधत।[621]

(य) जनकसुता जग जननि भवानी।

(र) नीके निरषहु नीक निकाई।

प्रतीकात्मक भाषा- प्रतीकात्मक भाषा द्वारा बिम्बों का निर्माण एवं संवेदनशील जीवन की अभिव्यक्ति में 'निधानगिरि' का कौशल अद्वितीय है, चेतन और अचेतन मन की अवस्थाओं को प्रतीकों में समाविष्ट किया गया है। आत्म निहित भाव एवं मानसिक दृश्य मुखरित हुए है। प्रतीकों से व्यंग्य भी किये गए हैं-

(अ) अपर सखी अस विध कहत सुन उपंम के पूत।
धरै हंस को वेष है करे काग करतूत।।[622]

(गोपिकाओं ने भ्रमर गीत प्रसंग में उद्वव को हंस का वेश धारण कर काग की करतूत करने वाला कहा है। हंस उज्जवल चरित्र और काग (कौवा) छल चित्र का प्रतीकात्मक बनकर यहाँ अभिव्यक्त हुआ है।)

अर्थस्फोट प्रधान भाषा- बिना किसी विशेष आयास प्रयास के ही अर्थ स्पष्ट हो जाता है। अर्थ-अक्षरों से स्फुटित होने लगता है। प्रगट अर्थ आषर करदि सबको सुलभ सुहाई कहकर 'निधानगिरि' ने इसी ओर संकेत किया है-

कवि ने कहीं एक अर्थ और कहीं एक से अधिक अर्थो के स्तरों की भी संयोजित किया है। उनकी भाषा में, अर्थो को, विशिष्ट अर्थो को अभिव्यक्ति करने की अपूर्व शक्ति है-

(क) कनक जाल अंतर परेउ उड न सकत सुक पांत।
प्रभु सरूप मन भवन मै वसै सषी अस भाँते।।[623]

हे सखि प्रभु का स्वरूप मन भवन में बस गया है, शुक पंक्तिया उड़ नहीं सकतीं ,वे कनक जाल के अंतराल में आवद्ध हो गयी है। एक अन्य विशिष्ट अर्थ यह भी है कि सखि भावना के भक्त जो कनक भवन में प्रभु का रूप देखकर मुग्ध ही गए है, उड़ने कर अन्यत्र नहीं जा सकते, एक अन्य अर्थ शुक की पंक्तियाँ (शुकदेव के वचन) हृदय में मन भवन में प्रविष्ठ हो गयी है उसके स्वर्णिम सूत्र (कनक जाल) अंतराल में अंतरंग हो गए है।भगवद भक्ति से भक्त का हृदय तदाकार हो गया है, सखी रूप में वह प्रभु रूप का रसास्वादन कर रहा है।

कवि 'निधानगिरि' की भाषा से विशिष्ट अर्थो का स्फोट होता है, एकाधिक अर्थो की छवियाँ हृदय को मुग्ध कर देती हैं। अर्थो का लावण्य भाषा की सिद्धि पर ही आश्रित है।

भारतीय साहित्य-शास्त्रियों ने शब्द तीन प्रकार के माने है-वाचक, लक्षक और व्यज्जक। इसी प्रकार अर्थ भी तीन प्रकार के होते है-वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। शब्द-शक्ति के प्रभेदों में प्रमुखता अमिधा, लक्षण एवं व्यंजना की है।[624] निधानगिरि की काव्यभाषा में सभी प्रकार शब्द-शक्तियाँ पायी जाती है।

अमिधा-शब्द-शक्ति

शब्द के प्रमुख कोषगत (वाच्यार्थ) (सामान्य अर्थ बोध) की द्योतिका होती है। लोक व्यवहार में पद और पदार्थ का मुख्यार्थ-सम्बन्ध ही शक्ति होती है। अतएव इसे मुख्या या अग्रिमा भी कहते है।[625] महाकवि निधानगिरि ने काव्यकृति को सुबोधगम्य बनाने के लिए सरलभावों की व्यंजना के लिए वाच्यार्थ द्योतक वाचक शब्दों का ही प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ-

(अ) "अबही कुसल जानकी दीजै। छांड कपट अभयान न कीजे।
भजिऐ दयासिंध भगवाना। जामै होइ तोर कल्याना।
वहुर राज चलहै न चलायौ। रहै कुसल कुल सहित सवायौ।"[626]

(ब) "राघव हन रावन तन तीरा।रावन मारत राम सरीरा।
करत परसपर रन अधिकारा। इत-उत समर कला विस्वारा।"[627]

कवि ने सीधे-साधे और स्पष्ट संकेतित अर्थ के प्रयत्न हंतु अमिधार्थ या मुख्यार्थ के लिए लोक-व्यवहार की भाषा को चुना है।

लक्षणा

अभिव्यक्ति पद्धति को प्रभविष्णु बनाने के लिए मुख्यार्थ को बाधित करके मुख्य भाव था व्यापार के आधार पर उससे आगे असाक्षात सांकेतिक अर्थ का बोध कराते हैं उन्हें लक्षक, वे जिस विशेषार्थ का बोध कराते हैं उसे लक्ष्यार्थ तथा विचारकों की शब्दावली में उनकी लक्ष्यार्थ-बोधक-शक्ति लक्षणा कहलाती है। इस प्रकार लाक्षणिक प्रयोगों में शब्दों के वाच्यार्थ से ही काम नहीं चलता प्रत्युत सम्बन्धानुसार उनका नया सांकेतिक अर्थ ही संगत बैठता है।[628] 'निधान गिरि' ने 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में भावों को प्रभविष्णु बनाने के लिए मुहावरों, लोकोक्तियों के माध्यम से लक्षणा के विशिष्ट प्रयोग किये हैं, उदाहरणार्थ

(अ) कर मींजत सिर कौं धुनत गुधराज पछताह।[629]
(हाथ मींजते, सिर को धुनते हुए गृद्धराज पछता रहा है)

प्रस्तुत पक्तियों में अभिधार्थ से नहीं बल्कि लक्षणा द्वारा ही हाथ मलने और सिर धुनने से प्रायश्चित करने का भाव व्यक्त होता है।

(ब) गरजत सो बरसत है नाही।[630]
(जो गरजते हैं, वे बरसते नहीं)

प्रस्तुत पंक्ति में बादलों के गर्जन और उनके जलवर्षण का अमिधार्थ नहीं बल्कि उनका लक्ष्यार्थ जो केवल बोलते हैं और कार्यरूप में परिणत नहीं होते को ग्रहण करना होगा। अतः उक्त मुहावरे में लक्षणा शक्ति का प्रयोग किया गया है।

व्यंजना शक्ति

व्यंजना शक्ति का सामान्य अर्थ होता है प्रकाशन शक्ति। यह प्रकाशन शक्ति प्रकाशकों के अनुरूप भिन्नता धारण करती है। प्रकाथकमात्र प्रकाशन काल में प्रकाश्यवस्तु से सवर्था पृथक अपनी सत्ता रखते है। यथा सर्व आकारवत् एक पदार्थ है, सूर्य में उष्मा की भी स्थिति है, उससे प्रकाश की भी संभूति होती है। किन्तु प्रकाश सूर्य नहीं है।[631] अमिधा एवं लक्षणा अपना-अपना अर्थ बोध कराके विरत (शांत) हो जाने के बाद जिस

शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ का बोध होता है, उसे व्यंजना कहते हैं।[632] महाकवि निधानगिरि के भक्तिमनोहर में भ्रमरगीत के प्रसंग में कवि ने व्यंजनाओं का भरपूर प्रयोग किया है, कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है-

(अ) 'व्याकुल तन मुरछित भयौ गिरा धरन लंकेस।
विंग वचन बोलत मधुर रघुकुल कंज दिनेस।
भीमकर्म तूनै करौ संजुग मै दससीस।
पीर भई तन मै अधिक पायौ दुष वारिस।।''[633]

भीम कर्म अमिधार्थ से भंयकर कार्य के अर्थ में है किन्तु कवि का आशय अमिध ार्थ और लक्ष्यार्थ से नहीं पूरा होता, यहाँ भीम कर्म से व्यंग्यार्थ की सिद्धि होती है जो कर्म के अर्थ में सीता के चुराकर लाने की ओर व्यंजना करता है।

(ब) भीत बिना कहु चित्र लिष किहि बॉधौ आकास।
मुस फटकत निकसत सुनी कहूँ कनन की रास।।[634]

भीत (दीवार) के बिना किसी ने चित्र लिखा है, आकाश किसने बाँधा है, भुस को फटकर, कनन की रास किसने पायी है। यहाँ अमिधार्थ और लक्ष्यार्थ अर्थ बाधित होता है और व्यंग्यार्थ से कृष्ण की प्रीति के आधार के बिना जीवन की नि:सारता व्यंजित की गई है।

(स) कौन रंक सँपद विलस पाई सपनै सोइ।
चिरई कंचन की उड़त किहि गहुवे लीधोइ।।[635]

स्वप्न में फिर रंक ने संपदा पाली है, स्वर्ण की चिड़िया को लेध के द्वारा किसने पकड़ लिया है। यहाँ चिड़िया, लेध आदि अपने अभिधार्थ और लक्ष्यार्थ से आगे जाकर सीमित साधनों से असीम उपलब्धियों के न पाने का संकेत व्यंग्यार्थ से ही ग्रहण किया जा सकता है।

छन्द-आचार्यो ने एक अक्षर से लेकर 104 अक्षरों तक के छन्दों का विधान किया है। यास्क 'छन्द' को आच्छादनार्थक मानते हैं-''छन्दांसि छाद्नात।इस दृष्टि से सृष्टि को छन्दोमय माना गया है। छन्दों से वेदों को गति मिलती है।

वैदिक छन्दों का आधार अक्षर-गणना है। इसमें गुरू-लघु का नियम नहीं होता। काल्यायन का कथन है-''यद्क्षर परिमार्णं तच्छन्द:''[636] लौकिक छन्दों के विपरीत वैदिक छन्दों में पाद भी चार से अधिक हो सकते है। मुख्य वैदिक छन्द सात है-गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप, वृहती, षड्सि, त्रिस्टुप, जगती।[637]

वैदिक छन्दों के अतिरिक्त छन्दों का दूसरा प्रकार लौकिक छंदों का है। लौकिक छंद वैदिक छंदों से भिन्न हैं तथा लौकिक छंद दो प्रकार के होते है-मात्रिक या जाति छंद, वर्णिक या वृत्त छंद। मात्रिक छंदों में वर्णो का क्रम और संख्या एक समान नहीं होते किन्तु मात्राएँ प्रत्येक पद में एक समान होती हैं। वर्णिक वृत्तों में चारों चरणों में वर्ण क्रम और संख्या एक समान होती है। चारों चरणों के लक्षण समान होने पर सम छंद होता है, जिसमें प्रथम और तृतीय एक समान हों तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण एक समान हों, वे अर्द्ध सम छंद कहलाते हैं, सम छंद और अर्द्ध सम छंद से भिन्न छंद विषम छंद होते हैं।

'निधानगिरि' ने प्रायः लौकिक छंदों में मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। मात्रिक छंदों मे कवि ने चौपाई, दोहा, सोरठा, हरिगीतिका, तोमर, त्रिभंगी, झूलना आदि छंदों का प्रयोग किया है तथा वर्णिक छंदों में शार्दूल विक्रीड़ित, स्रग्ध ारा, वंशस्थ, शिखरणी, भुजंगी, त्रोटक (तोटक) मोतीयदाम (मोतीदाम) नाराच आदि छंदों का प्रयोग किया है।

'भक्ति मनोहर' महाकाव्य का प्रारम्भ कवि ने शार्दूलविक्रीड़ित से किया है, जिसमें कवि ने मंगलमूर्ति गणपति की वंदना की है। 'श्रगधरा' छंद से देवाधिदेव कैलासपति महादेव का स्तवन किया है, पुनः तीन शिखरणी छंदों द्वारा भगवान लक्ष्मीपति विष्णु, त्रैमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, महेश, औषधीश एवं भवानी दुर्गा की वंदनाएँ की है। अन्य वंदनायें दोहा, चौपाई छंदों में की गई है।

छन्द संख्या

'निधानगिरि' ने ग्रन्थ के अन्त में छंदों की संख्या बतायी है और प्रत्येक छंद की संख्या तथा कुल छंद संख्या भी दी है। कवि ने छंद संख्या बता कर ऋग्वेद की परम्परा का निर्वाह किया है। ऋग्वेद में गायत्री 2451, उष्णिक 341, अनुष्टुप 851, वृहदी 181, पंक्ति 312, त्रिष्टुप 4253, गायत्री 1348, अतिजगती 17, शक्वरी 19, अतिशक्वरी 9, अष्टि 6, अत्यष्टि 84, धृति 2, अतिधृति 1, एकपदा 6, द्विपदा 17, वार्हत प्रगाथ 194, काकुभ प्रगाथ 1 हैं। समस्त ऋचाओं की संख्या 10420 बताई गई है। ऋग्वेद में छंद तथा ऋचाओं की संख्या दी गई है। निधानगिरि ने भक्तिमनोहर में कुल छंदो का परिमाण इस प्रकार बताया है-

> ''रच चौपही दो सहस नव सत उनत्तर ऊपर सही।
> दोहा कहे तेईस सत चौबीस ता पर धारही।
> पुन तीन तोटक झूलना दो चार मोतीदाम हैं।
> नाराच एकादस वषानै श्रगधरा इक नाम है।
> पुन अष्ट तोमर सिषरनी पच चच्चरी तेरा भनी।
> फिर सप्त छप्पय भुंजगी रिष सारदूल इकागनी।
> भन ऐक सत अरतीस गीतक त्रभंगी षट बीस है।
> रच एक कुंडलिया कवित पच सोरहा ध्यालीस है।

पंचक्ष दस सत पाँच, इक पचास ऊपर गनौ।
श्रवन सुनत मन राँच, गावहि सुजन समाज सुच।।''[638]

इस प्रकार 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में छंदों का परिगणन निम्नवत् है-

चौपही (चौपाई)	2969
दोहा	2324
त्रोटक	03
झूलना	02
मोतीदाम	04
नाराच	11
श्रगधरा	01
तोमर	08
शिखरणी	05
चच्चरी	13
छप्पय	07
भुजंगी	07
शार्दूल	01,
गीतक	138
त्रभंगी	06
कुंडलिया	01
सोरठा	05
कुल छंद संख्या	5505

छंदों की संख्या के क्रमानुसार कवि के प्रिय छंद चौपाई, दोहा, गीतक, चच्चरी, नाराच, तोमर, छप्पय, त्रभंगी, सोरठा, शिखरणी, भुजंगी, श्रृगधरा और शार्दूल है। प्रयोग की दृष्टि से महाकाव्य का प्रारम्भ शार्दूल विक्रीडित से तथा समाहार सोरठा छंद से हुआ है। श्रृगधरा, शार्दूल विक्रीडित की संख्या मात्र एक-एक है। झूलना मात्र दो, त्रोटक मात्र तीन, शिखरणी, सोरठा मात्र पांच-पांच, छप्पय और भुजंगी मात्र सात-सात, नाराच मात्र ग्यारह, चच्चरी मात्र तेरह हैं। सर्वाधिक संख्या में चौपाईयाँ ही हैं जिनकी संख्या 2969 है, दोहे चौपाईयों के समान ही थोड़ी ही कम संख्या में 2324 हैं तथा गीतक 138 हैं जो परिमाण क्रम तीसरे में हैं।ऐसा प्रतीत होता है कि निधानगिरि तुलसी के मानस से अधिक प्रभावित रहें हैं, अत: उनके प्रिय छंद चौपाई और दोहे उनके काव्य में भी सर्वाधिक प्रयुक्त हुए हैं। चौपाई और दोहा लोकप्रिय छंद है तुलसी की चौपाईयाँ और दोहे गांव की चौपालों तक पहुँच चके है। 'निधानगिरि' भी काव्य को सुलभ और लोकप्रिय बनाने के लिए इसी छंद का सर्वाधिक प्रयोग करते दिखाई पड़ते हैं।

शोधकर्त्री ने कवि द्वारा वर्णित छंदों की गणना की तथा कवि द्वारा ग्रंथ के अन्त में निर्देशित छंद संख्या में अन्तर पाया। इस अन्तर का कारण कवि द्वारा की गई गणना

में ठीक-ठीक संख्या न देना है। उसमें कवि ने न्यूनाधिक की संभावना व्यक्त की है; उदाहरण के लिए चौपाई (चौपही) की संख्या बताते हुए कवि ये कथन कि चौपाईयाँ दो हजार नौ सौ उन्हत्तर से ऊपर है, अर्थात् अधिक है, किन्तु कितनी अधिक है ये संख्या कवि ने नहीं बताई। इसी प्रकार छंदों के कुल परिमाण में भी कवि ने 'ऊपर गनौ' कहकर संख्या में घटने बढ़ने की गुंजाइश रखी है। कवि निधानगिरि का 'ऊपर सही' 'ऊपर गनौ' का निर्देश इस प्रकार है-

(अ) "रच चौपही दो सहस नव सत उनत्तर ऊपर सही।"
(ब) "पंचक्षदस सत पाँच, एक पचास ऊपर गनौ।"[639]

अन्य छंदों की गणना में कवि ने जो संख्या दी है वह गणना में सर्वथा शुद्ध है, मात्र चौपाईयों की संख्या में ही दी गई संख्या से अधिक होने का संकेत है, अतः सावधानी पूर्वक कवि ने महायोग यानि कुल छंद संख्या में भी 'ऊपर गनौ' कहकर वर्णित संख्या से अधिक होने का संकेत कर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे जानबूझ कर कवि ने संख्या गिनने के लिए एक कार्य पाठकों और शोधार्थियों पर छोड़ दिया हो अथवा गणना में किसी त्रुटि से बचने के लिए इस प्रकार की छूट ले ली है।वस्तुतः 'भक्ति मनोहर' में चौपाइयों की संख्या वर्णित 2969 से 51 अधिक है और इसी प्रकार कुल छंद परिमाण 5505 से 51 अधिक है। यह 51 संख्या शुभ सूचक है और कवि ने इसे अतिरिक्त ही रक्खा है, गणना के अन्तर्गत नहीं। 51 छंदों का यह अतिरिक्त दान अगणनीय है।

'निधानगिरि' के 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में प्रयुक्त छंदों के उदाहरण इस प्रकार हैं-

वर्णिक छंद

शार्दूल - विक्रीड़ित

19 वर्णो के चरण वाले शार्दूल-विक्रीड़ित छंद से कवि 'निधानगिरि' ने 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य का शुभारंभ किया है। इसकी परिभाषा इस प्रकार की गई है 'सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूल-विक्रीड़ितम्' [640]

इसमें म, स, ज, स, त, त, ग, (12.7) को विधान होता है।'निधानगिरि' के शार्दूल-विक्रीड़ित का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

"हे रम्बं गज आननं ससिधरं लम्बोदरं सुंदरं।
गौरी शंकर नन्दनं सिधिनिंध ब्रह्माण्ड पूज्यंवरं।
कोटं कोट कलेस विध्न समनं भृत्यं कृपालं चिरं।
पारावार अपार बुद्ध वरदं वंदे निधानं गिरिं।।"[641]

उक्त छंद में प्रत्येक चरण में क्रमशः एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण एवं एक गुरू का प्रयोग किया गया है। यति 12 और 7 वर्णो के बाद होती है। प्रत्येक चरण में वर्णो की संख्या 19 है।

श्रगधरा

प्रत्येक चरण में 21 वर्ण होते है, 7,7,7 पर यति होती है। इस छंद का लक्षण मा रा मा ना त ता ता, मुनि, मुनि मुनि से श्रगधरा (स्रगधर) पूरा होता है, इसमें म र म न त त त का विधान है। निधानगिरि के काव्य में स्रगधरा का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

''वंदे देवं महेसं गिरवर तनया प्राननाथं कृपालं।
कैलासाग्रे निवासं सुरसर विलसत्मौलमाले विसालं।
चंद्रे कपूर्र गौरं ससि सिसु तिलकं नाग चर्म दुकुलं।
देवं देवाधि पूज्यं अवढर वरदं कोट कल्यांन मूलं।।''[642]

शिखरणी

'रसों रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी'
य, म, न, स, भ, ल, ग· (6.11)

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः एक यगण, एक मगण, एक नगण, एक सगण, एक मगण एवं एक लघु तथा एक गुरू होता है। इसके प्रत्येक चरण में वर्गो का संख्या 17 होती है-

'निधानगिरि' ने मंगलचरण में 3 शिखरिणी छंदों का प्रयोग किया है, जो छंदशास्त्र के लक्षणों के अनुसार है। यहाँ कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है-

(अ) ''नमामी जगदीसा पद समद कन्यावर पति।
नरादेवा नागा भजत दुषहर्ता सतमती।
कृपा पारावांर सरन जन पालं मय हरं।
गुनागांर सीलं सुवुध वरदा दुस्वर नरं।।''[643]

(ब) ''नमामी त्रैमूर्ति निवडतम नागा मृगपती।
सुरावज्री दैत्या मनुज अहि सेवा पदरती।
कृपाला रोगरी कठिन दुष दोषा प्रनवधी।
महारूपा तेजा सब जग प्रकासी रसदधी।।''[644]

(स) ''नमामी कल्यानी त्रभुवन भमानी छवि धनी।
दुलारी कामारी सुमरत सुषारी गुनसनी।
महा सिंहासीना करवर त्रसूला असधरी।
षला दैत्यवृंदा समनरनकोटी वरदरी।।''

मात्रिक छंद

चौपही

''आनंद मूल अजर मै षेलत। रवि कुल कमल प्रभाकर केलत।
संजुत लषन विनोद प्रसंग। ललित भरत रिपु सुदन संग।
वाल समय के भूषन सोहैं। अंग अंग पहरै भज मोहैं।
मोर चंद्र सम तन दुति झलकै। जनु छवि उमग सकल तन छलकै।
पग पैजन कट किंकिन की धुन। पहुची कर प्रमुदित जननी सुन।
काम सरोवर लोचन कंजा। पेषत परम जगत भय भंजा।
दमकत दो दो दतियाँ लौनी। मनहु कमल विच चपला सौनी।
सिर लट मैं लस लटकन रूरी। लटकत कंचन मनि मय पूरी।।''[646]

दोहा

''प्रेम मगन सुन सषी के मधुर मनोहर वैन।
झाँक झरोषन कुल वधू ससि वदनी मृग नैन।
बिन अंजन लोचन ललित निरषत मन हर लेत।
कंज मीन षंजन सकुच जब उपमा कवि देत।।''[647]

गीतिका

गीतक छंद का प्रयोग कवि ने वाल्यरास राम जानकी के दूलह-दुल्हन वर्णन आदि कोमल भावों के अभिव्यंजन के लिए क्रिया है-

''छविरास वाल सरूप अनुपम कहा मति अनुहार के।
पौंगंड वय अव करत वरनन सुनहु सुजन विचार के।
जननी कहत रघुवंस मनि प्रभु प्रात अवसर जागिऐ
वल जांउ सुत मुष विध उधारिय नयन मम सुप पालिऐ।
हे प्रान प्यारे उठहु लालन चंद जोत मलीनता।
लाली गगन मै प्रभाकर की नषत गन छवि छींनता।
जिम वाल दिनकर केहरी तम जूह दुरद विदार कै।
फैलाइ दीनै जलन देषौ तात वदन उधार कै।
प्रन चक्रवाक विसोक पहरत करत तमचुर सोर कौं।
प्रिय द्वार माता सषा टेरत विविध भात निहोर कैं।
सुक हंस कोइल मोर बोलत सुषद सब्द सुढार कौं।
जनु रावरे गुन विविध वरनत सुनहु लाल उचार कौं।
फूले तडागन कमल कोमल दलन भमर भृमावहीं।
जनु देव तन धर जन्म उत्सव नचत तुव जस गावहीं।
अस वचन रचिना अधिक सुन प्रभु षोल द्रग पंकज दिये।
गावत निधान गिरीस उर धर आनंद मन किये।।''[648]

(ब) ''पुरनारि नर सुन मिले आगै प्रीत पूस अंग मै।
सज आरती सिय मात द्वारै ठाड सषियन संग मै।

कंचन कलस सिर धरै भामिन सकल मंगल गावती।
दूलह निरष परछन करत जुत आरती कर भावती।
सादर अरध दै पाँवडे कर लिवा मनि मंडिप गई।
बैठार सिंहासन सुभग पर देष पर प्रमुदित मई।
तिहि समय सिय कौ अंग अंगन विभूषन पहराइ कै।
दुलहिन सिंगार बनाइ ल्याई सषीगन हरषाह कै।
तँह नील पंकज मेघ सम तन राम दूलह सोहही।
दुलिहिन सिया कंचन तडितवत परम जोरी जोहही।
तब व्याह विधवत सतानंदहु मुनि वसिष्ट करावहीं।
अरचन प्रथम कर भूंम कौ गवरी गनेस पुजावही।
रघुनाथ पीतांवर सुहायौ चुनरी सिय को नई।
मुनि गांठ जोर प्रमोद हिय कह भांवरी श्रुति विध भई।
चितवत परसपर राम सिय अनुराग उर को कह सकै।
वरनत सिरात न भाव अतही गिरा मुनिवर मति थकै।
मधुपर्क आदिक वेध विधकर समय मुनिवर जान कै।
बुलवाइ रानी गांठ जोरी जनक सै सुष सांन कै।
कलधौत थार पषार प्रभुपद प्रेम जुत उर धार कै।
तिहि समय साषोच्चार कर दुहु कुल गुरुन विस्तार कै।
सब वेद विध मिथलेस कंन्यादान वर कर गह दियौ।
पुन चतुर आसी आहुतै कर हुतासन पूस कियौ।।''[649]

सोरठा

''पावक आदिक देव, पूजा पाइ असीस दिप।
प्रमुदित है सुर सेव, आप कृतारथ जांन कै।।''[650]

कुंडलिया

दर्शन, भक्ति एवं सिद्धान्त निरूपण के लिए कवि 'निधानगिरि' ने कुंडलिया छंद का प्रयोग किया है-

''ग्यान मिलन को श्रम करत जहँ तहँ जीव घनेर।
अधिक विधन तिन मैं प्रगट प्रभुपद मिलै न फेर।
प्रभु पद मिले न फेर बैठ सिर धुन पछतावत।
भक्त, सकल सुषदान वाह तज अति दुष पावत।
सुभ तंदुल कौ त्याग कै फुकली कूट अजान।
केवल भ्रम रह हाथ मै जिम भक्ती विन ग्यान।।पृ.[651]

छप्पय छंद

छप्पय छंद वीर रस का प्रमुख छंद है। चंद के छप्पय साहित्य में वरेण्य रहे हैं। 'निधानगिरि' ने छप्पय छंद के माध्यम से राम के सैन्य प्रमाण के चित्रों में वीर और भयानक रसों की अद्भुत संधि कराई है। चित्रों से एक ओर राम सेना के ओज और उल्लास के बिम्ब फूटते हैं, दूसरी ओर सैन्य प्रमाण से भय की सृष्टि से भयानक रस साकार हो उठता है।

(अ) ''चला कटक सब ता समय किय पयान रघुवीर।
कंपत भूतल गिर डगत थकित पवन गंभीर।
तिहि अवसर कर धनुष पनच धर राम चड़ावत।
किय टंकोर कठोर धोर सुन-सुन भय छावत।
चौंके सुर सक्र चतुर मुष सकपक उर धर।
सिव जटान सैं गंग वही चल नहि सभार कर।
दिगपाल सकल निज थल विकल भुवन चतुरदस डर डरन।
दसमुष संसक जुत लंकपुर गर्भ श्रवहि निसचर धरन।।''[652]

(ब) ''कटकटाइ भट विकट भाल मरकट अति गर्जत।
सिंह नाद कर कूंद विटप परवत धर तरजत।
नष मुष दंत कराल देष कालहु विषाद कर।
रघुवर सपथ सुनाइ वाद वड़बड़ कर वनचर।
सव मार-मार धर-धर करत लघु निश्चर गनती कवन।
उड़ धूर पूर सुर जान छिप लषउ परत रवि ससि मवन।।''[653]

(स) ''धसत धराधर धरन भूंम सैं तव जल निकसव।
जित तित समद समान भ़इव भूतल न हिलष तब।
अंवर बाजे बजत देव हनमंत हांक धर।
निज-निज वचन विसाल समझ नहि परत परसपर।
दिस दुरद कूर्म वाराह जुत सेस धीर धर धर धरन।
सह सकत भार नहि तिहि समय गिर निधान मुनि मति वरन।।''[654]

चामर छंद

''मार-मार हो रही महां दूहै चमूह के।
हंक-हंक वंक वीर जातधान जूह के।
सूल सक्ति पट्ट पास षर्ग कौं प्रहारहीं।
भिंडपाल गुर्ज पर्धवान वृंद मारहीं।
होत जुद्ध कुद्ध कुद्ध रक्त धार भू चली।
अंग भंग होत जात सूझ न परी गली।
कूंद कूंद कै प्लवंग भंग जातधान कौं।
गाल फार फार डार वेग लेत प्रांन कौं।
पेट कौं विदार वाहु सीस कौं उषारहीं।
लूंम सै लपेट कै जहां तहां पछारहीं।
काहु कौं अकास मेल सिंध डार काहु कौं।
काहु सैल पै पछार फार डार काहु कौं।
मुष्टका प्रहार मार काहु मीज लात सै।
काहु कौं नषांन चीर काहु षंड दांत सै।।''[655]

तोमर

उत सैं निसांचर मार। तरवार सूल कुठार।
हन कुंत तोमर पट्ट। छुरि सांग पर्घ झपट्ट।
भमकै भयानक धाइ। रन रक्त सरित बहाइ।
दुहु सै न मानहु कूल। पर वीर वृक्ष समूल।
सुष पालका रथ जूह। उतरात जात समूह।
जनु चक्र वोहित वृंद। वहरै विसाल अनंद।
गज बाज वांहन जेत। जल जंत मानहु तेत।
सर सांग सर्प समान। तर चर्म कक्षप जांन।
हनुमंत अंगद जुद्ध। दसकंध वीर विरुद्ध।
जनु धार धोर तुराइ। तर जाइ नहि भट जाइ।
वलवंत वृंद कलार। जनु बीच सब्द अपार।
जहँ भूत प्रेत विसाल। जनु मज्जही मुनि माल।
बहु जोगिनि कर गान। भरहीं लियै षपरान।
सर तीर जनु पनहार। चल हंस चाल संभार।
नाचहि पिसाच वधूट। फिर लेत श्री नित छूट।
षग काक कंक श्रृंगाल। भक मास मोद विसाल।।''[656]

त्रिभंगी

''जय जय श्री रामा सब सुष धामा गुन गन ग्रामा सुभर संदा।
सब विध जन रंजन भव-भव भंजन षल कुल गंजन देव मुदा।
जय जय भुजदंडा प्रवल प्रचंडा सर कोदंडा धार महां।
दसमुष गज भारी नाथ गजारी सहज विदारी आंन इहां।
जय रघुकुल मंडन सुरदुष षंडन षलवल वंडन नास किऐ।
धर नर अवतारा परम उदारा भूतल भारा तार दिऐ।
संकर उरवासी स्वयं प्रकासी गुनगनरासी भव भर्त्ता।
प्रभु रूप अनूपा रविकुल भूपा अति बल कूपा लय कर्त्ता।।''[657]

छंद 'तोटक' में वर्णित निशाचर कुल और वानर सेना का तुमूल युद्ध वीर रस को उद्दीप्त करने वाला है-

''उतते वडधावन रात चरा। इत ते कपि भालुन कूह करा।
गृह निश्चर कीस करै करनी। झपटैं लपटैं पटकैं धरनी।
रसना गह लैहि उषार वली। नष दंतन फारत पेट थली।
कपि ऐकन के सिर तोरत हैं। पुन येकन वाहु मरोरत हैं।
भट मर्कट मत्त मतंग उठा। महि डार हने जम लोक पठा।
रन जंग विभंग तुरंग करे। सब वाहन भाँतिन भाँति हरे।।''[658]

नाराच

नाराच छंद भी वीर रस के प्रयोगों की व्यंजना में सप्राणवान हो उठा है-

''उमंड चंड जातधान आन मेघ वृंद से।
प्रहार सूल पास पट्टवान है फनिंद से।
हनै भसुंडि मिंडपाल .पर्स पर्ध मुद्गला।
लगे प्लंवग अंग मै जहाँ तहाँ परे झडा।
अनेक कीस होत जात छिन्न भिन्न षेत मैं।
वहंत रक्त भूम पै डरे परे अचेत मैं।
इतै तमंक कीस वृंद सैल लै हकारहीं।
निसाचरा चमूह पै जहाँ तहाँ प्रहारही।
इकै विदार दंत सै सकुद्ध लेत प्रान कौ।
करे विहाल जातधान होत जात हान कौं।
इकै विहीन वाहु सीस अंग भंग कौं करे।
परे चिकार भूंम मै जहाँ तहाँ मरे डरे।[659]
प्रताप राम के प्लवंग जंग मै बली भाए।
इकै पछार लूम से लपेट भूंम मै हए।
तुरगं सै तुरंग कौं मतंग सै मतंग कौ।
हनै प्रकोप कीस भाल कीन सैन भंग कौ।
सवार सै सवार मार पेट डार फारहीं।
इकै लमंक मुष्ट मार प्रांन कौ निकारही।
रथी समेत स्यंदना लगूर मै लपेटहीं।
पछार जीव काड़ छोड और कौ झपेट ही।[660]

काव्य में रस तथा प्रतिपाद्य विषय के अनुसार छंदों का विनियोग करने का निर्देश आचार्यो ने प्रदान किया है। काव्य की सफलता का श्रेय छन्दों-योजना पर भी निर्भर करता है। महाकवि 'निधानगिरि' ने काव्य को सर्वसुलभ बनाने के लिए अर्थ की सुस्पष्टता के साथ 'मानुषी' भाषा एवं. छंद-प्रवंध को अपरिहार्य माना है। कवि के शब्दों में-

''भाषा भाषहु मानुषी छंद प्रवन्ध मिलाइ।
प्रगट अर्थ आषर करहिं सबकौं सुलभ सुहाइ।।''[661]

कवि ने विभिन्न रसों के तथा प्रतिपाद्य विषय की अभिव्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न छंदों का प्रयोग किया है। 'भक्ति मनोहर' की विशालता एवं विविधता को देखते हुए रससिद्ध कवि ने अनेक छंदों की योजना की है। जिन छंदों का प्रयोग कवि ने 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में किया है, उनमें प्रमुख छंद मात्रिक छंद, चौपाई, दोहा, सोरठा, हरिगीतिका, तोमर, त्रिभंगी, झूलना है। वर्णिक छंदों में निधानगिरि ने शार्दूल- विक्रीड़ित, श्रग्धरा, वंशस्थ, शिखरणी, भुजंगी, त्रोटक (तोटक) मोतियदाम (मोतीदाम), नाराच उपयोग में लाए गए है। कवि ने रस को सहृदय हृदय तक पहुँचाने के लिए नाद एवं गति के

अनेक छन्दोमय प्रयोग प्राप्त होते है। वंदना प्रकरण में कवि ने शार्दूल-विक्रीड़ित, श्रृगधरा, शिखरणी छंदों के प्रयोग से भक्तिमय वातावरण को प्रदीप्त किया है। कथा के विस्तार के लिए कवि ने तुलसी की भाँति दोहा, चौपाई, छंदों का प्रयोग करके सहृदयों को रसान्दोलित किया है। चौपाई को कवि ने चौपही का नाम दिया है। चार चरणों वाले छंद को चार पाँवों वाली चौपाई न कहना अधिक उपयुक्त समझा। 'चौपही' चौपाई का आंचलिक एवं विकसित नाम रूप है, जिसमें ध्वनि एवं उच्चारण सौकुमार्य अधिक है। इस नाम के पीछे कवि की मौलिकता भी परिलक्षित होती है।

'निधानगिरि' ने 'भक्ति मनोहर' में एक ओर वैदिक छंदों का प्रयोग किया है, तो दूसरी ओर लौकिक छंदों का भी विकास किया है।

रसानुकूल छंदोमय प्रस्तुतियाँ निधानगिरि की एक अन्य विशेषता है। वीर रस और उत्साह मूर्तित करने के लिए कवि ने नाराच और तोटक जैसे छंदो को चुना है।

संदर्भ–संकेत

1, पल्लव, सुमित्रा ननन्द पंत, भूमिका, पृ.3
2, भाषा विज्ञान, डॉ0 भोलानाथ तिवारी, पृ.5
3, हिन्दी व्याकरण, कामता प्रसाद गुरू, पृ.10
4, भक्तिमनोहर, चं.शो.सं.प्रति, निधानगिरि,पृ.112
5-15, तदुपरिवत्, पृ.29,129,19,23,24,112,42,36,47,41,48
16-25, तदुपरिवत्, पृ.2,2,4,4,18,8,8,16,18,112
26-35, तदुपरिवत्, पृ.145,19,1925,48,16,74,45,45,174
36-45, तदुपरिवत्, पृ.127,231,231,17,231,23,22103,103,112
46-55, तदुपरिवत्, पृ.95,106,75,121,124,232,45,83,46,46
56-65, तदुपरिवत्, पृ.47,47,42,18,18,47,101,222,223,49
66-75, तदुपरिवत्, पृ.18,64,75,68,69,75,69,73,53,55
76-85, तदुपरिवत्, पृ.54,54,58,66,46,72,77,18,46,74
86-95, तदुपरिवत्, पृ.47,48,48,101,101,198,93,102,107,75
96-105, तदुपरिवत्, पृ.54,4,124,54,4,200,48,17,111,200
106-115, तदुपरिवत्, पृ.218,111,111,111,193,224,201,201,224,201
116-125, तदुपरिवत्, पृ.201,201,76,200,71,111,111,123,41,83
126-136, तदुपरिवत्, पृ.69,7,120,170,76,13,124,47,8,145,69
137, भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृ.186,2002 पटना।
138, भक्तिमनोहर, चं.शो.स.प्रति, निधानगिरि, पृ.143
139-148, तदुपरिवत्, पृ.48,55,57,29,31,32,227,57,37,38
149-158, तदुपरिवत्, पृ.197,11,75,75,194,16,85,101,105,32
159-168, तदुपरिवत्, पृ.110,42,45,124,125,125,108,38,109,109
169-178, तदुपरिवत्, पृ.109,45,19,41,108,41,41,41,41,111

179-188, तदुपरिवत्, पृ.43,43,46,18,18,29,79,83,84,104
189-198, तदुपरिवत्, पृ.117,25,79101,26,26,3,32,3,6,4,8
199-208, तदुपरिवत्, पृ.48,74,83,117,79,95,9,399,32
209-218, तदुपरिवत्, पृ.29,139,110,111,46,78,83,83,84,84
219-228, तदुपरिवत्, पृ.89,92,104,94,97,99,111,137,83
229-238, तदुपरिवत्, पृ.18,18,31,32,32,40,84,84,74
239-248, तदुपरिवत्, पृ.83,84,84,84,76,86,86,88,95
249-258, तदुपरिवत्, पृ.11,11,100,100,102,102,102,107,137
259-268, तदुपरिवत्, पृ.83,84,88,93,9,95,95,99,92,104
269-278, तदुपरिवत्, पृ.137,111,111,135,101,23,84,84,101,96
279-288, तदुपरिवत्, पृ.111,138,17,17,5,5,5,5,16,55
289-298, तदुपरिवत्, पृ.5526,31,52,38,39,12,11,27,65,
299-308, तदुपरिवत्, पृ.205,59,13,9,9,19,40,41,11,12
309-318, तदुपरिवत्, पृ.13,13,37,9,4041,41,18,36,38
319-328, तदुपरिवत्, पृ.34,40,9,12,17,17,15,205,11,54
329-338, तदुपरिवत्, पृ.36,40,45,25,36,5023,46,29,18
339-348, तदुपरिवत्, पृ.18,22,25,26,26,32,46,3,25,6
349-358, तदुपरिवत्, पृ.214,211,213,29,214,11,13,224,244,273
359-368, तदुपरिवत्, पृ.25,31,33,214,214,230,231,231,18,231
369-378, तदुपरिवत्, पृ.231,231,65,64,65,63,92,92,62,62
379-388, तदुपरिवत्, पृ.62,62,63,47,48,197,202,15,15,15
389-398, तदुपरिवत्, पृ.18,23,32,17,17,23,24,24,26,22
399-408, तदुपरिवत्, पृ.24,24,24,25,29,31,31,87,26,33
409-418, तदुपरिवत्, पृ.16,41,109,104,103,53,8,14,16,64
419-428, तदुपरिवत्, पृ.27,30,42,64,64,26,30,26,27,33
429-438, तदुपरिवत्, पृ.11,314,211,212,30,68,68,68,112,70,70
439-448, तदुपरिवत्, पृ.70,70,75,78,112,83,88,88,92,92
449-458, तदुपरिवत्, पृ.92,92,93,93,93,96,96,96,99,124
459-468, तदुपरिवत्, पृ.101,3,102,102,99,99,104,104,105,109,114
469-478, तदुपरिवत्, पृ.110,110,111,111,111,237,111,111,110,111,111
479-488, तदुपरिवत्, पृ.103,123,113,113,113,134,103,16,30,213
489-498, तदुपरिवत्, पृ.96,32,104,109,109,123,123,133,133,195
499-508, तदुपरिवत्, पृ.13,114,102,102,102,102,121,140,104
509-518, तदुपरिवत्, पृ.52,52,52,48,79,79,88,18,37,18
519-528, तदुपरिवत्, पृ.19,22,25,25,25,27,39,37,47,27
529-538, तदुपरिवत्, पृ.30,197,167,4,16,30,78,14,29,29
539-548, तदुपरिवत्, पृ.230,48,222,72,4,14,14,14,14,14
549-558, तदुपरिवत्, पृ.59,18,18,18,52,15,9,30,30,54

559-568, तदुपरिवत्, पृ.194,27,29,29,60,60,60,63,245,63,59
569-578, तदुपरिवत्, पृ.61,70,71,84,197,150,90,95,95,95
579-588, तदुपरिवत्, पृ.104,112,112,237,237,33,17,17,95,110
589-594, तदुपरिवत्, पृ.110,112,130,42,42,196,113

595-	आकाशवाणी छतरपुर, द्वारा प्रसारित शोधकत्री (अनामिका) की वार्ता, निधानगिरि कृत भक्त्तिमनोहर महाकाव्य,प्रसारण तिथि-25.11.05
596-597	तदुपरिवत्, पृ.598,599,600,200,197,211,211,25
601	काव्यमीमांसा, राजेश्वर, पृ.54
602	राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीयएकता, पृ.सं.3-4, दिनकर
603	नाट्यशास्त्र, भरत
604-610	भक्ति-मनोहर, निधानगिरि, पृ.1,63,55,52,52
609-616	तदुपरिवत्, पृ.181,57,64,70,165,187,219
617-621	तदुपरिवत्, पृ.54,58,224,201
622-623	तदुपरिवत्, पृ.227,169,
624	अर्था वाच्यश्च लक्षणश्च व्यंग्यश्चेति त्रिधागत:।साहित्य दर्पण।
625	तंत्र संकेतितार्थस्व बोधनात गिमाधिधा। साहित्य दर्पण।
626-627	भक्तिमनोहर, निधानगिरि, पृ.130,254
628	भाषा अध्ययन के आधार, डॉ0 प्रेमनारायण टंडन, पृ.72-73
629-30	भक्तिमनोहर, पृ.104,237
631	आधुनिक हिन्दी काव्य भाषा, डॉ0 रामकुमार सिंह, पृ.121(1965)
632	काव्यालोक द्वितीय उद्योत, पं.रामदहिन मिश्र, पृ.131
633-635	भक्तिमनोहर, निधानगिरि, ह.प्र.बाँदा, पृ.138,230,230
636-	सव्यप्नु 12.6
637	संस्कृत वाङमय का वृहद इतिहास, द्वितीय खण्ड, स.श्री बलदेव उपाध याय, पृ.515
638,39	भक्तिमनोहर, निधानगिरि, पृ.253,25
640	संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे परिशिष्ट
614,642,643	भक्तिमनोहर, निधानगिरि, पृ.1,1/2, 1/3
644,647	तदुपरिवत्, पृ.1/4,1/5,25,66
648-658	तदुपरिवत्, पृ.56,74,74,196,116,116,116,157,159,161,151
659-61	तदुपरिवत्, पृ.133,134,1

षष्ठम् परिवर्त्त

'भक्ति मनोहर' में अलंकार, गुण, रीति, ध्वनि,

शब्दालंकार– अनुप्रास, यमक, वीप्सा, अतिश्योक्ति
अर्थालंकार– उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टान्त, पुनरुक्तिप्रकाश, श्लेष, वक्रोक्ति, संदेह, दीपक आदि।
अलंकारों के विशिष्ट प्रयोग
अलंकारों के प्रयोग में कवि की मनोभूमि
गुण, रीति एवं ध्वनि
ओज, प्रसाद, माधुर्य प्रयोग एवं नाद सौन्दर्य
गौड़ी रीति, पांचाली रीति, वैदर्भी रीति एवं प्रधान वृत्तियां
संदर्भ-संकेत

षष्टम् परिवर्त्त
'भक्ति-मनोहर' में अलंकार, गुण, रीति, ध्वनि

अलंकार काव्य के अंगभूत शब्द और अर्थ पर ही आश्रित होते हैं। शब्द और अर्थ का सहभाव काव्य है- ''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।''[1] पण्डित जगन्नाथ ने ''रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।''[2] कहकर रमणीय अर्थ के साथ शब्द को भी संयुक्त किया है। काव्य में जिन शब्द और अर्थ का प्रयोग होता है, वे मूलतः अभिन्न हैं। कालिदास ने कहा-

''वागर्थाविव संपृक्तौ वार्गर्थप्रतिपत्तये।''[3]

यह बात तुलसीदास ने भी व्यक्त की-

''गरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।''[4]

किन्तु अभिन्न होते हुए भी शब्द और अर्थ पर आश्रित होने वाले शब्दालंकारों तथा अर्थालंकरों का भेद किया गया है। इसका आधार काव्य सौन्दर्य को पृथक रखकर प्रस्तुत करना रहा होगा।

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र के षोड्श अध्यायों में अलंकरों का विवेचन किया है। उन्होंने शब्दलंकार या अर्थालंकार शब्द का प्रयोग तो नहीं किया किन्तु दोनों प्रकार के अलंकरों का एक साथ उल्लेख किया है-

''उपमादीपकं चैव रुपकं यमकं तथा।
काव्यस्यैते हलंकाराश्चत्वारः परकीर्तिताः।।[5]

'अलङ्करोतीत्यलङ्कारः[6] इस व्युत्पत्ति के अनुसार शरीर का अलंकृत करने वाले अर्थ (पदार्थ) को 'अल्ङ्.ाकर' कहते हैं। जिस प्रकार कटक-कुण्डल आदि अलंकार शरीर को अलंकृत करते हैं, इसलिए उन्हें अलंकार करते है, उसी प्रकार काव्य में अनुप्रास-उपमा आदि काव्य-शरीर शब्द और अर्थ को अलंकृत करते हैं, इसलिए वे अलंकार कहे जाते है। अग्नि-पुराण में काव्य को शोभाकारक धर्म को अलंकार कहा गया है- ''काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचछते''[7] और काव्य में शोभा में अनुग्राहक तत्व को गुण कहा जाता है। इस प्रकार अग्निपुराण में गुण और अलंकारों का समान महत्व प्रतिपादित है, इतना ही नहीं, बल्कि अग्निपुराण में अभिधा लक्षणा आदि को भी अलंकरों के अन्तर्गत समाविष्ट कर लिया गया है। भामह ने काव्य के शोभाव्यापक तत्व को अलंकार कहा है। उनका कथन है कि रमणी का मुख सुन्दर होने पर भी अलंकार के अभाव में सुशोभित नहीं होता- न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्'' इसी प्रकार काव्य में सौन्दर्य के रहने पर अलंकार के बिना काव्य में पूर्ण चमत्कार नहीं दिखाई देता।

उद्भट ने गुण और अलंकारों में कोई भेद न मानकर दोनों को समान महत्व दिया है। इस प्रकार अग्निपुराण में अलंकार को काव्य का अनिवार्य धर्म बताया गया है और

तद्नुसार भामह, दण्डी, उद्भट ने भी अलंकरों को काव्य का अनिर्वाय धर्म माना है।

आनन्दवर्धन ने वामन की दृष्टि को समझा और उस विचार-सरणि में एक कड़ी और जोड़ दी। उनके अनुसार काव्य के आत्मभूत रसादि ध्वनि के आश्रित धर्म गुण हैं, और काव्य के अंगभूत शब्द और अलंकार अर्थ के आश्रित धर्म हैं-

''अङ्गश्रितास्त्वलंकाराः मन्तव्याः कटकादिवत्।'' इन दोनों आचार्यो की विचारधाराओं को ग्रहण कर मम्मट ने अलंकरों का एक लक्षण स्थिर किया कि अलंकार कभी-कभी रसादि को अलंकृत करते है इसलिए वे काव्य के अस्थिर धर्म हैं और वे अनुप्रास-उपमा आदि हार आदि के समान काव्य के अलंकार होते हैं-

''उपकुर्वन्ति तं सन्तं येडङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिव दलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।[8]

साहित्यदर्पणकार, विश्वनाथ, मम्मट के अनुसार ही अलंकार का स्वरूप बताते हुए कहते है कि मानव के शरीर की सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने वाले केयूर आदि अलंकारों के समान काव्य के शरीरभूत शब्द और अर्थ के सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने वाले अनुप्रासादि अलंकार शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म है और काव्यात्मभूत रसादि के अभिव्यंजन में सहायक होते हैं-

''शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।''[9]

इस प्रकार कह सकते है कि काव्यगत अलंकार काव्य के सहज धर्म है और वाक्यात्मक काव्य धर्मी। धर्म धर्मी में रहता है, अतः काव्यलंकार वाक्यात्मक काव्य से अलग नही होते, क्योंकि काव्य में शब्द और अर्थ अलंकार के आधार हैं, धर्मी है और अलंकार उनके शेभाकारक धर्म है। धर्म धर्मी के बिना नहीं रहता, अतः काव्यलंकार शब्दार्थ रुप काव्य से पृथक नहीं रह सकते। इसी आधार पर अलंकार के तीन भेद निरुपित किये गये हैं- शब्दलंकार, अर्थालंकार ओर उभयालंकार।

1. **शब्दालंकार**- शब्दालंकार को शब्द को अलंकृत करने वाले धर्म को शब्दालंकार और अर्थ को अलंकृत करने वाले धर्म को अर्थालंकार तथा शब्द और अर्थ दोनों को अलंकृत करने वाले धर्म को उभयालंकार कहते हैं, जहाँ कुछ विशेष शब्दों के प्रयोग से काव्य में सुन्दरता आ जाती है, वहाँ शब्दालंका होता है।

अनुप्रास– 'अनुप्रास शब्द अनु + प्र + आस से मिलकर बना है। अनु का अर्थ बार-बार 'प्र' का अर्थ है पास-पास में और आस का अथ है रखना। अर्थात् वर्णो का बारम्बार पास-पास में आवृत्ति होना। वर्णो की समानता को अनुप्रास अलंकार कहते है। अर्थात् स्वरों को विषमता होने पर भी व्यंजनों की समानता (आवृत्ति) अनुप्रास अलंकार है।

अनुप्रास शब्द का अर्थ है रसाव्यनुगत: प्रकृष्ट आस: (न्यास:) अनुप्रास: अर्थात् रसभावादि के अनुकूल वर्णो का प्रकृष्ट अव्यवहित चमत्कारजनक न्यास अनुप्रास अलंकार है। यह अनुप्रास छैकगत और वृत्तिगत दो प्रकार का होता है। छेकानुप्रास विदग्घजनों द्वारा प्रयुक्त अथर्वा दिग्धजनों के आश्रित होता है और वृत्ति मधुर आदि रसों के अनुकूल नियत कोमल वर्ण का रस विषयक व्यापार है। माधुर्य आदि के व्यञ्जक सुकुमार-वर्णित होने से मधुरादि रसों के उपकारक शब्द का संघटना रुप व्यापार विशेष वृत्ति है और वृत्ति पर आधारित अनुप्रास वृत्यनुप्रास है।

'निधारगिरि' कृत 'भक्ति-मनोहर' में अनुप्रास के भेदानुभेद निम्नवत् हैं-

(अ) ''जय जय जग्य सरीर विहारी। गायत्री श्रुत तृचा तुम्हारी।''[10]
यहाँ 'ज' वर्ण की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार है।

(ब) ''अधिक अपुन से होई गुन आनंद तासै मांन।
लघु गुन नर पर कूर कृपा निदरै नहि बुध बांन।
होइ बराबर जास गुन करत मित्रता सोई।
राजनीत उपदेश अस गन गुन राषौ जोइ।''।।

(स) ''अक्रिय अकल अवद्ध असंगी। अविनासी अनंत अनरंगी।।
अचल अखंड अग्रेह अमानी। सकल जगत आधार भमांनी।।।
आदि अंत नहि अंतरजामी। सो है सर्वलोक पति स्वामी।।
मै मेरौ मिथ्या कर मानौ। आतम ऐक सत्त उर आनौ।।।
यह सहस्त्र मै ऐक उवाई। वच मन कर्म करौ सब भाई।।
भोजन हव तपादिक कीजे। ईश्वर कौ अर्पन कर दीजे।।
गुरू पद सेवन सै मिल ग्याना। कर हरि पूजन विविध विधाना।।
सुनै चरित नित श्रद्धा राखै। कीर्तन कर गुन कर्म न भाषै।।''[12]
उक्त में 'अ' वर्ण की एक से अधिक बार अवृत्ति है।

(द) प्रभु परमेश्वर पुरुष पुराना [13]
'प' वर्ण की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्यानुप्रसास है।

(य) ''कोउ कह कुल केकई कुवेली।''[14]

उक्त पंक्ति में 'क' वर्ण की आवृत्तियां होने से अनुप्रास अलंकार के अन्तर्गत वृत्सानुप्रास अलंकार है।

(र) पावन पानी पान भर प्रभु पद पदम पखार।''[15]

यहाँ 'प' वर्ण की सुन्दर आवृत्तियाँ अनुप्रास के कुशल एवं दक्ष प्रयोगों को पुष्ट करती है।

(क) ''चपला चमक-चमक चक-चौधत।''[16]

यहाँ 'च' वर्ण की मनोरम आवृत्तियाँ अनुप्रास के लालित्य को संवर्धित करती है।

(ख) ''चंचल चाल चलत-चतुराई।।''

यहाँ 'च' वर्ण की आवृत्ति के कारण अनुप्रास अलंकार है।

(ग) ''नीके निरखहुँ नीक निकाई।''[17]

प्रस्तुत उदाहरण में 'न' वर्ण की मंजुल आवृत्तियाँ अनुप्रास के माध्यम से कला की श्री वृद्धि करती है।

(घ) ''भर-भर जल डारत
सकल झपट लपट झहरान।''[18]

प्रस्तुत पंक्ति में 'झपट' लपट में 'ट' वर्ण की आवृत्ति के कारण अन्त्याप्रास है।

(ड) ''नर-पति आहि-पति सुर-पति वृन्दा।''

प्रस्तुत पंक्तियों में 'नर' 'अहि' 'सुर' सभी शब्दों के अन्त में पति का आवृत्ति के कारण अन्त्यानुप्रास है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने अनुप्रास अलंकार के माध्यम से काव्य में माधुर्य गुण की सृष्टि की है। महाकवि निधानगिरि ने ''उपमा अनुप्रास यमकाई।'' कह कर अपने काव्य में उपमा और यमक के साथ अनुप्रास के विशेष प्रयोगों का संकेत भी किया है।

यमक

जहाँ निरथक अथवा सार्थक स्वर व्यजनों के समूह की आवृत्कि हो वहाँ यमक अलंकार होता है।

यमक वर्णे का प्रयोग तीन प्रकार से होता है-

1. सर्वत्र सार्थक वर्णो का आवृत्ति हो।
2. निर्थक वर्णो की आवृत्ति हो।
3. सर्वत्र सार्थक (अर्थ वाले) वर्णो की आवृत्ति हो।

कावि निधानगिरि के काव्य में 'यमक' अलंकार के सुन्दर प्रयोग पाए जाते है। कतिपय उदाहरण दृष्टवय है-

(अ) ''धरन धरन पद नाहिं बनत कंध चढ़ावहु स्याम।
रावा जिय अस गर्व बड सुन तब हस जग स्याम।[19]

प्रस्तुत पंक्तियों में 'धरन धरन- का प्रयोग दो बार हुआ है, प्रथम का अर्थ धरती और द्वितीय का अर्थ धारण करना ह। अत: 'यमक' अलंकार है।

(ब) ''राज गृहन मै नाहि करौं कहत सपत रघुराइ।
हिय वस प्रभु वनवास दुष सो दुष सहो न जाइ।''

प्रस्तुत पंक्तियों में दुख शब्द का प्रयोग दो बार हुआ है, प्रथम दुख विरह के लिए दूसरा पीड़ा के अर्थ से है अतः यमक अलंकार है।

सन्देह

''जहाँ सत्य या असत्य निश्चत न होने से उपमेय का एक या अनेक उपमानों के रुप में वर्णन किया जाय और यह संशय बना रहे कि यह अमुक वस्तु है या अमुक।''

इसमे कि, क्या, किंवा, धौं, किधौं, कै, या, अथवा वा आदि शब्दों द्वारा सन्देह प्रकट किया जाता है। सन्देह में ज्ञान अनिश्चयात्मक होता है। कवि पाठक को 'यह है अथवा वह है' के विकल्प में छोड़ देता है।

महाकवि 'निधानगिरि' ने 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में संदेह अलंकार का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है-

(क) ''बूझ जनक अविलोक लुनाई, ये बालक किहि के मुनिराई।
मुनि सुत कै बाल नृपति ब्रह्म जीव अनुहार
श्री पति गिरजापति किधौं धर नर वेष पधार
कैधों यह अश्विनी कुमारा, कै कन्दर्प बसन्त उदारा
प्रभा समद सै रतन कि आए, छवि भामिन के लोचन भाए
कै मुनि सुकृत वृक्ष फल, लोने, शोभा शील सरित पति छौनें
बरत न जाए मनोहरताई, रति विराग मन रहा लुभाई।।''[20]

उपर्युक्त छन्द में राम को देखकर जनक आश्चर्य चकित होते है और उन्हें सन्देह होता है कि ये कौन हैं, श्रीपति है अथवा गिरजापति ? नर हैं अथवा अश्वनी कुमार, कन्दर्प हैं अथवा बसन्त, समुद्र से निकले हुए रत्न हैं अथवा मुनि के सुकृत वृक्ष के फल? वस्तुतः सन्देह का सुन्दर उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किया है-

(ख) ''रावन की रानी बिलषानी जातुधानी कहै
कन्थ अभिमानी सुविध सिव नै बिसारी कै।।
कैधों ज्वाला माल वास नास करै चाहत है
नाती पूत मेरे बल भारी भए नारी कै
गर्जत निधानगिरि सिंध के समान
कपि जात धान भारी गज आन प्रान हारी कै
कैधों महा प्रलय के प्रभाकर रिसान है
लंक षाइबै को जीव काल ने पसारी कै।[21]

उपर्युक्त कवित्व में लंका दहन प्रसंग पर फैली हुई अग्नि पर अनेक प्रकार की सम्भानाएं की गई है जिसमें रावण की पत्नी का बिलख कर ये कहना कि लगता है भगवान शिव से सुधि विसार दी है अथवा अग्नि ज्वालाओं की मालाएं मेरे नाती, पूतों

तथा विशाल वंश वृक्ष को भस्म करना चाहती है अथवा सिंध के समान गर्जना करने वाले कपि जातुधान को मार कर अन्य के प्राण हरना चाहते हैं अथवा महाप्रलय के प्रभाकर क्रुद्ध हैं अथवा काल ने लंका को लीलने के लिए अपनी लपलपाती जीभ को फैलाया है ? महाकवि ने उपर्युक्त प्रसंग में कौधों के प्रयोग के माध्यम से सन्देह अलंकार का अत्यन्त भव्यता के साथ निवाहि किया है-

(ग) ''कहत निधानगिरि हाक हनुमान सुनै
जतुधान मान हानि प्रानन विलो गई।।
भाग-भाग जात लाग-लाग आग तहाँ
कैधों लगी आग कैधों तक आग हो गई।।[22]

प्रस्तुत पंक्तियों में लंका में आग लगी है अथवा लंक ही आग की हो गई है कथन में कैधों के प्रयोग से सन्देह अलंकार की सृष्टि की गई है।

(घ) कै भू सुर पहुँचो तट नाहीं।
कै मुह जान कुरुप लजाहीं।।
कै भय जरा संध उर आनी।।[23]

रुकमणी कृष्ण की प्रतिक्षा में है कवि ने उसकी चिन्ता के भावों को सन्देह अलंकार के माध्यम से व्यक्त कराते हुए कहा है कि कृष्ण मुझे कुरूप समझ कर आने में लज्जित हो रहा है अथवा मेरी प्रीति की प्रतीति नहीं मानी अथवा जरासंन्ध के डर के मारे नहीं आए इस प्रकार की सन्दिग्ध स्थिति को सन्देह अलंकार के माध्यम से कवि ने कुशलतापूर्वक व्यंजित किया है।

वीप्सा

जहाँ आदर, आश्चर्य, हर्ष, आतुरता, उत्साह, घृणा, शोक आदि मनोभावों की बहुलता प्रकट करने के लिए शब्द की आवृत्ति हो वहां वीप्सा अलंकार होता है।

महाकवि 'निधानगिरि' के 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में 'वीप्सा' अलंकार के प्रयोग इस प्रकार है-

(क) ''बसन विभूषन जरत बिसारे। सूषे मुष दुःष प्रगटे भारे।।
सुन पुर हा-हा कार धुन। दस सिर कहत प्रचार।।
धाइ-धाइ मेलो सलिल। सावन जल अनुहार।।
भर-भर जल डारत सकल। झपट-लपटझहरान।।
भए विकल जे भट प्रबल भाजत नारि समान।।

(ख) ''जात धान अकुलान, विकल जातधानी सकल।
देषत कोप कृसान, हा-हा कार पुकार सब।।[25]

अतिशयोक्ति

'अतिशयित: त्रि0 अतिक्रान्ते, अर्थात उल्लंघन। लोक सीमा का उल्लघन करने वाली उक्ति में अतिश्योक्ति अलंकार होता है। इसके सात भेद माने गये हैं-

1. रूपकातिशयोक्ति- (भेदेप्यभेद: अर्थात् भेद में अभेद देखना) वहां पर केवल उपमान या अप्रस्तुत का ज्ञान कराया जाय, वहाँ रुपका तिशेयाक्ति होती है।

2. भेदकातिशयाक्ति- (अभेद में भेद) जहाँ अभिन्नता में भी भिन्नता दिखायी जाती है, वहाँ पर भेदकापिश्योक्ति अलंकार होता है।

3. सम्बन्धात्िशयोक्ति- जहाँ पर असम्बन्ध में सम्बन्ध की कल्पना की जाय, वहाँ पर सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार होता है।

4. असम्बन्ध्णातिशयोक्ति- जहाँ किसी को योग्य होने पर भी अयोग्य बताया जाय, वहाँ असम्बन्धातिशयोक्ति होती है।

5. अक्रमातिशयोक्ति- जहाँ कारण और कार्य का एक साथ होना दिखायी जाता है, वहाँ असम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार होता है।

6. चपलातिशयोक्ति- जहाँ पर कारण के पहले ही कार्य पूर्ण होने का वर्णन किया जाता है, वहां पर अत्यन्तातिशयोक्ति होती है।

महाकवि निधानगिरि ने 'भक्ति-मनोहर' काव्य में अलौकिक चमत्कारों का वर्णन किया है किन्तु अतिशयोक्तियों के स्थान पर वे प्रभु महिमा का सत्यापन नहीं करते दिखाई देते है। अतिश्योक्ति एक उदाहरण इस प्रकार है- जहाँ जानकी नाथ निवास करते है वहाँ बिना लगाये ही द्वादस उपवन तैयार हो जाते हैं- अतएव यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है-

''राजशिरोमणि नित निवास जहाँ जानकी नाथ।
तहाँ उपवन द्वादश भए बिना लगाए हाथ।।''[26]

अर्थालंकार-

''अलङ्करणमर्थानामर्थालंकार
तं विना शब्द सौन्दर्यमपि नास्ति मनोहरम्''।[27]

जो अर्थ में चमत्कार उत्पन्न करे उसे अर्थालंकार कहते हैं। अर्थालंकार के अनेक भेद हैं, इनकी कोई निश्चित संख्या नहीं मानी जा सकती। विभिन्न विद्वानों ने अलग-अलग संख्याओं को स्वीकार किया है। अलंकार किसी प्रकार के चमत्कार पर आधारित रहते है। यह चमत्कार जिन आधारों पर आधृत रहता है, वे है- साम्य, विरोध, श्रृंखला, न्यास, कारण-कार्य, सम्बन्ध निषेध, गूढ़ार्थप्रतीति आदि। इन्हीं आधारों पर अलंकारों के अनेक वर्ग बनाये जा सकते है और इन्हीं वर्गो में विभिन्न अलंकार आते हैं-

1. साम्यमूलक अलंकार- साम्य रुप गुण साम्य से सम्बन्धित होते है, जैसे- उपमा, उत्प्रेक्षा, रुपक, भ्रम, सन्देह आदि।
2. विरोधमूलक- विरोध का चमत्कारपूर्ण प्रकाशन इन अलंकारों में रहता है जैसे विरोधाभास, असंगति, विषम, सम, विशेषोक्ति।
3. श्रृंखलामूलक- श्रृंखलामूलक अलंकारों में दो या दो से अधिक पदार्थो का क्रम से वर्णन होता है। वे एक दूसरे से श्रृंखला में बंधे से होते हैं- कारणमाला, सार, एकावली आदि।
4. न्यायमूलक- न्यायमूलक अलंकारों में तर्क, लोक प्रमाण अथवा दृष्टान्त से युक्त वाक्य के द्वारा रोचकता उत्पन्न की जाती है- काव्यलिंग, यथासंख्य, तद्‌गुण, लोकोक्ति, अतदगुण, मीलितए उन्मीलित परिसंख्या आदि।
5. कारण-कार्य सम्बन्धमूलक- विभावना, हेतुत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि।
6. निषेधमूलक- अपहुति, विनोक्ति, व्यतिरेक आदि।
7. गूढ़ार्थ-प्रीति-मूलक- पर्यायोक्ति, समायोक्ति, मुद्रा, व्याजनिदा, ब्याज स्तुति आदि।

उपमा अलंकार-

आचार्य मम्मट के अनुसार उपमा का लक्षण इस प्रकार है- साधर्म्यमुपमा भेद।''[28] उपमा तथा उपमेय का भेद होने पर साधर्म्य का वर्णन उपमा कहलता है। उपमा का अर्थ है 'उप' (समीप) + 'मा' (तौलना) अर्थात् समीप रख कर दो पदार्थो का मिलान करना।

जहाँ एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ किसी गुण, धर्म अथवा स्वरूप के कारण समानता दिखायी जाती है, वहाँ उपमा अलंकार होता है। उपमा के तत्व, उपमेय, उपमान, साधारण धर्म, या गुण और वाचक शब्द।

उपमेय- जिस वस्तु का वर्णन या तुलना की जाय, उसे उपमेय कहते है
उपमान- जिस वस्तु या पदार्थ से उपमा दी जाती है उसे उपमान कहते है।

साधारण धर्म- उपमेय और उपमान की जिस गुण से तुलना की जाय, उस गुण को साधरण धर्म कहते है।

वाचक- उपमेय और उपमान की समता प्रकट करने वाले शब्द वाचक शब्द कहलाते है।

उपमा अलंकार के तीन भेद होते है- पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, मालोपमा।

1. पूर्णोपमा- जहाँ उपमा के चारों अंग उपस्थित होते है वहाँ पूर्णोपमा अलंकार होता है यथा, निधान गिरि कृप भक्ति मनोहर महाकव्यि में पूर्णोपमा के उदाहरण इस प्रकार दृष्टव्य है-

(क) ''छिदे शरीर सोह सर कैसे। नचत मयूर स्याम गिर जैसे।।[29]

यहां शरीर उपमेय, मयूर और साधारण धर्म नाचना, छिदना वाचक, जैसे, इसलिए यहाँ पूर्णोपमा।

(ख) ''जरत देह जनु दिय वाती सी'' [30]

यहाँ देह उपमेय, दिय उपमान और साधारण धर्म जरह है और वाचक सी है इसलिए यहाँ पर पूर्णोपमा है।

(ग) ''ये रविकुल दीपक सम अंगाा,
गछुवत जरे धनु मनहूं पतंगा।।''[31]

प्रस्तुत प्रसंग में राम को रविकुल के दीपक से उपमित किय गया है जिस दीपक के छू जाने से धनुष पतंगे की तरह जल गया जहाँ उपमेय राम, उपमान दीपक और वचक सम और साधारण धर्म आग है अतः यहाँ पर पूर्णोपमा अलंकार है।

2. **लुप्तोपमा**- जहाँ उपमा में उपमेय, उपमान, वाचक तथा धर्म इनमें से एक, दो या तीन का लोप रहता है वहाँ लुप्तोपमा अलंकार होता है। भिन्न-भिन्न अंगों के लुप्त होने के कारण लुप्तोपमा के चार भेद होते हैं।

''तुम लैय आवहु श्याम कौं। मधुकर सषा दिखाव।
ब्रज जन चात्रक अति वृषत। स्वादि बूंद बरसा।।[32]

प्रस्तुत पंक्तियों में गोपिकाओं का ये कथन है कि मधुकर श्याम को ले आवो अपने सभा को दिखाओ, ब्रज जन चातक अत्यन्य वृषित है श्वाति बूंद बरसाओ।

प्रस्तुत कथ में श्याम की उपमा धनश्याम से नहीं दी गई है जबकि अन्यकार्य व्यापार बादल से ही सम्बन्धित है अतः यहाँ लुप्तोमया अलंकार है। एक अन्य उदाहरण भी दृष्टव्य है-

''त्रोष कमल सम्पुट भए, विक सावहुँ रवि आन।[33]

यहाँ घोष कमल के सम्पुटित होने का वर्णन है तथा उनके विकासाने के लिए रवि को पुनः लाने की बात कही है वह रवि कृष्ण है किन्तु यहाँ कृष्णपद लुप्त है अतः यहाँ लुप्तोपमा अलंकार है।

3. **मालोपमा**- जहाँ एक ही उपमेय के माला में पुष्प के सदृश अनेक उपमान गृंथित होते हैं वहाँ मालोपमा होती है।

(क) भरत भक्ति अति प्रभु कही गोपिन प्रेम अपार।
भयो अधिक दो मै कवन संसय नाथ विचार।।
भरत भक्ति वर दण्ड सम, सुन गिरिराज कुमार।
प्रीति पताका गोपिका जसं दुह अगम विचार।।[34]

उपर्युक्त पंक्तियों में भरत की भक्ति और गोपियों के प्रेम की तुलना की गई है। भरत भक्ति को श्रेष्ठ दण्ड से उपमित किया गया है और गोपिकाओं का प्रीति का उपमान पताका बताई गई है उपमेय में उपमान की समानता सम वाचक शब्दों के माध्यम से कुशलतापूर्वक व्यंजित की गई है।

उत्प्रेक्षा

'उत्प्रेक्षा' उत+प्र+ईक्षा-अर्थात् प्रकृष्ट रुप से देखना। जहाँ पर उपमेय या प्रस्तुत की प्रकृष्ट उपमान या अप्रस्तुत के रुप में सम्भावना (कल्पना) की जाय, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। मनु, जनु, जानहु, मनहु, मानों, निश्चय, इव, जानों आदि उत्प्रेक्षा के वाचक शब्द है।

आचार्य मम्मट ने उत्प्रेक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है- "सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।"[35] उत्प्रेक्षा के तीन भेद होते हैं- 1. वस्तुत्प्रेक्षा 2. हेतुत्प्रेक्षा 3. फलोत्प्रेक्षा 4. गम्योत्प्रेक्षा।

वस्तुत्प्रेक्षा

जहाँ पर किसी वस्तु या विषय के स्वरूप स्पष्टीकरण के निमित्त अप्रस्तुत या उपमान की कल्पना प्रस्तुत की जाय वहाँ वस्तुप्रेक्षा होती है।

हेतुत्प्रेक्षा

जहाँ पर अहेतु में हेतु की सम्भावना की जाय अर्थात अकारण को कारण मानकर जो उत्प्रेक्ष की जाती है, वहाँ पर हेतुत्प्रेक्षा होता है।

फलोत्प्रेक्षा

जहाँ जो वास्तविक फल न हो उसे फल के रूप में सम्भावित किया जाता है वहाँ फलोत्प्रेक्षा होती है।

गम्योत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा में वाचक शब्द लुप्त रहता है तब उसे गम्तोत्प्रेक्षा कहते है।

भक्तिमनोहर में उत्प्रेक्षा अलंकार के विविध रूप इस प्रकार है-

(क) "नासा श्रवन कपोल हनु भाल तिलक मस विन्द,
जनु श्रृंगार सरोज पर सोभित भयौ मलिदं।।"[36]

नासिका, श्रवण, कपोल, हनु भाल पर तिलक और तिल शोभित हो रहे हैं मानो श्रृंगार के सरोज पर मलिदं (भ्रमर) शोभित हो रहा हो यहाँ पर सम्भावना होने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(ख) "दो-दो दतियाँ जब हंसत निरषद विमल प्रकास।
मनहु अरुन अरविन्द मै कुंद कलिन कर वास।"[37]

प्रस्तुत उदाहरण में दो-दो दांत हसते समय विमल प्रकाश को फैलाते है, मानो अरुण अरविन्द पर कुंदकलियाँ वास कर रहीं है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(ग) ''कोमल तन भूषन बहु भाति
जनु श्रृंगार छोट तरु प्राती।।[38]

प्रस्तुत उदाहरण में कोमल तन, आभूषणो से युक्त है ऐसा प्रतीत होता है मानो श्रृंगार का छोटा प्रतिरूप हो यहाँ कृष्ण के शरीर में श्रृंगार के वृक्ष की सम्भावना की गई है अत: यहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(घ) ''जनु नृप बीज जम निकसे
बिखा विमल सुमन जुत विकसे।।''[39]

प्रस्तुत पक्तियों में निधानगिरि ने चारों पुत्रों की संयुक्त शोभा का चित्रण करते हुए कवि ने सामूहिक सौन्दर्य का उन्मीलन किया है मानो राजा दशरथ के सुकृत के बीज जग कर निकल आए हैं। बिखों में फूल संयुक्त होकर निकल आए हैं।

उत्प्रेक्षा के कतिपय मनोज्ञ उदाहरण कवि निधानगिरि के काव्य में इस प्रकार हैं-

(क) ''देत जाचकन दान बहु।
अवध पुरी नर नार।।
विथुरे मुक्ता रतन मनि।
जनु चांवर जौ ज्वार।।''[40]

राम जन्म के अवसर पर अवधपुरी के नर नारियों तथा याचको को राजा दशरथ के द्वारा बहुत प्रकार का दान दिया गया। रत्न और मोती दान में इस प्रकार फैले पड़े थे मानो चावल, जौ और ज्वार के बीज फैले हों।

(ख) ''लिये गोद भर मोद सुमित्रा। शोभा की जनु दिवट पवित्रा।।''[41]

सुमित्रा पुत्र को गोद में लिए हुए ऐसी प्रतीत होती हैं मानो उनकी गोद शोभा का पवित्र दिवट हो। दिवट वह आधार है जिस पर दीपक प्रज्जवलित किया जाता है।

(ग) ''कोमल सिर चिक्वन कच छो। मनहु मधुप शिशु पलोटे।।''[42]

बालक के सिर पर छोटे-छोटे चिकने बाल ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मधुपों के शिशु के दल के दल पलोट रहे हों।

(घ) ''दूध दंत दुत जब हसत अद्‌भुत उपमा पाइ।
मनौ जलद मैं चंचला प्रगटत दुर दुर जाइ।।[43]

बालकों के दूध के दाँतों की दुति हँसते हुए अद्‌भुत प्रतीत होती है मानो बादलों में चंचला प्रगट होती है और छिपती है।

रूपक

जहाँ उपमेय को उपमान रूप कहा जाय, वहाँ रूपक अलंकार होता है। रूपक के मुख्य दो भेद है- 1-अभेद रूप 2- तद्रूप रूपक।

1. अभेद रूप

जहाँ उपमेय और उपमान में कोई नहीं रह जाता है, वहाँ अभेद सम अभेदरूपक अलंकार होता है। इसके तीन भेद हैं। सम, अधिक, न्यून।

सम अभेदरूपक

जहाँ उपमेय और उपमान दोनों बराबर हों, वहाँ सम अभेद रूपक होगा इसके भी तीन भेद होते है सांग रूपक, निरंग रूपक, परम्परित रूपक।

सांगरूपक

जहाँ पर उपमान का उपमेय अंगो सहित आरोप होता है, वहाँ पर साँगरूपक होता है।

निरंगा रूपक

जहाँ सम्पूर्ण अंगो का साम्य नहीं, वरन् केवल एक अंग का ही आरोप किया जाता है। वहाँ निरंग रूपक अलंकार होता है।

परम्परित रूपक

जहाँ पर प्रधान रूपक एक अन्य रूपक पर आश्रित रहता है और वह बिना दूसरे रूपक के स्पष्ट नहीं होता, वहाँ पारम्परित रूपक माना जाता है।

अधिक अभेद रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान में अभेद होने पर भी उपमेय में उपमान से कुछ अधिकता दिखाई जाय, अधिक अभेद रूपक होता है।

न्यून अभेद रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ न्यूनता होने पर भी अभेदता रहती है, वहाँ न्यून अभेद रुपक होता है।

तद्रूपरूपक

जहाँ उपमेय को उपमान से भिन्न रख कर भी उसी का रूप और कार्य करने वाला कहा जाय। इसके भी तीन भेद हैं। सम, अधिक, न्यून।

समतद्रूप रूपक

जहाँ उपमेय ओर उपमान में भिन्नता रखते हुए भी उन दोनों में समता दिखाई जाय।

अधिक तद्रूप रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान से अधिकता दिखाई जाती है, वहाँ अधिक तद्रूप रूपक होता है।

न्यून तद्रूप रूपक

जहाँ उपमेय में उपमान की अपेक्षा न्यूनता दिखाई जाय, तब वहाँ न्यून तद्रूप रूपक होता है।

'निधानगिरि' कृत भक्तिमनोहर में रूपक अलंकार के तिपय उदाहरण इस प्रकार है-

(क) ''बिकुल कुमुद बिकास को रामचन्द्र सुषदाई।
कमधैनु शिशु केलि पै प्रेम सुमति कौ प्याई।।''[44]

प्रस्तुत पंक्तियों का भाव यह है कि रामचन्द्र रविकुल रूपी कुमुद को विकसित करने वाले हैं, शिशु की क्रीड़ाएं कामधेनु की भांति हैं तथा सुमति (बुद्धि) प्रेम पूर्वक इस दुग्ध का पान करती है।

(ख) ''विरह हुताशन उपजी भारी, देह लता जर रही हमारी।
कृपा नयन जल सींच विशाला, हरित करै बन कौशिल पाला।।''45

प्रस्तुत पंक्तियों का भावार्थ है कि विरह रूपी भारी अग्नि उत्पन्न हो गई है, हमारी देह रूपी लता जल रही है, हे कौशिल्या नन्दन कृपा रूपी नयन जल से सींच कर कब इस देह लता को हरित करेगें। यहाँ पर सांग रूपक अलंकार है।

(ग) ''कनक कराही लंक बनावा, आपुन क्रोध षजा का भावा।
पुर में जातधवन बलवाना, नाना विधु कीन्हें पकवाना।।''[46]

उक्त पंक्तियों का भावार्थ यह है कि लंका को सोने की कढ़ाई बनाया गया, और क्रोध को, खजा नामक मिठाई के भाव में रखा गया, जातुधान जैसे बलवनों को उसमें डाला गया और नाना प्रकार के पकवान बनाए गए। इन पंक्तियों में उपमेय अपने अंगो सहित आरोप होने से सांगरूप अलंकार है।

(घ) ''देह विपिन विरहा अगिन
इन्द्रिय जीव जराय
बुझै स्याम धन प्रेम मय
बैनु बुन्द बरसाय।।''[47]

प्रस्तुत पंक्तियों में भावार्थ है कि गोपियों की देह विपिन हैं (जंगल में) विरह अग्नि है, इन्द्रियाँ जीव हैं जो जल रही हैं श्याम रूपी धन से यह विरहांग्नि बुझेगी, जब वे नैनु रूपी बुन्द बरसाएगें।

(ङ) ''चरन सरोवर मीन मन हृदय एक रस रीति
जोग रेत मै डर तिहिं कहौ कौन अस नीति।।[48]

भावार्थ यह है कि प्रभु के चरण सरोवर हैं गोपियों का मन मीन है, हृदय निरन्तर एक रस में लीन रहता है, हे उद्धव योग रूपी रेत में इन्हे फेक रहे हो यह कौन सी नीति है।

उपर्युक्त पांचो उदाहरणों में सांगरूपक अलंकार का प्रयोग कवि ने किया है।

(क) ''विरह रोग पर वैद्य विचारा।
जयुमति सुत अश्वनी कुमारा।''[49]

उपर्युक्त पंक्तियों में गोपिकाओं का यह कथन कि हमारे विरह रूपी रोग पर यशोदा का पुत्र बेचार वैद्य अश्विनी कुमार है। यहां पर रूपक के समस्त अंग न होने से निरंग रूपक है।

(ख) ''खम्भा धेनु बछरा अनुरागा,
मन्मथ ग्वाल भयौ बड़भागा
मिथलापुर दोहनी बनाई,
आनन्द दुध निकासिव जाई।
उत्सव अमृतमयी दधि कीना,
भूष भवन भाजन भर दीना।
मनिमय मण्डिप खम्भ मथानी,
मथ, श्रृंगर संजोग थिरानी।
राम जानकी माखन पाई,
छवि त्रिभुवन जो तक्र रहाई।।''[50]

प्रस्तुत पंक्तियों में जनकपुर के मण्डप में राम-सीता की जोड़ी का वर्णन करते हुए कवि ने मण्डप के खम्भे को धेनु, अनुराग को बछड़ा, मनमथ को ग्वाल, मिथिला पुरी को दोहिनी और आनंद को दूध के रुप में व्यक्त किया है तथा ही मनिमय मण्डप के खम्भे को मथानी राम जानकी को नवनीत कहा है तथा त्रिभुवन की सुन्दर छवि को तक्र को रूपक से व्यक्त किया है इस प्रकार सांग रूपक का एक सुन्दर उदाहरण कवि की कल्पना प्रतिभा से सृजित हुआ है।

(ग) ''विध किसान जग खेत में, सोभा बीज सुजान।
काटन वारे मदन रति मण्डप कर खर आन।।
रूप रास किय राम सिय अस पट तर कुछ भाय।
मनसजि रति को मजूरी लौनी सिला दिवाय।।''[51]

उपर्यक्त पंक्तियों में कवि ने विधाता को किसान, जगत को खेत तथा शोभा को बीज का रूपक प्रदान किया है, इसी प्रकार कामदेव को फसल काटने वाला तथा रति को अन्न को उसाने वाली तथा राम-सीता की रूप छवि को अन्न की ढेरी के रुप से व्यक्त किया है, संसार का बचा हुआ लावण्य जो राम-सीता की रूप राशि के अवशिष्ट रह गया है वह मानो खेत कटने के बाद गिरे हुए बिखरे अवशेष (सीला) है जिसे मजदूरी के रुप में काम और रति को दे दिया गया है।

(घ) ''समद सौज सो हनुमत कीनी,
पुन मख कुण्ड लंक कर दीनी।
जातु धान बहु वृन्द निवासे,
पुंगी फल तिल धान जावासे।
तिन बल मूल हव्य कर अंगा,
कीन्हों श्रुवा लंगूर अभंगा।
स्वाहा हा-हा कार अनन्ता,
अस विधि मख कीन्हें हनुमन्ता।।''[52]

कवि ने उपयुक्त छन्द में हनुमान द्वारा लंका को यज्ञ का कुण्ड बनाने जातु धान आदि राक्षसों को पुंगी फल, तिल, धान और जवा बनाने, उनके बल को हव्य करने तथा लंगूर को श्रुवा बनाने और हा-हा कार ध्वनि को स्वहा मंत्र पाठ का रूपक देकर, लंक दहन का सम्यक् निर्वाह किया गया है।

दृष्टान्त- दृष्टान्त का अर्थ है 'दृष्टोऽन्त: निञ्चयो यत्र स दुष्टान्त: (अर्थात् दृष्टान्त निश्चित) दिखाकर किसी कही हुई बात का निश्चत कराया जाना इस प्रकार अलंकार में उपयोग-वाक्य कहकर उपमान-वाक्य द्वारा उसका निश्चय कराया जाता है। अर्थात् जहाँ पर उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य तथा उनके धर्मो में वैषम्य होते हुए भी विम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो, वहाँ पर दृष्टान्त अलंकार होता है।

आचार्य मम्मट के अनुसार- दृष्टान्त: पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बतम्।''[53]

महाकवि निधानगिरि के महाकाव्य 'भक्ति मनोहर' में दृष्टान्त के कतिपय उदाहरण इस प्रकार है-

(क) ''बचो विभीषण को सदन, जरी लंक चहुँ फेर।
जिमि भारत मैं बच गए, अण्डा भारै केर।।''[54]

उपुर्यक्त पंक्तियों में लंका दहन में सम्पूर्ण लंका जल जाने से भक्त विभीषण का सदन बच गया जैसे- महाभारत के युद्ध के रणस्थल के बीच में पक्षियों के अण्डे गजराज के घण्टे के गिर जाने से उसके मध्य सुरिक्षत हो गए, यहाँ कवि ने महाभारत के दृष्टान्त का उपयोग किया है।

(ख) ''कौन रंक सम्पद विलस पाई सपनै सोई।
चिरई कंचन की उड़न्त किहि गहबे लीधोय।।''[55]

स्वप्न में सोते हुए किस रंक ने सम्पत्ति का विलास प्राप्त कर लिया जैसे सोने की उड़ती हुई चिड़िया को कोई लीधोय (लेद अर्थात् हरे डण्डे) से नहीं पकड़ सकता। कवि ने यहाँ अर्मूत सम्पत्ति के अधिग्रहण प्रसंग को उड़ते हुए स्वर्ण पक्षी के दृष्टान्त से व्यक्त किया है।

(ग) ''अनगिन गठरी धूम की किन बाँधी धर भौन।
निरगुन तू असमत कथत कहाँ बढ़ाई कौन।।
प्रीति हमारी श्याम सै जदिप प्रान तन भंगा।।
नेही मरन विचार नाहिं पावक जारत पंतग।।''[56]

उपर्युक्त पंक्तियों में गोपिकाओं का ये कथन कि धुंए की गठरी को बांध कर किसने अपने घर में रखा है, वह तो धुआँ प्राणों के लिए घातक होगा, इसी प्रकार निर्गुण जैसे मत को कह कर तुम कौन सी बढ़ाई प्राप्त करोगे, श्याम से हमारी प्रीति यद्यपि देह और प्राणों को भंग करने वाली है, किन्तु पतिंगे पावक में जलते ही है, स्नेही जन

मरण पर विचार नहीं करते। प्रस्तुत प्रसंग में धुएँ की गठरी और पंतगों के पावक में जलने के दुष्टान्त प्रस्तुत किये गए है।

पुनरुक्तिप्रकाश

पुनरुक्तिवद भास का शाब्दिक अर्थ है- पुन: (फिर) उक्ति (कही हुई बात) बात (तरह) आभास (झलक)। जहाँ विभिन अर्थ वाले भिन्नाकार के पद सुनने में समानार्थी प्रतीत हों, वहाँ पुनरुक्तिवदाभास अलंकार होता है।

महाकवि निधानगिरि के 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में 'पुनरुक्तिप्रकाश' अलंकार के सुन्दर प्रयोग मिलते है। यहाँ कतिपय प्रयोग दृष्टव्य है-

(क) ''सुन पुर हा-हा कार धुन
दससिर कहत प्रचार।
धाय धाय मेलो सलिल।
सावन जल अनुहार।।''[57]

(ख) ''भर भर जल डारत सकल।
झपट लपट झहरान।
भए विकल जे भट प्रबल।
भाजत नारि समान।।''[58]

उपुर्यक्त पंक्तियों में लंका में आग फैल जाने के प्रसंग में रावण द्वारा जल के बुझाने के लिये धाय-धाय भर-भर के प्रयोग में कवि ने पुनरुक्ति का सफल प्रयोग किया है।

श्लेष

''श्लेष अलँकृति अर्थ बहु एक शब्द में होत।''

श्लेष शब्द 'शिलष्ट' धातु से बना है जिसका अर्थ है- चिपकना या मिलना। 'शिलष्ट' में एक से अधिक अर्थ चिपके रहते है, अत: जिसके एक से अधिक अर्थ होते है उसे 'शिलष्ट' शब्द कहते है। श्लेष अलंकार के दो भेद होते हैं- अभंग पद श्लेष, संभग पद श्लेष।

अभंग पद श्लेष

अभंग पद श्लेष में शब्द के बिना भंग किये ही एक से अधिक अर्थ निकलते है।

सभंग पद श्लेष

जहाँ शिलष शब्दों को भंग कर अर्थात् तोड़ कर भिन्न अर्थ निकाला जाय, वहाँ सभंग पद श्लेष होता है।

महाकवि निधानगिरि के 'भक्तिमनोहर' में श्लेष के सुन्दर प्रयेग मिलते है। यहाँ कतिपय प्रयोग दृष्टव्य है-

(क) "सीधे लम्ब षम्भ वर कैसें। मदन विजय हित रोपे जैसे।"[59]

प्रस्तुत पंक्तियों में 'मदन' श्लेषार्थ है। मदन कामदेव और ऐतिहासिक मदन वर्मा का अर्थ संगुफित किये हुए है। इसी प्रकार 'खम्भ' खम्भे और विजयस्तंभ के अर्थ में द्वयर्थक है। उपर्युक्त पंक्तियों का भावार्थ इस प्रकार है- "सीधे लम्बवत् श्रेष्ठ खंभे (विजयस्तंभ) है, जो मदन कामदेव, श्लेषार्थ महाराज मदन वर्मा के विजय के हितार्थ रोपे गये हैं। उल्लेखनीय है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में, जिस क्षेत्र से कवि का सम्बन्ध है, वहाँ मदन वर्मा के कीर्ति स्तंभ (विजयस्तंभ), विजय अभिलेख पाए जाते हैं। प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने ऐतिहासिक बिम्बों को श्लेष अलंकार के माध्यम से उद्घाटित किया है।

(ख) "पुर पग जर गृह करहु सनाथा।
लीजै भूर कोष रघुनाथा।
विनय सुनत प्रभु गिरा बषानी।
कोष तुम्हार मोर सत बनानी।[69]

प्रस्तुत पंक्तियों का भावार्थ इस प्रकार है-" विभीषण ने राम से कहा हे नाथ पुर में पग धर का गृह को सनाथ करो और भूरकोष को गृहण करो, यहां कोष का प्रथम अर्थ दृव्य खजाना है किन्तु राम ने प्रत्युत्तर में विभभ्शण से कहा कि कोष तुम्हार है मेरी सत्वाणी है, मुझे कोष की आवश्यकता नही है। राम के इस कथन में कोष और वाणी शब्द श्लेष में प्रयुक्त किये गये हैं, कोष का प्रथम अर्थ खजाना किन्तु दूसरा अर्थ शब्द कोष हो जाता है, क्योंकि कोष के साथ वाणी जुड़ा हुआ है अतः अभिप्राय यह है कि ईश्वर सत्य वाणी स्वरुप है और भक्त ही केवल उसका भाष्य कर सकते हैं, कोष का कार्य भाष्य करना या शब्द आदि अर्थ का विवेचन करना है। सत्य वस्तुतः अविवेच्य है, इस प्रकार कोष और वाणी शब्दों के माध्यम से कवि ने अभंग श्लेष का सुन्दर प्रयोग किया है।

(ग) "धाइ पाइ जसुमति परी।
कनक लता जनु भूर।
राज अंश लीजै दुगुन।
सुत मम जीवन मूर।।"[61]

प्रस्तु पंक्तियों का भावार्थ यह है कि यशोदा दौड़ कर अक्रूर के पांवो में गिरी और निवेदन किया क मेरे पुत्र को मत ले जाओ मुझसे चाहे राजअंश दूना ले लो क्योंकि पुत्र मेरे जीवन का मूर है। यहाँ मूर शब्द में मूल अर्थात् जड़-वंश वृक्ष का विकास करने वाला तथा श्लेषण से मूर का अर्थ मूल धन प्रकट होता है, अतः मूर से अभंग श्लेष व्यक्त किया गया है।

(घ) "कुंचित कच मनि मनहरत मुष पर बगरे आन।
जनु मंजुल अरविंद लष अलि अवली मड़ँरान।।"[62]

उपर्युक्त छन्द में 'अलि अवली' में श्लेष का प्रयोग किया गया है प्रथम अर्थ भ्रमरों की टोली है, दूसरा अर्थ 'अलि अवली' का सखियों की टोली (सखि थावना के

भक्तों के दल की है)। छंद का भावार्थ इस प्रकार है- ''घुंघराले बाल जो मुख पर बिखरे हुए हैं, मुनियों के मन को हर लेते है, ऐसा प्रतीत होता है मानो अरविंद को देखकर भ्रमरों की टोली मंडराती है, श्लेषाथ प्रभु के मुख अरविंद पर 'अलि-अवली' साखियों की टोली (रसिक सखि थावना के भक्तगंण) मोहित होते हैं।

(ड़) ''समुरिहुं प्रभु बोल रूप, कोटि काम से अनूप।
धन्य भूप भक्ति ब्रह्म, नर तन घर आयो।
सेवत नर देव इन्द्र, नारद सनकादि वृन्द
नित नव गुन कह फनिन्द सो नृप गृह भायो।''[63]

प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने श्लेष अलंकार के माध्यम से अनूप और नर देव इन्द्र आदि का सफल निर्वाह किया है, एक ओर राम के बाल रूप का वर्णन है दूसरी ओर कवि ने अपने पिता श्री अनूप गिरि जिन्हें बुन्देलखण्ड का शासक होने काभी गौरव प्राप्त था, उनका संकेत किया है। इसी प्रकार नर देव इन्द्र का प्रथम अर्थ मनुष्य, देवता और इन्द्र है जो प्रभु की सेवा करते हैं और सूरी ओर 'नर देव इन्द्र पद' से 'नरेन्द्रगिरि' का संकते है, जिनकी सेवा में बाल्यकाल से ही 'अनूप गिरि' चले गये थे, अनूप गिरि को नरेन्द्रगिरि ने क्रय कर लिया था, इसके ऐतिहासिक साक्ष्य मिलते हैं। महाकवि निध ाानगिरि ने श्लेष अलंकार के कौशल से प्रभु के बाल्य रूप में पितश्री के बाल्य रुप को भी अभिव्यक्ति दी है।

वक्रोक्ति

वक्रोक्ति-वक्र+उक्ति। वक्र का अर्थ है टेढ़ा, उक्ति का अर्थ है-कथन। अर्थात् जिस उक्ति में वक्रता हो उसे वक्रोक्ति कहते है।

जहाँ कहरने वाले की बात का सुनने वाले के द्वारा दूसरा अर्थ लगा लिया जाता है वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। आचार्य कुन्तक के अनुसार-

''शब्दार्थो सहितौ वक्र कवि व्यापार शालिनौ
बंधे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाल्हादकारिणी।।''[64]

अर्थात् वक्र कवि-व्यापार से युक्त सहृदयों को आल्हादित करने वाले शब्द और अर्थ सम्मिलित रूप से उत्तम काव्य कहे जाते हैं। वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है काकु वक्रोक्ति, श्लेष वक्रोक्ति।

महाकवि 'निधानगिरि' के 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य में वक्रोक्ति के सफल प्रयोग भ्रमरगीत प्रसंग में पाये जाते हैं। कतिपय उद्धरण प्रस्तुत हैं-

(क) ''जिन केसन कबरी गह हाथा।
रूचि-रूचि रची आप ब्रज गाथा।
तिनमें जटा जूट सब पाई।
ऊद्धौ हरि कैसे कह आई।
भाल तिलक, कज्जल दुगन
नक वेसर छवि पाए।

तिन मेलन उज्जवल भसम
क्यों पठई ब्रज राय
मन मुक्ता हीरा रतन
हार माल उर धार
ता थल बाधन क्यों दाई
श्रीं जोग सिंगार।
सारी सुन्दर कंचुकी
नाना पट छवि कन्द।
तासन कन्था गूदरी
क्यों पहरे मति मन्द।।''[65]

गोपिकाओं द्वारा उद्धव से तार्किक दी गई उक्तियों में वक्रोक्तियों का सुन्दर निर्वाह हुआ है।

(ख) ''काट रसाल बबूर लगावै, कर श्री खण्ड वार जस गावै।
साहुंन पकर चोर को त्यागै, चुगलन की प्रतीत मन पागै।
बृज पति जसुमत सुत गत न्यारी, अधाधुन्ध सरकार संभारी।।''[66]

गोपिकाओं ने रसाल को काट कर बबूल लगाने, श्री खण्ड छोड़कर स्वादिष्ट भोजन को छोड़कर पानी की प्रसंसा, साहुओं को पकड़ कर चोर को छोड़ने, चुगलखोरों की प्रतीति मानने तथा अधाधुन्ध सरकार चलाने की व्यांयोक्तियों द्वारा श्री कृष्ण पर मार्मिक प्रहार किया है, ऐसे स्थलों वक्रोक्तियों का सफल प्रयोग किया गया है।

(ग) ''जोग वचन लागत हमै जनु जारे पर लौन।
पोत सूतरी सै पुहत कहौ मतौ यह कौन।।''[67]

गोपियाँ उद्धव को वक्र वचनों द्वारा निरूत्तर करती हुई तर्क करती है कि योग के वचन जले पर नमक की तरह लगते है, सुतली से मोतियों को पोह रहे हो, यह कौन या मत है, प्रसतुत पंक्तियो में वक्रोक्ति का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

दीपक- आचार्य मम्मट के अनुसार-

''सकृद्‌वत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृता प्रकृतात्मनाम्
सैव क्रियासु बहीषु कारकस्येति दीपक्म्।।''[68]

अर्थात् प्राकरणिक और अप्राकरणिक अर्थात् उपमान तथा उपमेय को क्रियादिरूप धर्म जो एक ही बार ग्रहण किया जाता है वह (जैसे दरवाजे की देहली पर रखा हुआ दीपक कमरे के बाहर और भीतर दोनों जगह प्रकाश करता है उसी प्रकार वाक्य में केवल एक जगह ग्रहण किया गया क्रियादिरूप धर्म अनेक कारको के साथ सम्बद्ध होकर देहली एक जगह स्थित भी समस्त वाक्य के दीपक होने से दीपक अलंकार होता है।

दीपक न्यास के अनुसार इस अलंकार का नाम दीपक हुआ है। जहाँ पर प्रस्तुत और प्रस्तुत का एक ही धर्म स्थापित किया जाता है, वहाँ पर दीपक अलंकार होता है। इसके चार भेद होते हैं- (1) कारक दीपक, (2) देहली दीपक, (3) माल दीपक, (4) आवृत्ति दीपक।

महाकवि 'निधानगिरि' ने दीपक अलंकार का उपयोग किया है। जो इस प्रकार है- ठुमुक-ठुमुक पद चालत धरनी। गिरत उठत भाजत सुषकरनी।।

विनोक्ति- आचार्य मम्मट के अनुसार विनोक्ति अलंकार इस प्रकार है-

''विनोक्तिः सा विनाऽन्येन यत्रान्यः सत्र नेतरः।।[78]

जहाँ दूसरे के बिना दूसरा अर्थ सुन्दर न हो अथवा असुन्दर न हो किन्तु शोभन हो वहाँ दो प्रकार की विनोक्ति होती है।

महाकवि निधानगिरि के 'भक्ति-मनोहर' में विनोक्ति अलंकार के कपितय उदाहरण इस प्रकार है-

(क) ''बन मुरझात नवल प्रभु बेली
नेह मेह बिन श्याम सहेली।।[71]

(ख) ''भाव सेम के पात क्यों
जा मुख खाये पान।
रहहिं वियोगि स्याम बिन
जब लग घट में प्राण।।[72]

(ग) ''जल से उपजत घृत कहूँ
सिकता से कहुं तेल
बिना भक्ति कहुँ मुक्ति है
कहा पुरान सकेल।[73]

(घ) विरह विपत अति तिह प्रगट
सोक रोग दुःख मूल
राम बिन मिटह न सूल।।''[74]

अलंकारों के विशिष्ट प्रयोग-

अलांरो के प्रयोग में महाकवि निधानगिरि की असाधारण प्रतिभा का परिचय मिलता है। उनके अलंकार सुष्ठु एवं मार्गदर्शी हैं। अलंकारों के प्रयोग में कवि की प्रवीणता परिलक्षित होती है। कवि ने, सुन्दर अनुप्रास यमकाई कहकर अलंकरों के सौन्दर्य की ओर संकते भी किया है।

निधानगिरि ने जहाँ अनुप्रास के प्रयोगों में भाषा की असाधारण क्षमता को व्यक्त

किया है, वहीं शब्दालंकारों से रसादि की व्यंज्जाएँ की हैं। उनके अनुप्रासों की ताजगी देखिए-

(क) ''जनकसुता जगजनिन भवानी।''[75]

(ख) ''चपला चमक चमक चकचौंघत।।

(ग) ''नीके निरषुह नीक निकाई।।''[76]

(घ) अंतर जानिन स्वामिन मोरी। [77]

संकर मामिन करवा निहोरी।[64]

पावन पानी पानमर प्रभु पद पषार। रघुवर पार उतार तक कुलगुत करमन पार।[63]

उत्प्रेक्षा विधान में महाकवि निधानगिरि की प्रतिभा विश्व के महान कवियों से प्रतिस्पर्धा करती हुयी दिखाई पड़ती है। कवि प्रतिभा और कल्पना की विच्छितियों ने जहाँ एक ओर सौन्दर्य विधान को मूर्तित किया है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक ऐक्य की थाव भूमि तैयार की है।

कृष्ण के सौन्दर्य वर्णन में जिन उत्प्रेक्षाओं का कवि ने प्रयोग किया है वे भगवान शिव से सम्बन्धित है। कतिपय उत्प्रेक्षाएँ दृष्टवय हैं-

(क) ''प्रभु सिर केस चहूँ दिस छूटे। जनु सिर सीस जटन के जुटे।''

कृष्ण के सिर पर केश चारो ओर बिखरे हुए हैं मानो शिव के शीश पर जटाओं के जूट हों। कृष्ण में शिव की छवि की परिकल्पना समन्वय साधना का उपक्रम प्रतीत होती है।

(ख) ''कउ नील मनि माल सुहाई। मनहु संथु उर गरल बसाई।''

कृष्ण के कंठ में नीलमणि की माला शोभायमान होती है, मानो शंभु ने उर प्रदेश में गरल (विष) को बसा लिया हो। यहाँ कृष्ण में शिव के विषमान की संभवना से सुन्दर उत्प्रेक्षा का निर्वाह हुआ है।

(ग) ''केसर विंद ललाट सभाँरा। जनु तीसर द्रग मनमथ जारा।''

कृष्ण के ललाट पर केशर की बिन्दी लगी हुयी है, मानो शिव ने काम को जलाने के लिए तीसरा नेत्र खोला है। कृष्ण के थाल पर केशर बिन्दु में शिव के तृतीय अरूण नेत्र की संभावना पर उत्प्रेक्षा का श्रेष्ठ प्रयोग संभव हुआ है।

(घ) ''हर नष उर विच पहर कुमारा। जनु सिर सै ससि शिव उर धारा।''

कृष्ण के हृदय पर सिंह का अर्द्ध चंद्राकार नख है, ऐसा प्रतीत होता है मानो शिव के शीश पर चन्द्रमा सुशोभित हो।

(ङ) ''जलजमाल पहरै गोपाला। वास प्रभा कवि कहत विसाला।

जनु भव गंगा गौरि सी जानी। लई लगाइ हृदय प्रिय मानी।।''[78]

गोपाल (कृष्ण) ने कमलों की माला पहनी है, ऐसा प्रतीत होता है जैसे शिव ने गंगा गौरी को प्राप्त कर लिया हो, और हृदय से लगा लिया हो।

कवि निधानगिरि ने उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से कृष्ण में शिव के विभिन्न रूप, उनकी मुद्राएँ, उनके आभूषण, उनकी विभूतियाँ आदि का वर्णन किया है, जिससे भगवान कृष्ण

और शिव की एकरूपता व्यंजित की गयी है। अद्वैतदर्शन, शैवदर्शन एवं वैष्णव दर्शन का समन्वित रूप कवि की उत्प्रेक्षाओं में ध्वनित होता है।

उत्प्रेक्षा सौन्दर्य- नासिका, श्रवण, कपोल, हनु, भोल पर तिलक और तिल शोभित हो रहे हैं। मनो श्रृंगार के सरोज पर मलिंद (भ्रमर) शोभित हो रहा है।

(क) ''नासा श्रवन कपोल हन भाल तिलक मस विन्द।
जनु श्रृंगार सरोज पर सोभित भयौ मलिंद।।''[79]

दो-दो दाँत हँसते समय विमल प्रकाश को फैलाते हैं, मानो अरूण अरविंद पर कुल कलियाँ वास कर रही हों-

(ख) ''दो-दो दतियाँ जब हँसत निरषत विमल-प्रकास।
मनुह अरून अरविंद मैं कुंद कलिन कर वास।''[80]

कोमल तन, आभूषणों से युक्त है, ऐसा प्रतीत होता है मानो श्रृंगार का छोटा प्रतिरूप हो।

(ग) ''कोमल तन भूषन बहु माती।
जनु श्रृंगार छोट वर प्राती।।

चारों पुत्रों की संयुक्त शोभा का चित्रण करते हुए कवि निधानगिरि ने सामूहिक सौन्दर्य का उन्मीलन किया है, मानो राजा दशरथ के सुकृत के बीज जमकर निकल आए है। विरवों में फूल संयुक्त होकर निकल आए हैं-

(घ) ''जनु नृप सुकृत बीज जम निकसे।
विरवा विमल सुमन जुत विकसें।।81

उपमा वैशिष्टय्

'निधानगिरि' की उपमाओं में उपमेय और उपमान के सर्वागींण सादृश्य दिखाई देते हैं, जो उक्ति से चमत्कृत करते हैं, साथ ही जीवन के प्रति आस्था और भक्ति उत्पन्न करते हैं-

(क) ''भूतल चाप पकर रहु कैसे। जोत लिंग कौ अंत न जैसे।''[32]

शिव का घनुष पृथ्वी को इस प्रकार ग्रहण किये हुए था, जैसे ज्योतिलिंग का कोई अंत नहीं होता।

(ख) ''विधन गऐ विष्नु पाताला। लिंग अंत नहि फिरे विहाला।
सोई हाल चाप कौ छायौ। गरूवाई कौ अंत न पायौ।''[83]

धनुष की गुरूता और व्यापकता का साम्य ज्योतिलिंग से किया गया है। शिव धनुष की तुल्यता महाशिव के ज्योतिलंग से देकर, कवि ने दार्शनिक चिंतन को भी मूर्त रूप दिया है। महाकवि कालिदास ने महाशिव के अष्टघा रूपों का वर्णन प्रकृति के रूप में किया है। महाकवि निधानगिरि ने शिव धनुष की व्यारित ज्योतिलिंग से किया है। दोनों महाकवियों की साम्य दृष्टि विरल और विचित्र है। ऐसी उपमाओं से महाकवि निधानगिरि के शिव भक्त होने का भी अन्तः साक्ष्य प्रमाण मिलता है।

(ग) "रवि सै तपत न चंद सै सीर होत न वात।
राज जोग भोगत सदा को विदेह सम जात।"[84]

रवि के समान न तप्त होते हैं, न चंद के समान शीत्‌ग्रस्त होते हैं। विदेह (राजा जनक, शेषार्थ बिना देह वाले) के समान कोई भी ज्ञात नहीं है, जो राजयोग दोनो के सतत् भोक्ता हों। महाकवि निधानगिरि ने यहाँ उपमा, दृष्टांत आदि अलंकारों के द्वारा योग और भोग के समान आचरणधर्मा विदेहराज का जीवन दर्शन मुखरित कर दिया है। प्रकारांतर से विदेह विना देह वाला आत्मा का रूप भी वर्णित किया है जो रवि और चंद की गुण सीमा से भी परे है तथा मुक्त है। ताप और शीत के प्रभावों में आत्मा की मुक्ति के निरूक्ति-संकेत है।

(घ) "कै कन्या कीरत विजय जग की लई बटोर।
इन्हीं को रच कींन विध समझ परी मन मोर।"[85]

संदेह अलंकार के माध्यम से कवि ने कहा है, ऐसा प्रतीत होता है कि कन्या ने संसार भर की कीर्ति और विजय को बटोर लिया है, जो कीर्ति ओर विजय विश्व भर में फैली थी आज वह समस्त रूपश्री कीर्ति भी जैसे-स्वयंवर में एकत्र हो गयी है। सम्पूर्ण राजाओं की श्री विलीन हो गयी है, रविवंशी, सूर्य राम को वरण कर सीता ने जग की विजय श्री को बटोर लिया है।

(च) "जामै बयौ लुनेगौ सोई। कर्म प्रधान जथा विध होई।
जौ जस कर तस विध फल पावै। तदिप विचार कए भल भावै।।
रघनंदन की नीक निकाई बनी रहे चिंता चित आई।
सोब सब भांति आपके हाथा। सिस्ट नवीन करन मुनि नाथा।"[86]

महाराज दशरथ ने कौशिक मुनि से चिंता व्यक्त की ओर कहा आपने नवीन सृष्टि रची है, अतः आप सृष्टा हैं, आपके साथ में बालकों का भविष्य सुरिक्षत है। जो जैसा करता है, वैसा विधाता फल देता है। जो बोया जायेगा उसे ही काटना होगा। यह संसार कर्म प्रधान है, किन्तु मेरी चिंता है कि रघुनंदन की नीक निकाई सदैव बनी रहे अर्थात् रघुनंदन का अक्षुण्य सौन्दर्य, कर्म की श्रेष्ठता का आदर्श भी न टूटे। श्रेष्ठता के मानक यथावत् बने रहे।

यहाँ दृष्टांत, अनुप्रास, कीर्ति आदि अलंकारो के माध्यम से अभिव्यक्ति के विशिष्ट पयोग किये गये है। सृष्टि सिद्धान्तों के विपरीत नई सृष्टि में गुरुओं के स्नेह, अनुकंपा का वैशिष्ट्य व्यंजित किया गया है। गुरु महत्ता के कबीर जैसे सन्त कवियों के 'गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागू पॉउ' की तुलना में सृष्टि करन मुनिनाथा' के सन्दर्भ अधि‍क सर्जक एवं सध है।

निधानगिरि के अलंकारों में प्रयोग अतुलवाणी के अमूल्य प्रयोग रत्न है। उनके अलंकार प्रयोग में सर्वजन सुलयता का भी भाष्त है। तुलसी का 'गहिन जाइ अस् अद्‌भुत वानी की भांति निधानगिरि भी 'गही' न जात कही जो वानी से वाणी के विशिष्ट प्रयोगों का संकेत किया है।

अलंकारों के प्रयोग में कवि की मनोभूमि

महाकवि निधानगिरि ने 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य में 'अलंकार' के साथ रस और भात्र के विधान का उल्लेख किया है। कवि का विश्वास है कि हरि की यशगाथा के साथ नाना प्रकार के गुण भी उत्पन्न हो जाते हैं। वे सरस्वती से अपनी काव्य थणित को सर्वसुखद बनाने के लिए प्रार्थना करते हैं-

जो अस करौ अनुग्रह माता। होइ भनत सब कौ सुष दाता।
प्रगटहि वरन मनोहर-ताई। सुंदर अनुप्रास जमकाई।
अलंकार रस भाव विधाना। हरिजस संग उपज गुन नाना।
सुजन सराहहि सुन मन वानी। मेकल सुता गंग सम जानी।।''[87]

उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि कवि ने काव्य उपादानों को 'अंलकार रस भाव विधानन' कहकर सर्वप्रथम अलंकार को ही महत्व प्रदान किया है। कवि ने 'सुन्दर अनुप्रास यमकाई' कहकर अनुप्रास और उपमान संयोजन के वैशिष्टय का भी संकेत किया है।

कवि निधानगिरि की काव्य प्रतिभा का परिचय अलंकारों के सयोंजन से मिलने लगता है। निधानगिरि ने उत्प्रेक्षा सौन्दर्य पर विशेष बल दिया है अनुप्रास भी कवि का प्रिय अलंकार है। अनुप्रास में वर्ण ध्वनि साम्य की मालाएं चित्त को माधुर्य से मंडित कर देती है। उपमान विधान के लिए कवि ने उपमाओं के माध्यम से जैसे रसात्मक चित्र खींचे हैं, वे भी मौलिक, नवीन एवं कवि प्रतिभा के परिचायक हैं।

कवि की मनोभूमि में भगवान शिव के प्रति गहरी भक्ति-भावना का दर्शन अलंकारों के माध्यम से मुखरित होता है। उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से वे राम और कृष्ण के सौन्दर्य में शिव का सौन्दर्य समाविष्ट करते है। इस प्रकार एक ओर धार्मिक सद्भाव और सांस्कृतिक एकता का परिचय कवि ने अलंकार विधान के माध्यम से दिया है, वहीं दूसरी ओर ग्राम्य संस्कृति के उपमानों के माध्यम से भारत की दीन दलित दुनिया की पीड़ाओं और उनकी उपलब्धिओं का भी वर्णन किया गया है, जो कवि की राष्ट्रीय चेतना का परिचायक है। अलंकारों के माध्यम से महाकवि निधानगिरि ने जो चित्र उभारे हैं, वे अविस्मरणीय हैं। सादृश्य विधान के लिए जो पदार्थ कवि ने उपस्थित किये हैं वे प्रकृति, कृषि, दर्शन, संस्कृति, धर्म और विज्ञान के लिए गए हैं।

अलंकारों के प्रयोग में कवि की मनोभूमि सौन्दर्य को उद्घाटित करने की है। वे अलंकारों के माध्यम से मानव संवेदनाओं को मूर्तित करते हैं। इसमें कोई भी संदेह नहीं कि उनके अलंकार आत्मीयतापूर्ण संवेदनाओं की सृष्टि में अत्यन्त कलात्मक भूमिका का निर्वाह करते हैं। अलंकारों से एक ओर पाठक के मन में भक्ति, मुक्ति, अन्तःसुख, आंनद का संचार होता है तो दूसरी ओर वे अलंकार भावक का साधरणीकरण करते हुए उन्हें खेतों, खलिहानों से जोड़ देते है।

अलंकारो से कवि ने दर्शन की गुत्थियों को सुलझाया है। ज्ञान और अज्ञान के बीच की गांठों की सीमाओं को सुलझना कोई सरल काम नहीं है। कवि ने ऐसे जाटिल कार्यो को अलंकारों के द्वारा सरल किया है।

अलंकारो की योजना के द्वारा महाकवि ने प्रतीयमान की सुन्दर एवं सफल प्रस्तुति की हैं। केवल शब्द एवं अर्थ को सज्जित करने के लिए अलंकाररूपी धर्मो का प्रयोग नहीं किया। अलंकार शब्द और अर्थ के वाह्य शोभाधायक तत्वों से अधिक काव्य के संवेद्य भाव रस पोषक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अलंकार चमत्कार के अतिरिक्त एक विचित्र नाद सौन्दर्य उत्पन्न करते हैं। उसे श्रुत ध्वनि सौन्दर्य कहा जा सकता है, जो ध्वनि श्रुतियों में मिलती थी, ऐसी नाद शक्ति महाकवि निधानगिरि के काव्य में पायी जाती है।

निधानगिरि के काव्य में अलंकार प्रतीयमान भाव को और भी प्रभावी बना देते है। मुख्य भाव कहीं भी गौड़ नहीं होने पाता। जहाँ एक ओर अनुप्रास की छटा मन को मोहित करती है, वहीं दूसरी ओर वह प्रतीयमान को गहराई से अभिव्यक्त करती है, उदाहरणार्थ-''नीके निरषहु नीक निकाई'' यहाँ 'न' वर्ण की आवृत्ति से जहाँ अनुप्रास चमत्कार उत्पन्न करता है, वहीं सौन्दर्य (निकाई) को जो श्रेष्ठ (नीक) है, उसे अच्छी प्रकार (नीके) देखने के लिए (निरखने) के लिए कवि आग्रह करता है। 'नीक, नीके, निकाई, पदों में लालित्य और माधुर्य मन को घोलता है किन्तु निरखहु पद चिन्तन, प्रेक्षण, मनन आदि के लिए सतर्क करता है, ऐसी अद्वितीय सारगर्भित क्षमता निधानगिरि के अलंकार विधान की भावभूमि को अभिव्यक्ति देती है। कवि के अलंकार विधान ने मानव मन की रसात्मक वृत्तियाँ भी प्रदान की है।

(ख) गुण-रीति एवं ध्वनि-

गुण- सर्वप्रथम अग्निपुराणकार ने गुण की स्पष्ट व्याख्या करते हुए लिखा है कि जो काव्य में महती शोभा को अनुग्रहीत करता है, उसे गुण कहते है- या काव्ये महती, छायामनुग्रहणात्यसौ गुण:।''[88] अग्निपुराण कार ने काव्य में शोभाकारक धर्म को गुण कहा है-

''काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचछते।''[89] काव्य में शोभा के अनुग्राहक तत्व को गुण कहा है। इस प्रकार अग्निपुराण में गुण और अलंकारो का समान महत्व प्रतिपादित है। आचार्य वामन ने जो गुण का लक्षण दिया है- काव्यशोभाया: कर्त्तारये धर्मा: गुण:।[90] वह अग्निपुराण के गुण लक्षण से साम्य रखता है। इनके मत का अनुसरण करते हुए भट्टोदभट् ने गुण और अलंकार दोनो को काव्य में शोभाधायक तत्व माना है। उनकी दृष्टि में गुणा औश्र अलंकार में कोई भेद नहीं है। उनके अनुसार लौकिक गुण शौर्यादि और लौकिक अलंकार हार आदि में तो भेद हो कसता है; क्योंकि शौर्यादि गुणों का तो आत्मा के साथ समवाय सम्बन्ध होता है और हारादि अलंकारों को शरीरदि के साथ संयोग सम्बन्ध होता है, इसलिए दोनो में भेद माना जा सकता है। किन्तु काव्य में ओज आदि गुण और अनुप्रासादि अलंकार दोनों ही समवाय सम्बन्ध में रहते हैं।

आचार्य वामन का अभिप्राय यह है कि काव्य में शोभा को उत्पन्न करने वाले धर्म को गुण कहते है अर्थात् शब्द और अर्थ के जो धर्म काव्य की शोभा को उत्पन्न करते है, वे गुण कहलाते है।

इस प्रकार वामन के अनुसार काव्य में शोभा के जनक धर्म को गुण कहते हैं और उस शोभा के वर्द्धक धर्म को अलंकार कहते हैं। जैसे युवती के शरीर में सौन्दर्यादि गुणों के होन पर ही अलंकार उसके सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। उसी प्रकार काव्य में प्रसादादि गुणों के होने पर ही अलंकार उसकी शोभा को बढ़ाते हैं और प्रसादादि गुणों के न हरने पर अलंकार शोभावर्द्धक नहीं हो सकते। इस प्रकार अन्वयव्यतिरेक के द्वारा गुण ही काव्य-शोभा के उत्पादक हैं और अलंकार उस शोभा की वृद्धि के हेतु हैं।

आचार्य वामन के बाद आनन्दवर्धन गुण और अलंकारों के भेदक तत्व का निरूपण करते हुए कहते हैं कि काव्य के आत्मभूत (अंङ्गी) रसादि के आश्रित रहने वाले धर्म गुण कहलाते हैं और काव्य के अंगभूत शब्द और अर्थ में रहने वाले धर्म अलंकार कहे जाते हैं-

''तमर्थमवलम्बन्ते योऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः
अङ्गश्रितास्त्वलकाराः मन्तव्याः कटकादिवत्।।''[91]

भाव यह है कि गुण रसादिरूप अङ्गी के अर्थ के आश्रित होते हैं और शब्द तथा अर्थ रूप अङ्ग. पर आश्रित रहने वाले अलंकार माने गये हैं। आचार्य मम्मट ने गुण और अलंकारों के बीच में भेद निरूपण करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने उद्भट के मत का तो सर्वथा परित्याग कर दिया है। वे गुण और अलंकारों के भेद मानते हैं किन्तु वामन के समान गुणों के काव्य शोभाजनकत्व तथा अलंकारों के शोभातिशयहेतुत्व मानकर दोनों में भेद स्थापित नहीं करते। उन्होंने वामन के समान गुण को अपरिहार्य तत्व माना है और आनन्दवर्धन के समान गुणों को रस की अचल स्थिति धर्म तथा अलंकारों को शब्दार्थ का अस्थिर धर्म स्वीकार कर गुण और अलंकारों में भेद स्थापित किया है। उनके अनुसार-

''ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः
उत्कर्षहेतवस्ते स्युश्चलास्थितयो गुणाः।।''

आचार्य मम्मट ने गुणों को रस का धर्म कहा है। इसी आधार पर वे गुणों के तीन भेद स्वीकार करते हैं। उन्होने वामन के द्वारा प्रतिपादित दस गुणों को अस्वीकार कर दिया है। क्योंकि नव रस के आस्वादन में सामाजिक के ह्रदय की तीन अवस्थाएँ होती हैं- द्रूति, बिस्तार और विकास उनमें श्रृंगार, करूण और शान्त रसों में चित्त का विस्तार होता है तथा हास्य, अद्भुत रस में नेत्र का और भयानक से शीघ्र पलयानरूप गमन का विकास होता है। इस प्रकार रसास्वादन काल में ह्रदय की तीन अवस्थाओं के आधार पर रस के धर्म गुण को तीन प्रकार का मानते हैं।

वामन के दस शब्दगुण और दस अर्थगुण माने हैं। वामन के अनुसार ओज, प्रसाद, श्लेष, समता, समधि, माधुर्य, सौकुमार्य, उदारता, अर्थव्यक्ति और कान्ति से दश शब्दगुण और ये ही अर्थगुण हैं।

''ओजः प्रसादश्लेषसमतासमाधिमाधुर्यसौकुमार्यदारतार्थव्यक्तिकान्तयो वन्धगुणः ते एवार्थगुणाः।।''[92]

माधुर्यगुण- आचार्य मम्मट के अनुसार माधुर्य गुण इस प्रकार है-
''आकत्वं माधुर्य श्रृंगारे द्रतिकारणम्।
करूणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्।।''[93]

अर्थात् चित्त की द्रूति का कारण आहलकत्व (आनन्दस्वरूपता) ही माधुर्य गुण है और वह श्रृंगार रस में रहता है। वह माधुर्य करूण, विप्रलम्भ श्रृंगार और शान्त रस में उत्तरोत्तर चमत्कारजनक होता है।''

माधुर्य गुण में ट, ठ, ड, ढ से रहित क से लेकर म पर्यन्त समस्त स्पर्शसंज्ञक वर्ण शिर पर अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त ह्रस्व से व्यवहित रेफ और णेकार, समासरहित एवं स्वल्प समासयुक्त तथा अन्य पदों के साथ योग (सन्धि) से माधुर्य युक्त स्पना माधुर्य गुण के व्यंजक होते हैं। काव्य प्रकाशकार के अनुसार-

''मूर्ध्नि वर्णान्त्यागा: स्पर्शा अटवर्णा रणौ लघु।
अवृत्तिध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये धटना तथा।[94]

अर्थात शिर पर स्थित अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त, ट वर्ण रहित स्पर्श संज्ञक वर्ण, ह्रस्व रकार और णकार समासरहित और स्वल्प समासयुक्त रचना माधुर्य में व्यंजक होती है।

महाकवि निधानगिरि के 'भक्ति-मनोहर' महाकाव्य में श्रृंगार एवं करूण रस के प्रसंगों में माधुर्य गुण का सम्यक् प्रयोग काव्य का सहज आभरण बन गया है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

(क) ''नील पीत कमलन की माला।
पहिरे लागत रूप विसाला।
इन देहन से जनु छवि पाई।
शोभा कोट मनोज लजाई।
ठुमुक-ठुमुक पद चालत धरनी।
गिरता उठत भाजत सुख करनी।।
रुउ रहत मिल किलक दुलारे
बोलत वचन मनोहर प्यारे।''[95]

(ख) ''बिन अंजन लोचन ललित
निखत मन हर लेत
कंज मीन खंजन सकुच
जब उपमा कवि देत।
शिशु भूषन सब तन अभिरामा।

जनु शरीर बहु कीनो कामा।
शोभा लेन हेतु सौ आयो।
देख प्रभा प्रभु मन ललचायो।।
हरि अंगल पर कीन निवासा।
तोतर वचन सुनन की आसा।
लिये गोद मन मोद सु भूपा।।
प्रात समय लख वदन अनूपा।।
तीतर वचन सुनत मन भाये।
मधुर अमृत सम लगत सुहाये।।
अंग-अंग निरखत नृप मोहा।
सुषमा समुद्र मगन जनु सोहा।।
को न मोह अस रूप विलोकी।
जनु विधि सकल लोक छवि रोकी।।
गावत भाव समेत हुलासा।
बाल रूप अनुपम छवि रासा।।''[96]

प्रसादगुण- ''शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहैव यः
व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।।''[97]

आचार्य मम्मट के अनुसार सूखे ईन्धन में अग्नि के समान तथा स्वच्छ जल के समान जो (गुण) सहसा चित्त में व्याप्त हो जाता है, उसे प्रसाद गुण कहते हैं। इसकी स्थिति सर्वत्र है (अर्थात् यह सभी रसों तथा सभी रचनाओं में रहता है)।

आचार्य मम्मट के अनुसार-
''श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थप्रत्यो भवेत्।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो महः।।''98

अर्थात जिस (वर्ण समास, रचना) के श्रवण मात्र से ही शब्द से अर्थ की प्रतीति हो और जो सब जगह (सभी रसों तथा सभी रचनाओं में) सामान्य रूप में रहे, उसे प्रसाद गुण व्यंजक (वर्ण रचना आदि) कहते हैं। महाकवि निधानगिरि के 'भक्ति-मनोहर' महाकाव्य में सर्वसाधारण को अर्थ बोध कराने हेतु कवि ने सरस, ललित शब्दवली के माध्यम से प्रसाद गुण का सम्यक् प्रयोग करके काव्य को लोकप्रिय बनाना है। प्रसाद गुण के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं-

(क) ''हे रानी चारहु सुकुमारा।
निरख तोह दिय शिव फल चारा।
शिशु भूषन पट रज लपटानी।

आंगन चलत परस्पर आनी।
उठ कै भजत परत गिर फिर-फिर।
किलकत झांकत झुकत नहीं थिर।
पर छाहीं लख नचत पधारे।
तोतर वचन लगत आदि प्यारे।''[99]

(ख) ते विचरत भूपति अगंनाई।
चंचल चाल चलत चतुराई।।
देख काग गहिव को धावत।
निरख देव गन सिद्ध सिहावत्
बाल रूप नयनन भर देखहुं
जीवन लाभ सुफल कर लेखहु।[100]

(स) ''बरसा विगत सरद छवि छाई। सुंदर दीप मालिका आई।
चहुँ दिस दीप विराजत कैसे। आइ सेस बहु मनिधर जैसे।''[101]

ओजपूर्ण- आचार्य मम्मट के अनुसार इस प्रकार है-
''दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थिति।
वीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च।।''[102]

अर्थात् चित के विस्तार का हेतुभूत दीप्ति ही आज गुण हैं और उसकी स्थिति वीर रस में होती है और वह ओज गण सामान्यता वीर रस में रहता है। वीभत्स औश्र रौद्र रसो में क्रमश: उसका आधिक्य रहता है।

आज गुण में वर्गो के प्रथम (क, च, ट, त, प) और तृतीय (ग, ज, ड, द, व) वर्ण के साथ उसके बाद के अर्थात् द्वितीय (ख, छ, ठ, थ, फ) और चतुर्थ (घ, झ, ठ, ज, भ) वर्णो का योग तथा रेफ के साथ योग तथा तुल्य वर्णो का योग, यदि (ट, ठ, ड ढ) वर्ण का और ष वर्ण तथा दीर्घ समास एवं उद्धत रचना से ओज गुण के व्यंजक होते हैं। आचार्य मम्मट के अनुसार-
''योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्यो रेण तुल्ययो:
वपि शषौ व्रत्तिदैर्ध्य गुम्फ उद्धत ओजसि।''[103]

महाकवि निधानगिरि के महाकाव्य 'भक्ति-मनोहर' में वीर रस, रौद्ररस आदि वर्णनों में 'ओज' का प्रचुर प्रयोग कवि ने किया है। ओजगुण के कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है-

(क) 'है गज जरत भज चिक्कारे
रौद-रौद निशचर गन डारे।।

पाठक लपट-झपट तन लागे।
जहाँ जाई जो तित ते भागे।।
महा वीर लागूर फिराते
गर्जत बार-बार झहरावै।।[104]

(ख) चला कटक सब ता समय किय पयान रघुबीर।
कंपत भूतल गिर डगत चाकित पवन गंभीर।
तिहि अवसर कर धनुष पनच घर राम चढावत।
किय टंकोर कठोर घोर धुन सुन भय छावत।
चौक परे सुर चक्र चतुर मुष सकपक उर धर।
शिव जटान सै गंग बही चल नहीं समारकर।
दिग पाल सकल निज थल विकल भुवन चतुरदस डर डरन
दशमुख संसक जुत लंकपुर गर्भ त्राहि निशिचर धरन।।''[105]

उपर्युक्त छन्द में लंक विजय के लिये सैन्य प्रयाण करते हुए राम सेना के ओज और उल्लास के बिम्बों को ओज गुण के माध्यम से साकार किया गया है। सैन्य प्रयाण के समय भूतल के कम्पित होने, पर्वतों के डगमगाने, पवन के थकित और गम्भीर होने के चित्र जहां एक ओर प्रकृति को भयाक्रान्त करते है, वहीं दूसरी ओर ओज गुण को भी मूर्तित करते हैं। धनुष भंग के कारण वातावरण भय से व्याप्त हो जाता है, देवता और इन्द्र चौक उठते हैं, चतुरानन सकपकाने लगते हैं, शिव की जटाओं से गंगा की धारा बरबस फूट पड़ती है, दिगपाल व्याकुल होते हैं, लंकेश्वर संशकित हो उठते हैं और निशाचरियों के गर्भपात होने लगते हैं। महाकवि की योजना में शब्द-शब्द और पद-पद में ओजस्विता का जैसा निर्वाह किया गया है, और ओज गुण के सफल प्रयोक्ता के रूप में कवि को गोरवान्वित करने वाला है।

रीति

रीति-सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन माने जाते हैं। उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा कहा है। (रीतिरात्मा काव्यस्य)। संस्कृत वाङ्मय में 'रीति' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थो में हुआ है। सर्वप्रथम रीति शब्द को ऋग्वेद' में 'स्तुति' कहते है।[106] विभिन्न काव्याशास्त्रियों ने अपने-अपने दृष्टिकोणों के अनुसार रीति के अनेक पक्षों का प्रतिपादन किया है। भामह रीति को काव्य, दण्डी और भोज मार्ग, वामन रीति, आनन्द पद संघटना कुन्तक कवि प्रस्थान हेतु रूद्रट एवं मम्मट वृत्ति और विश्वनाथ रीति के नाम से सम्बोधित करते हैं। रूढ़ि में रीति का अर्थ पद्धित लिया जाता है। भोज रीङ् गतौ धात से क्तिन् प्रत्यय करके रीति शब्द की निष्पत्ति मानते हैं और उसका और अर्थ उन्होंने 'मार्ग' किया है।[107] अग्निपुराणकार 'वक्तृत्वकला' को रीति के नाम से अभिहित करते हैं।''[108]

वामन' विशिष्ट-पद-रचना' को रीति कहते हैं। विशिष्ट का अर्थ है गुण सम्पन्न और गुण सम्पन्नता ही सुन्दरता का द्योतक है, अतः सुन्दर पद-रचना करने की कला को रीति समझना चाहिये।''[109] हिन्दी साहित्य में इसे शैली कहते है। सुन्दरतम् रचना रस, अलंकार, गुण शब्द शक्ति आदि सभी के समावेश होने पर ही होती है और पद रचना

में विशिष्टतापूर्वक इन्हीं का समावेश करने पर हमें शैली या रीति का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। रीति के अर्थ में शैली शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम पत्रञ्जलि के महाभाष्य में मिलता हैं- "एष: ह्याचार्यस्य शैली लक्ष्यते।"[110]

राजशेखर ने अपनी 'काव्य-मीमांसा' में रीति का सर्व्रपथम अधिकारी 'सुवर्णनाभ' को बातया है।[111] वैदिक काल में प्रवृत्त रीति ने ब्राह्मण काल में परिवर्तित होकर एक नया स्वरूप ग्रहण किया। उस समय रचना शैली आख्यानात्मक एवं वर्णनात्मक हो गई। वैदिक काल के अन्त में शैली (रीति) में नवीन परिवर्तन हुआ, लोग अधिक से अधिक बातों को संक्षेप में कहना चाहते हैं, अत: सूत्र शैली की सर्जना हुई। व्याख्यात्मक शैली की उद्भावना नव्य नयायदर्शन में एक नवीन शैली का जन्म हुआ, जिसमें शब्दाडम्बर अधिक था, जिसे बाण ने गौड़ी रीति में स्वीकार किया है।[112]

लौकिक साहित्य के उदय की प्रभात वेला में जबकि कौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक को बयाघ के द्वारा बिद्ध देखकर महर्षिक बाल्मीकि के मुख से सरस्वती सहसा फूट पड़ी, एक नवीन शैली का जन्म हुआ। वह 'रसमयी-पद्धति' कहलाई, जिसे कि 'सुकुमार-मार्ग' के नाम से अभिहित किया जाता है। सुकुमार मार्ग में कोमल शब्दों का प्रयोग होता है। इस प्रकार 'नाट्यशास्त्र' के पूर्व तक साहित्य-रचना की अनेक शैलियाँ विकसित हो चुकी थीं, किन्तु उनका शास्त्रीय विवेचन नहीं हो पाया था।

रीति का शास्त्रीय विवेचना 'नाट्यशास्त्र' से प्रारम्भ होता है। वहाँ पर स्पष्ट रूप से रीति नाम से विवेचन तो उपलब्ध नहीं होता किन्तु प्रवृत्ति के अन्तर्गत आवन्ती, दाक्षिणात्या, पाञ्चाली, उडमागधी से चार शैलियाँ मानी गई है-

"वतुर्विधा प्रवृत्तिच प्रोक्ता नाट्यप्रयोगत:।
आवन्ती दाक्षिणात्या च पाञ्चाली चौऽमागधी।।"[113]

नाट्यशास्त्र के इस विवेचन के आधार पर अग्निपुराणकार ने रीति का स्पष्ट विवेचन किया हैं। वहीं पर वक्तृत्वकला के रूप में रीति का स्वरूप स्वीकार कर रीति के चार-भेद स्वीकार किये गये हैं- वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली और लाटी।

अग्नि पुराण	नाट्यशास्त्र
वैदर्भी	दाक्षिणात्या
गौड़ी	उऽमागधी
पाञ्चाली	पाञ्चाली
लाटी	आवन्ती

इस प्रकार अग्निपुराणकार ने चारों रीतियों का पृथक-पृथक स्वरूप निर्दिष्ट कर शास्त्रीय रूप प्रदान किया। रीति का व्यापक अर्थ लेते हुए रीति को समास, अलंकार एवं मृदु पदावली से सम्बद्ध किया, जो कि काव्यशास्त्रियों के लिये विवेच्य विषय रहा। बाण

ने यद्यपि रीतियों का शास्त्रीय विवेचना नहीं किया, किन्तु रीति के सम्बन्ध में वे अग्निपुराण की ही मान्यता स्वीकार करते हैं। उत्तर भारत के लोग श्लेषप्राय, पश्चिम के लोग अर्थगौरव, दाक्षिणात्य और पूर्व भारत के लोग अक्षराडम्बर पसन्द करते हैं-

"श्लेषाप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थमात्रकम्
उत्प्रेक्षा दाक्षिणात्येषु गोड़ेष्वक्षरडम्बरः।।"[114]

बाण का कथन है कि नवीन भाव सौन्दर्य, अग्राम्या जाति, अक्लिष्ट, श्लेष, स्फुट रस और विकटक्षरवन्ध इस सबका एकत्र सन्निवेश दुर्लभ है।"[115] बाण स्पष्ट रूप में रीति का नाम लेते हैं। उस समय रीति का विभाजक प्रादेशिक था। भामह इस प्रादेशिक आधार को मान्यता न देने हुए तथा रीति का व्यापक अर्थ लेते हुए रीति के अर्थ में 'काव्य' का प्रयोग करते हैं। वे 'शब्दार्थो सहितौ काव्यम्' को काव्य का स्वरूप निर्धारित करते हुए काव्य के प्रकारों में गौड़ तथा वैदर्भ का उल्लेख करते हैं। आनन्दवर्धन पद-संघटना को रीति मानते हैं। वामन की पद-रचना और आनन्दवर्घन की संघटना एक ही है। मम्मट रीति का पृथम विवेचन न कर अनुप्रसालंकार के अन्तर्गत उपनागरिका, परूषा और कोमला इन तीन वृत्तियों का प्रतिपादन करते हैं। ये ही तीन रीतियाँ आदि आचार्यो के मत में मान्य तीन रीतियाँ है।"[116]

इस प्रकार वेद ऋचाओं में उनका जन्म हुआ और कवियों ने उसी के आश्रय में अपने-अपने काव्य को चमस्कृत किया है।

रीति- काव्य में पद रचना अर्थात् शब्द योजना को रीति कहते हैं। जैसे शरीर में अंगों की गढन (अंग संस्थान या अंग-विन्यास) होती है, वैसे ही काव्य में रीति होती है।

पद-रचना को पद-संघटना भी कहा जाता है। विश्वनाथ ने "साहित्य-दर्पण' में रीति की परिभाष इस प्रकार दी है-

"पद संघटना रीतिः अंग संस्था विशेषवत्।"

वामन ने तीन रीतियों के नाम से विवेचना किया है और रीति को काव्य की आत्मा कहा है-

"रीतिरात्मा काव्यस्य विशिष्टा पदरचना रीतिः।
विशेषो गुणात्मा। सा त्रिघावैदर्भी गौड़ीया पाञ्चाली च।"[117]

इन्हीं तीन वृत्तियों का दण्डी और कुन्तक ने मार्ग तथा आनन्दवर्धन की 'संघटना' ये सब एक ही भाव को अभिव्यक्त करते हैं। मम्मट ने उक्त तीन वृत्तियों को स्वीकार करते हुए वैदर्भी, गौणी और पाञ्चाली रीतियों का वृत्यनुप्रास का तीन वृत्तियों में अन्तर्भाव कर लिया। उनका कहना है कि जो वामन आदि आचार्य वैदर्भी, गौड़ी और पाञ्चाली ये तीन रीतियाँ मानते है, ये तीन रीतियाँ वृत्यानुप्रास की तीन वृत्तियों में अन्तभूर्त हो जाती हैं। उनके अनुसार वामन की गौड़ी रीति परूषावृत्ति, वैदर्भी रीति उपनागरिका वृत्ति औश्र पाञ्चाली रीति कोमलवावृत्ति, मार्ग आदि संघटना को एक (अभिन्न) मानते हुए उनका दृष्यनुप्रसा में अन्तर्भाव कर निरूपण किया है।

संस्कृत में रीड़् धातु से बना शब्द रीति गति, चलत, मार्ग, पथ, वीथी, शैली ढंग आदि अर्थो का वाचक है। सरस्वती कण्ठाभरण के रचयिता भोज ने रीति की व्युत्पत्ति के विषयक में इस प्रकार लिखा है-

"वैदर्भादिकृत: पन्था काव्यमार्ग इति स्मृत:
रीड़् गतावितिधातो: सा व्युत्पत्या रीतिरूपच्यते।"[116]

वैद्र्भादि (वैदर्भी एंव गौड़ी) काव्य मार्ग कहे जाते हैं। गत्यर्थत, रीड़् धातु से व्युत्पत्ति होने के कारण इसे रीति कहा जाता है।

वैदर्भी रीति- मधुर कोमल रसों की रचना हेतु माधुर्य गुण व्यंजक वर्णो द्वारा जो ललित रचना पद्धति है- उसे वैदर्भी रीति के नाम से जाना जाता है।

वैदर्भी रीति का आधार माधुर्य गुण है। उसमें प्रधान गुण माधुर्य होता है। उसका बन्ध या गुम्फ (वाक्य रचना) सुकुमार होता है। उसमें समास नहीं होते और यदि होते हैं तो वे छोटे-छोटे दो या तीन शब्दों के होते है उसमें मधुर वर्णो की योजना होती है। मूधन्य और महाप्राण तथा संयुक्त द्वित्व और रेफ के संयोग वाले वर्णो को साध्यारणतया बचाया जाता है।

महाकवि निधानगिरि सौन्दर्य मंगल एवं जीवन प्रकृति के कोमलतम पक्षों को मार्मिक उद्घाटन करने वाले, रससिद्ध कवि हैं, श्रृंगार और सोन्दर्य, प्रेम और विरह के प्रसंगों में महाकवि ने माधुर्य गुण की अपरमि सृष्टि की है जिसमें वैदर्भी रीति का समुचित प्रयोग किया गया है, उनके कपितय उद्धरण दृष्टव्य हैं-

लंका दहन का सम्पूर्ण महावीर हनुमान के ओज और पराक्रम के घटना चक्र से आपूर्ण है। महाकवि निधानगिरि ने ऐसे प्रसंगो में गौड़ी रीति का सफल निदर्शन किया है, उद्धरण दृष्टव्य है-

(क) "मंचन पिटारिन पलंग पीड पालकिन।
रथन अमारिन पै आग अति माड़् कौ
ज्वाल मयी भूषन ते नारि वृन्द डार भाग
बसन विचार रोवै मानो स्वांग भाड़् कौ
निधानगिरि हनुमान गर्जन सुनै तीस बाहु
गर्व ढरै मानो जल गरै हय खाड़् करै।
लंका बरै ऐसे जैसे जरै गांव राड़् कौ।"[121]

(ख) "कटकटाय भट विकल भाल मर्कट अति गर्जन।
सिंह नाद कर कूद विपट पर्वत धर तरजत।
नख मुख दन्त कराल देख कालहुं विषाद कर।
रघुवर सपथ सुनाय वाद बढ़-बढ़ कर बन्चर।
सब मार-मार धर-धर करते लघुनिसवर गनती कवन
उड़् धूर पूर सुन जान छिप लखउ परत रति शशि भवन।"[122]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने मर्कट युद्ध का सजीव वर्णन किया है। कट-कटाते हुए योद्धाओं के सिंहनाद तथा वृक्षों और पर्वतों के धारण करने व नख मुख के कराल रूप में रघुबीर की सौगन्ध खाने और निशचर गणों को पकड़-पकड़ कर मारने आदि के दृश्य चित्रों में जिस वीरता का संचार किया है, उसमें गौड़ी रीति का सम्यक् उपयोग किया है।

पांचाली

जिस शैली में शब्द और अर्थ का समान गुम्फ पाया जाता है, उसे पांचाली कहते हैं।

जिस प्रकार से वैदर्भी देश से, गौंड़ीगौड़ से सम्बन्धित है वैसे ही पांचाली का सम्बन्ध पांचाल प्रदेश से है। महाकवि 'निधान गिरि' के काव्य में एक उद्धरण दृष्टव्य है-

> ''वीर बहूटिन वृन्द विराजे, पद्मराग मनि गन लख लाजै।
> सीधे लम्ब खम्भ बर कैसे, मदन विजय हित रापे जैसे।''

उपर्युक्त पंक्तियों में शब्द और अर्थ का विचित्र संगुम्फन है एक ओर वीर बहूटियों के वृन्द से पावस ऋतु में अरुण वर्ण वाली वीर बहूटियों के चित्र हैं तो दूसरी ओर वीरों की वधुओं के समूह का संकेत किया है। 'निधान गिरि' के 'भक्ति मनोहर' महाकाव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि कवि वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली सभी रीतियों का आश्रय लेकर काव्य सृजन में सिद्धहस्त थे। 'निधान गिरि' की मनोरम पदावली ललित भाव विन्यास, एवं रसमय पद्धति के कारण उन्हें महर्षि वाल्मीकि की भांति सुकुमार मर्म वाला कवि कहा जा सकता है।

षष्टम अध्याय

1. भामह, परिषद पत्रिका वर्ष 1, अंक 2, पृ0 26
2. 'रसगंगाधर', पण्डित जगन्नाथ, 1-1
3. 'रघुवंश', कालिदास, प्रथम सर्ग श्लोक।
4. 'रामचरितमानस' बालकाण्ठ, तुलसीदास, दोहा, 18
5. 'नाट्यशास्त्र' भरत, पृ0 40
6. 'काव्यालंकार सूत्र' वामनाचार्य, पृ0 27
7. 'काव्यादर्श' दण्डी पृ0 2/1
8. 'काव्य प्रकाश' मम्मट, सं0 डॉ0 पारसनाथ द्विवेदी, पृ0 471
9. 'साहित्य दर्पण' विश्वनाथ, पृ0 20
10. 'भक्तिमनोहर' 'निधान गिरि', हस्त लिखित प्रति0 बाँदा पृ0 17

11-26 तदुपरिवत् पृ0 32,32,77,80,62,201,202,111,219,90,113,113,243,111,111,174

27. 'अग्निपुराण' 244/1
28. 'काव्य प्रकाश' मम्मट, आचार्य विश्वेश्वर, दशम उल्लास, पृ0 443
29. 'भक्तिमनोहर' 'निधान गिरि' ह0लि0प्र0 बाँदा, पृ0 140

30-34 तदुपरिवत् पृ0 223,63,223,232,236

35. 'काव्य प्रकाश' मम्मट, आचार्य विश्वेश्वर, दशम उल्लास, पृ0 461

36, 'भक्मिनोहर' 'निधान गिरि' ह0लि0प्र0बाँदा, पृ0 52

37-52 तदुपरिवत् पृ0 52,52,53,48,48,48,181,57,115,112,232,232,232,74,75,111

53. 'काव्य प्रकाश' मम्मट, दशम उल्लास, पृ0 486
54. 'भक्तिमनोहर' 'निधान गिरि' ह0लि0प्र0बाँदा, पृ0 113
55-63तदुपरिवत् पृ0 232,234,111,111,173,162,223,181,54
64. 'वक्रोक्ति काव्य' जीवातमा आचार्य कुन्तक, पृ0 12
65. 'भक्तिमनोहर' 'निधान गिरि' ह0लि0प्र0बाँदा, पृ0 232
66-67तदुपरिवत् पृ0 234,228
68. 'काव्य प्रकाश' मम्मट, दशम उल्लास, वाराणसी, पृ0 488,1960
69. 'भक्तिमनोहर' 'निधान गिरि' ह0लि0प्र0बाँदा, पृ0 43
70. 'काव्य प्रकाश' मम्मट, आचार्य विश्वेश्वर दशम उल्लास, पृ0 507
71. 'भक्तिमनोहर' 'निधान गिरि' ह0लि0प्र0बाँदा, पृ0 232
72-87तदुपरिवत् पृ0 23,96,88,64,63,64,65,52,52,53,67,68,69,68,68,3,32,32,
88-89'अग्निपुराण' पृ0 32, 31/1/1
90. 'आचार्य वामन' पृ0 31/1/1
91. 'ध्वनालोक' आनन्दवर्धन, प्रथम उद्योत, पृ0 13
92. 'काव्य प्रकाश' मम्मट, अष्टम उल्लास, पृ0 451
93-94 तदुपरिवत् पृ0 459,464
95, 'भक्तिमनोहर' 'निधान गिरि' ह0लि0प्र0बाँदा, पृ0 43
96. तदुपरिवत् पृ0 46
97. 'काव्य प्रकाश' मम्मट, अष्टम उल्लास, पृ0 461
98.'भक्तिमनोहर' 'निधान गिरि' ह0लि0प्र0बाँदा, पृ0 43
99-100 तदुपरिवत् पृ0 43,174
101.'काव्य प्रकाश' मम्मट, डॉ0 पारसनाथ, अष्टम उल्लास, पृ0 460
102.'भक्तिमनोहर' 'निधान गिरि' ह0लि0प्र0बाँदा, पृ0 112
103. तदुपरिवत् पृ0 116
104. 'महीव रीति: शवसासरत पृथक ऋग्वेद' 2/24/14
105. वैदर्भादि कृत: पन्था: काण्ये मार्ग इति स्मृत:' सरस्वती कण्ठाभरण, 2/27
106. 'अग्नि पुराण' 3/44/1
107. 'काव्य अलंकार सूत्र' 1/2/7-8
108. 'महाभाष्य' पतंज्जलि, प्रत्याहाराहिल्क
109. 'काव्य मीमांसा' राजेश्वर, प्रथमाध्याय
110. 'काव्य प्रकाश' मम्मट, 14/36
111. 'नाट्यशास्त्र' भरत 14/36
112. 'हर्षचरित' बाणभट्ट, पृ0 55
113. तदुपरिवत् पृ0
114. 'काव्य प्रकाश' मम्मट, नवम उल्लास, पृ0 477
115. 'काव्य अलंकार सूत्रवृत्ति' वामन, पृ0 1,6-9
116. 'सरस्वतीकण्ठाभरण' भोज, पृ0 2-3-1
117. 'भक्तिमनोहर' 'निधान गिरि' पृ0 70
118-121तदुपरिवत् पृ0 70,113,116,173

सप्तम् परिवर्त्त

मूल्यांकन : समस्याएँ एवं समाधान

सम्पादन, प्रकाशन एवं मूल्यांकन
लोक प्रियता
हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज एवं प्राप्ति की समस्या
प्रकाशन एवं पाठ्यक्रम में निर्धारण
तटस्थता की समस्या
रचना दृष्टि
भक्ति के क्षेत्र में योगदान
काव्य शास्त्र के क्षेत्र में योगदान
काव्य के क्षेत्र में योगदान
समाज एवं राजनीति के क्षेत्र में योगदान

सप्तम् परिवर्त्त

मूल्यांकन

किसी हस्तलिखित पाण्डुलिपि का मूल्यांकन अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। मूल्यांकन ही समीक्षा व्यापार की चरम परिणति है। हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में महाकवि 'निधान गिरि' के साहित्य के अप्रकाशित होने के कारण उनका विवेचन, विश्लेषण का सर्वथा अभाव रहा है। महाकवि 'निधान गिरि' के मूल्यांकन का यह प्रथम प्रयत्न है। कवि के विभिन्न पक्षों पर खोजपूर्ण तथ्यों से प्रमाणित होता है कि महाकवि के विभिन्न पक्षों पर स्वतंत्र शोधकार्य भी हो सकते हैं। प्रस्तुत शोध प्रबंध द्वारा प्रथम बार कवि के व्यक्तितत्व एवं उनके महाकाव्य 'भक्ति मनोहर' का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया गया है। शोध परक मूल्यांकन का यह गंभीर प्रयत्न कवि के मूल्याकन का आधार बन सकेगा और कालान्तर में इस महाकवि की ओर हिन्दी पाठकों का ध्यान आकर्षित होगा।

लोकप्रियता

कोई भी कृति प्रकाशन के अभाव में एक सीमा तक ही लोकप्रियता को प्राप्त कर सकती है। 'निधान गिरि' कृत 'भक्ति मनोहर' भी बुन्देलखण्ड झाँसी मंडल के एरच तथा मोठ के क्षेत्र में लोक प्रिय रहा है। नृसिंह मंदिर के पुजारियों द्वारा इस ग्रंथ का पाठ समय-समय पर किया जाता रहा है और मंदिर में आने वाले दर्शनार्थी तथा भक्तों द्वारा आदरपूर्वक इस ग्रंथ को सुना जाता रहा है, किन्तु अप्रकाशित होने के कारण कवि की लोकप्रियता क्षेत्रीय आधार पर ही सीमित रह जाती है, जबकि कवि की प्रतिभा और उनकी कृति अपने रचनाधर्मी स्वभाव और महान काव्यकृति के गुणों से युक्त होने के कारण व्यापक लोक प्रियता की अपेक्षा रखती है।

अप्रकाशित रहने के कारण 'निधान गिरि' और उनके 'भक्ति मनोहर' से न तो इतिहासकरों का परिचय हुआ और न ही उनकी महान कृति को हिन्दी साहित्य में स्थान मिल पा सका, जबकि वे इस स्थान के अधिकारी सिद्ध होते हैं। उनकी कोटि महाकवियों के बीच महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। 'भक्ति मनोहर' के प्रकाशन से जहाँ एक ओर राम, कृष्ण और शैव परम्पराओं के इतिहास को नया आलोक मिलेगा, वहीं भक्ति परम्पराओं को एक व्यवस्थित आधार भी। ऐसे महान ग्रंथो के प्रकाशन में शासकीय एवं स्वैच्छिक संगठनों को भी पहल करनी चाहिए। शोध-छात्रा का विश्वास है कि यदि महाकवि 'निधान गिरि' कृत 'भक्ति मनोहर' आदि कृतियों का प्रकाशन हो जाय तो महाकवि को उनका गौरवपूर्ण स्थान अवश्य मिलेगा।

हस्तलिखित ग्रंथों की खोज एवं प्राप्ति की समस्या

दुलर्भ हस्तलिखित ग्रंथों के द्वारा नए तथ्य एवं मौलिक अनुसंधान को भारी सहायता प्राप्त होती है। शोध के गुणात्मक स्तर को बढ़ाने के लिए, परम्परित शोधों से हटकर कुछ नए क्षेत्र, नए महाकवि प्रकाश में आने से साहित्य के इतिहास की छुटी हुयी कड़ियाँ प्राप्त हो जाती है और साहित्य के इतिहास को हस्तलिखित ग्रंथों की खोज से समृद्ध बनाया जा सकता है।

महाकवि 'निधान गिरि' कृत 'भक्ति मनोहर' की दुर्लभ प्रति झाँसी जनपद के 'एरच' प्राचीन ऐतिहासिक स्थल से नृसिंह मंदिर से प्राप्त हुयी थी। सम्प्रति यह प्रति राजकीय संग्रहालय, झाँसी में सुरक्षित है। एक दूसरी प्रति बाँदा के चंददास शोध संस्थान में संग्रहीत है। 'निधान गिरि' की अन्य कृति 'वैद्यकसिन्धु' है, जिसकी हस्तलिखित प्रति झाँसी जनपद के मोठ के 'भोलारामगिरि' के यहाँ वस्त्रों में बंधी हुयी जीर्ण शीर्ण प्रति के रूप में है। इन ग्रंथो के हस्तलेखों को पढ़ने उन्हें प्रतिलिपि करने तथा उन्हें संग्रहालयों तक पहुँचाकर सुरक्षित रखने की समस्या भी ज्वलंत है।

पाण्डुलिपियों के स्वामी प्राय: कम पढ़े-लिखे लोग होते है। अत: साम्प्रदायिक भावना से ग्रस्त होने के कारण आर्थिक लोभ के कारण वे ग्रथों को समुचित हाथों में जाने से रोकते हैं और असुरक्षा के कारण ऐसे ग्रंथ काल कवलित भी हो जाते हैं।

कई बार शोध छाया ने एरच, मोठ आदि की खोज-यात्राओं पर गयी, जिसके परिणाम स्वरूप कवि के ग्रंथो के सम्बन्ध में, व्यक्तित्व एवं जीवन के सम्बन्ध में कुछ नई सूचनाएँ भी मिली। यदि शासन द्वारा महत्वपूर्ण अभिलेखों को संरक्षित किया जाय तो शोधकार्य में पर्याप्त प्रगति हो सकती है।

प्रकाशन एवं पाठ्क्रम में निर्धारण की समस्या

दुर्भाग्य से 'निधान गिरि' की कृतियाँ अभी तक अप्रकाशित है। प्रकाशन के लिए, अर्थव्यवस्था की भी एक कठिनाई सामने आती है। इस दिशा में चंददास शोध संस्थान बाँदा प्रयत्नशील है कि कवि की कृतियों का प्रकाशन हो सके। महाराज समथर नरेश से भी इस दिशा में पहल की जा रही है ताकि इनकी कृतियों का प्रकाशन हो सके और कितना अच्छा होता है कि बुन्देली को स्थापित करने वाले इस महाकाव्य को विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम मे भी समाहित कर दें। शिक्षण संस्थाओं विश्वविद्यालय की पाठ्यक्रम समीतियों से अपेक्षा है कि वे इस दिशा में प्रेरक कार्य कर करेंगे।

तटस्थता की समस्या

समीक्षा एवं मूल्यांकन के लिए रागात्मकता के साथ स्वतन्त्र न्यायाधीश की वृत्ति आवश्यक है। रिचर्ड्स ने आलोचक के लिए मूल्यों का परिनिष्ठित एवं निर्भ्रान्त न्यायाधीश होना बहुत आवश्यक माना है। प्राय: सम्प्रदाय में विभाजित होने के कारण पत्र-पत्रिकाएँ, समालोचक और साहित्य के इतिहासकारों भी खेमों में बँटे हुए है। भक्तिसाधना का इतिहास भी राम, कृष्ण, सगुण, निर्गुण संस्थाओं में विभक्त होने के कारण विभक्त कवियों को ही अपने धार्मिक संगठनों में स्थान देते रहे है। 'निधान गिरि' किसी एक सम्प्रदाय के कवि न होकर सभी धर्मो, पंथो, भक्ति सम्प्रदायों के बीच समन्वय करने वाले निर्गुण कवि हैं। ऐसी स्थिति में समालोचकों को सम्प्रदायिक भावों से मुक्त होकर ही महाकवि का मूल्यांकन करना होगा।

रीति और आधुनिक साहित्य में महाकवि 'निधान गिरि' के आविर्भाव से अनेक क्रान्तिकारी एवं नवीन तथ्य सामने आते है, जिससे पूर्व स्थापित मूल्यों एवं मान्यताओं में परिवर्तन की सम्भावना है। 'निधान गिरि' के पूर्व रीति के उत्तरार्द्ध में अनेक धाराओं एवं

पंथो में विभाजित काव्यधारा को एक नया क्रान्तिकारी आलोक कवि के प्रदेय से प्राप्त होता है। एसी स्थिति में समीक्षकों का दायित्व है कि वे तटस्थ एवं सम्प्रदाय-मुक्त दृष्टि से महाकवि का मूल्यांकन करें।

रचना दृष्टि

तुलसी ने 'सुरसरि कहँ सबकर हित होइ' का आदर्श स्थापित किया। 'निधान गिरि' भी अपने कवि कर्म को सुरसरिता की भांति सबके हित के लिए प्रवाहित करते हैं। 'निधान गिरि' ऐसे कवि हैं जो केन्द्रीय, मानवीय दृष्टि प्रेम जो भक्ति के रूप में हैं उसे काव्याभिव्यक्ति में उतारते हैं। उनके काव्य में भगवत् प्रीति का रस सर्वव्याप्त है। मानवीय मूल्य बोध उनकी कविता में अभिव्यंजित हुए हैं। पौराणिक कथाओं को नई संवेदना के साथ कवि संयोजित करता है उनकी वस्तु योजना, कथा का रूप विधान भक्ति भावना से निर्मित होता चलता है। कवि मानवीय प्रेम सौन्दर्य को आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक ले जाता है। कविता में प्रसंग कुछ भी हों, किसी अवतार का वर्णन हो, पर कवि की संवेदनीयता और भावव्यंजना प्रमुख रूप से पाठक को अभिभूत करती है। उनकी रचना में निर्भय होने का भाव है, रचना प्रक्रिया में निर्द्वन्द्वभाव ही प्रतिष्ठित हुआ है। पुराण योजना के बीच हुए मानवीय आदर्शो को लेकर संचेतन एवं मार्मिक हो उठते हैं। पद-पद में भाव सौन्दर्य, लालित्य पद योजना एवं प्रकृति सौन्दर्य, दर्शन एवं भक्ति का मंजुल रूप तन्मयता और समाधि तक ले चलने में समर्थ सिद्ध होता है।

कवि की रचना दृष्टि को समझने के लिए यह जानना भी जरूरी है कि वह मनुष्य को किस भूमिका के रूप में प्रस्तुत करता है। वह व्यक्तित्व की रचना करना चाहता है, जिन मूल्यों से मानवता का क्षरण होता है, उनसे वह मनुष्य जाति को बचाना चाहता है। उनकी काव्य भक्ति में केन्द्रीय भाव प्रेम और भक्ति का है। इस प्रेम, करुणा और श्रद्धा भक्ति के माध्यम से अध्यात्म की उच्चतम भाव भूमि में प्रवेश कराता है। मूल्यों की संरचना में वह व्यापक मानवीय संदर्भ को लिए हुए है, वहाँ जाति, वर्ग, धर्म की कोई सीमा नहीं है।

भक्ति के विविध रूपों में कवि 'निधान गिरि' ने सार्वभौम जीवन की सहज सुख और शान्ति को लक्ष्य बनाया है। कवि ने रामकथा, कृष्णकथा तथा विभिन्न अवतारों की कथा के माध्यम से एक ही हरि चरित्र को विभिन्न प्रतिरूपों में वर्णित किया है।

जिन सार्वभौमिक मूल्यों को कवि स्थापित करना चाहता है चरित्रों का निर्माण करना चाहता है वे किसी एक युग, देश और काल के नहीं है वरन् वह भक्ति के सोपानों से मनुष्य में श्रेष्ठतर रुचियों और संस्कारों को गढ़ना चाहता है। एक ओर दुर्बलताएँ है, मानवीय कमजोरियाँ हैं, बर्बरता है उग्रता है, अनैतिकता है, दूसरी ओर संकल्पनाएँ है, ऊँचाइयाँ है, करुणा है और नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था है। जीवन को त्रासदी से बचाकर आनंद की ओर ले चलने का प्रयत्न है।

कवि श्रोता को भी सजग करता है और स्वयं भी सजग है। कथा की योजना

में सत्य का साक्षात्कार कराने के लिए वादों और तर्कों से ऊपर उठकर आध्यात्मिक (उच्च) प्रेम के आलोक में समरसता और शान्ति की खोज करता है और उसमें मानवीय विश्वास उत्पन्न करता चलता है।

भक्ति से ही जीव और काव्य की सार्थकता है। नश्वरता और क्षणभंगुरता के बीच विकसित होकर व्यक्ति को एक आंतरिक सन्तुष्टि प्रदान कराने के लिए, सार वस्तु को ग्रहण करने पर बल देता है।

कवि की रचना भूमि में भारतीय दर्शन, अध्यात्म प्रवृत्ति एवं जीवन है। भक्ति के परिप्रेक्ष्य में वह मानवीय बने रहने का संकेत करता है। वह लौकिक जीवन को लोकोत्तर सौन्दर्य से परिचित कराता है। श्रृंगार की मर्यादा में जीने का आदर्श उपस्थित करता है।

तुलसी, सूर और जयदेव का आदर्श लेकर काव्य रचना करने वाले 'निधान गिरि' काव्य की मूल संवेदना को भक्ति रस से व्यंजित करते है। कवि की अनुभूतियाँ, गुणी और मर्मज्ञ पाठकों तक ही नहीं है, वह सामान्य व्यक्तियों और ग्राम जीवन से जुड़े कम शिक्षित लोगों को भी संवेदनशील बनाती है। सर्वजन हिताय को लक्ष्य में रखकर 'निधान गिरि' ने कविता में एक ऐसी क्षमता उत्पन्न की है, जो एक साथ सभी को प्रेरित कर सके। कवि की रचना में राम भक्ति का रस है जो अत्यन्त मधुर है और भक्तों को अमृत्व का बोध कराता है। कवि ने भाव व्यंजनाओं के लिए जिस भाषा को चुना है, वह भी ग्राम्यगिरा है, बुन्देखण्ड के झाँसी मंडल में एरच के आस-पास की बोलियों से निर्मित शब्द रचना है।

'निधान गिरि' मात्र मनोरंजन के लिए काव्य रचना में नहीं आए। वे नैतिक, मानवीय, आध्यात्मिक सन्देश के संवाहक के रूप में है। वे मानव की मूलभूत समस्याओं, संवेदनाओं से जुड़कर अनुभूतियों को अभिव्यंजित करते हैं।

'निधान गिरि' ने 'आखर' से अर्थ को प्रकट करने में सिद्धि को प्राप्त किया है। वे अक्षरों को अर्थवान बनाते हैं। बिना अर्थ के तोतरे वचन केवल बाल्यक्रीड़ा में आनंद प्रदान करते हैं, शेष तो अर्थवान रचना ही कवि का काव्य बनती है।

'निधान गिरि' दार्शनिक और भक्ति सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए उन सबके बीच से एक ऐसी मध्यमान भाव भूमि चुनते है, जिसमें एकाकार होने की सामर्थ है। भिन्न-भिन्न अवतारों में एक ही हरि की अनुभूति करना कवि का लक्ष्य प्रतीत होता है। वह ज्ञान, भक्ति एवं योग तीनों धाराओं को समन्वित करते हैं। विभिन्न चरित्रों से एक भाषामयी मानवीयता उत्पन करने में कवि की कला अत्यन्त भावपूर्ण है। प्रसंग, घटनाक्रम, कथाक्रम सभी रचना के प्रेम (भक्ति) भाव में परिणित हो जाता है।

कथा के आरम्भ में कवि ने भक्ति, उसके प्रकारों तथा उसकी मनोदशाओं की विवेचना करके एक उपयुक्त वातावरण प्रदान किया है। सम्पूर्ण कथा भक्ति परक है, ग्रंथ भक्ति प्रधान के कारण 'भक्ति मनोहर' कहलाया। अत: कवि की दृष्टि रचना दृष्टि अत्यन्त सतर्क है। परम्परित राम कथाओं और कृष्ण कथाओं की भांति इसमें संवादों की विभिन्नता नहीं है, बल्कि विभिन्न संवादों को कवि ने इस प्रकार अनुबन्धित किया है कि वे विभिन्नता का बोध नहीं होने देते।

'निधान गिरि' ने सूर्यवंश की कथा में रामकथा तथा चंद्रवंश की कथा में कृष्णकथा का समायोजन करके एक ही काव्य में तुलसी और सूर को समन्वित प्रदान कर दी है, संधिस्थल का निर्वाह भी जितना सहज 'निधान गिरि' का है उतना अन्यत्र नहीं।

धर्म का पर्यवसान आचरण में होता है। इसीलिए आचार धर्म का मुख्य अंग है-आचार: प्रथमो धर्म:। 'निधान गिरि' ने धर्म की सामाजिक उन्नयन के लिए, मानव समाज के जीवन-स्वर को उदात्त बनाने के लिए जिस उदार दृष्टि का परिचय दिया है, उसमें समन्वय की साधना प्रमुख है। कवि ने जिस औदार्य से, समन्वय दृष्टि से भक्ति का एकाकार किया है, वह रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वैष्णव धर्म के उपजीव्य ग्रंथ गीता में समन्वय ज्ञान, भक्ति और योग का समन्वय है। वैष्णव धर्म भक्तिप्रधान धर्म है और भक्ति का सम्बन्ध मानव हृदय से है। मावन हृदय की एकता सर्वदा उद्घोषित की गई है। 'निधान गिरि' में इस औदार्य का परिचय मिलता है। प्रेम को आधार बनाकर भक्ति का एकाकार किया है। रीति के उत्तरार्द्ध तथा आधुनिक युग के प्रारम्भ के संधिकाल में भक्ति आन्दोलन को नयी गति दी। तुलसी, कबीर, रैदास आदि जहाँ सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने और रूढ़ि-रीति की मर्यादाओं के विरुद्ध के लिए बल देते हैं, वहीं सूरदास, चंददास, मीतादास आदि सहज मानवीय प्रेम की तन्मयता को स्फुटित करते हैं। संत और भक्ति परम्परा के विभेदों को रोक कर समाज को दासता के बन्धन से मुक्त कराने की दिशा में वेदान्त का दान देकर आत्मगौरव का अनुभव प्रदान कराया। भक्ति की अंतर्विरोधी प्रवृत्तियों को पहचान कर उन्हें एकता के सूत्र में आवद्ध किया। वैष्णव और शाक्त दोनों प्रकार की साधनाओं का गहरा असर उनकी रचनाओं में विद्यमान है। सगुण और निर्गुण, राम, कृष्ण और शैव साधनाओं का एकीकरण 'निधान गिरि' को एक और महत्व प्रदान करता है। निर्गुणिया साधना को लीलागान से जोड़कर कवि ने जो नए संस्कार कविता को प्रदान किया हैं, उनमें एक नवीनता है।

भक्ति के क्षेत्र में योगदान

जिस प्रकार भक्ति साधना के क्षेत्र में सामाजिक उन्नयन, धार्मिक जागरण के लिए भक्तिकालीन कवियों-भक्तों में तुलसी सर्वोपरि हैं, वैसे ही रीति के उत्तरार्द्ध और आधुनिक युग के प्रथम चरण की संधिकाल के महाकवि 'निधान गिरि' भक्ति के द्वारा सामाजिक राजनैतिक जागरण के लिए अपने काल के सर्वोपरि कवि भक्त सिद्ध होते हैं।

'निधान गिरि' ने सहस्राब्दियों की चलती भक्ति धाराओं को एक नयी गति दी है। भक्ति और मुक्ति का संगम कहीं देखना हो तो 'निधान गिरि' में वह समुज्वल रूप

में प्रतिबिम्बित हैं। वेतवा नदी में शिव और विष्णु की जैसी स्नान परम्परा कवि ने वर्णित की है वह अन्यतम है। वैदिकक्रम से लेकर रीतिक्रम तक की भक्ति परम्पराओं के एक नए करुण और प्रीति की आकार भूमिका में लाकर एकाकार करने वाले कवि 'निधान गिरि 'का योगदान अक्षुण्य है।

काव्य और संगीत की धाराओं का भक्ति के साथ एकाकार होने से कविता का वैशिष्टय और भी बढ़ गया है। उच्चगिरि श्रृंगो के गिरने वाले जल प्रपातों से भी अधिक ध्वनि वेग 'निधान गिरि' की कविताओं में ध्वनित होता है।

धर्मशास्त्रियो ने अनैतिक-अनुचित कार्यो से बचाने के लिए अपराधों और पापों के दुष्परिणाम की विभीषिकाएँ खड़ी की हैं। पाप की प्रवृत्ति को रोकने के लिए भय की आवश्यकता प्रतीत हुई किन्तु पाप की मनोग्रंथि मनोबल को क्षीण करती है। भय की वृत्ति अपराध बोध की वृत्ति है। अत: 'निधान गिरि' ने सर्वत्र भय विहीन होने की बात की है और भक्ति के माध्यम से निर्भय और निर्भीक होने का संदेश दिया है। समाज को भयमुक्त बनाने के लिए कवि 'निधान गिरि' का यह प्रयत्न पौरुषेय है।

भक्ति के माध्यम से कवि हरि अवतारों के प्रति निष्ठा उत्पन्न करके व्यक्ति-समाज को, राष्ट्र को संघर्ष की प्रेरण देता है। हरि अवतारों का स्मरण कर, जन आस्था में संत्रास एवं भय का विनाश हो जाता है। हताशा और संघर्ष की स्थिति में भक्त का विश्वास अविचल रहता है राम-रावण का चिरकालिक संघर्ष हो, अथवा कृष्ण का दानवी शक्तियों से संघर्ष हो, सभी प्रसंग अत्याचारों से झूझते और 'सत्य हारा नहीं आज तक शक्ति से शक्ति के दर्प पशुवल अहंकार से' का सूत्र संघर्ष के कालजयी सत्य के विजयी स्वरूप को व्यक्त करता है। सत्य का पक्ष भले हारता हुआ प्रतीत हो किन्तु वह अंत में जीतेगा ही, यह विश्वास सत्पथ पर चलने का कवच रक्षक बनता है।

भक्ति का एकाकार

'निधान गिरि' ने एक ओर एकेश्वरवाद का समर्थन किया, दूसरी ओर अवतारवाद की पुष्टि की। राजाराम मोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना करके सन् 1829-1890 अवतारवाद तथा मूर्ति पूजा का विरोध कर रहे थे। परिणामस्वरूप भारतीय जनमानस अवतारवाद के विरोध के कारण ब्रह्मसमाज को हिन्दू धर्म का अंग न मानकर उसे हिन्दू विरोधी आन्दोलनद के रूप में देखने लगा था। साथ ही रीतिकाल में भक्ति की धाराएँ विभिन्न पंथो एवं अखडों में विभक्त थी। ऐसे वातावरण में 'निधान गिरि' ने शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन को लेकर अवतारवाद को हरि चरित्र से जोड़कर सभी भक्ति पंथो को एक-करने तथा जोड़ने का कार्य किया।

'निधान गिरि' ने योग, ज्ञान, विज्ञान, कर्म, वैराग्य के बीच समन्वय स्थापित करते हुए भक्ति को सर्वोपरि महत्व दिया-

> "जोग, ग्यान, विज्ञान पुन विविध कर्म वैराग्य।
> भक्ति सवन सिरमौर है करहु प्रीति बड़भाग।।"[1]

'निधान गिरि' की स्पष्ट घोषणा है कि जिसको जिस प्रकार की भक्ति में रुचि होती है, वही उसके मनोनुकूल है, भक्ति सभी एक ही है, जो निरंतर प्रीति प्रकट करती है-

> ''जस जस विध सै मन लगै भक्तन कौ तस रीत।
> होइ भक्ति सब एक सी प्रगट निरंतर प्रीत।।''[2]

भक्ति के विभिन्न भेदों, उपभेदों का वर्णन करते हुए 'निधान गिरि' ने भक्ति को एक ही स्वीकार किया है, देखने में भक्ति में वैविध्य है, अनेकता है किन्तु वस्तुतः एक ही है-

> ''अस प्रकार इक भक्ति है भक्तन मनु अनुसार।
> विविध भांति की लष परत सबकौ एक विचार।।''[3]

इस प्रकार भक्ति एकीकृत करती है। राष्ट्रीय भावात्मक एकता का संवल है। मानव जाति को प्रीति में बाँधकर एकाकार करने वाली भक्ति ही विराट मानव चेतना को एकता और बंधुत्व से आबद्ध करती है।

भारतीय पुर्नजागरण की पृष्टभूमि में भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार, भक्ति पंथो के कारण विभिन्न अवतारों में एक ही हरि का दर्शन तथा साम्प्रदायिक सीमाओं को तोड़कर भक्तकवि 'निधान गिरि' का उद्घोष-

> ''दासन को प्रभू आपसै राषत मान तड़ाग।
> सुमरत सील सुभाव जे सुक्रत पुंज अनुराग।।''[4]

सभी भक्ति पंथो, दार्शनिक मतों, विभिन्न अवतारों से मिलकर एक ऐसी समवाय-संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं, जिससे राष्ट्रीय एकता भक्ति एकता ओर दार्शनिक एकता को आधार मिल सके। वे श्रुवि, पुराण एवं अन्यान्य ग्रंथों एवं प्रमाणों द्वारा ब्रह्न एकता को बताने वाले प्रवृतमार्ग को पुष्ट करते हैं। साथ ही नानात्व का निषेध करने के लिए प्रवृत होते हैं। वे अनेक प्रमाणों के बीच में विरोध नहीं, सर्व प्रमाणों से समन्वय उत्पन्न करना चाहते हैं-

अ. 'निधान गिरि' सभी भक्तिमार्गो, पंथों का आधार 'प्रीति' को मानते हैं, अतः ईश्वर की प्रीति का विषय बना हुआ साधन विभिन्न भावभेदों के बीच भी एक अभेद का दर्शन कराता है।

ब. 'निधान गिरि' ने विभिन्न तत्वों के बीच में एक ही तत्व परमतत्व, सर्वोच्च को प्रधानता दी है। अद्वैत सिद्धान्त के एक तत्ववाद से विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त सम्मत एक तत्ववाद से ब्रह्न एक ही सत्य है, चेतन एवं अचेतन ब्रह्म पर ही आधारित ब्रह्म के नियंत्रण में है एवं ब्रह्म के शेष भूत है।

स. 'निधान गिरि' ने वैदिक सूत्र सिद्धान्तों के आधार पर जिन भक्तिभावों की प्रतिष्ठा की है, वे यज्ञमूलक हैं।कवि ने भागवत भक्ति की प्रेम लक्षणा को भी उससे सम्बन्धित किया है। इस प्रकार यज्ञ और भक्ति का समन्वय हो उठा है।

द. सम्पूर्ण चेतना चेतन रूपी विशेषताओं से विश्विष्ट ब्रह्म एक ही तत्व है। 'एक मेवा द्वितीयम' इत्यादि ऐक्य श्रुतियाँ विशिष्ट वस्तु एक ही है, अनेक नहीं।

सगुण और निर्गुण एकाकार

'ब्रह्म अनादि मध्य नहि अंता। निर्गुण रूप सगुन हित संता।' 'निधान गिरि' ने वैष्णवों के अनुसार भमवत तत्व सगुण एवं साकार है, जिसकी पृष्ठभूमि में निर्गुण तथा निरकार ब्रह्म सर्व देव विद्यमान रहता है। वस्तुतः वह निर्णुण होकर भी सगुण होता है। अव्याकृत गुणों से ही होने के कारण वह निर्णुण कहलाता है और षाड गुण्यों से युक्त होने से सगुण कहलाता है। 'निधान गिरि' ने शंकराचार्य के उपनिषदों के अधार पर ब्रह्म के विविध रूप स्वीकार किये हैं। एक तो है नामरूप-उपाधि विशिष्ट सगुण ब्रह्म तथा दूसरा रूप है उपाधिरहित निगुर्ण ब्रह्म। वल्लभाचार्य ने ब्रह्म के दोनों ही रूपों को सत्य कहा है। वह कर्ता अकर्ता दोनों रूपों में है-

भक्ति में विरोधी भावों का समाहार

भगवतलीला के क्षेत्र में सम्प्रदायों के बीच के मतभेदों को 'निधान गिरि' ने समीकरण प्रदान किया है। रामानुज, मध्वाचार्य ऐश्वर्य भाव की प्रधानता से दास्य भाव की भक्ति को अभीष्ट मानते हैं।रामसेवी वैष्णव भी इसी दास्य भक्ति की उपासना करते हैं। किन्तु रामसेवी वैष्णवो में एक उपसम्प्रदाय माधुर्य भाव के उपासक हैं भी। निरंकार, बल्लभ तथा चैतन्य शक्तिमान कृष्ण की उपासना पर आग्रह रखते हैं, परन्तु हित हरिवंश सम्प्रदाय में शक्तिरूप राधा का प्राधान्य है। निरंकार भूत में सख्य भाव की प्रधानता है। वल्लभाचार्य में श्रृंगार भावना तथा माधुर्य भावमयी भक्ति को मुख्य माना है। किन्तु बालभाव की उपासना पर बल दिया है। सहजिया वर्षणवों में माधुर्यभाव को ही कृष्ण की शक्ति रूप माना गया है। इसमें दास्य भाव ही अमीष्ट है।

भक्तकवि 'निधान गिरि' में जिस भक्ति का आश्रय लिया है, उसमें सख्य, दास्य, माधुर्य आदि भावों का समावेश किया है। साथ ही साधकों की विभिन्न रुचियों के आधार पर उन्हें साधना करने की स्वतन्त्रता दी है और सभी भक्तियों को एक ही बताया है। 'निधान गिरि' की भक्ति में रामसेवी वैष्णव की दास्य एवं माधुर्य भावों तथा निबार्क के सख्यभाव, वल्लभाचार्य के माधुर्य भावों को स्पष्ट देकर एक नये भागवत संप्रदाय को जन्म दिया।[5]

"अधिक होत क्रम क्रम भगत करनी तीस प्रकार।
भक्तिभेद केवल यही समझहु सहित विचार।
जस-जस विध सै मन लगै भक्तन कौ तस रीत।
होइ भक्ति सब ऐकसी प्रकट निरंतर प्रीति।।"[6]

कवि ने जो भावभूमि तैयार की है जिसमें सभी विरोधी मतों का समाहार हो जाता है। वैषम्य भाव को उदार और व्यापक बनाने में 'निधान गिरि' ने महत प्रयत्न किया है। वैणव मतों के साम्य और वैष्णव को पहचानकर उनके तात्विक रूप की एकता पर बल देकर सभी पंथो, मतों पर समभाव श्रद्धा रखते हुए, भक्त कवि 'निधान गिरि' भक्ति का उदार रूप प्रस्तुत कर सके, यह साहित्य, साधना और भक्ति के इतिहास में एक बहुत बड़ी क्रान्ति है।

शैवमत तथा वैष्णव मतों का एकाकार

शैव मत में ज्ञान तथा भक्ति दोनों शिव तत्व प्राप्ति में सहायक है। प्रत्यभिज्ञा मत में ज्ञान के साथ भक्ति का भी उपयोग किया जाता है। शैव सम्प्रदाय ज्ञान तथा भक्ति का एकतत्व या अभिन्नतत्व को अभीष्ट मानता है। वैष्णव मत में भगवत्प्राप्ति में भक्ति ही केवल साधन है। ज्ञान और कर्म गौण रूप से भक्ति में सहयोगी है। कवि 'निधान गिरि' ने शैव और वैष्णव मतों का एकाकार कराया है। राम और कृष्ण के बाल्यरूप को देखने के लिए शिव अयोध्या और ब्रज में जाते हैं। आयोध्या में सामुद्रिक के रूप में गुप्त योजना बनाकर जाते हैं, पुनः पहचाने जाते हैं। बृज में रास में शिव भी सम्मिलित होते हैं और गोपेश्वर के रूप में पहचाने जाते हैं। इसी प्रकार राम और कृष्ण के सौन्दर्य वर्णन में कवि 'निधान गिरि' ने जो उत्प्रेक्षाएँ दी है, उनमें भगवान शिव की मुद्राएँ, विभूतियाँ, अलंकार आदि ही प्रमुख है। महाकाव्य के कथानको में कवि 'निधानगिरि' ने शैव और वैष्णव भावों की अद्‌भुत संधि करायी है।

मुक्ति और भक्ति की एकता

निगुर्ण साधना में संतों ने मुक्ति पर और सगुणोपासक भक्तों ने भक्ति पर बल दिया है। 'निधान गिरि' ने भक्ति द्वारा मुक्ति का उल्लेख करके मुक्ति और भक्ति की पृथक धराओं को एकाकार कर दिया है। कवि 'निधान गिरि' के शब्दों में-

अ. ''भगवत चरित सुनह मन लाई। पावत भक्ति मुक्त हो जाई।''[7]
ब. ''पहुँचावत है परम पद नहि संदेह गनाइ।''[8]
स. ''सुमिरत नाम परमपद होई।''[9]

भक्ति भावों का समन्वय

भगवदप्राप्ति और ब्रह्मानंद के लिए 'निधान गिरि' ने भक्ति के पांच प्रमुख भावों को साधन के रूप में चुना है, तथा उनमें परस्पर भावों का सामंजस्य भी रहता है। कवि ने शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावों की सुंदर विवेचना की है।

''विविध भाँत के होत है मम भक्तिन के भाव।
तासै भक्त अनेक विध भक्त भाव कौ गाव।''[10]

भक्ति का अविभक्त स्वरूप

'को कर सकै विभाग' कहकर 'निधान गिरि' ने भक्ति के अविभक्त स्वरूप का संकेत किया है। कवि ने भागवत की भक्ति को अनुराग वाली कहा है, उसमें वेद, स्मृत, शास्त्र, पुराण, पंचरात्रियों की मान्यताओं का श्रीगणेश किया है।

अ. ''भगवत माहि परम अनुरागा। यही भक्ति वरत बड़ नाना।
भगवत कौ स्वामी जिय जानै। आपुन दास भाव कर मानै।''[11]

ब. ''निश्चय भवगवत पद कर प्रीता। घर विस्वास भक्त सोभीता।
वेद स्मृत सब शास्त्र पुराना। नारद पंचरात्र मति साना।''[12]

स. ''कर आचरन भागवत धर्मा। धर्म विरोध तजै तजै कर्मा।
ईश्वर सब जग व्यापक देषी। सबकौ हरिमय जान विसेषा।''
जल तरंग लष ऐक समासा। ताकौ उत्तम करत वषाना।
जास प्रीत भगवत मैं गाई। भगवत मक्त मित्र समताई।।''[13]

द. ''प्राकृत भक्तन पै कर दाया। परम अनुगृह मन वच काया।
जो हरि मूरत अचरन करही। ईस्वर भाव प्रीति उर धरई।
प्राकृत भक्त कहत अस भाँती। प्रीति भाव से हरिपद पाली।
जीव बिना ईस्वरता नाहिं। ईस्वर बिना जीव कहु काही।
भक्ति वाम मूषन सिंगारा। ब्रह्म बिना जीव सम हृदय विचारा।।''[14]

सखी और सखा भावों का समन्वय

'निधान गिरि' ने एक ओर निंबार्क मत की एक अवतार शाखा सखी सम्प्रदाय के अनुकूल, जिसके अन्तर्गत गोपीभाव को प्रमुखता देते हैं। चंद की सखी भावना की भांति 'निधान गिरि' भी सखि रूप में राम और कृष्ण की बाल-लीलाओं का आस्वादन करते है तथा सखा भाव से भी भगवान का स्मरण करते हैं।

भक्ति का शास्त्रीय चिंतन

'निधान गिरि' ने 'भक्ति मनोहर' के चार विभागों में 'भकित प्रकाश' के अन्तर्गत भक्ति, उसके विविध प्रकारों एवं भक्ति की आधारभूमि प्रेम आदि की दशाओं का वर्णन करके बड़ा उपकार किया है। भक्ति पर कवि की विपुल सामग्री जो एक पूरे अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डालकर कवि ने ग्रंथ में भक्ति की अधारा शिला भी रख दी है।

''जोग ग्यान विग्यान पुन विविध कर्म वैराग।
भक्ति सवन सिरमौर है करहु प्रीति बडभान।।''[15]

जीव और ईश्वर की समता

'निधान गिरि' ने भक्ति के क्षेत्र में जीव और ईश्वर को परस्पर अवलम्बित बताया है। दोनों में समता, सखत्व, मित्रता का संकेत किया है, जो कवि का क्रांतिकारी चिंतन है

अ. "जीव बिना ईश्वरता नहीं। ईश्वर बिना जीव कहुँ नाही।"[16]

"दोऊ ईस्वर जीव सो सषा परस्पर रीत।

भक्ति वाम भूषन सिंगारा। ब्रह्म जीव सम ह्रदय विचारा।"[17]

निर्भय कीन सरस विस्तारी। ईस्वर जीव मित्रताधारी।"[18]

साधना पद्धतियों एवं सिद्धान्तों का समीकरण

भक्ति पंथ के सिद्धान्तों में भी मतभेद है। बारकरी पंथ में विट्ठल के नाम का उच्चारण, कंठ में तुलसी माला, एकादशी वृत का सेवन ये तीन पंथ मान्यसिद्धान्त हैं। उपास्य देवता श्री विट्ठलनाथ हैं, विष्णु के सभी अवतार मान्य हैं परन्तु राम, कृष्ण की मान्यता विशेष रूप से अभीष्ट है। इसमें बालकृष्ण की उपासना का प्राबल्य है। नाम कीर्तन पर भी यहाँ विशेष बल दिया जाता है। इसी प्रकार चैतन्य संप्रदाय के रामकृष्ण हरि षट् अक्षरी मंत्र तथा ऊँ नमो भगवते वासुदेवादि द्वादशाक्षरी मंत्र का उल्लेख भी 'निधान गिरि 'ने किया है। महाराष्ट्र के 'महानुभाव' पंथ को भी कवि ने सम्मानपूर्वक स्मरण किया है। शंकरदेव के 'एकसरण' सिद्धान्त का समावेश है। साधना पद्धतियों की भांति ही 'निधान गिरि' ने विभिन्न दार्शनिक पद्धतियों का भी समन्वित रूप तैयार कर भक्ति का स्वरूप गठित किया है।

भक्ति तथा अद्वैत का सामंजस्य

'निधान गिरि' ने समन्वयवादी प्रवृत्ति के लिए भक्ति के साथ अद्वैत दर्शन को आधार बनाया है। बिना अद्वैत की सिद्धि हुए शुद्ध भक्ति की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

वाममार्गी साधना के अन्तर्गत तांत्रिकों की तंत्र साधना का समावेश भी कवि ने किया है। तांत्रिकों की नाड़ियाँ इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि की साधना पद्धतियों को, तथा सख्य, दास्य, वात्सल्य भावों की उपासना पद्धति को माधुर्य भाव से संयुक्त करके उपासना की पद्धतियों को समन्वित किया है।

"तंत्रशास्त्र अस विध सै भाषा। भक्ति तीन अक्षर गुन राखा।।"[19]

प्रेम ही भक्ति की आधार भूमि है

'निधान गिरि' ने प्रेम को अनिवर्चनीय तत्व माना है। वह एक होकर भी अनेक है, वह प्रिया है, वह प्रियतम है, वह सखी है, वह श्रीवन है और वह इनसें भी परे है । प्रेम ही परमात्मा है। यही व्यापक प्रेम नित्य-विहार केलि में चार रूपों में व्याप्त है, अर्थात् युगल श्रीवन और सहचरी गण। कवि ने प्रेमरस से समस्त भक्ति प्रकारों,

भक्तिभावों को सम्बद्ध करके भक्ति का एक नया मनोवैज्ञानिक आधार तैयार किया है। प्रेम ही समस्त अवतारों का निधान और मूल्य है। कवि ने ही अवतारों के मूल में इसी प्रेम को लेकर जिस रास क्रीड़ा का वर्णन किया है, वह भक्ति साधना का आधार है।

कवि 'निधान गिरि' ने इस निज-स्वरूप-प्रेमरूपा भाव की सुंदर एवं सरस झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। रसपूर्ण मनोभावनाओं से राधा-कृष्ण, राम-सीता के गीत गाए है।

> ''जन्म कर्म प्रभु के हैं नाना। चरित अनेक एक भगवाना।''[20]
> नित भव प्रीति होइ हिनीकी। विसद आचरन कर अस लीकी।''

नित्य नवीन प्रीति, हृदय में अच्छी प्रकार की विशद आचरण की लीक ही प्रीति ओर आचरण मूलक भक्ति के स्थायी अंवलब हैं।

> ''सोवत जागत हरि सै प्रीति। नर नाराहन सरस सप्रीति।
> सो नर प्रीत प्रतीत सै मो मै रहै समाइ।।''[21]

पुष्टिमार्ग और मर्यादा मार्ग का निबंधन

मर्यादा मार्ग के अनुसार जीव फल के लिए कर्मो के अधीन है। जैसा वह कर्म करेगा, वैसा फल भगवान उसे देंगे। 'कमनिरूप फलभ् मर्यादामार्ग 'का प्रसिद्ध सिद्धान्त है, परन्तु पुष्टिमार्ग में कर्म की क्या आवश्यकता है।[22] ' निधान गिरि' ने एक ओर शास्त्रविहित ज्ञानमार्ग के आचरण से ही मुक्तिरूपी फल की मान्यता दी है परन्तु पुष्टिमार्ग में सतकर्म की नितान्त निरपेक्षता बनी रहती है।[23] 'निधान गिरि' ने मर्यादा ओर अनुग्रह भक्ति प्रेम का प्रतिरूप माना है अतः प्रेम के विस्तार में भक्ति का विस्तार संभव है। प्रेम भक्ति की मूल शक्ति है और उसके आधार पर समस्त भक्तियाँ एकाकार होती हैं।

> ''नारद पंचारात्र असभाषा। भक्ति प्रेम ए कहि प्रत राषा।।''
> जीवन कोट सरस सो मुक्ति। जासै अपर न जानहु जुक्ति।''[24]

कोटि-कोटि जीवनों के प्रति सरसता ही मुक्ति है। जगत के रूपों में आसक्ति ही भक्ति का सुखद धाम है। क्रान्त दशा का यही परिणाम है, जहाँ प्रत्येक वस्तु प्रति व्यक्ति एक ही ईश्वर का प्रतिरूप होकर दृष्टिगोचर हो।

प्रेम की द्वादस दशाओं से चलकर व्यक्ति की चेतना में जगमग में ब्रह्म का ही पूर्ण दर्शन हरि गोचर होने लगता है। यंत्र तंत्र सर्वत्र हरिरूप में मन मगन रहने लगता है-

> ''प्रेम दसा द्वादस अस गावहिं। पूरन ब्रह्म सकल जग भावहिं।
> जहाँ तहाँ देषन हरि रूपा। होइ मगन मन प्रभा अनूपा।
> अपर ओर मन वृत्य न जाई। सब दिस अवलोकह रघुराई।

जिहि हित अमित जन्म कर जीभा। किये कर्म सुमतप संजोगा।
अति श्रम तिहि सरूप कौ पावा। तजै बनै नहि बहुर बनावा।
याही प्रेम दसा कौ ताता। कहत भागवत गीता ग्याता।
पराभक्ति सोई अपनाई। जीवन मुक्त कहत है ताही।''[25]

भक्ति में विरोध का कारण और उसका निराकरण

'निधान गिरि' ने भक्तिमार्ग में परस्पर विरोध का कारण खोज लिया है, और उसी कारण का निवारण ही भक्तिमार्ग की एकता का सूचक है। कवि के अनुसार महातत्वों की संख्या में परस्पर मत वैभिन्न है। अत: इसी भिन्नता के कारण भक्ति के पंथ भी विभिन्न हैं, अन्यथा भक्ति तो एक ही है। कवि के अनुसार-

''जस भगवत प्रत उध्धव बूझा। महातत्व मैं संसय सूझा।
कोउ कहत नाथ चौबीसा। कोऊ सत्रह षोडस दीसा।
कोउ तीन पाँच कइ कोऊ। कोऊ सात आठ कह कोऊ।
यह विरोध कौ हेत वषानौ। सुन उद्धव प्रतउत्तर ठानौं।
जिनने एक तत्व मै ताता। समझा दूसर मैं मिल जाता।''[26]

तत्वों की गणना में मतभेद होने के कारण ही भक्ति के सिद्धान्तों के पृथक-पृथक सम्प्रदाय खड़े हुए। 'निधान गिरि' ने इन संख्याओं के कारण होने वाले अंतराल की पीड़ा को एक नयी व्यवस्था दी है-

''तिहि गनती मै होत दो अपर भेद नहि तांत।
जिन निरषौ वट वृक्ष कौ साषो दो विख्यात।
कवहूँ काहूँ अस कै साषा चार निहार।
चार डार कौ कहत सो वट तर ऐक विचार।
अस प्रकार इक भक्ति है भक्तन मनु अनुसार।
त्रिविध भाँत की लष परत सबकै एक विचार।।''[27]

'निधान गिरि' का काव्य शास्त्र के क्षेत्र में योगदान

'निधान गिरि' के काव्यादर्श, काव्यप्रयोजन, एवं काव्यहेतु आदि पर पूर्व में विचार प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। अत: यहाँ संक्षिप्त रूप में कवि के काव्यशास्त्र विषयक योगदान का उल्लेख किया जा रहा है। 'भक्ति मनोहर' में कवि के काव्य-सिद्धान्त जो बिखरे हैं, उन्हें खोज कर क्रमबद्ध किये जा रहे हैं। कवि 'निधान गिरि' ने रस को काव्य का जीवन स्वीकार किया है। रसिकों के समक्ष ही वे रस की बातें कहने का आग्रह करते है तथा बिना रस के फल का नि:स्वादन बताते हैं-

अ. ''रस की बात निरस सुन रहउ। रसिक होइ ता आगै कहउ।''[28]
ब. ''बिन रस फल फीलौ लगे कहत पुरान मुनीस।''[29]

'निधान गिरि' के काव्य की प्रेरक शक्ति मातृ शक्ति को स्वीकार किया है। माँ और सरस्वती का संबल ही महाकवि की सारस्वत साधना को संचरण प्रदान करता है-

"जो अस करौ अनुगृह माता। होइ मनव सबकौं सुषदाता।"[30]

महाकाव्य रचना की एक अन्य प्रेरक शक्ति के रूप में कवि ने समथर स्टेट के राजा महाराज चतुरसिंह को स्वीकार किया है-

"धन धन धन महिपाल मनि चतुर प्रश्न अस कीन।
चरित पुरातन हरि समझ चाहत किऐ नवीन।"[31]

काव्यभाषा के सम्बन्ध में कवि की उक्तियाँ दृष्टव्य है-

अ. भाषा भाषहु मानसी छंद प्रबंध मिलाइ।[32]
ब. प्रगट अरथ आषर करहिं सबकौ सुलभ सुहाइ।[33]
स. भक्तिमनोहर हरि सुजस चाहत कियै ज़वान।[34]

भाषा चिंतन में मानुषी, प्रगट अर्थ आखर, सबकौ सुलभ, सुहाइ, ज़वान आदि पदों से कवि की काव्यशास्त्रीय अभिरुचियाँ दिग्दर्शित होती हैं। अतः भाषा का देशी (मानुषी), छंदोमयी अर्थो को प्रकट करने वाली, ज़बान वाली भाषा, सर्व सुलभ, सर्वप्रिय बनाने का संकल्प कवि ने व्यक्त किया है और कवि ने इस काव्यादर्श (भाषा आदर्श) का निर्वाह भी अपने काव्य में किया है।

'निधान गिरि' ने वर्ण की मनोहारिता, अनुप्रास और यैमक के सुष्ठ प्रयोग, अलंकार, रस एवं भावविधान तथा हरि के संग से नाना गुणों से समलंकृत होने का संकेत किया है।

"प्रगटहिं वरन मनोहरताई। सुंदर अनुप्रास जमकाई।
अलंकार रस भाव विधना। हरि जस संग उपज गुन नाना।।"[35]

'निधान गिरि' ने काव्य में जिन तत्वों का ज्ञान आवश्यक है, उनमें वर्ण, अलंकार, रस, भाव, गुण आदि का उल्लेख करके तथा काव्य में इनका उपयोग करके विभिन्न काव्य सम्प्रदायों के बीच सेतु बंधन का कार्य किया है।

महाकवि 'निधान गिरि' ने तुलसी की भांति काव्यार्चन के लिए अनुराग, बुद्धि, मति (मनीषा), चरित, बुध आदि का उल्लेख किया है-

"जिन अनुराग ताग कर पाऊँ, वुध मृगनैनी वोल गुहाऊँ
जन निधानगिर मति भामिनकर, वाल चरित पहराइ हार वर

प्रफुलित कर नाऊँ सिसु केला, होइ भली वुध कवित समेला।[36]

उपयुक्त काव्य उक्ति में कवि ने कवित्त के मेले में जिन तत्वों की ओर संकेत किया है, वे इस प्रकार है, कवि ने निज अनुराग (आत्मराग) कवि की निजी अनुरागात्मक भावस्थितियों को ही 'ताग' बनाया अर्थात् अनुराग ही सूत्र है, जो सबको गुंफित करता है। सूत्र के अभाव में माल्यादि हार नहीं गुथ सकते। इसी प्रकार जब तक कवि या भक्त का निजी अनुराग न हो, अर्थात् उसकी अपनी मौलिक रागानुभूतियाँ न हो, तब तक कविता का प्रबन्धन नहीं किया जा सकता। पुन: कवि ने 'बुद्धि' तत्व को मृगनयनी के रूप में रखा है। 'बुद्धि' का काम दीर्घ नेत्रों से देखने का है, यदि बुद्धि के नेत्र उन्मीलित न हो तो उसमें शिव दृष्टि का संचार नही होगा। कवि 'निधान गिरि' ने जिस बुद्धि से माला गुथने के लिए कहा है, उसका मृगनयनी होना भी आवश्यक है। कवि ने 'बोल' को गुहाने के लिए कहा है, 'बोल' का अर्थ आंचलिक बोलियों से है जिनमें बृज, बुन्देली आदि देशज ग्राम्य बोलियाँ आती है। कवि ने पुन: मति को भामिनि कहा है। मति भामिनि बाल चरित्र के श्रेष्ट हार पहनायेगी। कवि प्रफुल्लित होकर शिशु केलि गायेगा। इससे बुधजन का भला होगा अर्थात् कविता से व्याकरण का कल्याण होगा। कविता का 'संमेला'कहकर कवि ने समेला शब्द से मेला और सम्मेलन दोनों अर्थो के संकेत किये है।

'निधान गिरि' ये काव्यादर्श, काव्यप्रयोजन, काव्यप्रक्रिया तुलसी की परम्परा में एक और क्रान्ति का चरण जोड़ता है। तुलसी स्वान्त: सुखाय रचना करते हैं, 'निधान गिरि 'भी निज अनुराग का उल्लेख करते हैं किन्तु वे कविता के मेले में लोकार्पण करते हुए दिखाई देते हैं, अत: उनका मूल स्वर, बहुजन हिताय का है।

'निधान गिरि' का काव्य प्रयोजन सर्वजन हिताय

तुलसी ने 'जिन गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यो' कहकर अपनी वाणी को पवित्र करने का उद्घोष किया है, 'निधान गिरि' ने 'पावन को पावन करन', कहकर पवित्र को भी पवित्र करने के लिए तथा सुजन समाज के लिए काव्य की साधना की है। 'निधान गिरि' हरि यश को जग को पवित्र करने के लिए गा रहे है। एक अन्य स्थान पर कवि ने 'सकल लोक पावन करन, जिम सुरसरि कौ नीर' कहकर सम्पूर्ण लोक को भी पवित्र करने की बात कही है, इसी प्रकार 'निधान गिरि' जन-जन को पावन करना चाहते हैं। कवि यह जन पावन, लोक पावन, पावन को पावन करने की प्रतिज्ञा एक जन संदर्भ, एवं लोक संदर्भ लिये हुए प्रतीत होती है। कवि की मान्यताएँ इस प्रकार हैं-

अ. हरि जस जग पावन करन गावहिं सुजन समाज।[37]

ब. पावन को पावन करन विमल मधुर सै मीठ।[38]

स. सकल लोक पावन करन, जिम सुर सरि को नीर।[39]

द. जन पावन सुर सरित समाना।[40]

वस्तुत: 'निधान गिरि' के काव्य प्रयोजन में यह जन, लोक, जग की स्पष्ट धारणा व्यक्त हुई है। भक्ति के एकाकार एवं उसे जनता से जोड़ने में कवि को अपने जीवन में कवि क्रान्तिकारी भूमिका काव्यशास्त्र के क्षेत्र में एक नई उपलब्धि भी मानी जायेगी।

'निधान गिरि' के काव्य का प्रमुख प्रयोजन

'निधान गिरि' ने एक ओर तत्कालीन समथर नरेश महाराज चतुरसिंह के लिए हरि चरित्र की नई रचना की थी, वहीं उनके काव्य का प्रयोजन सामान्य जन भी है। कवि ने काव्य प्रयोजनों का संकेत इस प्रकार किया है-

अ. चतुर सिंह महराज जुत सचिव प्रश्न अस कीन।
हरि चरित्र वरनन करहु भक्ति भाव लवलीन।[41]

ब. सुनहै सज्जन प्रीति जुत लहहि भक्ति कौ धाम।[42]

स. सावधान हो सुन श्रवन समझहु बुद्धि विचार।[43]

द. भगवत चरित सुनह मन लाई पावत भक्ति मुक्त हो जाइ।[44]

य. सगुन उपासक हरि गुन गाई। तिनसै प्रीत प्रतीत सदाई।[45]

र. जो जन मन निर्मल करै होइ परमपद लीन।[46]

व. सुनहु सुजन कर प्रीत।[47]

श. नित नव प्रीत होइ हिय नीकी। विसद आचरण कर अस लीकी।[48]

कहने भर क लिए तो कवि का संवाद राजा के मध्य हुआ था किन्तु कवि ने इसे हमारा और तुम्हारा संवाद बना दिया है-

''यह संवाद हमार तुम्हारा।सुमिर सुमिर उतरै नर पारा।।''

हमारा और तुम्हारा संवाद से कवि का आशय है कि इसमें एक ओर कवि है और दूसरी ओर 'जन' है। जनता और कवि हृदय के बीच का संवाद जन संस्कृति का सेतु है। इससे जनता को आर-पार जाने में सुविधा होगी। लोक और अध्यात्म दोनों का अद्‌भुत समायोजन कवि ने किया है। राजा को धर्म और राजनीति दोनों दिशाओं में कवि ने प्रेरित किया और इसी माध्यम से जनता में भी धर्म और राजनीति दोनों का संदेश दिया गया। यही है सेतु जिसके माध्यम से मनुष्यों को दोहरे दायित्व का निर्वाह सुगम हो सकता है।

काव्यवर्ण्य

काव्यवर्ण्य के अन्तर्गत कवि ने ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि सभी विषयों को अपने काव्य का विषय बनाया है। राजनीति, इतिहास, दुर्ग विचार आदि भी उसके चिंतन के विषय बने। एक ओर कवि ने हरि के विभिन्न अवतारों की कथा का नया रूप प्रस्तुत किया, जिसमें एकता, प्रीति, आचरण और करुणा का संदेश दिया गया। कवि ने 'भक्ति मनोहर 'महाकाव्य को चार प्रकाशों के माध्यम से विभक्त करके साहित्य में साहित्येतर

विषयों को भी समायोजित किया है।

काव्यरूप

काव्यरूप की दृष्टि से 'निधान गिरि' ने प्रबन्ध काव्य में छंदोमय रचना की वहीं इसमें चरित्र, पुराण आदि काव्य रूपों का भी समावेश किया। सूर के भ्रमर गीत की भांति 'निधान गिरि' ने भी भ्रमर गीत का नया रूप प्रस्तुत कर प्रबन्ध काव्य के भीतर मुक्तक काव्य का भी समावेश किया। स्तुतियों में स्तुतिकाव्य, युद्ध प्रसंगो में वीरकाव्यों की शैली का समावेश है। प्रसंग पल्लवन, संक्षेपण, स्मृति कथन, अलंकार आदि से कथा वस्तु का विकास एवं विभिन्न काव्य रूपों एवं शैलियों का समायोजन, रस और वक्रोत्ति मार्गो की संधि, वर्ण वृत्त और मात्रिक छंद रूपों को अंगीकृत कर काव्य रूपों में भी संतुलन किया है।

काव्याधिकारी

'निधान गिरि' काव्य के अधिकारी एक ओर संत, सुजन, चतुर, विवेकशील और रसिक जन हैं तो दूसरी ओर इस काव्य के अधिकारी भुवन मंडल के समस्त प्राणी भी। इस प्रकार का अधिकार अन्यत्र नहीं मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने अपने काव्य को सर्वजन हिताय, सर्वसुलभ तथा लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयत्न किया है।कवि के शब्दों में-

"जीव चतुर दस भुवन के जल थल नभ संचार।
प्रनवत सिर धर सबन कौ करहु ग्रंथ विस्तार।।"[49]

वस्तुतः कवि ने सर्वजन को अधिकार देकर काव्याधिकार के क्षेत्र में एक जन क्रान्ति भी की है जो समूचे काव्यशास्त्र को नई प्रेरणा देने वाला सिद्ध होगा।

'निधान गिरि' का काव्य के क्षेत्र में योगदान

रीति के अन्तिम चरण और आधुनिक युग के प्रथम चरण के पूर्वार्द्ध के संधि-काल में 'निधान गिरि' का काव्य-क्षेत्र में अवतरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनका महाकाव्य 'भक्ति मनोहर' देश की समस्त जनता के हृदय का स्पर्श कर सके, राष्ट्र की चेतना का संचार हो सके, तथा सर्वजन सुलभ काव्य के माध्यम से रस की सृष्टि और रस के द्वारा प्रीति का प्रसार और प्रीति के प्रसार के द्वारा मानव की पूर्णता मुक्ति के रूप में प्राप्त हां सके इसी उद्देश्य को लेकर महाकवि 'निधान गिरि' ने काव्य रचना की। उनकी प्रमुख उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं-

रस विधान द्वारा मानव मुक्ति का दर्शन

'निधान गिरि' ऐन्द्रिय भावानुभूतियों, रसात्मक सौन्दर्य, प्रकृति एवं मानवीय उत्कर्ष से जिस आनंद की अनुभूति कराते है, उसे 'प्रेमानन्द' और 'ब्रह्माननद' दो कोटियों में रखते है। उनकी भक्ति में नर ही नारायण है। मानव को ईश्वर के समकक्ष रखकर जिस समता की स्थापना कवि ने की है उसके लिए कविता के क्षेत्र में कवि के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। कवि के शब्दों में-

"जीवन कोटि सरस सो मुक्ती। जानै अपर न जानहु जुक्ती।
प्रेम दशा द्वादस अस गावहिं। पूरन ब्रह्म सकल जग भावहिं।।"[50]

कवि ने कोटि-कोटि मनुष्यों के जीवन में रस का संचार करने को ही मुक्ति की संज्ञा दी है। इस प्रकार मुक्ति की अवधारणा को रस से अर्थात् प्रेम और आनंद से जोड़कर कवि ने सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना में एक नया उल्लास पैदा कर दिया है। आधुनिक समालोचक आचार्य पं0 रामचन्द्र शुक्ल ने कविता को हृदय की मुक्तावस्था बताया है। शुक्ल जी की यह धारणा क्रान्तिकारी एवं मनोविज्ञान सम्मत मानी जाती है।'निधान गिरि 'ने आचार्य शुक्ल जी से भी कुछ पूर्व मुक्ति के संबध में जो नये और मौलिक भाव व्यक्त किये है, वे कविता के क्षेत्र में क्रान्तिकारी एवं नई पहल करने वाले हैं।

स्वाधीन चेतना का संदेश

'निधान गिरि' ने काव्य के माध्यम से पराधीन भारत को स्वाधीनता का संदेश दिया है। अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक दिनों में नवजागरण के स्वर में स्वर मिलाने वाले तथा हिन्दी भक्ति कविता के माध्यम से स्वाधीनता, निर्भीकता का संदेश देने में कवि की अगण्य भूमिका है। राष्ट्रीय धारा के कवियों से पहले इस प्रकार का स्वाधीनता संकेत अत्यन्त मूल्यवान है-

अ. ''पत्रप्रजा कौ पवन मिस वेग उजार कराइ।
किये हरित दल फिर मनहु नगर नवीन बसाइ।[51]

ब . ''हम पर पंष जाहि छिन माही।परवस परे वंध तरसाहीं।[52]

स. ''तुम स्वाधीन सबन के प्राना।[53]

कवि ने स्वाधीनता के साथ-साथ मानव को जाति और लिंग भेद से ऊपर उठने का भी संकेत किया है-

अ. ''वनता पुरुष भेद कछु नाहीं। भक्ति विवस हरि सुषद सदाहीं।[54]

कविता का मूल स्वर राष्ट्र मंगलम

'निधान गिरि' की कविता शिव की भांति विषपान कराती है, गंगा की भांति जन कल्याण करती है। उनकी कविता का मूल स्वर राष्ट्र मंगलम् का है। कवि ने जिन पात्रों एवं चरित्रों को रचा है वे मंगल की मूर्ति हैं तथा अमंगल का विनाश करते हैं। 'निधान गिरि' के राम मनुष्यों के शार्दूल है तथा काल के करालकाल हैं एवं महामानवी सीता चैतन्य शक्ति है, धरती का मातृत्व है एवं मंगलों की सृष्टि है। कवि ने चरित्रों का नवीनीकरण इस प्रकार किया है-

अ. मानुष सारदूल रघुवीरा।[55]

ब. राम काल के काल कराला। नर चरित्र कर परम विशाला।[56]

स. सीता चैतन शक्ति है जगत मात भव भास।

द. मंगल दैन जानकी आई।

स. दीन वन्धु प्रभु अधम उधारन। यह संबध मोर भवतारन।

भाषाभाषहु मानुषी

'निधान गिरि' की भाषा मानुषी है, इसे आर्ष हिन्दी कह सकते हैं जो पाणिनीये-व्याकरण से बंधी नहीं है। कवि ने इसे जुबान वाली भाषा भी कहा है। वस्तुत: ये जनभाषा की ओर संकेत करता है। कवि 'निधान गिरि' ने बुन्देली जैसी ग्राम्य बोली का उद्धार करके उसे साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया। देश भाषा में, 'देशिल बैना' लिखने वाले विद्यापति का जो योगदान मैथिली भाषा के विकास में है, वैसा ही बुन्देली के क्षेत्र 'निधान गिरि' का योगदान है।

'निधान गिरि' ने बिम्बों के क्षेत्र में क्रान्तिकारी उपलब्धियाँ प्राप्त की है काव्य के क्षेत्र में प्रमुख उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं-

अ. महाप्राण निराला की भांति काव्यधारा को नवीन मार्ग में ले जाने में 'निधान गिरि' ने नव-नव शैलियों को काव्य में प्रतिष्ठा दी है।

ब. सुकोमल मन की भावनाओं को व्यक्त करने में कवि को असाधारण सफलता मिली है।

स. बुन्देली अंचल के लगभग तीस हजार शब्दों को साहित्य के क्षेत्र में कवि ने प्रतिष्ठा दिलाई है।

द. श्रुति ध्वनियों के द्वारा कवि ने स्वर तत्व, स्वर लहरियाँ (राइजिंग एण्ड फालिंग टोन्स), लय के आधार पर ह्रस्व और दीर्घ ध्वनियाँ (सार्ट एण्ड लांग साउन्ड्स) एवं कालतत्व (टाइम एलीमेन्ट) का उपयोग करके ध्वनि के क्षेत्र में क्रान्तिकारी योगदान किया है।

य. कवि ने अक्षर छन्द (अनुष्टुप), वर्ण वृत्त (वंशस्थ, त्रोटक, शार्दूल विक्रीडित, भुजंग प्रयात, शिखरणी) और मात्रिक छन्द (दोहा, चौपाई, सोरठा आदि) तीनों ही प्रकार के छन्दों को लालित्य प्रदान किया है।

र. कवि ने बाल्मीकि और व्यास की परम्परा में तुलसी, सूर और जयदेव का प्रतिनिधित्व करके हिन्दी को गौरवान्वित किया है।

समाज एवं राजनीति के क्षेत्र में योगदान

'निधान गिरि' ने भारतीय स्मृतिकारों मनुस्मृति आदि ग्रंथों के आधार पर राजधर्म, कर्म, आचरण, व्यवहार, कर, दंड नीतियों का निर्धारण किया है। युगानुकूल उनमें परिवर्तन और संशोधन भी किये हैं। उदाहरणार्थ- ब्राह्मण के भूखे होने पर उसे किसी के खेत से दो गन्ने और दो मूली तोड़ने का अधिकार था। वह चौर्यकर्म के अन्तर्गत दण्डनीय नहीं था। मनुस्मृतिकार के शब्दों में-

"द्विजोड ध्वग: क्षोणवृत्तिर्द्वाविक्षद्वे च मूलके।
आददान: परक्षेत्रान्न: दण्डं दावुमर्हसि।।[57]

'निधानगिरि' ने 'कर्मप्रकाश' में व्राहण का उल्लेख नहीं किया और किसी भी जाति के भूखे व्यक्ति को गन्ने और मूली के खेत से कुछ चुराकर खाने केअपराध को दण्डनीय नहीं माना-

"क्षुदावंत होवै मनुज मूरी ऊष चुराय।
विगत तस्करी सो नृपति दंड देइ नहि ताय।।।"[58]

मनुस्मृति का 'विप्र' 'निधान गिरि' में मनुज नाम हो गया है अत: 'निधान गिरि' का दृष्टिकोण व्यापक तथा मानव जाति के व्यापक हितों को आधार बनाता है।

'निधान गिरि' ने 'मनुस्मृति' के लगभग सभी प्रसंगों को लिया है, किन्तु उनका दृष्टिकोण 'भारतीय दण्ड विधान' में वर्तमान देशकाल के लिए अधिक प्रासंगिक है। 'निधान गिरि' ने भी सभी प्रकार के आपराधों, शरीर सम्बन्धी, अर्थ सम्बन्धी, नैतिकता सम्बन्धी, राज्य सम्बन्धी अपराधों के लिए दण्ड विधान का निरूपण किया है।

स्मृतिकारों की त्रुटिपूर्ण संकल्पनाओं को नए सामाजिक आधार प्रदान किये है, संकीर्णताओं से मुक्त किया है।राज्यतंत्र को अधिकाअधिक लोकोत्रात्मक बनाने का प्रयत्न किया है। राज्य को व्यवस्थित करने के लिए ग्राम्याधारित संगठन उल्लेखनीय है। प्रजातंत्र की लघुतम इकाई ग्रामों को लेकर 'निधान गिरि' की राज्यविषयक संगठन की संकल्पनाएँ एक नया ठोस आधार करने वाली हैं।

स्मृतिकारों द्वारा राज्यव्यवस्था, दंड विधान आदि संदर्भो में आजादी के पूर्व 'निधान गिरि' ने एक नयी दृष्टि से विचार किया है। राजाओं की पात्रता, दक्षता, इन्द्रियजयी, आत्मसंयमी एवं धार्मिक अर्हयताएँ भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

'निधान गिरि' का दृष्टिकोण एक आदर्श मूलक राज्य व्यवस्था का है जिसमें प्रजा निर्भीक एवं स्वतंत्र है। राज्य के उचित आदेशों का पालन है, सभी जनसामान्य हितों का रक्षक हो, साथ ही आदर्श मनवताधारित, आदर्श ग्राम्पाधारित, आदर्श नैतिकताधारित राज्यव्यवस्था जन कल्याणकारी हो।

दुर्गम दुर्ग प्रकाश

'निधान गिरि' ने राजा की दिनचर्या के संदर्भ में कहा है कि उसे रात्रि के एक पहर शेष रह जाने पर जाग जाना चाहिए। नित्य रवि सरस पूजा करके विशाल दान देना चाहिए। इस संदर्भ में कवि का यह भी कथन है कि 'श्याम यजुर्वेद और ऋग्वेद' को जानना राजा के लिए आवश्यक है। उसे उनका दर्शन कर पूजन करना चाहिए तथा उनकी आज्ञा लेकर ही कार्य प्रारंभ करना चाहिए।

''पहर रात पिछली रहै जग्ग उठत महिपाल।
नित प्रत कर पूजन सरस देवै दान विशाल।।
स्याम जुजुर रिगवेद कौं जौ जानै महिदेव।
दरसन कर पूजै मुदित तास रजाइस लेव।।''[59]

वही राजा जग में पूज्य होते हैं, उन्हीं का प्रताप प्रभावित होता है जो वृहद, विप्र, सुचित वदों की नित्य सेवा करते हैं

''वृद्ध विप्र सुचि वेद रति सेवा कर नित तास।
अस राजा जग मै पुजत होत प्रताप प्रकास।।''[60]

उसी राजा का देश अचल होता है, जो दंड नीति, आध्यत्म युक्त विद्याओं को पड़ता है तथा धन प्राप्ती के उपायों को सीखता है-

''दंड नीति आतम सहित विद्या पठै नरेस।
धन उपाइ सीषै सकल अचल रहै ता देस।।''[61]

प्रजा उसी राजा के वश में रहती है जो इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है, धर्मशास्त्र के मनीषियों द्वारा ऐसा कहा गया है-

''नृप इन्द्रिन कौ बस करै निस दिन यही उपाइ।
तास प्रजा बस होत है धर्मशास्त्र मुनि गाइ।।''[62]

ऐसे राजाओं की राजधर्म की हानि होती है जो काम और क्रोध के वशीभूत होते हैं-

''प्रगट काम सै दस विद्या अष्ट क्रोध सै जज।
रूप इनमैं लवलीन जो राजधर्म पतिन हान।।''[63]

राजाओं के गुणों पर प्रकाश डालते हुए'निधान गिरि' उन्हें काम की दस व्यथाओं और क्रोध के अष्ट विकारों से बचने का उल्लेख करते हैं-

"मोवहिं दिन पर वाद कर सेवह त्रियन समाज।
पीवत मद मरजाद बिन गान नृत्य बज बाज।।
वृथा लगावै दोष कौ मृगया पासे ढ़ार।
ऐं प्रगटे है काम सै दस अवगुण निरधार।।"[64]

काम के इन दश विकारों से राजा को बचकर रहना चाहिए। वे दश विकार हैं- दिन में सोना, वाद करना, स्त्रियों के समाज का सेवन करना, भयादि से रहित होकर मदपान करना, गान, नृत्य, वाद्य में व्यस्त रहना, व्यर्थ का दोषारोपण, मृगया पंसा (जुआं)- इन दस अवगुणों से राजा को बचना चाहिए।

क्रोध के अष्ट विकारों से भी राजा को बचकर रहना चाहिए। 'निधान गिरि' के अनुसार काम के अष्ट विकार इस प्रकार हैं-

"बिन जानै सांची कहै निजबल सै कर काज।
अपर बडाई नंही सहह कर चोरी कौ साज।।
काहू कौं हन कपट सै पर विद्या कौ पैंड।
दारुन बोलह वचन कौ मारै उठ कै दंड।।
आठ प्रगट ऐ क्रोध सै बरजत है मुनिराइ।
दोउन कौ करता विषम लोम मूल ठहराइ।।"[65]

'निधान गिरि' के अनुसार काम के दस व्यसनों में चार विषम और दुषदायी हैं: इनमें मृगया, पंसा खेलना, त्रयसेवन, मदपान-

"उपज काम सै दस विसन चार विषम दुष दाना।
मृगया पासा षेलवौ त्रिय सेवा मदपाना।।"[66]

इसी प्रकार कवि ने काम के अष्ट विकारों में से तीन को अत्यन्त व्रिषम बताया है-

रूष वचन कह दंड हन देवै जोग न देइ।
तीन क्रोध से ऐ विषम त्यागहि जे बुध ग्रेह।

कवि ने दंड के अयोग्य व्यक्तियों को दंड देना तथा दण्डनीयों को दंड न देना अनुचित माना है।

प्रचीन भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण विषय राजशास्त्र से 'निधान गिरि' का परिचय मिलता है। कवि ने अपने समकालीन समथर नरेश 'महाराज' हिन्दूपति के पुत्र महाराज चतुर सिंह को सम्बोधित करते हुए भारतीय शासन व्यवस्था और आदर्श राज्यतंत्र का उल्लेख किया है, जो महत्वपूर्ण है। 'निधान गिरि' 'अनूप गिरि' हिम्मत बहादुर के पुत्र

थे, साथ ही भारतीय साहित्य के अध्ययन से भी उन्हें राज्यव्यवस्था का ज्ञान प्राप्त हुआ। ब्रह्मा ने एक लाख अध्यायों में राजशास्त्र की रचना की थी जिसको महेश्वर, स्कंध, इन्द्र, प्राचेतस मनु, वृहस्पति, शुक्र, भारतद्ववाज , वेदव्यास, गौरशिरा, चंद आदि ने संक्षिप्त किया। 'निधानगिरि' ने 'भक्ति मनोहर' में कर्मप्रकाश के अन्तर्गत राजनीति का संक्षिप्त प्रस्तुतीकरण किया है।

प्राचीन भारत में राजधर्म, राजशास्त्र, दण्डनीति, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि राजनीतिशास्त्र के पर्यायवाची थे। महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्म के मुख से राजशास्त्र से सम्बन्धित विचार व्यक्त किये गये हैं। मौर्यकाल में राजशास्त्र के प्रमुख प्रवक्ता कौटिल्य हुए, जिन्हें चाणक्य अथवा विष्णुगुप्त के नामों से सम्बोधित किया गया है। इनके द्वारा रचित अर्थशास्त्र मौर्य शासन व्यवस्था पर पूर्ण प्रकाश डालता है।

'निधान गिरि' द्वारा राजनीति और राज्यधर्म के सम्बन्ध में दिये गए विचार राज्यशास्त्र के क्षेत्र में अमूल्य निधि है। उनके विचारों का सम्मान बुन्देलखण्ड के समथर नरेश महाराज चतुरसिंह ने किया आज भी वे सम्मान के योग्य हैं। इससे ज्ञात होता है कि 'निधान गिरि' ने अपने युग की सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति में भी हिस्सा लिया।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र 15 अधिकारों में राज्यशास्त्र का विवेचन करता है, 'निधान गिरि' ने कर्मप्रकाश नामक एक ही प्रकार के छन्दों में कौल्टिय के 15 अधिकारों की सामग्री को एक ही अध्याय में संक्षिप्त एवं सारगर्मित शैली में प्रस्तुत कर एक ओर राज्यशास्त्र का अति संक्षिप्त रूप प्रस्तुत कर दिया है दूसरी ओर अपने समय देशकाल के अनुकूल राज्यशास्त्र का निर्माण कर दिया है।

राजनीतिक विचारों के द्वारा 'निधान गिरि' समरथ स्टेट और बुन्देलखण्ड में एक नयी आदर्श राज्यव्यवस्था देना चाहते थे। 'निधान गिरि' राजशास्त्रवेत्ता थे। राजा के दैनिक जीवन और व्यवहार का सामान्य उल्लेख करते हुए कवि ने विभिन्न प्रशासकीय अध्यक्षांक विभागों और कर्तव्यों का वर्णन किया है। मुकदमों की सुनवायी और निर्णय आदि न्यायिक सन्दर्भों का भी उल्लेख किया है। दण्ड विधान का उल्लेख है। राजकीय कर्मचारियों के साथ राष्ट्रद्रोहियों को दण्ड देने का विधान है। शत्रु राज्यों को वश में करने के उपायों पर प्रकाश डाला गया है।शत्रुओं के प्रतिकार के उपाय, राज्य की विपत्तियों के मूल कारण तथा उनको दूर करने के उपाय, विजय के लिए प्रस्थान के पूर्व के विषयक विजय सम्बन्धी युद्ध के नियम, शत्रु तथ्यों में फूट डालने की विधियाँ, आक्रमण एवं संधि, शत्रु दुर्गो पर विजय प्राप्त करने के उपाय, शत्रु पर विष, जादू, टोना आदि की प्रयोग विधि अर्थ की सामान्य विवेचना की है।

'निधान गिरि' का उद्देश्य राज़नीतिक विषयों की दक्षता लेकर एक आदर्श लोक कल्याणकारी राज्यकी स्थापना है। राजा को निरंकुश होने से बचाने तथा उसे धर्म, सदाचरण के नियमों से अनुशासित करने का लक्ष्य भी 'निधान गिरि' का था राजनैतिक चित्रण के क्षेत्र में कवि का यागदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

'निधान गिरि' ने अपने समकालीन महाराज चतुरसिह को सम्बोधित करते हुए जिन पदों का प्रयोग किया है, उनमें चतुर, सुजान, कुलदीप, आदि प्रमुख हैं।

आचार्य सोमदेवसूरी ने विस्तृत वर्णन को थोडे़ शब्दों में व्यक्त करने का पूर्ण प्रयास किया है। यह उनकी लेखन कला की क्षनता को व्यक्त करता है।निधानगिरि ने सबसे कम पृष्ठों में राजनीति जैसे व्यापक विषय में सार रूप में प्रस्तुत करने में अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। कवि का कर्मप्रकाश कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अत्यन्त संक्षिप्त रूप है।

धर्म की सर्वोच्चता राज्य में विद्यमान है। राज्य का ध्येय धर्म को स्थिर रखना है। राजपद दैवीय रूप में स्वीकार किया जाता है और राजा में देवता की कल्पना की। समस्त राजशास्त्र प्रवेत्ताओं मे राज्य के सात तत्वों (अंगो) को स्वीकार किया है। राज्य के सप्त अंग स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोस, वल सेना रंव मित्र के लक्षणों पर प्रकाश डाला है। धर्मनीति, अर्थनीति एवं समाजनीति का विवेचन भी किया गया है। न्याय व्यवस्था, युद्ध विधान, सैन्य संचालन, कर व्यवस्था, चर व्यवस्था, परराष्ट्रनीति आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

लक्ष्मीधर भट्ट कृत 'राजनीति कल्प तरु' देवमह कृत 'राजनीति दण्ड,' चन्द्रशेखर का 'राजनीतिक रत्नाकर,' कृष्णदेवराय कृत 'आभुक्तंमालयव' की परम्परा में 'निधान गिरि' कृत 'कर्मप्रकाश' भी महत्वपूर्ण है।राजशास्त्र प्रणेता के रूप में निधानगिरि का स्थान उल्लेखनीय हैं।

भोजन परीक्षा

'निधान गिरि' ने राजा के उसी से वही भोजन करने का उल्लेख किया है जो पात्र विश्वसनीय हो। देशकाल के अनुसार नीति पूर्वक परीक्षा करके ही भोजन स्वीकार करना चाहिए। शत्रु अनाज में विष मिला देता है।जहर बुझे रत्नों से शत्रु को मार दिया जाता है। सचिव को इस प्रकार की सावधानियाँ बरतनी चाहिए। अन्न को शोधन करवाकर ही प्रयोग करना चाहिए तथा मंत्रियों को अपने वश में रखना चाहिए। कवि 'निधान गिरि' के शब्दों में -

"भोजन जिहिं करके करह जास होइ परतीत।
देस काल जांनै सकल करै परिक्षा नीत।।
रिपु अनाज मै देत विष रतन गरल सम डार।
आइस कर अस सचिव कौ सोकर प्रथम सभार।।
अन्न सकल सुधवाइ कै मंत्री निज बस राष।
सो भोजन कीजे नृपति राजनीत मति भाष।।"[67]

'निधान गिरि' ने भोजन परीक्षा को राजविधान में जोड़ दिया है, उसका कारण

मुस्लिम शासन में जहर बुझे शस्त्रों से छलपूर्वक राजाओं को सम्मान के बहाने मारना होता था। 'एरच' जहाँ कवि की जन्मभूमि थी, वहीं के राजा हरदौल को अपने भाई के द्वारा जहर पिलाने की घटना इतिहास में प्रसिद्ध है, बहुत संभव है कि 'निधान गिरि' ने इसलिए भोजन परीक्षा के प्रकरण को लिया हो।

रानी प्रकरण

राजा को विवाह ऐसी रानी के साथ करना चाहिए जो अत्यन्त कुलीन हो, शुभलक्षणों से युक्त हो, रूपवती और गुणवान हो। जो प्रिय को हिय में रात-दिन रखती हो, ऐसी रानी से विवाह करना उचित है-

''अति कुलीन सुभलक्षनी रूपवत गुनवांन।
प्रिय हिय में निसदिन रहै करौ विवाह सुजांन।।''[68]

रानी के अंग इस प्रकार के हों जैसे कोई देवकन्या हो ऐसी रूपवती तुल्य रानी को महल में रखना चाहिए और उसके साथ दासी रखना चाहिए-

''लगै देव कन्या सरस अस विधरानी अंग।
ताकौ राषै महल मै दासी सज तिहि संग।।''[69]

नृप सदन में प्रवेश

ऋग्वेद के अनेक वर्णनों में पुरोहित द्वारा राजा को राजकीय विषयों पर परामर्श दिये जाने, कल्याण हेतु यज्ञ किये जाने का उल्लेख है।'निधान गिरि' ने भी इसी परम्परा के अनुसार पुरोहित और यज्ञकर्ता दोनों नृप सदन में प्रवेश का अधिकार दिया जाय, यही प्रवेश पाकर कार्य का विस्तार करें-

''प्रोहत मषकरता तहाँ दो कौ कर अधिकार।
ऐ प्रवसै नृप सदन मै काज करै विस्तार।।''[70]

राजा को बहुत प्रकार के यज्ञ करने वालों को धन देना चाहिए। भिक्षु को भोजन कराकर अनूप दान देना चाहिए। यहाँ श्लेष अलंकार के माध्यम से कवि ने अपने पिता अनूप (अनूपगिरि हिम्मत बहादुर) द्वारा अनेक प्रकार के यज्ञों के करने, यज्ञकर्ताओं को दान देने का भी संकेत किया है-

''वहु प्रकार मष ते करहि विनै देइ धन भूप।
विप्रन कौ भोजन करा देवहि दांन अनूप।।''[71]

'निधान गिरि' ने भी कहा है कि जो संपत्ति विप्रों को दी जाती है, उससे राजा अधिक प्राप्त कर लेता है। उसे शत्रु लूट नहीं पाता, चोर चुरा नहीं सकता एवं राजा के दुख नष्ट हो जाते हैं-

"बहु प्रकार मष ते करहिं तिनै देइ धन भूप।
विप्रन कौ भोजन करा देवहि दान अनूप।।
जो संपति विप्रन दियै पावै नृप अधिकाइ।
ताकौ लूट न रिपु सकहि चोर न सकहि चुराइ।।
विप्रन कौ भोजन दियै देव पितर सुष पाइ।
अग्निहोत्र सै सौ सरस नृप दुष जाइ पराह।।"[72]

राजा ऐसे स्थलों पर पुण्यकार्यो, यज्ञकार्यो में धन रखकर अचल रहता है। उसे परलोक का फल प्राप्त होता है, उसके यश को सुन-सुन कर लोक चिहाता है। राल के तीन कर्म-विप्र ऋषि सेवा, प्रजा का पालन और संग्राम उसे परम धर्म के धाम ले जाने वाले हैं-

"असथल भू पति द्रव्य धर अचल रहै दिन रात।
पावै फल परलोक मै सुन- सुन लोग सिहात।।
करै विप्र रिष सेव अति प्रजा पाल संग्राम।
तीन कर्म ऐ नृपन के पर्म धर्म के धाम।।"[73]

राजा को उसी रानी के हाथ का जल व्यंजन ग्रहण करना चाहिए, जो रूपवंत हो, जिसे परखा जा चुका हो-

"रूपवंत जो सुंदरी परषै समय समान।
ता कर जल व्यंजन लहै सषरस करै प्रवान।।"[74]

भोजन करके महल में स्त्रियों के पास प्रवेश करना चाहिए। पुनः राज काज देखना चाहिए। धन, अस्त्र, भूषण, वस्त्र, रत्नसमूह तथा सभी खानों का अवलोकन करके सेना को देखना चाहिए। राज्यकाजों को सुनकर विशाल आज्ञाएँ देनी चाहिए। पुनः रानिवास में जाकर भोजन, रसादि की क्रियाएँ करनी चाहिए। सयन करना, सोना तथा मुदित होकर निशा के अवसर पर उठना चाहिए।

"भोजन कर पुन त्रियन मै महलन करै प्रवेस।
राज काज देषै वहुर हृदय विचार नरेस।।
धन अस्त्रन भूषन वसन वहु विध रतन समूह।
सब षानै अविलोक कै परपे वहुर चमूह।।
सांझ समय सबही सचिव लेइ बुलाइ नृपाल।
सुनै राज के काज सब देइ रजाइ विसाल।।
बहुर जाइ रनिवास मै करै असन रस दान।
सयन करै सोवै मुदित उठै निसा अवसान।।[75]

राजा की दिनचर्या में 'निधान गिरि' ने जो परिवर्तन किये हैं। कौटिल्य आदि की तुलना में वे प्रमुख रूप से इस प्रकार है, कौटिल्य ने दिन के प्रथम समय में राजा को प्रजा की रक्षा व्यवस्था पर विचार करने तथा सांयकाल सन्ध्योपासना का उल्लेख किया

है।[76क] 'निधान गिरि' ने प्रात: पूजन दस विधान का तथा संध्या समय सभी सचिवों को बुलाकर राज्य के कार्य तथा आज्ञाएँ देने के लिए कहा है।[76ख] इससे ध्वनित होता है कि निधान गिरि प्रात: पवित्र साधना से दिन का प्रारम्भ करते है तथा संध्या के समय सचिवों से मंत्रणा करके राजाज्ञाएँ प्रसारित करते है ताकि योजनाएँ गोपनीय रहे और सफलता सुनिश्चित हों। कौटिल्य के दिन के तीसरे भाग में गायन, वादन आदि का उल्लेख किया है, निधान गिरि ने राजाओं को गायन, वादन से दूर रहने का संकेत किया है।

कौटिल्य के अनुसार राजा को प्रात: काल बछड़े सहित गाय की परिक्रमा करके राजसभा में प्रवेश करके अपनी दिनचर्या प्रारंम्भ करनी चाहिए।[76]

निधान गिरि के कर्मप्रकाश में राजा को श्याम यजर्वेदों एवं ऋग्वेद को देवलाभ मानकर उनका स्पर्श कर, आज्ञा लेकर कार्य प्रारंम्भ करना चाहिए गौ की अपेक्षा वेदों का साक्ष्य लेना उचित माना है, क्येंकि वे व्यापक है।

राज्यमंत्री

सचिव कुलीन तथा नीतिशास्त्र, शूरवीर, बान विज्ञान में निपुण, साहसी, शीरवान होना चाहिए ऐसा सचिव राज्य को अविचल करता है।

''नर कुलीन नित शास्त्र रति सुर सिरोमनी जान।
वान विज्ञानै मै हनै साहस, सील निदान।।
लेइ परिक्षा महिप मनि ताकौ सचिव बनाइ।
करै आठ अस विध सुमति अवचल राज कराइ।।
अस सचिवन के साथ मै नित-प्रत करै विचार।
सैन षजाना देस पुर दिगृह संधि समार।।
न्यारे-न्यारे मंम लै समझै ह्दय नृपाल।
जामै आपुन मल बनै देइ रजाइ विसाल।।''[77]

प्रधान सचिव

प्रथक-प्रथक विमाग के मंत्रियों के ऊपर एक प्रधान सचिव (मुख्य सचिव) को नियुक्त करना चाहिए जो निर्भय, बुद्धिमान, बली, साहसी, चतुर और कुलीन हो-

''एक सचिव सिरमौर कर ताकौ धर विस्वास।
जो जानै सब काज कौ करै दृव्य की रास।।
निरभय वुध बल साहसी पावन चतुर कुलीन।
आलस दिन अस विध सचिव कीजै भूप प्रवीन।।''[78]

'निधान गिरि' ने गणराज्यों में शासन व्यवस्था के सुचारू रूप से संचालन हेतु विभिन्न मंत्रियों एवं उनमें से एक को प्रधान (मुख्य) सचिव के रूप में नियुक्त करने का उल्लेख किया है। 'निधान गिरि' ने मंत्रियों की संख्या विभिन्न विभागों के लिए मंत्री और उनमे एक मुख्य सचिव होना आवश्यक बताया है। इस प्रकार मंत्रिपरिषद के सदस्य कुलीन और योग्य हों उनका परामर्श भी राजा के लिए आवश्यक है। अत: कवि राजतन्त्रात्मक

शासन को गणतन्त्रात्मक शासन प्रणाली के रूप में संचालित करना चाहता है। राजनैतिक क्षितिज पर जनतन्त्रीय कार्य पद्धति पर 'निधान गिरि' ने बल दिया है। वैशाली और लिच्छवि की भांति समथर को कवि गणराज्य के रूप में विकसित करना चाहता है। उनके पिताश्री 'अनूप गिरि' हिम्मत बहादुर ने भी बुन्देलखण्ड में बुन्देलखण्ड गणराज्य की स्थापना के लिए प्रयत्न किये।महाकवि पदमाकर ने उन्हें हिन्दू कुल लाज, कहकर प्रशस्ति की है।

सारांश रूप में 'निधान गिरि' ने आचार्य शुक्र और आचार्य सोमदेव सूरि की भांति राज्य प्रशासन में मंत्रियों एवं मुख्यमंत्री का परामर्श आवश्यक माना है तथा सुयोग्य होना आवश्यक बताया है।

आचार्य शुक्र ने मंत्रिपरिषद में दस मंत्री होने का उल्लेख किया है। पुरोहित 2, प्रतिनिधि 3, प्रधान 4, सचिव 5, मंत्री 6, प्राड. विवाक 7, पंडित 8, सुमंत्र 9, आमात्य 10 दूत। उन्होंने 8 सदस्यों की मंत्रिपरिषद का वर्णन किया है, जिसमें उन्होंने मंत्रिपरिषद के पुरोधा अर्थात पुराहित और दूत को मंत्रिपरिषद में नहीं रखा है। 'निधान गिरि' ने भी मंत्रियों की संख्या 8 तक सीमित रखी है।

दूत वर्णन

सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान रखने वाला, सभी हाल जानने वाला, बुद्धिवान और कुलवान दूतों की रचना कीजिए-

"सकल शास्त्र को पस उर जानै सब ही हाल।
वुद्धिवज कुलवज नृप कीजे दूत विसाल।।"[79]

दूत की योग्यता ऐसी हो जो सभी खबरों को रखता हो, जिसे देशकाल का ज्ञान, शरीर सुन्दर हो, निर्भय रहने वाला हो।

"सकल शास्त्र कौ ग्यान उर जानै सबही हाल।
वुद्धवान कुलवान नृप कीजे दूत विसाल।।
राखै जो सबही खबर देसकाल कौं जान ।
सुंदर तन निरमल अस विध दूत वषान।।"[80]

दूत के कार्यो का उल्लेख करते हुए 'निधान गिरि' ने कहा है-जो शीघ्रता से मिले हुए को बिगाड़ दे, बिगड़े हुए को मिला दे, संघ को असंघ कर दे, यही दूत का मुख्यकार्य है-

"बेग मिलै कौ विगारहि विगरौ देइ मिलाइ।
संघ असंघ करावही दूत काम असनाइ।।"[81]

युक्तिपूर्वक दूसरे राजा की असली बात को जान लेना और ऐसा यत्न करना जिससे देह को अधिक पीड़ा न हो, दूत का कार्य है। राजाओं के वचन का संकेत तत्काल जान लेना तथा स्थायी कार्य को चित्त में धारण करना दूत दायित्व है सचिव का कार्य न्याय,

राजकोष को देखना, संधि, विग्रह आदि दूत के विशेष कार्य हैं। कवि निधानगिरि के शब्दों में-

> ''असल वात पर भूप की जांन जुगत सै लेह।
> जतन करै जामै अधिक पावै पीर न देह।।
> भूप वचन की सैन कौ जान लेइ ततकाल।
> स्वामि काज चित मै धरै बोलह गिरा विसाल।।
> न्याइ सचिव कौ काम है राज कोस नृप देष।
> संघ विग्रहा दूत कौ बरनत काज विसेष।।''[82]

राजा वास वर्णन

राजाओं को ऐसे स्थान में रहना चाहिए जहाँ थोड़ी धूप, जल, अन्न, तृण आदि हो, जहाँ लता फूल फल हों ऐसे मनोहारी स्थल पर नरेश को निवास करना चाहिए। जहाँ योद्धा, धन, पर्वत, महा, मेवादि हों, दुर्गम पृथ्वी हो, जल का अधिक्य हो वहीं महिपाल को निवास करना चाहिए। कवि 'निधान गिरि' के शब्दों में-

> ''कछुक धूप जल अन्नत्रन अधिक होइ जिहि देस।
> लता फूल फल मनहरन अस थल बमे नरेस।।
> नर भट धन अति गिर महा तरु में वादि विसाल।
> दुर्गम भूतल जल अधिक तहाँ वसहि महिपाल।।''[83]

राजा उस स्थानपर निवास करे जहाँ शत्रु की सेनाएँ न जा सकें, जिस देश में चतुर्दिक् भारी पहाड़ हों, ऐसे स्थानों में दुर्ग बसाना चाहिए-

> ''जिहीं देस मै चतुर दिस भारी हौ हि पहार।
> तहाँ बनावै दुर्ग कौ निवसह सैन समार।।''[84]

दुर्ग में एक सौ योद्धा वाणों का संघठन करने वाले होने चाहिएँ। बाहर शत्रु के दस सहस्र को सहज ही मार सकते है-

> ''दुर्ग बसहि भट ऐक सही करहि वान संघान।
> वाहर रिपु दस सहस कौ मारै सहज सुजान।।''[85]

'निधान गिरि' का कथन मनुस्मुति पर आधारित है।

दुर्ग रचना

राज्य की सुरक्षा के दुष्टिकोण से दुर्ग का महत्व सर्वविदित है। दुर्ग राज्य की रक्षात्मक शक्ति के प्रतीक है। दुर्ग जितने सुदृढ़ होते है, राजा, जनता, कोष उतने ही सुरक्षित रहते है।

कौटिल्य के अनुसार दुर्गो के चार प्रकार है- औदक दुर्ग, पार्वत दुर्ग, धान्वन दुर्ग तथा वनदुर्ग। महाभारत में 6 प्रकार के दुर्गो का उल्लेख मिलता है- धन्वदुर्ग, महीदुर्ग, गिरि दुर्ग, मनुस्य दुर्ग, मृत्तिका दुर्ग एवं वन दुर्ग। मत्सपुराण में 6 प्रकार के दुर्गो का उल्लेख

मिलता है- धान्वदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, गिरिदुर्ग। इन दुर्गो में गिरि दुर्ग को श्रेष्ठ बताया गया है।

सोमदेव सूरी ने दुर्गो के दो भेद किए हैं- स्वाभाविक और आहार्य। उन्होंने स्वाभाविक दुर्ग के चार भेदों का उल्लेख किया है- औदक, पर्वत, धन्वह, एवं वनदुर्ग। आचार्य शुक्र ने रगरिहा, पारिख, वन, धन्व, जल, गिरि एवं सैन्य नामक सात प्रकार के दुर्गो का उल्लेख किया है।

'निधान गिरि' ने दुर्ग के सम्बन्ध में लिखा है कि प्रथम जलकोट बनाना चाहिए जिसके चारो ओर अगम्य हो, जहाँ पहुँचना कठिन हो जिसे सुनकर शत्रु डरता रहे-

''प्रथम करै जल कोट अस अति अगम्य चहु पास।
सुन सुन सम समीत रहि तजाहि जीत की आस।।''[86]

दुर्गम दुर्ग के द्वार गुप्त रखने चाहिए, वाटिका, कूप चौड़े, वाग, किले में वृण, धन भांति-भांति के औजार, अन्न, कोश, चतुर कारीगर, अधिक मात्रा में बारूद रखनी चाहिए-

''दुर्गम दुर्ग बनाइ नृप राषहिं गुप्त दुवार।
प्रत-प्रत कोटन पर सुभट नथा जोग विस्तार।।
ता विच रच वर वापका कूप अधिक विस्तर।
वाग मनोहरता निकट लता फूल फल धार।।
किला मँझ राषै सदां त्रन धन अति बलवीरा।
भांत भांत हथयार धर अन्न कोस गंभीर।।
राषै कारीगर चतुर नाना रंग सवाँर।
अधिक धरै वारूद कौ पावै सुभ न पार।।
धवल धाम ता बिच रचै षोडस भांत विचार।
भिन्न-भिन्न थापन करै नथा शास्त्र अनुसार।।''[87]

षोडस प्रकार के गृह की स्थापना करनी चाहिए-

''धवल धाम ता विच रचै षोडस भाँति विचार।
भिन्न-भिन्न थापन करै जथा शास्त्र अनुसार।।''[88]

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना के गुण दोष को देखते रहना चाहिए। शत्रु और मित्र को समझना चाहिए, उदासीन होकर पोषण करना चाहिए।सैन्य परीक्षण लेते रहना तथा विद्याओं का अभ्यास करते रहना चाहिए। नाना व्यूहो की रचना करनी चाहिए-

''हय गज रथ प्यादे चमू तिनकौ लष गुन दोष।
सभु मित्र कौ समझिये उदासीन जुत षोष।।
सैन परिक्षा षेत रह विद्या कर अभ्यास।

क्रम सै थापन कर चमू नाना व्यूह प्रकास।।''[89]

सेनाओं को अपनी ध्वजा पताकाएँ भेद पूर्वक सेना की पहिचान हेतु रखनी चाहिए। एक सैनिक के ऊपर एक सैनिक की निगरानी रखनी चाहिए ताकि युद्ध को न विस्मरण कर सकें। समर में कुशलता प्राप्त करें, हथियारों का परीक्षण करते रहना चाहिए। शत्रु सेना को पीड़ित करने के लिए उसके नगर में आग लगाना चाहिए, विष देना चाहिए, छल और चोर भील आदि होने चाहिए। मरण आदि के प्रयोग करने चाहिए। सेना के चलने की निवास की बातों को क्रमशः जानते रहना चाहिए। सुरंग आदि लगानी चाहिए। अत्यन्त निपुण औषधिकर्ता को रखें, घाव सीने वाले चिकित्सक हों-

''धुजा पताका भेद षै राषै सैन चिना।
इक पर इक मालिक करै जामै रन न विसार।।
समर करन कौ रह कुसल जज परष हथयार।
रिपु सैना पीरा करन ताहित अस विस्तार।।
आग लगावै दैहि विष छली चोर जुत भील।
मरन प्रयोग करन मनुज संग्रह कर वुथ सील।
कटक चलन की वास की जानै क्रम सब भाँति।
रिपु सैना मे गुप्त नर राषै रह दिन रात।।
अस विध राषै नर चतुर जानै लगा सुरंग।
ओषधि करता अति निपुन घाव सियन के संग।।''[90]

यथायोग्य अपने देश की रक्षा करनी चाहिए। फिर शत्रु के राज्य पर चढ़ाई करनी चाहिए। देवाराधन, दान, उच्चाट आदि करना चाहिए। शत्रु को बलहीन करते जाना चाहिए। शत्रु के दूतों से मिलकर विश्वास बढ़ाना चाहिए। शत्रु को निकट नहीं रखना चाहिए तथा समय पाकर उसे नष्ट कर देना चाहिए।

''जथा जोग निज देस की रक्षा प्रथम कराइ।
चड़ै फेर रिपु राज पर भय नाहीं नियराइ।।
देवाराधन दान कर पुन प्रयोग उच्चाट।
होवै रिपु बल हीनता जावै बारहि बाट।।
सत्रु बसीठी से मिला बड़ा देइ विस्वास।
निपट निकट राषै नही समय पाइ कर नास।।''[91]

राजाओं को अपनी प्रबलता देखकर आगे बढ़ना चाहिए और विघ्न जान कर पीछे हटना चाहिए। 'निधान गिरि' के शब्दों में-

''आप प्रबलता देष कै आगै बड़ै नरेस।
विघन जान पाछै हटै यही नीत उपदेस।।''[92]

राजा को अपने साथ कोविद, कवि, मंत्री, सुभट रखना चाहिए। हाथी और घोड़ों को फेरते रहना चाहिए-

"कोविद कवि मंत्री सुमट राषै भूपति संग।
सदन सवारी नित करै फेरै वाज मतंग।।"[93]

न्याय की सूक्ष्मता का पाप राजा पर नहीं लगता। प्रजा और प्रतिभा का पालन राजा को करते रहना चाहिए। राजा को कटु वचन नहीं बोलना चाहिए। उसे मधुर वचन ही बोलना चाहिए। अपराध का निर्णय करके अपराधी को दण्ड देना चाहिए। राजकीय वार्ताओं के लिए नित्य बुलाना चाहिए। अनाथों का पोषण करना चाहिए, धनवंतों के लिए भी सुखदायी हो। गुप्त विधि से राजा को प्रजा के सुख-दुख को समझना चाहिए। राजा को पैदल चलने का भी अभ्यास नित्य प्रति करना चाहिए-

"सूक्षमता लष न्याइ की लागै अध न नृपाल।
प्रजा प्रतिज्ञया कौ सदा करै रहै प्रतिपाल।।
मधुर वचन सबसै कहै कटु नहि बोलह बैन।
निरनय कर अपराध कौ देइ दंड बुध अैन।।
जितिक राजकी वार्ता नित्य लेइ बुलवाइ।
पोष अनाथन कौ करै धनवतन सुषदाइ।।
सुष-दुष समझो प्रजा कौ हौ कै गुप्त नृपाल।
पगन चलन अभ्यास नित राषै रहै विसाल।।"[94]

राजा को संग्राम में लड़ते समय पैर पीछे करना चाहिए। मरने पर स्वर्ग का सुख भोग मिलता है, क्षत्रीय धर्म में ऐसा ही कहा गया है-

"सनमुष लर संग्राम मै पाछै धरै न पाइ।
मरत सुर्ग सुष भोग ही छत्र धर्म अस गाइ।।"[95]

शत्रु को विष बुझे आयुधों से नष्ट करना चाहिए गर्म अग्नि हथियारों से शूर को युद्ध नहीं करना चाहिए-

"बिष बुझाइ आयुध सबै वाध हनै रिपु भूर।
गरम अग्नि हथयार जे तिन सैं लयै न सूर।।"[96]

शूरवीर हाथ जोड़ने वालों को, सिर खोलकर बैठने वालों को, सोते व्यक्तियों को, रोगी व्यक्तियों को, आए व्यक्तियों को, घायल, बिना अस्त्र-शस्त्र के, मांगते हुए, नग्न व्यक्तियों को, पुत्र शोक में डूबे व्यक्तियों को नहीं मारता-

"विष बुझाइ आयुध सबै वाद्य हनै रिपु मूर।
गरम अग्नि हथयार जे तिन सैं लरौ न सूर।।
सूर इतिक मारौ नहीं जो नर जोरै पान।
सिर उधार बैठौ कहाँ तुम बचाहु मम प्रान।।
सोवत होवै जो मनुज वनिता रोगी होइ।

आयौ देष न समर कौ ताह न मारौ कोइ।।
घाइल बिन हथयार जो मागै नगन अधीर।
पुत्र सोक मै होइ नर ताह न मारौ वीर।।''[97]

युद्ध जीतने पर घोड़े, हाथी, रथ, धन, मणि (रत्न) जो भी मिले, उसे राजा के समक्ष रखना चाहिए। राजा जाती हुई वस्तुओं को जीतकर लाने वालों को बाँट देता है। क्षत्रिय को इस प्रकार के धर्म नहीं छोड़ना चाहिए। 'निधान गिरि' के शब्दों में-

''हय गज रथ धन मन सकल मिलै जीत मै लाइ।
आगै भूपति के धरै धर्मशास्त्र अस गाइ।।
भूपति बाटै सवन कौ जो जो ल्यावहि जीव।
क्षत्री हो अस धर्म कौ रन मै तजौ न मीत।।''[98]

नृप को चाहिए कि वह अपने धन को अच्छे स्थलों में रखें। जो व्यक्ति ब्रह्मचारी हो अग्निहोत्र करने वाले हों वानप्रस्थ अथवा सन्यासी हों। ब्रहकर्म जो प्रतिदिन करते हैं। इन चारों का जो पूजन करते हैं, उनका धन अविचल हो जाता है, कभी नहीं टलता। 'निधान गिरि' के शब्दों में-

''नृप धन बड़ानीक थल राषौ।
पावन सै पावन श्रुति भाषै।।
हौं हि व्रहचारी जे प्रानी।
अग्नि होत्र कृत वेद वषानी।।
वानप्रस्थ अरु वर सन्यासी।
व्रह कर्म जे दिन प्रत भासी।।
इन चारौ कौ पूजन कर ही।
सो अवचल धन कबहुँ न टर ही।।''[99]

जिस नृप का दंड दारूण होता है उससे सभी डरते रहते हैं इसलिए दंड प्रभाव से प्रजा और स्वदेश को वश में करना चाहिए-

''जिहि नृप दारुन दंड सदांही।
ताकौ डरत सर्व जग माँही।।
तावै दंड प्रभाव न ऐसा।
करै सुवस सब प्रजा सुदेसा।।''[100]

अपने स्वार्थ को वक के समान तथा विक्रम में सिंह के समान रहना चाहिए। वृक समान द्रव्य को लेकर सिसु का अनुमान करके मम राजा चाहिए-

''निज स्वारथ कौ वक सद्स विक्रम सिंह समान।
वृक सम लेवै द्रव्य कौ मागै सिसु अनुमान।।''[101]

राजा चार प्रकार से शत्रु पर विजय प्राप्त कते हैं-द्रव्य देकर, दंड देकर, सेना फांड़कर, देश लेकर-

"चतुर मात कर सत सै पावै विजय नरेस।
मिलै द्रव्य दै, दंड पुन फोरह सैन सुदेश।।
साम दाम अरु भेद सै जव रिपु वस नही होइ।
ताकौ देवै दंड तब पकर लेइ रन सोइ।।"[102]

जो राजा प्रजा को मुख से दुख देते है।, उनका राज्य उजड़ जाता है-

"जो राजा निज प्रजा कौ मुष सैं दुष कौ देइ।
उज्जर होवै देस तिहि जागै नहि संदेइ।।"[103]

जो राजा विधान पूर्वक चलते हैं।, दो-तीन या पांव गावों के बीच एक मन्दिर बनवाते हैं और उस मन्दिर में राजा अपना कर्ता नियुक्त करता है-

"दोइ तीन पच ग्राम मै मंदिर ऐक बनाइ।
तामै करता आपनौ राषै भूप सदाइ।।"[104]

राजा दश ग्रामों को मिलाकर एक ग्राम पति, दस ग्राम पति, बीस ग्राम पति, शत ग्राम पति बनाकर अधिपति नृपतियों को बनाना चाहिए-

"ऐक ग्राम दस ग्रामपति बीस ग्राम सत ग्राम।
लष लव लाइक सै करै अधिपति नृपति तमाम।।"[105]

ग्राम के दोषों को ग्रामपति सुनेगा, पुनः दशग्रामपति, बीसग्रामपति, शतग्रामपति से, सहस ग्रामपति से कहना चाहिए-

"ग्राम दोष जब कवनहु होई।एक ग्राम मालिक सुन सोई।।
कहै धाइ दस ग्रामपती सै।सो अनुमानै नीत मती सै।।
बीस ग्राम पति सें कह जाई।"[106]
सो सुन समझह धीर जताई।।
सत ग्रामाधिप सै कह सोऊ।
सहस ग्राम पति सै कह ओहू।।"[107]

राजा का आदेश पाकर ग्राम निवासी अन्नादिक धनराशि जोड़ता है, उसे ग्राम का मालिक प्राप्त करता है तथा उस राशि को राजकोष में पहुँचाता है-

"भूप रजाइस ग्राम निवासी। जोरै अन्नादिक धनरासी।
ताह ग्राम मालिक कुर लेही। राज कोस पहुँचावत तेही।।"[108]

सचिव का कार्य है कि वह ग्राम तथा नगर पुरोहित के कार्यो को देखता रहे। ग्राम वासियों के मन की बातों को भी दूतों द्वारा जानता रहे, जो ग्रामपति प्रजा से पापपूर्वक द्रव्य लेते हैं नृपकों को चाहिए कि वे ऐसे ग्राम पतियों को देश निष्कासन दे दें-

''जिते ग्रसमपति ते सचिव अस विघ कर अनुमान।
सबकं मन की बात कौ दूतन सै पहचान।।
जिते ग्रामपति पाप सै द्रव्य प्रजा सै तैहि।
तिन सैं नृप छीनै सकल देस निकारौ दैहि।।''[109]

जमींदार जोत से आधा किसान को छोड़कर आधा अपने लिए ग्रहण करें। सोने-चाँदी के लाभ पर पचासवाँ भाग राजा को लेना चाहिए-

''जिपी जोत के अमल कौ अस विध नृप कर देइ।
आधा छोड किसांन कौ आधा आपुन लेइ।।
सोंनौ रूपौ पस विहँग तिनकी नफा विचार।
तामें भाग पचासवां लेषै भूप समार।।''[110]

इसी प्रकार चर्म (चमड़ा), साग (सब्जियों), त्रन पत्र चारागाहों, घृत (घी) बर्तन पत्थर आदि के व्यापार लाभ में 6 वाँ हिस्सां राजा को लेना चाहिए।-

''चर्म साग त्रन पत्र घृत माजन वास पषांन।
छटवाँ हिस्सा नफा गुन लैवै भूप सुजांन।।''[111]

वन्य तरुओं, मधु, फलफूल, औषधि वस्तु, सुगंध एवं नाना प्रकार के धातु उद्योगों पर संघ स्थापित करके, शिल्पकारों आदि श्रमिकों से मास में एक दिन राजकार्य के लिए लेना चाहिए-

''तरु महुष मधु फूल फल मेषन वस्तु सुगंध।
नाना धातुन पर अमल बाँधै क़रकै संघ।।
जिते सिल्पकारी चतुर अपर नीच कुल वांम।
लेइ मास मैं ऐक दिन इनहीं सै नृपकाम।।''[112]

स्मृतिकारों ने भी कारीगरों से महीने में एक या दो-तीन दिन सरकार के लिए काम करके राजकोष की वृद्धि का उल्लेख किया है। काम लेने का अधिकार राज्य की ओर से स्थानीय संस्थाओं को सौंपने का उल्लेख भी आया है। 'निधान गिरि' ने भी स्मृतिकारों के अनुसार ही सार्वजनिक निर्माण के लिए शिल्पकारों से एक दिन के श्रम का उल्लेख किया है।

राज्यकर से मुक्ति

'निधान गिरि' के अनुसार राजा को वेदपाठी विद्वानों से कर नहीं लेना चाहिए। विप्रों को जीविका भी देनी चाहिए जिससे धर्म का पालन हो। विप्रों की रक्षा करने वाले नरपतियों का प्रताप बढ़ता रहता है-

''नृपति वेदपाठीन सैं लेइ नहीं महसूल।
तिनके दूष जीविका निरष देह सकल सुष मूल।।
विप्रन देवै जीविका जामै धर्म पलाइ।

जथां पुत्र सै प्रीति कर भूपत सहज सुगाइ।।
विप्रन की रक्षा करै नरपति वास प्रताप।
राज द्रव्य आयुर बडै हरै सकल विध पाप।।''[113]

राजा का त्रययान

एक पहर उठकर नृप को क्रिया करनी चाहिए। विप्र का पूजन करके उन्हें भोजन देना चाहिए। पुन: सचिवों से मंत्रणा करके राज-काज का प्रेक्षण करना चाहिए। राजा और सचिवों को मंत्रणा को अन्य कोई न जानने पाये, ऐसे राजा का राज्य भूतल पर रहता है-

''रहै त्रजांमा इक पहर उठ नृप क्रिया कराइ।
पूजन कर विप्रन असन देवै प्रात बुलाइ।।
बहुर सभा मै जाइ कै प्रजा केर दुष देष।
कर सचिवन सै मंत्र पुन राज काज सब वेष।।
समझ मंत्र कौ नृप सचिव अपरन जांनै कोह।
ता राजा कौ राज मल सब भूतल पर होई।।''[114]

दुपहर में अथवा अर्ध निशा में राजा मंत्रियों के साथ अर्थ, धर्म, काम की मंत्रणा करें। बहरे, गूगें, बड़, अन्धे बालक, बृद्ध, रोगी, स्त्री, मलेच्छ से गोपनीय मंत्रणाएँ नहीं बतानी चाहिये-

''दुपहर अथवा निस अरध सचिवन सहित नरेस।
अर्थ-धर्म जुत काम कौ करै मेंत्र सुभ देस।।
वधिर मूक जड विन नयन वाल वृहद बस रोग।
त्रिय मलेच्छ,विच मेंत्र ऐ भूपन राषन जोग।।''[115]

मंत्रणाएँ ऐसी हों जिसमें अर्थ, धर्म, काम का विरोध न हों धन के सम्बन्ध में मन, बृद्धि, चित्त से सभी से मिल कर विचार करें-

''अर्थ धर्म जुत काम सै मंत्र विरोधन होइ।
धन विचार सब मिल करै मन वुधचित बिलोइ।।''

राजाओं के कार्यो में धार्मिक कृत्यों में 'निधान गिरि' ने यह भी निर्देश दिये है कि राजाओं को निम्न कार्य सम्पादित करने चाहिए-

अ. कन्याओं का पालन करना तथा कन्यादान करना।

ब. प्रीतिपूर्वक नीति की शिक्षा दिलाना।

स. दूतों को बुलाकर अपने पुर का हाल जानना।

द. अन्य राजाओं की नीतियों को जानना।

क. प्रजा से कर लेना।

ख. नौकरियाँ देना।

ग. लौकिक, परलौकिक कार्यो को सम्पादित करना।

घ. राजाओं के व्यवहारों को देखना।

ड. शत्रुओं को दण्डित करना।

च. वर्णाश्रम धर्म छोड़ने वालों के दोषों को दूर करना।

क. पंचवर्ग पर विचार करना, ग्रहपति, मेदक, तापसी, उदास्थत, कापटक।

ख. संधि, विग्रह, यात्रा, बड़े राजाओं की सहायता।

ग. एक राजा से मिलकर दूसरे पर चढ़ाई करना।

अ. समान राजाओं से परामर्श करना।

ब. प्रथम विरोध व्यक्त करके, विग्रह करना।

स. मित्र का अपमान देखकर चढ़ाई करना।

द. एकल चढ़ाई करना।

य. मित्र राजा के साथ चढ़ाई करना।

यदि युद्ध में आपत्ति पड़ जाय और राजा निर्बल हो जाय तो शत्रु राजा से संधि करनी चाहिए-

"जो रन मै आपत परै निरवल आप विषाह।
तौ मिलाप कीजे नृपति शोरी पीर मसाह।"[116]

अपनी सेना को प्रबल जानकर संग्राम करना चाहिए, सेना की प्रबलता से संग्राम में हानि नहीं होती-

"जब निज सैन प्रवल परष सब विधि श्रेष्ठ सुजान।
तौ संग्राम करौ महिप कबहु न परहैं हान।।"[117]

शत्रु की सेना को देखकर अपनी सेना को बलिष्ठ देखकर ही शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए। चतुरंगी सेना पास में न हो तो संधि कर लेनी चाहिये एक सेना किले में रखना चाहिए, एक को सभा में भेजना चाहिये।

शत्रु दल से अपनी सेना व्याकुल हो जाय तो धर्म और बल में अधिक शक्तिशाली राजा से शीघ्र ही सहायता लेनी चाहिये यदि शत्रु की सेना जीतने योग्य न हो तो उसकी सच्ची सेवा करनी चाहिए जैसे गुरू के अर्थ (गुरू के निमित्त सेवा होती है)।

यदि सहायता में रंच मात्र की हानि होने की सुभावना हो तो संशय छोड़कर सभा करना चाहिये अगहन, फागुन और चैत मास में शत्रु पर चढ़ाई करनी चाहिये और उसका देश जीतना चाहिये।

तीन प्रकार के मार्ग अवख, जंगल, अनूप बताये गए है वृक्षों को काटकर अच्छी रास्ता बनायी जाय ऊँची-नीची भूमि को खोदकर समतल बनाया जाय। घोड़े, हाथी, रथ, प्यादे, सेनापति, वेलदार सभी के खानपान और सम्मान का ध्यान राजा को रखना चाहिये। प्राचीन भारतीय युद्ध शैली की एक प्रमुख विशेषता व्यूह की रचना द्वारा युद्ध करना है। व्यूह रचना के द्वारा कवि युद्ध की सफलता का संकेत करता है दंड व्यूह, संकट व्यूह, वाराह व्यूह, गरुण व्यूह, मकर व्यूह का उल्लेख कवि ने किया है-

"दंड समान सैन लै धावहि। दंड व्यूह सो नांम कहावहिं।
आगें भूप सैनपति पाछै। दुहु दिस चलहि विविध भर आछै।
ता समीप मतंग तुरंगा। लागत वेद तिन के संगा।
तूल होइ अति चतुर दिस दंड व्यूह अस भांति।
भय प्रगटह यह व्यूह मै सकट व्यूह कर तात।
आगै पीछै होइ कस भौटो बीच बनाइ।
करै व्यूह वाराह अस तब रिपु दल बिचलाइ।"[118]

पद्म व्यूह क्रेज व्यूह, सैनव्यूह का भी कवि ने उल्लेख किया है-

"भोटा होवै बीच अति गरुड व्यूह अनुसार।
जबहि बीच मै कस करै मकर व्यूह निरधार।।
प्रथम व्यूह सै होइ भय तब बनाइ बहु व्यूह।
सत्र चमू चर इम चड़ै समझहु भूप समूह।।
सैन बराबर चतुर दिस बीच रहै महिपाल।
पदम व्यूह रच अस विषम रिपु दुर लेइ उताल।।
अधिक होइ निज वल कटक युद्ध करै मन भाइ।
व्रज व्यूह संजुत संभट सूची व्यूह बनाइ।।
सैन व्यूह कर अविलौकैही। नीक प्रकार परीक्षा लैही।।"[119]

कौटिल्य ने मकरव्यूह, शकटव्यूह, वज्रव्यूह, मद्व्यूह, शचिव्यूह, दण्डव्यूह, भोगव्यूह, मण्डलव्यूह, संहत व्यूह आदि व्यूहों का उल्लेख किया है-[119(क)]

सेना के प्रमुख पदाधिकारी

'निधान गिरि' ने पतक, दशपतक, सेनापति, वलायक्ष जैसे पदाधकारियों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार दसद्रक्ष रथ, प्यादे, हाथी और घोड़े रखने वाले को 'पतक' तथा दस पतकों पर सेनापति और दस सेनापतियों पर एक बलाध्यक्ष नियुक्त होता था-

"दस दस रथ प्यादे गज बाजा। तासै पतक कहत मुनिराजत।।
जब दस पतक कहौ हिग्अस मांता। तात सैनपति वरनत ग्याता।।
अस दस सैनापति जब हो हीं। बलाध्यक्ष भाषत कवि त्यौहि।।

वलाध्यक्ष चहु दिसा रहाई। जिहि दिस मय प्राची दिस गाई।।[120]

समतल भूमि पर रथ और घोड़ो से युद्ध करना चाहिए। पानी वाली पृथ्वी पर हाथी पर सवार होकर युद्ध करना चाहिए। जंगल वाले हिस्सों में धनुष वाण के हाथ, जहाँ भूंम थल हो। और बलवान साथ हों, वहाँ चर्मकृपाल से युद्ध करना चाहिए। भत्स्य, कुरूक्षेत्र, सूरसैन, पंचाल देशों में जन्में हुए व्यक्ति रणधीर होते हैं। यहाँ के जन्में योद्धाओं को रण में आगे रहना चाहिए जो समर भूमि छोड़कर नहीं भागते जिस समय शत्रु किला में हो, तभी चतुर्तिक घेरा डालना चाहिए अन्न, कास्ठ, वृण आदि को किले के भीतर नहीं जाने देना चाहिए-

''बैंरी बैठा किला मै करै लराही ताह।
घेरा देवै चतुर दिस ताकौ तब नर नाह।।
अन्न काठ त्रन आदि ऐ भीतर जान न देइ।
तास राज कौं वेइ दुष बिन प्रयास जय लेइ।।''[121]

जिसके राज्य को जीत ले, उसके वंशधर को ही राज्य वापस दे दे-

''जीतै जाकै राज कौं तास वंस जो होइ।
ताह राज अभिषेक कर देइ लिषापन सोइ।।
धर्म पंथ परवान कौं कीजे नृपति सुजाना।
रतनन सैं पूजन संजुत पुरष प्रधान।।''[122]

राजा को यात्राएँ और संग्राम दोनों करना चाहिए-

''यात्रा करै करै संग्रामा।जदिप मिलाप करै नृप वामा।।''[123]

जो बालक मातृ-पितृ विहीन हो, उसके वंश का धन राजा को छीन लेना चाहिए। राजा उसे किसी को न लेने दे। युवा होने पर उसे ही दे। वे राजा अविचल राज करते हैं।

''जो बालक पित मात विहीना। लेइ वंस कौ ता धन छीना।
ताहन लैन देइ कर राजा। आप धरोहर धरै कर दाया।
होइ जुवा तब देवह तही सो नृप अवचल राज कराही।''[124]

कोई स्त्री विधवा हो, अथवा वंध्या हो पुत्र विहीन हो, वह परपति के संग गमन कर रही हो, उसका धन राजा को छीन लेना चाहिए-

''पति बिन बांझ रहै त्रिय कोई। पर पति संग गमन कर सोई।
ताकौ धन छीनै महिपाल। अपर कहत अस नीत विसाला।।''[125]

यदि पतिव्रता, पवित्र विधवा नारी, रोगवश हो या जौहर व्रतकाली हो उस कुल का कोई धन छीने तो उसे राजा द्वारा दंड देना चाहिए-

''पतिव्रता सुच विधवा नारी। होइ रोग वसनाहरदारी।

ता कुल कौ कोऊ धन लेही। तसकर दंड ताह नृप देही।।''[126]

जो वस्तुएँ रास्ते में पड़ी हों। उन्हे यदि कोविद पा जांय तो उन्हे प्राप्त करने का अधिकार है, उन्हे दोष नही लगता-

''डरी वस्तु जो मग के माही।पावै कोविद लैहि सदांही।
कारन यह सबही कौ स्वामी।दोष न तिन जानौ नृप नामी।
डरी वस्तु मग मै नृप पांही।आधी धरै षजानै मांही।
आधी वेग विप्र कौ देहीं।राजनीति मत अस विध कै ही।।''[127]

मनका गुमान गौन करत धनी के मौन हौ न निरधनी के ताह वेग।

अ- सुजन महीपन कौ सुकवि निदरत है। इस मूरष के पास नही पद कौ धरत हैं।

ब- सुकवि निधानगिरि संग सै भलाई होत नीच के संग मै वुराई उधरत है। सोई वूँद सीप माहि जलज अमोल होत ताही सै महीप संग उत्तम करत है।

स- ग्राहक जग बिच पसुन के वहु विध मनुज प्रवेसा।
कोविद कवि मांतम के गाहक निकट नरेस।।

''रिपु वैंटेर पर बाज सभसाद विप सनमान।
करह दांन नित हर्ष जुत राजा ताह वषान।।
आयुर विधाकर्म धन तरन पंच निरधार।
प्रथम लिषत सब नरन कै गर्व माँझ करतार।।
दुरजन प्रीत पथम बडी छाया पूरव मान।
सुजन नेह लघु सै बडै जिय पश्चिम रवि जान।।''[128]

दुर्जनों की प्रीति प्रथम बड़ती है जैसे सूर्य की छाया पूर्व में बढ़ती हैं सज्जनों की प्रीति धीरे-धीरे बढ़ती जाती है जैसे पश्चिम का सूर्य।

''झूठी साषी समझ उर भूपति देवै दंड।
अजस लोक पर दुष पावै भूड अषंड।।
तासै देषौ अरु सुनौ देइ साव सत भाष।
भृषा कहौ जिन अब मनुज तज लालच अभलाष।।
जो गवाह दुक्षु ओर के होवै कम बड भूप।
करौ अधिक के काज कौ जग जस होइ अनूप।।
जो गवाह वोऊ दिसा बोलै निज निज ओर।
होवै समता ऐक सी भूप करौ तब गौर।।
लाइक वर जे है मनुज तिन की मांनौ वात।
समझ रूप वल तेज कौ न्याइ निवेरौ तात।।''[129]

शपथ को भी कवि ने साक्ष्य के अन्तर्गत स्वीकार किया है-

''जो न वात मै साषन होई। सांच न मान सकै नृप कोई।
सपथ करा तबही नर राजा। जान सांच तवही कर काज।।
वड़ बड़े रिषि सपथह पावंहि। ताकौ ऐक प्रवज वतावहि।
साँची सपथ करै नर जोई। लोका लोक सुनस तिहि होई।।''[130]

'निधान गिरि' ने धरोहर के रूप में रखी गयी वस्तुओं के विवादों पर तथा अनके अधिकारों का निर्णय दिया है-

''अस धरोहर धन निरनय माहा। जैसी लेइ देइ तसताहा।।''[131]

इसी प्रकार बाजार में अच्छी वस्तु में मिलावट करने वाले तथा तौल मे कम देने वालों पर भी दंड विधान पर विचार किया है-

''मली वस्तु मैं अनमली मिला वैंच बाजार।
तौल देइ कम सुन नृपति देवै दंड विचार।।''[132]

इसी प्रकार कन्या विवाह में जो बातें छिपाकर रखी जाती हैं, उसे भी दंड का पात्र माना है-

''जे कन्या विवाह नर करही। वास छिपाइ अेव अनुसार हीं।
होइ व्याध दुष कुष्ट न पैंगू। कै उनमत्त होइ तन मंगू।।
अैव कहे बिन करै विवाहा। पाछै होइ प्रगट चष चाहा।
ताही समय जु कन्यादाता। दंड देइ नृप सुन अस बाता।।
जो कहु कन्या और दिषावै। दूसर तनया देइ बतावै।
तब विवाह कौ करनै वारौ। वोई दुहिता व्याह विचारौ।।[133]

यदि कोई शत्रु हो और कन्या के सम्बन्ध में झूठी लाँछन लगाए तो वह भी दंड का पात्र है-

''कोई सम देइ चल साषै। झूठ अैव कन्या प्रत भाषै।
करै सत्य नहि तौ नारराजा। दंड देइ लायक सम ताजा।।''[134]

इसी प्रकार धार्मिक कृत्यों के लिए दान लेने वाले यदि प्राप्त धन को धर्मिक कृत्यों में नहीं लगाते तो वह भी दंड के पात्र है-

''काहू धन जाचक को दींना। धर्म हेत कह तिहि नैलीना।
जो नहि धर्म करै नर ओही। फेर लेइ दाता धन सोही।।
दैन कहै धन देइ नदि लेन कर झगरत।
दंड देइ नृप कौ अस विधि सुनत तुरंग।।''[135]

'निधान गिरि' ने पशुओं के झगड़े का भी निर्णय किया है-

''कहत पसुन के झगर कौ समझौ चतुर सुजान।
मालिक और अहीर कौ कहु अपराध निशान।।''[136]

गाय चराने वाले दिन में अहीर तथा रात्रि में मालिक जिम्मेदार होते हैं। बिना चाराई दिये हुए दस गायों के लिए एक गाय का दूध चराने वाले को देना चाहिए-

"बिना चराई जो मनुज दस नो देइ चराह।
ऐक धैन कौ दूध नित लेवै आप दुहाइ।।"[137]

इस स्तम्भ में निम्न निर्णय बिन्दू दृष्टव्य हैं-

अ. चरती हुई गाय को सर्प डस ले या कुत्ते खा डाले या टेढ़ी मेढ़ी धरती, खंदक में गिरकर मर जाय तो अहीर को हानि उठानी पड़ती है।

ब. यदि गाय को भेड़िये ने खा पकड़ लिया और अहीर वहाँ नहीं पहुँचता तो अहीर का ही दोष माना जायेगा।

स. यदि गाय को चोर ले जाते हैं, वह मालिक को सूचना दे देता है तो अहीर दोषी नहीं है।

ग्राम सीमा

जेठ माह में नृप को चिन्ह बना देने चाहिए, ये चिन्ह वट्, पीपल, चूना, पत्थर, सेमर, पलास, देव, दिवाला, वापी, कूप, तडाग आदि चिन्हों का उपयोग ग्राम सीमा के लिए स्वीकृत किए गए हैं-

"भैडौ बोलत हाल मै जाहर ग्राम मृजाद।
जेठ मास मै नृप करै चिन्न रजाइ सदाद।।
वट पीपर चूना उपल सैमर साल पलास।
विटप ग्राम सीमा करै समझ भूप चहु पास।।
देव दिवाला कौ करै वापी कूप तड़ाग।
यह सै सीमा ग्राम की जान लेउ षड माम।।
कौनहु चिन्न नहोइ जो सीमा की पहचान।
मनुज ग्राम चहु वोर के तिनकौ बूझ प्रवांन।।"[138]

ग्राम की सीमा का निर्णय राजा को करना चाहिए और इसके लिए उसे यदि मनुष्यों से साक्ष्य नहीं मिले तो वनवासियों, पशु चराने वालों, मृगवध करने वालों, मीन खग काल वधिकों से कंदमूल फल षनन करने वालों से पूँछकर निर्णय करना चाहिए-

"मिलै ताष नहि कहु मनुज वनवासिन सै पूंछ।
पसु चारन पुन मृगवधन ग्रहन मीन चवग व्याल।।
कंद मूल फल जे षनत तिनै बूझिऐ हाल।
कहै धर्म सै वन मनुज वाल सत्य सो जांन।।
सीमा दोइ दाई ग्राम की राषौ भूप सुजांन।।"[139]

जो पले हुए खग, मृग, मोर और चौदह जीवों को मारते है, उन्हें थोड़ा दंड अवश्य देना चाहिए-

"पाले षग मृग मोर हन चौदह जीव घनेर।

थोर दंड देवै नृपति राजनीत मति हेर।।
चोरन कौ वहु रीत सै देवै दंड नृपाल।
बडहि राज जस सुष प्रजा पावै धर्म विसाल।।''[140]

भूखा व्यक्ति यदि मूली, गन्ना चुराकर खा लेता है तो उसे दंड नही देना चाहिए-

''छुदावंत होवै मनुज मूरी ऊष चुराइ।
विनव तसकरी सो नृपति दंड देइ नहि जाइ।।
भव सुरभी हित हौंम कौ लकरी कवनहु लेइ।
पूजन कौ फल फूल दल चोरी दंड न देइ।।''[141]

'हिजोड ध्वग: क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षुद्वे च मूलके/आददान: परक्षेत्रान्न: दण्ड दातुमर्हरि' मनु स्मृति में स्मृतिकार ने खेत से दो गन्ना, मूली ग्रहण करले, भूखा ब्राह्मण तो वह दंडनीय नही ।

यदि कोई मनुष्य जवाहरात का हरण करले अथवा कुलीन की स्त्री का हरण करें तो नृपतियों को दंड देना चाहिये ताकि प्रजा सुखी रह सके-

''हरै जवाहर जो मनुज अरु कुलीन की वाम।
दंड देइ ताकौ नृपति होइ प्रजा सुष धाम।।''[142]

लघु दंड का विधान निम्न वस्तुओं की चोरी के लिए कहा गया है- महिषी, सुरभी, वाज, वृषभ, चौपह, आयुध, तक्र, दूध, दधि, गुड, नमक, सूत, कपास, चर्म, तेल, घृत, लाडू, चावर, दाल, अन्नादिक पकव़ान आदि की चोरी में लघु दंड का विधान किया गया है।

'निधान गिरि' ने क्रय विक्रय सम्बन्धी विवादों के लिए भी निर्णायक बिन्दु वर्णित किये हैं-

अ. जिन वस्तुओं को बेचने से रोका जाए, उसने बेचने पर राजा उसके धन का हरण कर ले।
ब. कम तोलने अथवा कम तौलने के बाँट बनाने वालों को दंडित करना चाहिए।
स. दीक्षा वाले, भिक्षुक, वेदज्ञ, सूपकार को स्त्रियों से बोलने से नहीं रोकना चाहिए।
क. बाजा बनाने वाली, गायन, नट, आदि नापि की स्त्रियों से बात कंरने वाले दंडित नहीं होते।
ख. विप्र, शूद्र, क्षत्री, व मित्र की स्त्रियों से प्रसंग करने पर तन भंग करने का दंड विधान।
ग. अग्नि लगाने वाले, विष देने वाले, पर धन, परबामा छीनने वाले आततायियों (आतंकियों) को कठोर दण्ड देना चाहिए।

''जस जस भाव करै करम तस तस फल कौ भोग।
सत रज तम मै जगे अधिक जीव होत ता जोग।।
कहे कर्मफल मै सकल समझै चतुर सुजान।

विप्र मुक्ति हित अब वरन संभव शास्त्र प्रधान।।
संजय इन्द्रिन कौ करै वेदम्यास जपग्यान।
गुरू सेवा हिंसा रहित विप्र कर्म कल्यान।।
सब कर्मन मै ऐक ही आत्मग्यान बंड जान।
मुक्ति होव यह सै परम समझौ सकल प्रवान।।
वैंदक कर्म करै सदा पावै आतम ग्यान।
जान लेइ निज रूप कौ साधन रहै न आन।।''[143]

वैदक कर्म

वैदिक कर्म दो विधि से वर्णित किये गये है- प्रवृत्ति और निवृत्ति। 'निधान गिरि' के शब्दों में-

''दो विधि वेदक कर्म बषानै। सरस प्रवृत्य निवृत्य सयानै।''[44]

अज्ञानियों से वे श्रेष्ठ हैं, जो ग्रंथों को पढ़ते हैं। ग्रंथ अध्येताओं से वे बड़े हैं, जो उन्हें नहीं भूलते। अध्ययन को आचरण में उतार लेते है। वैदिक कर्म करते हुए जो सरस ज्ञान को धारण करते हैं, वे सभी से बड़े हैं-

''नर अजान सै श्रेष्ठ जो ग्रंथ पड़ै नर जोइ।
ताही से है जो बडौ पडौ न भूलै सोइ।
धरै ध्यान कौ सो सरस वेद कर्म का जाइ।
सो संबही से है बडौ वरनत शास्त्र नियाइ।।''[45]

प्रत्यक्ष, अनुमान, शास्त्र प्रमाण

कवि 'निधान गिरि' ने सामवेद, यजुर्वेद तथा ऋग्वेद त्रय वेदों के आधार पर सत्य को जीवन में धारण करने का उल्लेख किया है। कर्मशास्त्र, मीमांसा, प्रवृत्ति धर्म का वर्णन करते हैं।

वेंद, स्मृति, वेदान्त, न्याय, पुराण आदि जिस धर्म का वर्णन करते हैं, उसे मूढ़ मान्यता नहीं देते-

स्याम जुजुर ऋग्वेद त्रै जान कहै सो सत्य।
कर्मशास्त्र मीमांसा वरनत धर्म प्रवृत्य।।[46]

वैद स्मृति वेदांत पुन न्यार पुरान वषान।
कहै धर्म सो जानियै मूड कहौ जिन मान।।[47]

'निधान गिरि' भास विहीन हो कर निर्भीक, आत्म में सर्वभूतों के लिए कार्य करते हैं। मन को अधर्म पंथ में नही लगाते सभी जीवों में परमात्मा को देखते हैं, समदर्शी ब्रह्म-स्वरूप हो जाता है-

''त्रास बिना भुसूर रहै आतम सब मै जोइ।
मन अधर्म के पंथ मै नहीं लगावै कोइ।।
पंच तत्व के संग मिल सब मै आतम घूम।
जन्म जुवा सै जहर लग फैल रहा कर धूम।।
इम सब जीवन मै सुजन परमातम कौ वेष।
समदरसी सोई पुरुष ब्रह्म सरुप विसेष।।''[48]
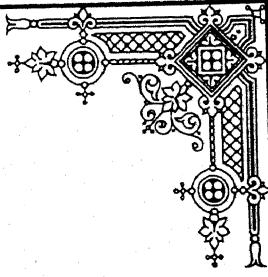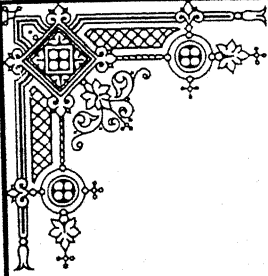
संदर्भ संकेत

1-4, भक्तिमनोहर, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 10,10,10,57

5-, संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव प्रसाद उपाध्याय, पृ.621

6-17, भक्ति मनोहर, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 10,10,12,12,4,4,5,9,10,10,8,10

18-21, तदुपरिवत् पृ.क्र. 2,5,4,17

22, ब्रह्मसूत्र, 2/3/42 अणुभाष्य

23, ब्रह्मसूत्र, 3/3/29 अणुभाष्य

24-30, भक्तिमनोहर, निधान गिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 14,14,10,10,228,96,3,

31-37, तदुपरिवत् पृ.क्र. 3,3,3,3,26,51,10

38-42, तदुपरिवत् पृ.क्र. 27,105,95,14,14

43-50, तदुपरिवत् पृ.क्र. 14,11,11,10,9,11,15,96

51-56, तदुपरिवत् पृ.क्र. 114,96,110,70,148,148

57, मनुस्मृति, 'मनु' 8-34

58, भक्ति-प्रकाश, निधान गिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.7

59-63, कर्मप्रकाश, निधान गिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 1,1,2,1,3

64-66, कर्मप्रकाश, निधान गिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 2,2,2

67-70, कर्मप्रकाश, निधान गिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 15,3,2,5

71-75, कर्मप्रकाश, निधान गिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 4,2,2,15,2

76, कौटिल्य, अर्थशास्त्र, पृ.1-19

76(क), कौटिल्य, अर्थशास्त्र, पृ.1-19

76(ख), कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.1-2

77-80, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 4,3,2,4

81-85, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 2,3,3,4,5

86-92, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 3,3,3,3,4,

93-100, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 4,4,4,4,4,4,4,4

101-108, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 4,3,5,5,5,5,5,

109-114, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 5,5,6,5,5,5

115-119, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 5,5,5,6,7

119(क), हिन्दू राजशास्त्र, डॉ0सुरेन्द्र कुमार जायसवाल पृ.205

120-126, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 7,8,8,8,9,9,9

127-132, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 8,9,9,10,11,11

133-137, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 11,9,9,9,11

138-142, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 9,9,10,10,12

143-148, कर्मप्रकाश, निधानगिरि, ह.लि.प्र.बाँदा पृ.क्र. 12,12,18,18,18

उपसंहार

समग्र मूल्यांकन
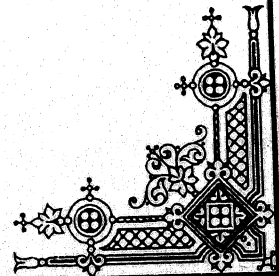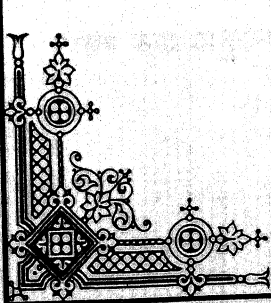
उपसंहार

महाकाव्यों की सुदीर्घ परम्परा में 'भक्ति' मनोहर' एक ऐसा प्रवंधात्मक चरित काव्य है, जिसमें नव्य धारणाएँ हैं, युग का सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब है, महान नायकों राम, कृष्ण के महत् जीवन के निरूपण के साथ ही सामाजिक मूल्यों का स्थापन है। जिन मूल्यों पर कवि ने बल दिया है। वे इस प्रकार हैं :-

निधानगिरि की अंहिसा भावना :-

'भक्ति मनोहर' की सीता मारीच वध के प्रसंग में राम से मृग को लाने और उसे पालने का अग्रह करती है, जो युगानुकूल है। हिंसा के विरोध में अंहिसक गाँधी-वादी विचार धारा का पोषण है और आजादी के ठीक पूर्व लिखे गए महाकाव्य में इस प्रकार के अपेक्षित परिवर्तन युगानुकूल हैं और कवि की सजग और सचेत दृष्टि के परिचायक हैं। कवि' निधान- गिरि'की सीता का यह प्रस्ताव विचारणीय है :-

अ : "नीक पालवे जोग कृपाला।" [१]

(हे कृपाल (कृपा करने वाले, हिसंक न हो) यह मृग सुन्दर है, पालने योग्य है। मारने योग्य नहीं)

"मोहत देखे मृगन की तजतन सर भगवान।" [२]

इसी प्रकार अछूतोद्धार तथा जाति के अंतर को समाप्त करने और उससे ऊपर उठकर मानवता का संदेश कवि ने दिया है, जो गाँधीवादी चेतना से प्रभावित है :-

३- "राम सदा अनुराग बस जात पाँत नंहि चीन।" [३]

आर्य सिद्धान्त, सती प्रथा का विरोध :-

आत्महत्या अथवा सती प्रथाके विरूद्ध आर्य समाज द्वारा जो प्रयत्न किये गए उसकी प्रतिच्छाया 'निधानगिरि' में भी दिखाई पड़ती हैं। दशरथ के निधन के बाद रानियों को चिता पर न बैठा कर सती प्रथा का विरोध किया तथा आत्महत्या की प्रकृति को नकारा है, समाज के हित के लिए वैधव्य नारी जीवन को सेवा तथा वात्सल्य के क्षेत्र में कार्य करने हेतु प्ररित किया है। निधान-गिरि की यह दृष्टि आशावादी जीवन के अनुकूल है :-

"जे अधीर मति अति अग्यानी। दुखते जार कैर वनहानी।" [४]

'निधानगिरि' ने अपने महाकाव्य को समाज का नियामक बनया है।। कवि ने जनमानस को विभिन्न चरित्रों के माध्यम से एक रूप बनया है। वे सामाजिक संगठन के लिए आधार भूमि तैयार करते हैं।

'निधानगिरि' विश्व-बन्धुत्व के गायक :-

'निधानगिरि' ने 'भक्तिमनोहर' में नवीन सांस्कृतिक मूल्यों, दार्शनिक तत्वों की अभिव्यक्ति की है। राष्ट्रीयता, विश्व-बन्धुत्व, मानवतावाद का सन्देश दिया है। अवतारों को जन हित में मानव तथा मानवेतर रूपों को प्रस्तुत कर लोकहित की संचित प्रवृत्तियों को रूपाकार प्रदान किया है। कवि की नव्य दृष्टि भी अनुसंधान कर्त्री की दृष्टि में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कवि ने लोकहित, लोकाभिमत्ता, प्रीति-प्रतीत, नर और नारायण में सरस प्रीति का आदर्श प्रस्तुत किया है :-

अ :- "बूझ लोक हित कर वर दाया।" [५]

ब :- "धन्न उमा तव प्रश्न प्रिय जग पावन हित लाग।" [६]

कवि ने अधर्म मिटाकर धर्म का विस्तार धरनी धेनु, सुर, मुनि के दुखों का उल्लेख किया है।

स :- "धरन धेनु सुर मुनि दुख टारै।"

मेंट अधर्म धर्म विस्तारैं।।" [७]

द :- “हरि अवतार होइ यह कारन।

देव विप्रजन काज सम्भारन।।” [८]

य :- ‘ईशर-ईशर सब जग व्यापक देखी।

सबकौं हरिमय जान विशेखी।।” [९]

र :- ‘भगवत भक्त मित्र समताई।” [१०]

ल :- ‘शिव नारद सनकादिक जैसे।

प्रीती प्रतीत करैं जन तैसे।।” [११]

व :- ‘सोवत जागत हरि सै प्रीती।

नर नाराइन सरस सप्रीती।।” [१२]

क :- ‘छौड़ जगत सुख करै मिताई।

लोभ मोह छल दंभ बिहाई।।” [१३]

ख :- “पूरन भगवत धर्म अनंता।

आइ मनुज मैं हौहि तुरंता।।” [१४]

‘निधानगिरि’ क्रान्ति और स्वाधीनता के संदेशवाहक :-

रावण को अपदस्थ कर सच्चे लोकतंत्र के लिए जनप्रिय एवं साधु विभीषण को राज्य प्रदान करने को प्रस्ताव लोकतंत्रीय चेतना का प्रतीक है। लंका विजय करके राम वहाँ का राज्य स्वयं नहीं लेना चाहते हैं। वहाँ तो विभीषण को ही राज्य देने का स्वप्न है और वह स्वप्न प्रजातंत्र का ही स्वप्न है। कवि ने सीता की उक्ति के द्वारा लोकतंत्र का स्वर्णिम सपना भी देखा है :-

“दास विभीषण कनक पुर कब पावेंगे राज।

यस अभिलाषा रात दिन पुरवैं मन रघुराज।।” [१५]

कवि ने राष्ट्रीय एकता हेतु रामेश्वरम् में शिव की स्थापना करवाई है, जिससे वैष्णव और शैव संस्कृतियों का संगमन हो जाता है। कवि इसे लोकहित की संज्ञा देता है :-

" देषा समद सेत रघुवीरा। थापे सिवपूजन कर नीरा।

रामेश्वर तिन नाम बखाना। कहत लोकहित कृपा निधाना।।" [१६]

राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति के लिए कवि ने अपने चरित्र नायक राम को भी अहिंसक बना दिया है। मृग के सौंदर्य को देखकर राम मुग्ध हो जाते हैं और उस पर बाण नहीं छोड़ते :-

" मोहत देषे मृगन को तजत न सर भगवान।

थोर प्रेम बस होत हैं अस को दया निधान ।।" [१७]

उक्त पंक्तियों में राम मृग पर मोहित हो जाते हैं और धनुष बाण चलाना भूल जाते हैं। ऐसे प्रसंगों में महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतलम् के दुष्यंत याद आने लगते हैं।

निधानगिरि स्वातंत्र्य चेतना के अग्रदूत :-

आधुनिक काल में भारतेन्दु से पूर्व राष्ट्रीय जागरण और स्वाधीन चेतना को कथा तथा पात्रों एवं चरित्रों के माध्यम से व्यक्त करने में जिस कौशल का उपयोग कवि 'निधान गिरि' ने किया है, वह उन्हें स्वाधीन चेतना के अग्रदूत के रूप में भी प्रतिष्ठित करता है। 'निधान गिरि' के काव्य में 'अभय' होने का संकेत स्वाधीनता का ही मनोरथ जगाने वाला है :-

"फिरै अभय सब जगत में नहिं कलेष नियराय।" [१८]

इतना ही नहीं राम वन गमन के समय पिंजड़ों में बंदी पक्षी मुक्त होने के लिए दिखाई देते हैं तथा पराधीन होने के कारण दुःख और पीड़ा का अनुभव करते हैं :-

"रघुवर सुक सारिका पढ़ाये। रहै पींजरन ते पछताय।

व्याकुल ही सुक से कह सारौ। राम लखन सिय बिन दुःख भारौ।" [१६]

बंदी पक्षियों की यह पीड़ा पराधीनता की पीड़ा है, जो मानवेतर जगत से अभिव्यक्त हुई है। स्वतंत्रता की कामना सीता के चरित्र से भी व्यंजित की गई है। भगवती सीता ने अशोक वाटिका में हनुमान के माध्यम से राम को संदेश भेजा है कि वो अकेले अपनी ही मुक्ति नहीं चाहतीं बल्कि जो लोकपाल, सुर, नाग, नर, रावण के द्वारा बंदी बनाये गये हैं। राम उन्हें भी बंदी खाने से मुक्त कराने के लिए शीघ्र ही लंका में आयें। कवि की ये उद्भावना मौलिक हैं और स्वाधीनता के जागरण की पृष्ठभूमि को रेखांकित करती है। कवि निधान गिरि के शब्दों में -

"लोकपाल सुर नाग, नर दस सिर बस जग जानि।

बंदी खाने मैं परै कब छुड़ाहियैं आन।

दस मुख कौ कब वध हरन सैन सहित परिवार।

निर्मल जस सनकादि मुनि कब गावहिं विस्तार।" [२०]

कवि ने दसों दिशाओं में मुक्ति कब आयेगी तथा निर्मल यश का विस्तार एवं कीर्ति गायन ऋषियों के द्वारा कब होगा? इस कथन के द्वारा पराधीनता के युग में स्वाधीनता का स्वर्णिम संकेत देने वाला है।

काम और भक्ति का बैर भाव मिटाकर चित्रकूट में संधि की योजना, कवि की मौलिक परिकल्पना-

कवि 'निधान गिरि' ने चित्रकूट में एक विचित्र संधि का प्रस्ताव कराया है। जहाँ काम और भक्तों के बीच में एक समझौता होता है। यह संधि राम के निर्देशानुसार होती है। संधि के अनुसार राम ने काम को दिग्विजयी होने का वर दिया है किन्तु वहाँ पर एक अनिवार्य शर्त भी है। और यह शर्त इस बात पर है कि काम राम के भक्तों को काम से पीड़ित नहीं करेगा। 'कामदेव' ने इस संधि की शर्त को भी स्वीकार कर लिया है वस्तुतः यह सन्धि भक्ति के क्षेत्र में, दर्शन के क्षेत्र में, आध्यात्म के क्षेत्र में एक बड़ी क्रान्ति भी है। काम और भक्तों के बीच की यह संधि व्यवहार में भी खरी उतरती है। भक्त हनुमान हों, या लक्ष्मण, भरत हों या अन्य भक्त सभी 'काम' के प्रभाव से पीड़ित

नहीं होते। वे रामकाज के लिए समर्पित हैं। भक्त पात्रों के ह्दय में राम का ही निवास है, वहाँ काम, सेवा के रूप में ही स्थान का अधिकारी है, अन्यत्र वह महाराजा हैं। काम को राम ने महाराजा बना दिया है, किन्तु भक्तों का ह्दय क्षेत्र उस राज्य की सीमा से मुक्त है यह मुक्त क्षेत्र चित्रकूट है। भक्तों का चित्तकूट के समान हैं। जिस दुर्ग पर किसी अन्य राजा का प्रभाव नहीं चलता है।

कवि 'निधान गिरि' का यह मनोवैज्ञानिक प्रदेश भक्ति के क्षेत्र की एक अन्य विशिष्ट उपलब्धि है। काम व्यथा से मुक्त होकर रामकाज, जनसेवा का आदर्श 'निधान गिरि' के व्यक्तिगत जीवन साधना का भी प्रतिबिम्ब उपस्थित करता है। आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले, शिव और हनुमान के परम भक्त 'निधान गिरि' राम की भक्ति में इस काम को अनुकूल पाते है। वह सौन्दर्य, प्रेम के मनोराज्य में स्वछन्द विचरण करते हैं वहाँ न तो कुंठा है, न कामजन्य लज्जा। निर्भीक अरण्य में भक्तों के विचरण करने का प्रस्ताव वस्तुतः किसी भी महान कवि की प्रतिस्पर्धा में कहीं अधिक उपयोगी मूल्यवान सिद्ध होता है।

"मम दासन दुष दीजै नाहीं। असर जाइ मानौ मन मॉही।
कहत मनोज भलो यह नाथा। अब आइस धरहौ निजमाथा।।" [२१]
"भक्तन की करहौं सेवकाई। अस कह मदन रहा वरियाई।।" [२१]

ऐतिहासिक संधियों की भाँति यह अध्यात्मिक संधि कालजयी है। राजनीति और इतिहास में अनेक संधियां हुयी हैं स्वयं कवि के पिता अनूपगिरि की अनेक राजाओं से संधियां हुयी किन्तु काल प्रवाह में ऐसी संधियां मिट जाती है। किन्तु 'निधानगिरि' की काम और राम की संधि जो कामदगिरि पर हुयी है। वह सार्वभौम, सार्वकालिक एवं भक्ति साहित्य के हितार्थ एक विश्वजनीन क्रांतिकारी संधि है। मानव इतिहास के पटल पर महाकवि, महान भक्त 'निधानगिरि' की यह संधि परिकल्पना कितनी महान, ऐतिहासिक और धार्मिक हैं, इसका मूल्यांकन पूरे भक्ति साहित्य का आलोड़न है।

काम और शिव के द्वंद और अनंरूप में शिव के विश्ववंद्य रूप की व्यापक परिकल्पना के कारण कवि निधानगिरि का यह चित्रकूट-संस्कृति का अवदान विश्वसाहित्य के लिए अनुपमेय वरदान माना जाऐगा।

चित्रकूट में ही यह संधि प्रस्ताव क्यों? अन्यत्र क्यों नहीं सम्पादित हुआ। चित्रकूट चित्र की स्थली है, प्रकृति की सुरम्य स्थली है। आदिम सम्यता से गुफाओं वाली संस्कृति वाले चित्रकूट से ही

राम का वनवास काल जुड़ा हुआ है। चित्रकूट में अक्षय श्रृंगार है, प्राकृति का भंडार है, अविनाशी सौन्दर्य है। वहीं इन्द्रपुत्र जयंत में कामोद्दीप होता है। वह सीता के आचरण में चंचु प्रहार करता है। उसे उसके लिए दंडित किया जाता है। यह प्रसंग भी काम के नियंत्रण के प्रश्न को उठाता है।

ऋग्वेद में काम को 'कामस्तदग्रे' समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत [२२] 'कहकर' मन का रेतस् या मूलतत्व कहा है। वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र मे काम को ऐसी मूल प्रवृत्ति कहा है जिसके बिना जीवन का कोई कार्य नहीं होता है। मनुस्मृति (२-४) में लिखा है कि जो भी कर्म किया जाता है, वह सब काम की ही चेष्टा है तथा शैवागमों में काम को संकल्प, इच्छा एवं सृष्टि का उत्पादक, अक्षर, अव्यक्त, स्व्यंभू, सम्पूर्ण संसार का बीज शिवरूप आदि कहा गया है। अतः काम मात्र वासना का द्योतक न होकर जीवन की उस मूल इच्छा का द्योतक है जो आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। जिससे जीवन के सभी कार्य सम्पन्न होते हैं और जो मानव की उन्नति का मूलाधार हैं। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने काम (लिविडो) को मूल शक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

शैव दर्शन एवं तंत्रदर्शन [२३] को वैश्णवदर्शन से संयुक्त करने के कारण 'निधान गिरि' ने राम और काम की संधि की परिकल्पना की है। कवि के अनुसार भक्तों को काम मंगलमय, श्रेयष्कर कार्यो की ओर ले चलने में सहायक होगा। उन्हें काम पीड़ित करके वाधा नहीं पहुँचायेगा। काम को राम ने विश्वविजयी होने का वर दिया। इसका आशय हैं कि काम को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। वह महाराजा के पद पर है। अतः विश्व को सफल बनाने के लिए यह संधि आवश्यक है। महाकवि प्रसाद ने कमायनी में काम के इसी मंगल रूप को विश्व का साफल्य कहा है :-

"काम मंगल से मंडित श्रेय स्वर्ग इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल बनाते हो असफल भव धाम।।" [२४]

डा० ललित ने भी काम के अनंग रूप को विश्ववंद्य कहा है :-

"अंग-अंग में अनंग होकर विश्ववंद्य है।" [२५]

महाभारत में यथा पुष्प फलं काष्ठात कामः धर्मार्थयों वरः कहकर काम की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त शैव ग्रथों में काम को विशुद्ध प्रेम एवं सौन्दर्य का प्रतीक मानकर कामकला [२६] के रूप में उसकी पूजा का विधान मिलता है और उसे संसार की उत्पादिका शक्ति माना है।

वैराग्य, संयास तथा भक्ति के क्षेत्र में रचनात्मक कार्य करने वालों के लिए काम की यह अनुकूलता आवश्यक है। सेवा, परोपकार आदि शुभकार्यों के द्वारा श्रेयष्कर जीवन जिया जा सकता है। अतः विश्व के मंगलमय रूप में राम और काम की संधि का यह प्रस्ताव स्वागत योग्य है।

भगवान और मुनष्य के बीच के सम्बन्ध का सामान्य धरातल :-

मानव और भगवान के बीच साम्य की स्थापना महाकवि निधानगिरि की भावात्मक क्रान्ति मानी जा सकती हैं। 'साम्य' मानववाद की स्थापना करता है। अतः वह जीवन का सर्वोच्च समाजवादी एंव राष्ट्रीय मूल्य है। वैषम्य वर्गगत भावना को बढ़ाता है। निधानगिरि भगवान को मानव के समान धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं। कवि की निम्न उक्ति में समानता की भावना कितनी मुखर है :-

अ- ''ईश्वर सम जानौ सब प्रानी। बहु विधि करै सकल सनमानी।

वासदेव पद प्रीत लगावै। सुमर-सुमर गुन कर मन गावै।।'' [२७]

ब- ''सोवत जागत हरि सै प्रीती। नर नाराइन सरस सप्रीती।'' [२८]

'निधान गिरि' की ईश्वर कल्पना में दार्शनिक और जनवादी दोनों ही प्रकार का स्वर है। कवि का मानव प्रेम छलकता हैं। इसमें आशा और मानवीय आस्था की नई किरणें फूटती दिखाई पड़ती है। मानव का श्रेष्ठतर भविष्य प्रतिबिम्बित होता है।

क- ''पूरन भगवत धर्म अनंता। आइ मनुज मैं होहिं तुरंता।

ईश्वर सब जग व्यापक देखी। सबकौ हरिमय जान विसेषी।। [२९]

मानव जीवन को उस विराट सत्ता की छाया मानने वाले महा कवि जायसी ने पदमावत में ''पुरुष देख ओही की छाया का भाव व्यक्त किया हैं।

'निधानगिरि' सख्य-भाव के सरस स्रष्टा :-

'सख्य भाव' की हिन्दी कविता के लिए सूर और चंद दो नाम प्रमुख है। सूर ने सखाभाव का विस्तार किया, चंदने सखा भाव से युद्ध और सखी भाव से चंदसखी के रूप में कृष्ण की काव्य छवियों के माधुर्य में बृज और बुन्देलखण्ड को रससिक्त किया। 'निधानगिरि' रीति के उत्तरवर्ती, आधुनिक युग के प्रथम जागरण काल के ऐसे महान कवि है, जिन्होंने भगवान को शुद्ध मानवीय

धरातल पर उतार कर सख्य भाव एवं सखिभाव का उत्कृष्ट परिपाक करने में रस सिद्ध महाकवियों की कोटि में प्रतिष्ठित होते है, सख्य और सखि भाव का परिपक्व, सहज और स्वाभाविक बिम्बों का रसास्वादन निधानगिरि की अन्यतम उपलब्धि है :-

अ- 'भगवत भक्त मित्र समताई ।" [३०]

ब- "छॉड जात सुश करै मिताई।" [३१]

स- "सखी कहत कुलवधुन सै देखहु रूप अनूप।
सोभा मूरति राम शिशु कनियॉ लीनै भूप।।" [३२]

द- "प्रेम मगन सुन सपी के मधुर मनोहर बैन।।
झांक झरोषन कुलबधु ससि वदनी मृग नैन।।" [३३]

य- "तहिं अवसर सखियॉ कहत चारहु सुत छवि धाम।
इक अलि कह भल सियावर इंद्र नील मनी स्याम।" [३४]

'निधानगिरि' जयदेव, सूर और तुलसी के संयुक्त संस्करण-

'निधानगिरि' ने जयदेव, सूर, और तूलसी, की त्रयी को स्मरण किया है। वस्तुतः 'निधान गिरि' पदलालित्य, छंद प्रवंध, माधुर्य के अमिनण जयदेव है। श्रंगार, उपालंम, वात्सल्य के अभिनवसूर हैं, सौन्दर्य शील, संस्कृति के लोक नायक अभिनव तुलसी है। जयदेव के गीतगोविंदम के पद विन्यास की झलक, सूर के भ्रमर गीत का नाद गुजंन और तुलसी का लोकलालित्य एकसाथ निधानगिरि में प्रतिनिधित्व पा सका, यह हिन्दी के लिए अपूर्व उपहार है :-

अ :- "नंदन नंद कदम्बक तरु तरु धीरे धीरे मुरलि बजाओ (जयदेव), गीतगोविन्द
नंदन नंद कदम्बक तरु तरु मुरली बजावत भावत।" [३५] (निधान गिरि)

ब :- "नातो नेह राम के मनियत सुहृद सुसैव्य जहॉ लव (तुलसी)
जहंलग नातौ नेह के प्रभु बिन हैं सब बाद।" [३६] (निधानगिरि)

स :- "जैसे उड़ि जहाज को पंक्षी फिर जहांज पर आवै (सूरदास)
ज्यों जहाज के काज कौ है अवलम्बन आन।
त्यौं मो मैं दूजा नहीं श्री रघुवरी समान।" [३७] (निधानगिरि)

निधानगिरि महर्षि व्यास और बाल्मीकि के उत्तराधिकारी-

महाकवि 'निधानगिरि' ने 'भक्तिमनोहर' में महान दार्शनिकों, व्याकरणबत्ताओं, सुत्रकारों महर्षियों के साथ महर्षि व्यास और वाल्मीकि के प्रति अपरमित आस्था व्यक्त की है और इन महान कथा सृष्टाओं को अपना काव्यादर्श माना है। वस्तुतः महर्षि व्यास और वाल्मिकि के सार्वमौम संदेश महाकवि निधानगिरि की वाणी का श्रृंगार और आचरण बनकर ध्वनित हुए हैं। विराट चेतना का सांस्कृतिक दर्पण निधानगिरि में श्रेष्ठतम छवियों के साथ अंकित है। जो उन्हें महर्षि व्यास और वाल्मीकि का सहत्र उत्तराधिकारी बना देता हैं :-

अ :- ''प्रभु तुम पिता धरन है माता ।

थापिय भूंम जगत सुषदाता।।'' [३८]

'निधानगिरि' में पृथ्वी (धरणि) के मातृत्व पर प्रभु के पितृत्व पर ऋग्वेदिक छाया भी परिलक्षित होती है। त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां, त्वां राय उमयासो त्रनानाम्। त्वं त्रातातरणे 'चेत्यो भूः पिता माता सद मिन्नानुषाणाम् [३९]

''सकृदेव प्रपन्नाय, तवास्मिति च याचेतं

अभयं सर्वभूतेम्यो हदाम्य तदव्रतं मम।।'' [४०]

वाल्मीकि रामायण के अभयं, प्रप्रन्नाय का प्रतिबिम्ब 'निधानगिरि' के शरण, निर्भय पदों में दृष्टव्य है :-

''कोउ सरन होई मम ताता। ताकौ हौं निर्भय पद दाता।

यह प्रन मोर कहत सत भाऊ। वाल्मीकि मुनि सम्मत गॉऊ।।'' [४१]

निधानगिरि : ग्राम्य-संवेदनाओं के महान शिल्पकार-

राजा दशरथ के सृकृत के बीज जमकर निकल आये हैं। मानो विमल विरवे फूल से संयुक्त हो उठे हो :-

अ :- "जनु नृप सुकृत बीज जम निकसे। विखा विमल सुमन जुत विकसे।" [४२]

ब :- "विधि किसान जग षेत मैं सोमा बीज सुजान।
काटनवारे मदन रति मंडप करषर आन।।" [४३]

स :- "रूप रास किय राम सिय अस पटतर कहु गाइ।
मनसिज रति कों मजूरी लौनी सिला दिखाइ।।" [४४]

निधानगिरि आंचलिक श्रृंगार के मनोसृष्टा -

श्रृंगार-व्यापारों के चित्रण में झरोखे से झांकते नयन मंगिगाओं के, पुरवधुओं के मनोहास, विलास, रति एवं प्रीति की चेष्टाएं, उत्प्रेक्षाओं के चरमोत्कर्ष से, उत्कृष्ट कल्पनाओं से मानसिक संघर्ष, शील और स्वच्छंद के संयम से अभिव्यक्त हुयी है। वह महाकवि के आंचलिक श्रृंगार का अमिनव प्रस्फुटन है :-

अ :- "कमल नयन अंजन दिपत तिलक गुरोचन भाल।
सोह दिडौना वदन विध मन चकोर कर लाल।।" [४५]

ब :- "कसै काछनी कंचन गोटा। कट केहर सिसु तरकस छोटा।
लसै पीत पट किंकन धुन कर। जनु अनंद उमगावत हियधर।
पग पैजन अस मन धुन करहीं। सो सुन देत सुकवि पटतरहीं।
सब नरनारि निरश थक अैसैं। मृग दीपक लश इकटक जैसे ।" [४६]

स :- "सुदर स्याम गौरवर जोरी। सोभा अमित निरश मति भोरी।।
देश रूप लोचन ललचाएं। जलज माल उर जनु छवि छाएं।।" [४७]

द :- "सोभासील सनेह सनाए। स्याम सरूप विरंच बनाए।" [४८]

य :- "वाम हाथ फूलन कर दोना। तरु तरु विहर रूप के भौना।।" [४६]

र :- "तहाँ उमा पूजन कौं आई। राम लशन की निरश निकाई।।" [५०]

ल :- "जावक चरन सरोज लगावा जटित जरी जामा पहरावा।।" [५१]
कुंडल करन विलोचन अंजन। नाक बुलाक भाल पर चंदन।
सीस जरकसी पाग रचाई। तापर मौर मनोहरताई।।" [५२]

"भोजन परस वेग महतारी। मो कौ भूंक लगी अति भारी।
परसव कनक थार जलझारी। लाडू शांड षीर घृत डारी।
गूजा शोर कदाश गिदौरा। पैरो सीर जलेबी जोरा।
मिश्री गरी वदाम सभारा। लवन संकुली पुवा सिगारा।
वृभती शाजे पीठा पागा। लीलावती चावर छवि लागा।
वेसन वीस भांत कौ लोना। धरे आन भर भर बहु दौना।
सिशरन बासी घी शुहा वरफी फेनीद्भार।
नीकौ औटो दूध लै भर भर बेला थार।।
मूंग मसूर चना उरद दार अनेक प्रकार।
निवुया आम अचार बहु मिरच परा दधि दार।
हौंसन हौंसन कर असन कहत श्याम अस बात।
भावत मुह अत ही निपट धौरी कौ पय मात।।
दीनौ हलदल स्याम कौं बेला भर भर माइ।
पीवत पय अस्तुत करत कवि लघु मति किम गाइ।।"[६६]

'निधानगिरि' ने माँ के द्वारा जिन व्यजंनो के परोसने का उल्लेख किया है, उनमें गूजा, खोर, कदारव, गिदौरा, पेड़ा, लड्डू, खांड, सिंघाड़ा, खीर, मिश्री, गरी, बादाम, सकुली, पुवा, अम्रती, शाजा, पैठा, पाग, लीलावती, चावल, वेसन बीस प्रकार का नमकयुक्त, सिखरन वासी, घी, खोवा, बरफी, फेनी, औटादूध, मूंग, मसूर, चना, उरद, दाल, (अनेक प्रकार की दालें) निवुआ, आम, अचार, मिर्च, दधि, आदि व्यंजन प्रमुख है। धौरी गाय का दूध कृष्ण को अधिक प्रिय है।

भोजन के प्रसंग में कवि 'निधानगिरि' बुन्देलखण्ड की मिठाइयों, पकवानों, आचारो, दालों, आदि का नाम परिगणन, कराया है। बुन्देली संस्कृति के अन्तर्गत इनका नामोल्लेख पाया जाता है। कवि ने यद्यपि कनकथाल और झारी का उल्लेख किया है किन्तु सभी व्यंजन और अन्य खात्र वस्तुएं दोनों में ही दी गयी हैं। दोनों का प्रयोग प्राचीन काल से पाया जाता है। बुन्देलखण्ड में प्रायः दोनों का प्रयोग किया जाता है। सामान्य जनजीवन में दोने प्रचलित है। कवि रस के प्रवाह में इन दोनों को नहीं भूलता। उसे ग्राम्य संस्कृति से लगाव है और आंचलिक क्षेत्रों में दोने ही प्रयोग किये जाते हैं।

सभी मांगलिक मंगलों की पूर्ति के अवतरण पर साकार हो उठते हैं। महाकवि की लोकवाणी के कंठ मे सरस्वती का कौमार्य रस सृष्टि करने लगता है-

अ :- शिशु रूप में राम के झूलने के लिए कामदेव बढ़यी (कारीगर) का झूलना (पलना) उस पर रेशम और हीरों का फुंदना, किंकणी और खिलौनों को सजाया गया है।

"कनक रतन मय सोहत पलना। मनहु मदन बढ़ई रचि झुलना।
लागे अति किंकनी षिलौना। बहु विधि जलजहार छवि भौना।" [५६]

कवि ने लोक संस्कृति के अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया है। कंचन के कलश शीशपर धारण करके मंगल गायन करती हुयी मानिनियॉं, दूलह का परछन, भुंम पूजन, गौरी गणेश का पूजन, गॉठ जोड़ने की रश्म, मधुपर्क आस्वादन, शाखोच्चार, कन्यादान का उल्लेख कवि ने किया है। जिससे कवि का मांगलिक ज्ञान पुश्ट होता है-

अ :- "कंचन कलस सिर धरैं मामिन सकल मंगल गावतीं।" [५७]

ब :- "दूलह निरष परछन करत जुत आरती कर भांवती।" [५८]

स :- "अरचन प्रथम कर भूंम कौ गवरी गनेस पुजावहीं।" [५९]

द :- "मुनि गांठ जोर प्रमोद हिय कह भॉवरी श्रुति विध मयी।" [६०]

य :- "मधुपर्क आदिक वेद विधिकर समय मुनिवर जांन के।।
बुलवाइ रानी गांठ जोरी जनक सैं सुष सांन कैं।।" [६१]

र :- "कलधौत थार पषार प्रभु पद प्रेम जुत उर धार कैं।" [६२]

ल :- "तिहि समय साषोच्चार कर दुहु कुल गुरुन विस्तार कै।" [६३]

प :- "सव वेद विध मिथलेस कन्यादान वर कर गह दियौ।
पुन चतुर आसी आहुतैं कर हुतासन पूरन किया।।" [६४]

ष :- "पावक आदिक देव, पूजा पाई असीस दिय।
प्रमुदित हैं सुर सेव, आप कृतारथ जान कै।।" [६५]

<u>व्यंजन-</u> लोक संस्कृति के अन्तर्गत कवि ने व्यंजनों का भी उल्लेख किया है। व्यजंनों की परिगणना कवि ने इस प्रकार की है :-

"भोजन परस वेग महतारी। मो कौ भूंक लगी अति भारी।

परसव कनक थार जलझारी। लाडू शांड षीर घृत डारी।

गूजा शोर कदाश गिदौरा। पैरो सीर जलेबी जोरा।

मिश्री गरी वदाम सभारा। लवन संकुली पुवा सिगारा।

वृभती शाजे पीठा पागा। लीलावती चावर छवि लागा।

वेसन वीस भांत कौ लोना। धरे आन भर भर बहु दौना।

सिशरन बासी घी शुहा वरफी फेनीचार।

नीकौ औटो दूध लै भर भर बेला थार।।

मूंग मसूर चना उरद दार अनेक प्रकार।

निवुया आम अचार बहु मिरच परा दधि दार।

हैंसन हैंसन कर असन कहत श्याम अस बात।

भावत मुह अत ही निपट धौरी कौ पय मात।।

दीनौ हलदल स्याम कौं बेला भर भर माइ।

पीवत पय अस्तुत करत कवि लघु मति किम गाइ।।"[६६]

'निधानगिरि' ने माँ के द्वारा जिन व्यजंनो के परोसने का उल्लेख किया है, उनमें गूजा, खोर, कदारव, गिदौरा, पेड़ा, लड्डू, खांड, सिंघाड़ा, खीर, मिश्री, गरी, बादाम, सकुली, पुवा, अम्रती, शाजा, पैठा, पाग, लीलावती, चावल, वेसन बीस प्रकार का नमकयुक्त, सिखरन वासी, घी, खोवा, बरफी, फेनी, औटादूध, मूंग, मसूर, चना, उरद, दाल, (अनेक प्रकार की दालें) निवुआ, आम, अचार, मिर्च, दधि, आदि व्यंजन प्रमुख है। धौरी गाय का दूध कृष्ण को अधिक प्रिय है।

भोजन के प्रसंग में कवि 'निधानगिरि' बुन्देलखण्ड की मिठाइयों, पकवानों, आचारो, दालों, आदि का नाम परिगणन, कराया है। बुन्देली संस्कृति के अन्तर्गत इनका नामोल्लेख पाया जाता है। कवि ने यद्यपि कनकथाल और झारी का उल्लेख किया है किन्तु सभी व्यंजन और अन्य खात्र वस्तुएं दोनों में ही दी गयी हैं। दोनों का प्रयोग प्राचीन काल से पाया जाता है। बुन्देलखण्ड में प्रायः दोनों का प्रयोग किया जाता है। सामान्य जनजीवन में दोने प्रचलित है। कवि रस के प्रवाह में इन दोनों को नहीं भूलता। उसे ग्रम्य संस्कृति से लगाव है और आंचलिक क्षेत्रों में दोने ही प्रयोग किये जाते हैं।

लोकसंस्कृति

परिधान-आभूषण -

कवि 'निधानगिरि' ने लोक संस्कृति के संरक्षण के लिए विविध परिधानों एवं आभूषणों का उल्लेख करके लोकसंस्कृति के प्रति आस्था व्यक्त की है-

"करसैं काछनी कंचन गोटा। कट केहर सिसु तरकस छोटा।

लसै पीत पट किंकन धुनकर। जनु अनंद उमगावत हिय धर।

पग पैजन अस मन धुन करहीं। सो सुन देत सुकवि पटतरही।

जनु प्रभु सैं माँगत वर ऐही। सदा रहैं पद पंकज नेही।

सिर टोपी जरकस की सोहै। पदिकहार छवि जनमन मोहै।

भुज अंगद पहुंची मनि मंडित। कुंडिल करन भान छवि पंडित।

सब नर नार निरश थक अैसैं। मृग दीपक लष इकटक जैसे।" [६७]

काछनी में कंचन गोट, पीतपट में किंकिनी, पग में पैंजनी, सिरपर जरकसी टोपी, पदिक हार, भुजाओं में अंगद, पहुँची माणि मंडित, कानों में कुडल जो सूर्य की छवि को खंडित करने वाली है। इस छवि को नर नारी इस प्रकार निरखते हुए थकित हो गये, जैसे मृग दीपक को देखकर मुग्ध हो।

'निधानगिरि' ने लाल लहँगा (लाल रंग का लहरियादार लहगा और पंचरंगी साड़ी का उल्लेख किया है :-

"जेहरपद कर लाल लहंगा। विपत अंग सारी पंचरग।" [६८]

नृत्य ताल रागादि का वर्णन :-

'निधानगिरि' को तालों का ज्ञान था, उन्होनें ब्रह ताल, रुद्रताल तालो का और स्पष्ट उल्लेख भी किया है। जिससे कवि का लोक संगीत, रागों और तालों के प्रति शास्त्रीय प्रेम व्यक्त होता है।

"मोहित बृजवाल भाल गावत कर देत ताल,

ब्रह ताल रुद्रताल ताठ अगिन तन सँभारी।

थकित पवन लता पुंज मोहत मन कुंज-कुंज

कालिंदी फूल मंजु मुरली धुंन धारी।

ठुम-ठुम पग धरत धरन ताडंव हरि नृत्य करन

स्यामजलद वरन वपुष पीत चंचलारी।

विथुरै सिर चिकुर जाल किंकिन धुन ठुमुक चाल

नुपूर झनकार ताल मुकुट लटक न्यारी।

निर्तत गोपी गुपाल नाना विध करत ष्याल

ठानत पद वंद नृत्य प्रमुदित प्रमुदारी।"[६६]

संगीत यंत्र-

कवि निधानगिरि ने 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य के माध्यम से वाद्यंयत्रो की जानकारी दी है। इन विभिन्न वाद्ययंत्रों के नाम इस प्रकार हैं :-

"ढोल नगारै तूर मृदंगा। जल तरंग मुष चंग उदंगा।

कर तांबूर सितार ढंफ सारंगी मंजीर।

तासा झांझ खावजुत नरसिंहा सुरभीर।।" [७०]

कवि की दी गयी सूची में ढोल, नगाड़ा तुरहीं, मृदंगा, जल तरंग, मुखचंग, उपंग, तंबूरा, सितार, ढफ, सारंगी, मंजीर, ताषा, झांझ, खाब और नरसिंहा के उल्लेख पाये जाते हैं। नृसिंह वाद्ययंत्र बुन्देलखण्ड क्षेत्र का अपना विशिष्ट वाद्य-यंत्र है। जिसके माध्यम से कवि ने बुन्देली संस्कृति के प्रति अनुराग व्यक्त किया है।

मंगल के अंग-

कवि निधान गिरि ने ग्राम्य संस्कृति, बुन्देली संस्कृति के साथ ही लोक संस्कृति के रंग भी उभारे हैं। कवि ने मंगल के अंगो का भी उल्लेख किया है। जिसके चालीस प्रकार बताये है :-

"चालिस विध मंगल के अंगा। तोरन वंदनवार सुरंगा।

कलस चमर धुज केत पताका। छत्रसु व्यजंन सुमन फल पाका।

चंदन दूध दूब घृत दीपा। अक्षत जवस पताम समीपा।

मूसूर रंगा नृत्य विताना। हरदि पंच पल्लव ललिताना।

कदलि चौक मनि अंकुर रोपन। मुकुट वहुर वत्सा जुत गोधन।

मागध वंदी जन जुत सूता। सजा अना चतुरंग बहूता।

चित्रम कन्या जलधर धूपा। पान वेद धुन होइ अनूपा।

मंगल साज सजे सकल मुनि रजाई जस पाई।

अवध वधापन हो रहौ नभ भूतल मै छाइ।

झालर मनिन जटित अति रुरी। गृह-गृह सित मनि चौकन पूरी।

सजे कलस जव अंकुर भाऐं। दर दर पर मनि दीप सुहाऐ।

धुजा पताका चित्र समेता। फरहरात नभ सकल निकेता।

तोरन वंदनवार सजो है। रेसम रज नव पल्लव गोहै।"

शकुन एवं अपशकुश- कवि ने शगुन एवं अपशगुन का उल्लेख भी महाकाव्य मे किया हैं, जो इस प्रकार है-

"मेघ प्रलय सम करत गराजै। वरशत रुधिर तपत भयसाजै।

प्रतमा श्रवहिं नीर सब काला। चलत सब्द कर सुनत कराला।

बोलत स्वान श्रगाल दिनाहीं। पीत पीत सब दिसन दिषांहीं।

सुरभी के उपजत शर भूरा। होत नकुल कै मूसक पूरा।

तहँ त्रहँ लरत विविध मंजारी नाग गरुड़ से रोर तरारी।

असगुन अपर न जाइं बषाने। सकल प्रजा जित तितमय मानै।"[७२]

राम के आगमन के पूर्व कौशल्या की प्रतीक्षगत चिंता अत्यन्त मार्मिक हैं। उस समय के शकुनों का वर्णन भी मनोवैज्ञानिक है।

"बायैं पूरब बोलत कागा। अग्नि कौंन त्रिय सहित सुहागा।

बालक लियै गोद मैं आवत। दक्षिन सौं ग्वालिन दध लावत।

नैरित मैं मृग भ्रमै अनंता। पच्छिम छेम करी किलकंता।

सौभागनी बार छवि शाना। कोविद पुस्तक कर ईसाना।

नभ निर्मल वह विविध समीत्रा। धरनी हरित मई मुनि धीरा।

देख सगुन सुम रानि सयानी। प्रेम पुलक तन मानस वानी

मिलिहै राम लषन प्रिय सीता। जॉन सगुन हिय भई सप्रीता।

वाइस बोलत सुभ दिसा सगुन जान कह बैन।

आवहिंगे कव कुसल सै बालक मम छवि अैन।"[७३]

राम के आगमन अवधि पर माँ ज्योतिषियों से आगमन के बारे मे पूछती है।

"अवध निकट लष अति विकल वोल ज्योतिषिन लीन। पूजन कर बूझन लगीं कहौ कृपाल प्रवीन।।"[७४]

वस्तुतः महाकवि निधानगिरि लोक-कलाओं, लोक-आस्थाओं एवं लोक-मान्यताओं से भलीभाँति परिचित हैं। उनके काव्य का लोक पक्ष भी अत्यन्त सशक्त है।

संदर्भ-संकेत

१ भक्तिमनोहर, चं. शो. सं. प्रति, निधानगिरि, पृ. १०२

२ तदुपरिवत्, पृ.२५

३-२१ तदुपरिवत्, पृ. १०६, ११४, ५, ७, ८, ८, ९, ११, ११, १२, १७, १४, ११५, १२४, १०१, २६, ६२, ११५, ८७

२२ ऋग्वेद, १०, १२६, ४१, १-२

२३ तंत्रालोक, भाग-२, पृ. १४७-१५१

१७ कामायनी, जयशंकर प्रसाद, श्रद्धा सर्ग, पृ.२६

१८ अभिशप्त-शिला, डॉ. चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', काम सर्ग, पृ.३८

१९ काम कला विलास, अध्याय ८

२० भक्ति मनोहर, चं. शो. सं. प्रति, निधानगिरि, पृ. २५

२१ -३८ तदुपरिवत्, पृ. १७, ११, ११, १७, ५६,५६, ७५, ११२, १२८, १२५, १७

३९ ऋग० ६ / १/ ५

४० वाल्मीकि रामायण, युद्धकांड, १८/३३

४१ 'भक्ति मनोहर', चं. शो. सं. प्रति, निधानगिरि, पृ. १४१

४२- ५६ तदुपरिवत्, पृ. ५३, ७५, ७५, ५२, ५४, ६२, ६३, ६३, ६३, ६३, ७४, ५५, ६४, ५४, ५२

५७-६५ तदुपरिवत्, पृ. ७२, ७४, ७४, ७४, ७४, ७४, ७४, ७८, ७४,

६६-७३- तदुपरिवत् पृ. १६४, ५७, २१७, २१८, १६५, १६५, १६३, १६३,

परिशिष्ट

ग्रन्थ–सूची

उपजीव्य–ग्रन्थ

संदर्भ–ग्रन्थ

कवि की जन्मभूमि से प्राप्त दुर्लभ अभिलेखों की छायाप्रति

कवि के मूल हस्तलेखों की छायाप्रतियाँ

परिशिष्ट

ग्रंथ–सूची

उपजीव्य ग्रंथ ('निधान गिरि' की रचनाएँ)

'भक्तिमनोहर', हस्तलिखित प्रति, राजकीय संग्रहालय, झाँसी।
'भक्तिमनोहर', हस्तलिखित प्रति, चंददास शोध संस्थान, बाँदा।
'वैद्यक सिन्धु', हस्तलिखित प्रति, मोठ प्रति, झाँसी।
'महावीर अष्टक' हस्तलिखित प्रति, गुरूसराँय प्रति, झाँसी।

'उपस्कारक ग्रंथ'

अग्नि पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर द्वितीय संस्करण, स0 2060
अग्नि पुराण, वेद व्यास, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1900 ई0
अथर्ववेद संहिता, सम्पादक शंकर पाण्डुरंग, गर्वमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, मुम्बई, 1859 ई0
अध्यात्म रामायण, वेद व्यास, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2008 वि0
आधुनिक साहित्य, नंद दुलारे वाजपेयी, भातीय भण्डार लीडर प्रेस, प्रयाग, 2007 वि0
अर्वाचीन हिन्दी काव्य, डॉ0 रामगोपाल गुप्त, रंजना प्रकाशन मंदिर, आगरा, प्रथम सं0 2004 ई0
अभिशप्त शिला, डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', राष्ट्र कवि प्रकाशन,
चं0शो0सं0 बाँदा उ0प्र0, 1982 ई0
अमर महाकाव्य, डॉ0 शंकर दत्त 'ओझा,' शिवाराधन प्रकाशन लखनऊ, 2000 ई.
ईशावास्योपनिषद्, गीता प्रेस गोरखपुर, 2017 वि0
ईश्वरप्रत्यमिज्ञा, भाग दो, उत्पल देव, पुरातत्व एवं शोध विभाग, जम्मू कश्मीर राज्य, 1921 ई0
उज्जवल नीलमणि, रूपगोस्वामी
उत्तर रामचरित, भवभूति सं0, डॉ0 कपिल देव, रामनारायण लाल द्विवेदी, बेनी माधव
इलाहाबाद, प्रथम सं01968
ऋग्वेद संहिता, मैक्स मूलर, संस्करण लंदन, 1849 ई.
ऐतरेय उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2018 वि0
कठोपनिषद, गीता प्रेस गोरखपुर, 2018 वि0
काव्यालंकार, रूद्रट, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, 1965 ई0
काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, श्रीमहावीर जैन महाविद्यालय, बम्बई, 1938 ई.
काव्यालंकार, मम्मट, विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1962 ई0
काव्यप्रकाश, मम्मटाचार्य, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, बनारस, 2008 वि0
काव्यमीमांसा, राजशेखर, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना 1954 ई0
काव्यादर्श, आचार्य दण्डी, मेहरचंद लक्ष्मण दास, लाहौर 1990 वि0
काव्यालोक, रामदहिन मिश्र, इलाहाबाद 1966 ई0
काव्यालंकार सूत्र, वामनाचार्य,
कूर्म पुराण, वेद व्यास, एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, 1890 ई0
केनोपनिषद्, गीता प्रेस गोरखपुर, 2019 वि0
गीता (रामानुज भाष्य) गीता प्रेस, गोरखपुर, 2008 वि.
गीता (शांकर भाष्य) गीता प्रेस, गोरखपुर, 2010 वि0

चिंतामणि भाग 1, रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, 1940 ई0
चिंतामणि भाग 2, रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मंदिर, जतनवर काशी, 2002 वि0
छांदोग्य उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर 2019 वि0
तन्त्रसार, अभिनवगुप्त, शोध-विभाग जम्मू-काश्मीर राज्य, 1918 ई0
तर्कभाषा, केशव मिश्र, वी0 रामचन्द्र एण्ड कम्पनी, पूना,1917ई0
तुलसी-दर्शन-मीमांसा, डा0 उदयभान सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, 2018 वि0
तैत्तिरीय ब्राम्हण, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना
त्रिपुरा रहस्य (ज्ञानखण्ड), स0 गोपीनाथ कविराज, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1925 ई0
ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, सं0 2019 वि0
नारद-भक्ति सूत्र, शिवाजी न0 भावे, हिन्दी अनु0 गोविन्द न0 वैजापुरकर, सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट
नाट्य दर्पण, रामचन्द्र गुणचन्द्र, वाराणसी, 1964 ई0
नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1929 ई0
न्याय सूत्र (न्याय- दर्शन), गौतम, अनु0 उदय नारायन सिंह ठाकुर, शास्त्र प्रकाशन भवन, मथुरापुर, मुजफ्फरपुर 1991 वि0
पद्माकर ग्रन्थावली, सं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बनारस
पातंजलि योग सूत्र, पतंजलि, सं0 काशीनाथ शास्त्री आगाशे, आनन्दाश्रम, प्रेस पूना, 1932 ई0
पातंजलि योग दर्शन, पतंजलि, टीका. हरिकृष्ण दास गोयन्दका, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2017 वि0
प्रतापरुद्र यशोभूषण, विश्वनाथ
वाल्मीकीय रामायण, महर्षि वाल्मीकि मुनि, गीताप्रेस, गोरखपुर 1960 ई0
बौद्ध दर्शन, बलदेव उपाध्याय शारदा-मन्दिर, गणेश दीक्षित, बनारस 1946 ई0
बौद्ध दर्शन, राहुल सांस्कृत्यायन, किताब महल, प्रयाग, द्वितीय सं0 1948 ई0
बौद्ध धर्म-दर्शन, आचार्य नरेन्द्र देव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना -3 1956 ई0
वाल्मीकि और तुलसी का साहित्यिक मूल्यांकन, डा0 रामप्रकाश अग्रवाल सुभाष बाजार मेरठ
ब्रह्मवैवर्त पुराण, वेदव्यास, बेकंटेश्वर प्रेस, बम्बई, प्रथम सं0
भाषा विज्ञान, डा0 भोलानाथ तिवारी पटना 2002 ई0
भाषा विज्ञान, डा0 त्रिलोकीनाथ
भागवत् पुराण, वेदव्यास, गीताप्रेस, गोरखपुर 1997 वि0
भाषा अध्ययन के आधार, डा0 प्रेमनारायण टंडन
भारतीय दर्शन, डा0 उमेश मिश्र, सूचना विभाग, उ0 प्र0 सरकार, लखनऊ, 1957 ई0
भागवत् भक्ति रसायन, मधुसूदन सरस्वती, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2018 वि0
भारतीय संस्कृति, शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, राजकमल प्रकाशन, मुम्बई 1944 ई0
भागवत गीता, गीताप्रेस गोरखपुर,
मत्स्य पुराण, वेदव्यास, आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज, पूना
महाभाष्य, पतंजलि

रस तरंगणी, शारंगदेव संगीत रत्नाकर, भानुदत्त, 1907 ई0
रघुवंश, कालिदास श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1979 ई0
रामचरित मानस, गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1996 वि0
राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता, दिनकर
वामन् पुराण, वेदव्यास, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1986 वि0
वाराहपुराण, वेदव्यास, बंगाल एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, 1893 ई0
विष्णुपुराण, वेदव्यास, वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई
वृहदारण्यक उपनिषद्, सं0 वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पण्शीकर, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1932 ई0
वेदान्तसार, सदानन्द, सं0 एम0 हिरिअन्ना, ओरिएण्टल बुक एजेन्सी पूना, 1929 ई0
हरि भक्ति रसामृत सिंधु, रूपगोस्वामी, विद्याविलास पुस्तकालय, काशी प्र0सं0 1988 ई0
हिन्दी हरि भक्ति रसामृत सिंधु, रूपगोस्वामी, व्याख्याकार आचार्य विश्वेवर, हिन्दी विभाग दि0वि0वि. 1963 ई0
हर्ष चरित, भानुभट्ट,
हिन्दी काव्य शास्त्र : कवियों की अवधारणाएँ, सुरेशचन्द्र गुप्त, ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली प्र0सं0 1991
हिन्दी वक्रोत्ति जीवित, कुन्तक, व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली 2021 वि0
हिन्दी विश्वकोश, सं0 नागेन्द्र नाथ वसु, विश्वकोश लेन बागबाजार, कलकत्ता, 1930 ई0
हिन्दी शब्द सागर, सं0 डॉ0श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारणी सभा, काशी
हिन्दी साहित्य कोश, सं0 डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, बनारस, 2015 वि0
हिन्दी साहित्य का इतिहास, पं0रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 2008 वि0
हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ0 मोहन अवस्थी, इलाहाबाद
संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे
संस्कृत वाङ्.मय का वृहद इतिहास, श्री बलदेव उपाध्याय
सरस्वती कण्ठाभरण, भोज
सरस्वती भक्ति रसायन, मधुसूदन
साहित्य दर्पण, विश्वनाथ
सूर साहित्य नव्य मूल्यांकन, डॉ0 चन्द्रभान रावत, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा सं0 1977
संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपध्याय, शारदा निकेतन रवीन्द्रपुरी दुर्गाकुण्ड वाराणसी दशम् संस्करण, 1978
रस गंगाधर, पं0जगन्नाथ, चौखंभा विद्याभवन वाराणसी, 1955 ई0
रघुवंश, कालिदास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई
रघुंवश, महाकाव्य, डॉ0 शंकर दत्त ओझा

महाकवि के आवास का 'ध्वंसावशेष' →

महाकवि 'निधान गिरि' की जन्म-स्थली 'एरच' (झाँसी) से प्राप्त ऐतिहासिक साक्ष्य (ध्वंसावशेष एवं प्राचीन मुद्राएँ

↑
क्रौंस मुद्रा
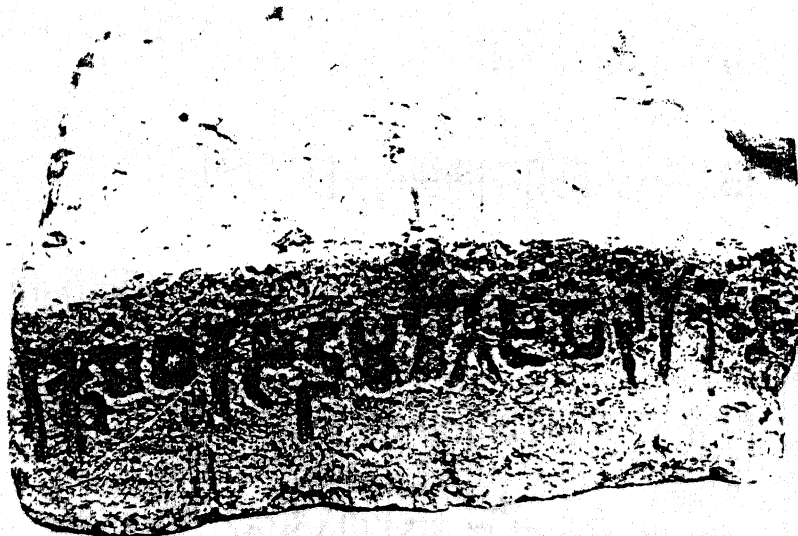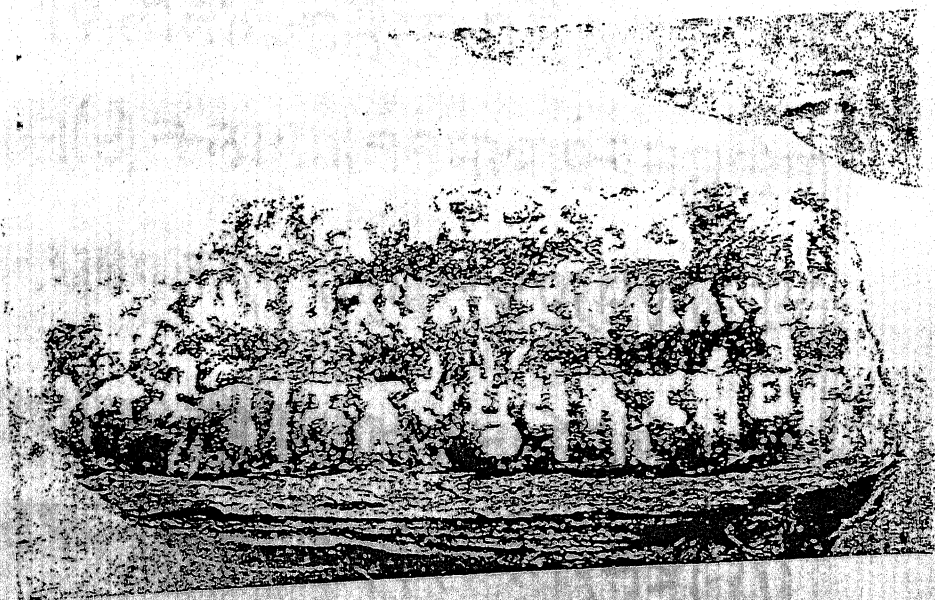
एरच के शासक दाममित्र का अभिलेख

विवरण :— 'महाकवि निधानगिरि कृत 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य के 'ज्ञान प्रकाश' विभाग की छाया प्रति

श्री परमात्मने नमः ॥ अथ ग्यान प्रकास प्रारंभः ॥

वंदहु स्वयं प्रकास निधि सदा सनातन एक ॥ परमत-
ग्यान प्रकास जस मुनिवर वरनित अनेक ॥ ××
व्यंग्य अखंड अचल रहत अविनासी अविकार ॥ निज इच्छा माया
प्रगट असविध कर विस्तार ॥ चौपई ॥ महातत्त्व जग अंकुर की-
ना ॥ ताको विरप सुनो परवीना ॥ तासै अहंकार उपजायो ॥ तीन
भांत सो प्रगट जनायो ॥ तामस राजस [illegible] सात्वक भाषा ॥
सोई तीन विध परसाषा ॥ प्रथम कहत तामस अहंकारा ॥
तिहिं उपसाष कहत विस्तारा ॥ तामस विकार सब्द निर्मयऊ ॥
तासै प्रगट गगन पुनि भयऊ ॥ बहुर परस तासै पुन वाता ॥
तास रूप फिर पावक ताता ॥ जासैं रस तासै जल आवा ॥
तिहिं सै गंध तास छिति आवा ॥ तनमात्रा पंच मुनि गा-
ए ॥ पंच भूत असविध उपजाए ॥ दोहा ॥ सब्द परस पुन रूप रस
गंध कहत मुनिराइ ॥ गगन पवन पावक सलिल छिति दस-
तत्त्व गनाइ ॥ प्रगट पवन सै पुन किये वरनत तेदस थान ॥

श्रीगणेशायनमः॥ अथ कामप्रकासप्रारंभः॥

दोहा॥ बंदूं गनपति पदपदम सिद्धसदम बुधधाम॥ दांन
दे उत्तम मति सब जगत हित कर्म प्रकास बखांन॥

दोहा॥ राजधर्म तुम सें कहत बुद्ध बखांन नरेस॥ साबधांन
होकर सुनो हृदय धरो मुख्य उपदेस॥ प्रथम रात पिछली रहै
जाग उठत महिपाल॥ नित प्रत कर पूजन सरस देवै दांन
विसाल॥ स्यांम मनुजुर रुग वेद कौं जो जांनै महिदेव॥ दरस
न कर पूजै मुदित तास रजा दिस लेव॥ वृद्ध विप्र सुविवेक
रति सेवा कर नित तास॥ अस राजा जग मै पुजत होत प्र
ताप प्रकास॥ दंड नीत आतम सहित विद्या पढै नरेस॥
धन उपाइ सीखै सकल अचल रहै तो देस॥ नृप इंद्रि
यो बस करै निस दिन पढी उपाइ॥ तास प्रजा बस होत है
धर्मशास्त्र मुनि गाइ॥ प्रगट काम से दस विषा अष्ट को
ध सैं जांन॥ नृप इन मै लवलीन जो राजधर्म तिन हां
न॥ अथ दस दोष दोहा॥ सोवत हि दिन परवाद कर सेवत
त्रियन समाज॥ पीवत तौं मरजाद बिन गांन नृत्य बजवाज॥

चित्र — महाकवि [illegible] कृत, '[illegible]', महाकाव्य के कुछ पृष्ठ
[illegible] की छाया-प्रति

नासहिं धर्मसैं ग्यांन मुक्ति दातार॥ इक ब्रतसा अनुमांन इक ऐक
शास्त्र परखांना॥ कीनै सिद्धांत कौं लेइ ध्याइ गुन तजांन॥ ध्यांन
गुरु रसग वेद ध्यै जांन कै है सो सत्त॥ कर्म शास्त्र मीमांन सा वर
नत धर्म प्रवृत्य॥ वेद स्मृति वेदांत पुन न्याइ पुरांन बखांन॥
कहे धर्म सो जांनिये मद्रु कहै जिन मांन॥ न्यास बिना न सु
रहै आतम सर्व मै जो इ॥ मन सु धर्म के पंथ मैं न हिं लग
वै कोइ॥ पंच तत्व के संग मिल सर्व मै आतम धूम॥ जन्म
जु बासै जठर लग फैर उरता करि धूम॥ इम सब जीवन मे
सुजन परमातम कौं देख॥ समरसी भाइ पुरख इक
सरूप बिसेख॥

२ इति कर्मप्रकास रतन भीतमाधु धर्म बरननो नांम अष्टमी पत्र्या॥ ॥छ

समाप्त

विवरण: महाकवि निधानगिरि के 'भक्तिमनोहर' महाकाव्य के 'कर्मप्रकाश' की छाया प्रति

निधान गिरविरचित

विवरण:— महाकवि निधान गिरि कृत 'वैद्यक सिंधु' हस्तलेख की छाया प्रति